ऋग्वेदिक आर्य
(ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन)

राहुल सांकृत्यायन

किताब - महल

समर्पण

वेद के महान् मर्मज्ञ और
लेखनी के परम आलसी
श्री श्री श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय के करकमलो मे

सादर सस्नेह

भूमिका

"नम ऋषिभ्य पूर्वजेभ्य ।" (१० ।१० ।१५)

दो वर्ष पहले यदि कोई कहता, कि मैं इस प्रकार की एक पुस्तक लिखूँगा, तो मुझे इस पर विश्वास नहीं होता। वस्तुत, ऐसी एक पुस्तक को अपनी या पराई किसी भी भाषा मे भी न पाकर मुझे कलम उठानी पडी। ऋग्वेद से ही हमारे इतिहास की लिखित सामग्री का आरभ होता है। जिस प्रकार का ईश्वर झूठ के साथ-साथ महान् अनिष्टो का कारण है, पर अनेक देवता सुन्दर कला का आधार होने के कारण अनमोल और स्पृहणीय हैं, उसी तरह वेद, भगवान् या दिव्य पुरुषो की वाणी न होने पर भी अपने सास्कृतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक सामग्री के कारण, हमारी सबसे महान् और अनमोल निधि है। जिन्होने इसको रचा, और जिन्होने पीढियो तक कठस्थ करके बडे प्रयत्न से इसे सुरक्षित रक्खा, वह हमारी हार्दिक कृतज्ञता के पात्र हैं।

जहाँ तक देश-विदेश को भाषातत्वज्ञों और बुद्धिपूर्वक वेदाध्ययन करने वालो का सम्बन्ध है, ऋग्वेद के काल के बारे मे बहुत विवाद नहीं है। पर, जो हरेक चीज मे अध्यात्मवाद, रहस्यवाद को देखने के लिए उतारू हैं, वह अचिकित्स्य है, उनसे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। अपनी श्रद्धा के अनुसार वह अपने विश्वास पर दृढ रहे, उन्हे विचलित कौन करता हे ? लेकिन, आज की भी तथा आनेवाली पीढिया और भी अधिक, हरेक बात को वैज्ञानिक दृष्टि से देखना चाहेगी। उनके लिए ही यह मेरा प्रयत्न है।

ऋग्वेद के जिज्ञासुओ को अपनी कल्पना की सीमाओ को जान लेना आवश्यक है। ऋग्वेद हमारे देश के ताम्र-युग की देन है। ताम्र-युग अपने अन्त मे था, जबकि सप्तसिन्धु (पजाब) के ऋषियो ने ऋचाओ की रचना की, जब कि सुदास ने "दाशराज्ञ" युद्ध मे विजय प्राप्त करके आर्यों की जन-व्यवस्था की जगह पर एकताबद्ध सामन्ती व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न किया। सप्तसिन्धु के आर्यों की सस्कृति प्रधानत पशुप्रालो की सस्कृति थी। आर्य खेती जानते थे और जौ की खेती करते भी थे। पर, इसे उनकी जीविका का मूल नहीं, बल्कि गौण साधन ही कहा जा सकता है। वह अपने गौ-अश्वो, अजा-अवियो (भेड-बकरी) को अपना परम धन समझते थे। उनके खान-पान और पोशाक के ये सबसे बडे साधन थे। अपने देवताओ को सतुष्ट करने के लिए भी इनकी उन्हे बडी आवश्यकता थी। पशुधन को परमधन मानने के कारण ही आर्यों को नगरो की नहीं, बल्कि प्राय चरिष्णु ग्रामो की आवश्यकता थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्यों की सस्कृति पशुपालो और ग्रामो की सस्कृति थी। इन सीमाओ को हमे ध्यान मे रखना होगा।

ऋग्वेद के बारे मे निर्णय करते समय यह भी ध्यान रखने की बात है, कि ऋग्वेदिक आर्य केवल भारत से ही सम्बन्ध नहीं रखते थे, बल्कि उनकी भाषा और पूज्य भावनाओ के

सम्बन्धी भारत से बाहर भी थे। बाहर के सबसे नजदीक के सम्बन्धी ईरानी थे। सौभाग्य से उनके धार्मिक आचार-विचारो के जानने के लिए अवेस्ता और पारसी धर्म के मानने वाले अब भी मौजूद हैं। तुलनात्मक अध्ययन से मालूम होता है, कि वेद और अवेस्ता के मानने वाले अपनी भाषा और धर्म मे एक दूसरे के बहुत नजदीक थे। ईरानियो के बाद दूसरे जो सबसे नजदीक के आर्यों के विदेशी सम्बन्धी हैं, वह स्लाव जातिया हैं। स्लाव स्कलाव (शक लाव) का ही अपभ्रंश है। रूसी, अक्रइनी, बेलोरूसी, बुल्गारी, युगोस्लावी, चेकोस्लावी पोल--स्लाव जातिया--शकों की ही सन्तान हैं। इन्होने अपने पूर्वजों के धर्म को आज से सात-आठ सौ वर्षों पहले छोड दिया। ईसाई धर्म स्वीकार करते समय इनके पूर्वजो को लिपि का ज्ञान नहीं था, और न उन्होने अपने पवित्र विश्वासो और देवताओ के सम्बन्ध मे अवेस्ता या वेद जैसे कोई प्राचीन सग्रह बनाये थे। जो भी पुराने साम या गाथाये रही होंगी, वह ईसाई धर्म स्वीकार करते ही पुराने विश्वास के साथ नष्ट हो गयीं। पेरुन, सूर्य आदि स्लाव देवताओ की मूर्तियो का भी इतना पूरी तरह से ध्वस हुआ, कि सग्रहालयो मे भी उनका पता नहीं मिलता।

ईरानियो और शको के बाद लेत-लिथुवानियो का सम्बन्ध नजदीक का है। यह दोनों भाषाए सगी बहने और एक दूसरे के बहुत नजदीक हैं। इनसे भी सहायता मिल सकती थी, यदि पुराने पादरियो की धर्मान्धता ने सर्वसहार करने का व्रत न ले लिया होता। लिथुवानी सोलहवीं सदी तक अपने प्राचीन धर्म पर आरूढ थे। उनके देवताओ मे वैदिक देवताओ की प्रतिध्वनि मिलती है। बाबर-हुमायू या विद्यापति-जायसी के समय तक लिथुवानी अभी अपनी पुरानी सास्कृतिक निधियो को जोगाये हुए थे। पर, एक बार ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने पर वह अपने पुराने धार्मिक सम्पर्क को नष्ट कर देने के लिए मजबूर थे। बहुत पीछे ईसाइयो ने सस्कृति के मूल्य को समझा, और उनके भीतर सहिष्णुता ही नहीं, बल्कि अपनी और पराई सास्कृतिक निधियों की रक्षा का ख्याल भी पैदा हुआ। भाषा की दृष्टि से लिथुवानी वैदिक भाषा के उतना नजदीक नहीं है, जितना कि रूसी, पर, अपने व्याकरण मे वह बहुत अधिक प्राचीनता रखती है।

इसके बार पश्चिमी युरोप की प्राचीन-ग्रीक, लातिन-और आधुनिक जर्मन, फ्रेंच, अग्रेजी आदि भाषाओ का सम्बन्ध वैदिक भाषा के साथ हैं। वेद के अर्थ करने मे यह सभी भाषाये अधिकार रखती हैं। हमारी कितनी ही सस्कृत धातुओ का प्रयोग प्राचीन या नवीन सस्कृत साहित्य मे नहीं मिलता, पर उनका आज भी उपयोग भारत के बाहर इन भाषाओ मे देखा जाता है। उदाहरणार्थ दाबना, सस्कृत मे नहीं प्रयुक्त होता, हमारी आज की भाषाओ मे यह मौजूद है, और रूसी मे भी दब्ल्यात मिलता है। सप्तसिन्धु केवल वेद मे ही नहीं मिलता, बल्कि अवेस्ता और ईरानी प्राचीन साहित्य मे ही हफ्त-हिन्दू पाया जाता है, जो केवल सात नदियो के लिए नहीं, बल्कि सातों नदियो वाले प्रदेश और वहाँ बसनेवाले लोगो के लिए भी इस्तेमाल होता रहा। जैमिनी वेद के बारे मे बडे कट्टरपंथी हैं। उन्हें ईश्वर मान्य नहीं हैं, पर वह वेद को सर्वोपरि प्रमाण मानते हैं। वह भी शब्दो के अर्थ करने में कितनी ही जगहो पर आर्यों की प्रसिद्धि छोडकर म्लेच्छो की प्रसिद्धि को स्वीकार करते हैं—

"चोदित तु प्रतीयेताविरोधात्प्रमाणेन" (मीमासा १।३।६।१०)

आर्यों (भारतीयो) मे कोई शब्दार्थ परम्परा लुप्त हो गयी, इसलिए यहाँ वह नहीं मिलती, पर म्लेच्छों में वह परंम्परा मौजूद हैं, इसलिए उसे प्रामाणिक मानना पड़ेगा। वह इसके लिए पिक, नेम (आधा) आदि शब्दो का उदाहरण देते हैं।

हित्तित्त जाति मसोपोतामिया मे, उसी समय के आसपास रहती थी, जिस समय कि सप्तसिन्धु मे आर्य थे। नासत्य (अश्विनीकुमार), इन्द्र, वरुण, मित्र आदि देवताओ के हित्तित्त भी पूज्य मानते थे। इसलिए ऋग्वेदिक आर्यों के सम्बन्ध मे जो गुत्थिया पैदा होती हैं, उनके सुलझाने की इजारेदारी हमारा साहित्य ही नहीं ले सकता।

आर्यों के आने के समय भारत मे उनसे कहीं बढकर उन्नत एक प्राचीन सस्कृति मौजूद थी, जिसके अवशेष मोहनजोदडो और हडप्पा के पहिले मिले, और अब वह जमुना-गगा उपत्यका और सौराष्ट्र तक मिल रहे हैं। सप्तसिन्धु के आर्यों की ग्राम-सस्कृति से यह नागरिक सस्कृति कहीं आगे बढी हुई थी। यदि आर्य अपनी पशुपाल सस्कृति और जीवन से चिपटे रहने का जबर्दस्त आग्रह न करते, तो वह तुरन्त इस नागरिक सस्कृति के अधिकारी हो सकते थे। पर, अध्ययन करने से उनके जीवन का सम्पर्क इस सस्कृति से भी मालूम होता है। उसकी और भी कितनी ही चीजे उन्होने स्वीकार की होगी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्यों के अध्ययन के लिए सिन्धु-उपत्यका की सस्कृति सहायक है।

आर्यों की सस्कृति के पुरातात्विक अवशेष मिले, तो उनके द्वारा सप्तसिन्धु के आर्यों के जीवन को हम और अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। चाहे ग्रामीण ही जीवन पसन्द करते हो, लेकिन आर्य सोम और अपने खाने-पीने के रखने के लिए कितनी ही तरह काठ, मिट्टी और ताबे के बर्तनो के इस्तेमाल करते थे, सोने और रतन के आभूषण पहनते थे, ताबे के हथियार इस्तेमाल करते थे। उनके अवशेष जरूर मिलने चाहिए। धूमिल मृत्पात्र आर्यों के साथ जोडे जाते हैं। यह रोपड मे भी मिले हैं, और कुरुक्षेत्र मे भी। यदि गगा से पूर्व इस तरह के मृत्पात्र मिलते हैं, तो वह ऋग्वेद के काल के बाद भी मौजूद रहे, इसलिए उन पर सप्तसिन्धु के आर्यों के सम्बन्ध मे एकान्तत विश्वास नहीं किया जा सकता। चाहे अभी हम उन्हे अच्छी तरह पा या पहचान न सके हो, लेकिन सप्तसिन्धु की भूमि मे वह मिलेगे जरूर। सप्तसिन्धु का यद्यपि आधा ही अब भारत मे हैं पर यह आधा है, जिसमे सप्तसिन्धु के आर्यों के सबसे प्रभुताशाली जन पुरु, तृत्सु, कुशिक रहते थे।

सिन्धु-सस्कृति वालो के अतिरिक्त एक और जाति सप्तसिन्धु के आर्यों के सम्पर्क और सघर्ष मे आयी, जिस ऋग्वेद दास और दस्यु के नाम से याद करता है। पर, जो किर, किरात अथवा किलात-चिलाप के नाम से सम्भवत उस समय भी प्रसिद्ध थी, और जिसके लोगो और भाषा के अवशेष अब भी हिमालय मे मिलते हैं। वह भी वैदिक आर्यो के इतिहास के ऊपर अपनी भाषा और अपने पुरातात्विक अवशेषो द्वारा प्रकाश डालने की अधिकारी हैं। हिमालय मे किरात अब थोडे रह गये हैं, लेकिन वह और उनके साथ रहने वाले खश अब भी कितनी ही जगहो मे ऐसे सास्कृतिक तल पर मौजूद हैं, कि उनके जीवन और धार्मिक विश्वासो की सहायता से ऋग्वेदिक आर्यों के समझने मे आसानी हो सकती है—विशेषकर वैदिक देवताओ का आर्यों के साथ जिस तरह का सम्बन्ध था वह कितने ही अशो मे अब भी हिमालय की इन जातियो मे मौजूद है।

ऋग्वेद स्वत प्रमाण है। उसके अपने क्षेत्र मे ऋचाये जितना अधिकारपूर्वक कह सकती हैं, उतना कोई दूसरा नहीं बतला सकता। यजुर्वेद और सामवेद को लेकर वेदत्रयी माना जाता था। बुद्ध के समय ईसा-पूर्व पाचवीं-छठीं शताब्दी मे तीन वेदो का स्पष्ट उल्लेख आता है। पर, ऋग्वेद की तुलना करने पर सामवेद ऋग्वेद से भिन्न नहीं मालूम होता। इसके १८१४ मन्त्रो मे ७५ को छोड़कर बाकी सभी ऋग्वेद के हैं। सोमपान या सोमयाग के समय गाने की आवश्यकता

थी। ऋग्वेद मे भी साम और अनेक प्रकार के उक्थो, स्तोमो का उल्लेख आता है। जैसे सूरसागर के सागर मे से बहुत से पदो को गाने के स्वर आदि के साथ अलग सग्रह किया गया, वैसे ही सामवेद को ऋग्वेद से अलग करके रक्खा गया।

यजुर्वेद की वाजसनेयी मे ४० अध्याय और १६८८ कडिका या मन्त्र हैं। यह गद्य और पद्य मिश्रित वेद है। पद्य भाग मे अधिकतर ऋग्वेद की ऋचाये ले ली गयी हैं। जिस तरह साम गेय मन्त्रो की सहिता (सग्रह) है, उसी तरह यजुर्वेद मे ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाये तथा कितनी ही दूसरी रचनाये सम्मिलित करके यज्ञो के उपयोग के लिए एक सहिता बना दी गयी है। (दर्श-पूर्णमास, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि, अश्वमेघ, सर्वमेध, पितृमेध आदि यज्ञो मे उपयुक्त होने वाले मन्त्रो का यह सग्रह है।) केवल अन्तिम (४०वा) अध्याय ब्रह्मज्ञान के लिए है, जिसे ईशावास्य उपनिषद् कहा जाता है। वेद के अन्त मे होने के कारण इसे वेदान्त कहा गया, और आगे ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी इस और दूसरी उपनिषदो के ऊपर विवेचनात्मक ग्रथ को वेदान्त कहा लाने लगा। ऋग्वेद के सोमपान आदि अनुष्ठानो मे दिव्य और मानुष अश मिले-जुले हैं। ऋग्वेद-काल के बाद यह विधि-विधान दिव्यता का रूप ले लेते हैं। उसी समय यजुर्वेद की रचना हुई। कृष्ण यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेद से भी पुराना माना जाता है। प्राय ईसा-पूर्व १००० से ईसा-पूर्व ७०० तक यजुर्वेद, अथर्ववेद और ब्राह्मणो की रचना का समय है। ऋग्वेद के पीछे के इन ग्रथो से भी ऋग्वेद और ऋग्वेदिक आर्यों के बारे मे सूचनाये मिलती हैं। लेकिन, साथ ही ऋग्वेदिक काल की ऐतिहासिक सामग्री को गडबड करने की जो प्रवृत्ति महाभारत, रामायण और पुराणो मे मिलती है, उसका आरम्भ इसी समय हो चुका था। इसलिए उनके इस्तेमाल मे बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है।

यह अध्ययन अधूरा है। इसमे ऋग्वेद की ऋचाओ के करीब छठे भाग का उपयोग किया गया है, जिन्हे दो हजार तक किया जा सकता था। इससे अधिक ऋचाये शायद ही ऐतिहासिक ज्ञान बढाने मे साधक सिद्ध हों। ग्रंथ मे उपयुक्त ऋचाओ को परिशिष्ट मे अर्थ सहित दे दिया गया है, जो विद्यार्थियो और अनुसन्धानकर्ताओ के लिए उपयोगी साबित होगा। नाम और देवतासूची मे भी कितनी ही उपयुक्त सामग्री को सन्निविष्ट करने की कोशिश की गयी है। "हम और हमारे पूर्वज" मे सास्कृतिक परिवर्तन के बारे मे कुछ आवश्यक तथ्य दिये जाते हैं।

हम और हमारे पूर्वज—आज हम अपने देश मे मानव को देखते हैं। उसके सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन से भी परिचित हैं उसका खान-पान, वेष-भूषा हमारे रोजमर्रे के उपयोग की चीज है। इसलिए हम उसको पूरी तौर से जानते हैं। यह मन लेने मे तो किसी को आपत्ति नहीं, कि हमारी हरेक बात मे परिवर्तन होता है। लेकिन, वह परिवर्तन कितना जबर्दस्त हुआ, इसे समझ पाना हमे मुश्किल मालूम होता है। इसके लिए सौ-सौ वर्ष के बाद ऐतिहासिक काल और ज्यादा अन्तर से प्राग्-ऐतिहासिक काल को यदि हम देखे, तो पता लगेगा, कि परिवर्तन अविश्वसनीय रहा। हम १६५६ को न ले १६५० ई० से पीछे की यात्रा करते हैं। यहाँ १६५७ के सम्बन्ध मे भी एक बात कह देनी जरूरी है। कितने ही अकल बेच खाये हुए लोग यह समझते हैं, कि चूँकि १८५७ मे अग्रेजो के खिलाफ विद्रोह और १७५७ मे पलासी की विजय के बाद अग्रेजी राज्य की सीपना हुई, इसलिए हमेशा से ५७ का सन् हमारे लिए अनिष्टकर रहा है। लेकिन १६५७, १५५७, १४५७ आदि के बारे मे कोई ऐसी बात हमारे यहाँ नहीं देखी जाती।

१ १९५० ई०—(१) अब हम पाषाण, ताम्र, लौह, बारूद, वाष्प के युगो को पार कर परमाणु-युग मे हैं। वायुमण्डल पर हमारा अधिकार है। पाच-पाच सौ मील प्रतिघटे की चालवाले विमान उसमे से इधर-उधर दौड रहे हैं। रेलो-मोटरो की तो बात ही नहीं करनी है (३, ४) हमारी शासन-व्यवस्था गणतत्र है, हमारे गणराज्य के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद राजधानी दिल्ली मे रहते हैं। (५) हमारे देश की मुख्य सम्मिलित भाषा हिन्दी है, और भिन्न-भिन्न भागो की असमिया, बगला, उडिया, तेलगू, तमिल, मलयालम, कन्नड मराठी, गुजराती पजाबी, आदि साहित्यिक भाषाये हैं। इनके अतिरिक्त मैथिली, मगही, भोजपुरी अवधी, व्रज, मालवी, राजस्थानी, कौरवी, पहाडी आदि भाषाये भी साहित्यिक भाषाये हैं या होने जा रही हैं। (६) हम पूँजीवादी व्यवस्था मे हैं। (७) राज्यशक्ति अपने हाथ मे रखने के लिए परमास्त्र हमार युग मे लडाकू विमान और परमाणु बम हैं, भीषण तोपो, मशीनगनो की वात की क्या ? (८) हमारे देश के प्रधान धर्म हैं हिन्दू और इस्लाम, जिनके प्रति शिक्षित वर्ग की पहिले जैसी आस्था नहीं है। (९) शिक्षित वर्ग खान-पान मे छूतछात नहीं मानता। व्याह के लिए भी जाति की मर्यादाये टूट रही हैं। (१०) हमारे काव्य-गगन मे रवीन्द्र और प्रसाद लुप्त हो चुके हैं, हिन्दी के निराला ओर पन्त अब भी देदीप्यमान हैं। (११) हमारी अधिक मान्य पोशाक कोट–पेण्ट हैं, यद्यपि अचकन-पायजामा और कुर्ता-धोती भी पहने जाते हैं। स्त्री-जगत् पर साडी का, कभी-कभी सलवार का भी राज्य है। अब भी घाघरा-लगुरी कुर्ता-पायजामा और प्रादेशिक साडिया स्त्रियो मे चलती हैं। अधिकाश लोग मासाहारी हैं। यद्यपि अधिकाश को साल मे दो-चार ही बार वह मुयस्सर होता है। (पीढियो के निरामिषाहारी पहले अण्डे पर पहुँचते हैं फिर मास-मछली पर। पुराने काल मे मास-मछली भले ही भक्ष्य समझे जाते हो लेकिन अण्डा अभक्ष्य माना जाता था। सभ्य दुनिया मे चीनियो ने इसका पहले-पहल आरम्भ किया फिर युरोप और मुस्लिम जगत् ने स्वीकार किया। यह है १९५० ई०।

२ १८५० ई०—(१) हम वाष्प-युग मे हैं। रेलो का अभी-अभी हमारे देश मे आरम्भ हुआ। वाष्प-चालित जहाज भी हमारे बन्दरगाहो मे आने लगे हैं। (३, ४) हमारी राजधानी कलकत्ता है जहाँ पर इग्लेण्ड की रानी विक्टोरिया का गवर्नर-जनरल शासन करता है। (५) राजभाषा अग्रेजी हो चुकी हे। प्रदेशो मे नीचे के कामो के लिए उर्दू, बगला, आदि भाषाओ को इस्तेमाल किया जाता है। (६) पूँजीवादी इग्लैण्ड के हाथ मे देश पराधीन हे। (७) १८५३ म रेल भी युद्ध का साधन होने वाली है। तोपे-बन्दूके पहले से शक्तिशाली हैं, पर अभी कारतूस या उस ढग के गोले का रवाज नहीं ह। (८) हिन्दू ओर इस्लाम दो प्रधान धर्म हैं, लोगो का धार्मिक रूढियो पर बहुत विश्वास है। (९) अधिकाश लोग मासाहारी हे। छूतछात और जात-पात का बहुत जोर है। मुसलमान के हाथ का पानी पीते ही हिन्दू धर्मभ्रष्ट हो जाता है। खान-पान मे अधिक लोग मासाहारी और व्यापारी वर्ग तथा कितने ही पुरोहित लोगो मे निरामिष आहार की प्रधानता है। (१०) हमारे हिन्दी-गगन मे गालिब महान् कवि हैं। कला म पुरानी लकीर पीटी जा रही है। (११) मिर्जयी (चोबदी) सुत्थन सम्भ्रान्त पुरुषो की पोशाक हे। स्त्रियो मे अपने-अपने प्रदेश ओर वर्ग की पोशाके हैं। पश्चिम के राजाओ ओर नवाबो की महिलाये चूडीदार पायजामे के ऊपर पेशवाज पहनती हे। दूसरी स्त्रिया घाघरा-लुगडी और भिन्न-भिन्न प्रकार की साड़िया पहनती है। यह है सन १८५०।

३ १७५० ई०—(१) बारूद का युग है। (३) दिल्ली राजधानी है, (४) शक्तिहीन अहमदशाह मुगल-बादशाह है। (५) राजभाषा फारसी है। (६) सामन्ती निरकुशता तथा दासता-प्रथा का जोर है। (७) पलीतेदार तोपे हमारे सबसे शक्तिशाली हथियार (परमास्त्र) हैं। (८) (६) हिन्दू और मुसलमान प्रधान धर्म हैं। बहुसख्या हिन्दुओ की है। मासाहारी अधिक है। छूतछात बहुत मानी जाती है। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के हाथ का पानी भी नहीं पी सकते। रोटी-बेटी जात के भीतर ही चलती है। (११) चौबन्दी-मिर्जयी और सुत्थन सम्भ्रान्त पोशाक है। उत्तर-भारत के सामन्तो-की स्त्रिया पायजामा और पेशवज पहनती हैं। दूसरी घाघरा-लुगडी या प्रादेशिक साडियो को इस्तेमाल करती हैं। यह हे सन् १७५०।

४ १६५० ई०—(१) हम लौह-युग के बारूद-उपयुग मे हैं। (३, ४) राजधानी दिल्ली और राजा शाहजहा बादशाह हे। (५) राजभाषा फारसी है। (६) व्यवस्था राजतत्रीय सामन्तवाद और दासता की है। (७) पलीते की तोपे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू और इस्लाम प्रधान धर्म हैं। (६) अधिकाश लोग मासाहारी हैं। छूतछात हद्द दर्जे की है रोटी-बेटी हिन्दुओ मे अपनी जाति तक ही सीमित है। (१०) साहित्य-गगन में तुलसी अस्त हो चुके हैं। (११) उत्तरी भारत के सामत-पुरुषो की पोशाक मिर्जयी-सुत्थन और स्त्रियो की पायजामा-पेशवाज है। दूसरे अपनी प्रादेशिक पोशाक पहनते हैं। यह है सन् १६५०।

५ १५५० ई०—(१) हम लौह-युग के बारूद-उपयुग मे हैं। (३, ४) दिल्ली राजधानी मे शूरवशी इस्लामशाह गद्दी पर हैं। (५) फारसी राजभाषा है। (६) सामन्तवादी शासन मे दासता का अखण्ड राज्य है। (७) तोपे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू और इस्लाम प्रधान धर्म हैं। (६) लोग अधिकाश मासाहारी है। खान-पान मे छूतछात का बहुत जोर है। रोटी-बेटी अपनी जाति और प्रदेश मे ही हो सकती हैं। (१०) जायसी हिन्दी साहित्य-गगन से हाल ही मे लुप्त हुए हैं। (११) सामन्त-वर्ग मे मिर्जयी और सुत्थन पुरुषो की और पायजामा-पेशवाज स्त्रियो की पोशाक है। यह है सन् १५५०।

६ १४५० ई०—(१) बारूद-युग का भारत मे आरम्भ है। (३, ४) राजधानी दिल्ली मे बहलोल लोदी का शासन है। (६) सामन्तवाद और दास-प्रथा हमारी सामाजिक व्यवस्था के प्रधान रूप हैं। (७) तोप परमास्त्र है, लेकिन उसका प्रचार हमारे यहाँ अभी बहुत कम हुआ है। (८) हिन्दू अधिक और मुसलमान भी काफी हैं। (६) अधिकाश लोग मासाहारी हैं। खानपान मे जबर्दस्त छूआछूत है। रोटी-बेटी जात और प्रान्त के भीतर ही हो सकती है। (१०) साहित्य-गगन मे कबीर अस्त हो चुके हैं। (११) वेष-भूषा उत्तरी भारत के सामन्तो की चौबन्दी, लम्बी मिर्जयी, कोगा और पायजामा या धोती है। स्त्रिया अपनी-अपनी प्रादेशिक पोशाक-घाघरा-लुगडी, धोती, सलवार आदि पहनती हैं। हिन्दू-मुसलमान की पोशाक मे उच्च वर्ग मे भी अन्तर है। यह है सन् १४५०।

७ १३५० ई०—(१) युरोप मे बारूद के प्रचार का आरम्भ है। पर, हमारे यहाँ उसका प्रवेश नहीं है। हम शुद्ध लौह-युग मे हैं। (३, ४) दिल्ली राजधानी है, राजा मुहम्मद तुगलक है। (५) राजभाषा फारसी है। (६) सामन्ती शासन और दास-दासियो का खुला क्रय-विक्रय हो रहा है। (७) तीर-धनुष और तलवार-भाला हमारे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू प्रधान धर्म है, मुसलमान भी विशेषकर पजाब और दिल्ली के आसपास काफी हैं। (६) अधिकाश मासाहारी है, छुआछूत का राज्य है। मुसलमान या अछूत के हाथ का पानी नहीं पिया जा सकता। रोटी-बेटी जाति और

प्रान्त के भीतरी ही हो सकती है। (११) मुसलमानो की पोशाक चोगा और पायजामा है। उनकी स्त्रिया भी वही पोशाक पहनती हैं। हिन्दुओं के यहाँ सामन्तो मे चौबन्दी-सुत्थन और चौबन्दी-धोती है, स्त्रियो मे घाघरा-लुगडी या साडी। यह है सन् १३५०।

८ १२५० ई०—(१) लोह-युग है। (३, ४) दिल्ली राजधानी मे सुल्तान नासिरुद्दीन खिलजी का शासन है। (५) फारसी राजभाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-दासियो का रवाज है। (७) तीर-धनुष हमारे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू धर्म की प्रधानता है। बोद्ध भी हैं, और इस्लाम का अभी प्रवेश ही हुआ है। (९) अधिकाश लोग मासाहारी हैं अछूत और मुसलमान के हाथ का पानी नहीं चलता। रोटी-बेटी जाति और प्रान्त मे ही होती है। (११) मुसलमान सामन्त और उनकी स्त्रिया चोगा-पायजामा पहनते हैं। हिन्दू चौबन्दी के साथ सुत्थन या धोती रखते हैं। उनकी स्त्रिया घघरा-लुगडी या दूसरी प्रादेशिक पोशाक पहनती हैं। यह है सन् १२५०।

९ ११५० ई०—(१) लौह-युग मे है। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। महाराज गोविन्दचन्द गहडवार का शासन है। (५) सस्कृत राजभाषा है, और मध्यदेशी या अपभ्रश (पाचाली, कनौजी) भारत की सम्मिलित और सम्भ्रान्त भाषा है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू धर्म के दो रूप ब्राह्मण और बौद्ध देश मे बहु प्रचलित हैं, जिनमे ब्राह्मण धर्मियो की सख्या अधिक है। इस्लाम अभी पजाब मे ही थोडा-बहुत देखा जाता है। लेकिन अफगानिस्तान हिन्दू से मुसलमान हो गया है। (९) लोग अधिकाश मासाहारी हैं। छुआछूत और जात-पात का जोर है। पर, बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म का अग होने से उसमे कुछ बाधक भी है। बाहर के किसी भी देश के बौद्ध अछूत नहीं माने जाते। रोटी-बेटी भी अपनी जाति के ब्राह्मण धर्मियो और बौद्धो मे हो जाती है। (१०) हर्ष कान्यकुब्ज के महान् कवि अभी तरुण हैं। (११) पोशाक चौबन्दी और धोती है। स्त्रिया घाघरा-लुगडी ज्यादा पहनती हैं। प्रादेशिक पोशाक भी उनकी अपनी-अपनी है। कान्यकुब्ज की वेष-भूषा, खान-पान और चाल-व्यवहार को आदर्श माना जाता है। यह है सन् ११५०।

१० १०५० ई०—(१) हम लौह-युगमे है। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। प्रतिहार वश का नाश हुआ है, देश की स्थिति अस्त-व्यस्त है। (५) सस्कृत राज-सम्मानित भाषा है। पर, पाचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रश सारे देश की सम्मिलित साहित्य और व्यवहार की भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था और दास-प्रथा का प्रचार है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण और बौद्ध, प्रधान धर्म है। (९) अधिकाश मासाहारी हैं। छुआछूत का खान-पान मे प्रचार है। अछूत को न छूते न उसके हाथ से पानी पीते हैं। बौद्ध-ब्राह्मण धर्मों मे रोटी-बेटी का कोई भेद नहीं है, पर, अपनी जाति और वर्ग मे ब्याह किया जाता है। (१०) साहित्य-गगन मे कविराज राजशेखर अस्त हो चुके हैं। (११) पोशाक पुरुषो की चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियो की घाघरा-लुगडी या साडी-अगिया सम्भ्रान्त मानी जाती है। यह है सन् १०५०।

११ ९५० ई०—(१) हम लौह-युग मे है। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी मे महाराज देवपाल प्रतिहार का शासन हे। (५) सस्कृत राजमान्य भाषा, है, पर पाचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रश साहित्य और व्यवहार की सारे देश मे मान्य भाषा है। (६) सामन्ती शासन और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण और बौद्ध प्रधान धर्म है, जिनमे शैव और तान्त्रिक बौद्ध धर्म मुख्यता रखते हैं। पूर्व मे बौद्ध और पश्चिम मे पाशुपतो की सख्या अधिक है। (९) अधिकाश मासाहारी हैं, छुआछूत अछूतो और परधर्मी म्लेच्छो के साथ बरती जाती है।

रोटी-बेटी अपने जाति-वर्ग मे होती है। (११) चौबन्दी-धोती, सुत्थन पुरुषो की और घाघरा, साडी, चुनरी, अगिया स्त्रियो की पोशाक है। यह है सन् ६५०।

१२ ८५० ई०—(१) हम लौह-युग मे है। (३, ४) कन्नौज मे राजा मिहिरभोज प्रतिहार का शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य तथा मध्यदेशीया (कन्नौजी) अपभ्रश सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था तथा दास-प्रथा चल रही हे। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) शैव और बौद्ध प्रधान धर्म हैं—पूर्व मे बौद्ध अधिक और पश्चिम मे शैव अधिक है। (११) पोशाक पुरुषो की चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियो की साडी-घाघरा, चुनरी-चौबन्दी-अगिया है। यह है सन् ८५०।

१३ ७५० ई०—(१) लौह-युग मे है। (३) (४) कान्यकुब्ज मे प्रतापी यशोवर्मा का शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य और मध्यदेशीया (पाचाली) अपभ्रश भारत की साहित्य और व्यवहार की सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्तवादी समाज है, जिसमे दासता निरावाध चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) शैव और बौद्ध प्रधान धर्म हैं—बौद्ध पूर्व मे और शैव पश्चिम म अधिक है। बौद्धो में महायान का जोर है, तन्त्रयान भी ऊपर आ रहा है। (९) खाने-पीने के सम्बन्ध मे छूतछात हरिजनो के साथ मानी जाती है, बाकी मे उसका कम प्रभाव है। लोग मासभक्षी ज्यादा हैं, यद्यपि गरीबो को वह कभी-कभी मिलता है। (१०) भवभूति और सरहपा साहित्य-गगन के सूर्य है। (११) चौबन्दी-धोती-सुत्थन पुरुषो की और साडी-चौबन्दी-अगिया स्त्रियों की पोशाक है। यह है सन् ७५०।

१४ ६५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) कान्यकुब्ज राजधानी है। हर्षवर्धन के मरे तीन ही वर्ष हुए हैं, सिहासन के लिए झगडा चल रहा है। (५) सस्कृत राजमान्य और पाचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रश सर्वमान्य साहित्य और व्यवहार की भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था तथा दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और शैव-ब्राह्मण धर्मों की प्रधानता है। पूर्व मे बौद्ध और पश्चिम मे अबौद्ध अधिक हैं। (९) अधिकाश लोग मासभक्षी हैं। छुआछूत हरिजनो से बरती जाती है। विदेशियो के साथ भी छुआछूत का बर्ताव नहीं है। रोटी-बेटी अपनी जाति और प्रान्त मे अधिक होती है, पर अभी बाहर के लिए दरवाजा बन्द नहीं है। (१०) वाण को साहित्य-गगन से अस्त हुए थोडा ही समय बीता, है। (११) पोशाक पुरुषो की चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियो की साडी-अगिया-कचुकी है। यह है सन् ६५०।

१५ ५५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) राजधानी कन्नौज मे राजा ईशानवर्मा मौखरी का शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य भाषा है। प्राकृत अपना स्थान पाचाली अपभ्रश के लिए छोड रही है। साहित्य मे सस्कृत के बाद प्राकृत अधिक सर्वमान्य है, लेकिन व्यवहार में अपभ्रश आगे आ रही है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था तथा दास-प्रथा चज रही है। (७) बौद्ध, शैव और ब्राह्मण धर्मों की प्रधानता है। बौद्ध महायानी हैं। शैव लकुलीश पाशुपत हैं। ब्राह्मण वैदिक और पौराणिक कर्मकाण्डी हैं। (९) लोग अधिकतर मासाहारी है। छूतछात का बर्ताव हरिजनों के साथ ही ज्यादा है। दूसरो मे रोटी बहुत कुछ चल जाती है। ब्याह अपने वर्ग और प्रान्त में ज्यादा होता है, पर इससे बाहर करने का रास्ता बन्द नहीं है। (१०) अजन्ता की कला का यह मध्याह्न है। (११) पुरुष चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रिया घाघरा साडी-कचुकी पहनती हैं। यह है सन् ५५०।

१६ ४५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) पाटलिपुत्र (पटना) में गुप्तवशी परमभट्टारक महाराज कुमारगुप्त का शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य और प्राकृत सर्वमान्य

साहित्यिक तथा सारे भारत मे पारस्परिक व्यवहारकी भाषा है। (६) दास-प्रथा के साथ सामन्ती व्यवस्था चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्म की प्रधानता है। पूर्व मे बौद्ध और पश्चिम मे ब्राह्मण अधिक है। (९) मासाहारी प्राय सभी है। हरिजनो के साथ खान-पान और रोटी-बेटी मे छुआछूत का विचार किया जाता है। बाकी मे उतनी कडाई नहीं है, सिर्फ वर्ग का ख्याल है। विदेशी सामन्त भी भारतीय सामन्तो के साथ रोटी-बेटी करते हैं। (१०) हमारे साहित्य-गगन के महानक्षत्र कालिदास हाल ही मे अस्त हुए हैं। मूर्ति-चित्रकला पराकाष्टा पर है। (११) पोशाक पुरुषो की चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियो की साडी-कचुकी है। सामन्त-चोगा भी पहनते हैं। यह है सन् ४५०।

१७ ३५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) पाटलीपुत्र राजधानी है। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त का शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य और मागधी सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था ओर दास-प्रथा का जोर है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध ब्राह्मण प्रधान धर्म है—बौद्ध पूर्व मे और ब्राह्मण पश्चिम मे अधिक हैं। (९) मासाहारी प्राय सभी है। छूआछूत का विचार हरिजनो के साथ किया जाता है। ब्याह-शादी मे वर्ग का निर्बन्ध ज्यादा है, पर अभी अधिक कडाई नहीं है। (१०) मूर्तिकला और चित्रकला अपनी पराकाष्टा पर पहुँचना चाहती है। कालिदास के आने की तैयारी हो रही है। (११) पोशाक पुरुषो की चौबन्दी-धोती है, पर गुप्त-सम्राट् और सामन्त, शाको के सुत्थन और चोगे को भी धारण करते हैं। स्त्रिया साडी-कचुकी पहनती है। यह है सन् ३५०।

१८ २५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) मथुरा मे वीरसेन नाग का शासन है। (५) सस्कृत का मान है, लेकिन सौरसेनी प्राकृत अधिक सर्वमान्य है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था तथा दास-प्रथा का जोर है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मों की प्रधानता है। (९) छूआछूत का बर्ताव हरिजनो के साथ ही किया जाता है। बाकी मे खान-पान एक है। प्राय सभी लोग मासाहारी हैं, यद्यपि वह कम के लिए ही प्रतिदिन सुलभ है। ब्याह मे भी जात-पात का ख्याल बहुत कम है, और शासको मे बिल्कुल नहीं है। देशी-विदेशी सामन्त आपस मे खुलकर शादी-ब्याह करते हैं। (१०) साहित्य-गगन मे नाटककार भास प्रकाशमान है। (११) पोशाक चौबन्दी-धोती या शको का चोगा-पायजामा पुरुषो मे चलता है। स्त्रिया साडी-कचुकी पहनती हैं। यह है सन् २५०।

१९ १५० ई०—(१) लौह-युग है। (३, ४) मथुरा राजधानी है। शक-सम्राट, हुविष्क का शासन है। (५) सस्कृत का जोर बहुत नहीं है। सौरसेनी प्राकृत सर्वमान्य भाषा है। (६) समाज मे सामन्ती व्यवस्था और दासता-प्रथा का जोर है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण प्रधान धर्म है, जिनमे बौद्धो का पल्ला भारी है। महायान अभी गर्भ मे है। (९) छुआछूत का बर्ताव केवल हरिजनो तक सीमित है। रोटी-बेटी का भी निर्बन्ध नहीं है। विदेशी शक भारी सख्या मे भारतीय समाज मे मिलकर एक हो रहे हैं। (११) पोशाक चौबन्दी-धोती या शकीय चोगा-सुत्थन पुरुषो की, और स्त्रियों की साडी-कचुकी है। यह है सन् १५०।

२० ५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) मथुरा राजधानी है। शक राजा वीम कदफिस का शासन है। (५) सौरसेनी प्राकृत भाषा सर्वमान्य भाषा है, जो पालि से अभी-अभी अलग हुई है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण, बौद्ध प्रधान धर्म हैं, जिनमे बौद्धो का पलडा भारी है। (९) लोग अधिक मासाहारी हैं। छूतछात का

बर्ताव केवल हरिजनो के साथ है। रोटी-बेटी मे वर्ण या देश-विदेश का विचार उठ सा गया है। (१०) साहित्य-गगण मे महाकवि अश्वघोष चमक रहे हैं। (११) पोशाक पुरुषो की धोती-चादर या शकीय चोगा-सुत्थन है, स्त्रियो की साडी-कचुकी। यह है सन् ५०।

२१ ५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। शुग भूमिमित्र का शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथा का चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हे। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मों की प्रधानता है। (६) मासाहारी प्राय सभी है। छूतछात सिर्फ अछूतो के साथ बरती जाती है। ब्याह मे वर्ग का ख्याल किया जाता है, जात या देश का नहीं। (११) धोती-चादर पुरुषो की और साडी-कचुकी स्त्रियो की पोशाक है। स्त्रिया कभी-कभी साडी को दो टुकडो मे उत्तरीय और अन्तर्वासक के तौर पर पहनती है। यह है सन् ५० ई० पू०।

२२ १५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र मे शुगवशी महाराजा पुष्यमित्र का शासन है। (५) सस्कृत को मान्यता देने की कोशिश की जा रही है, पर मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथा का चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मों की प्रधानता है। (६) मासाहारी प्राय सभी है। छूआछूत सिर्फ हरिजनो के साथ बरती जाती है। ब्याह मे वर्ग का ख्याल ज्यादा हैं, देशी और विदेशी विचार नहीं किया जाता। (१०) महावैयाकरण पतजलि की तपी है। (११) पुरुष अन्तर्वासक और उत्तरीय पहनते हैं, स्त्रियो की भी यही पोशाक है। दोनो केशो के जूडे पर पगडी (उष्णीय) बाधते है। यह है सन् १५० ई० पू०।

२३ २५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र मे देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक का शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती शासन व्यवस्था और दास-प्रथा का चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध, ब्राह्मण, जैन, धर्म हैं, जिनमे ब्राह्मण धर्म प्रधान है। (६) लोग मासाहारी है। छूआछूत बहुत कम है। ब्याह मे भी देश-कुलका ख्याल न करके "स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि" को माना जाता है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनो की अन्तर्वासक और उत्तरीय है। दोनो लम्बे बालो को सिर पर जूडा बनाकर पगडी (उष्णीय) बाधते हैं। यह है सन् २५० ई० पू०।

२४ ३५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। महानद का शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्म की प्रधानता है। जैन और बौद्ध धर्म अपने प्रभाव को बढा रहे हैं। (६) लोग मासाहारी हैं खान-पान मे छूआछूत का विचार नहीं सा है। ब्याह मे देश-कुल की कडाई नहीं है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनो की उत्तरीय-अन्तर्वासक और लम्बे केशो को जूडा बनाकर पगडी (उष्णीय) बाधते हैं। यह है सन् ३५० ई० पू०।

२५ ४५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। शिशुनाग वशीय राजा उदायी का शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामती व्यवस्था और दास-प्रथा का चलन है। (७) धनुष-बाण परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्म की प्रधानता है। जैन, बौद्ध, आजीवक आदि भी कुछ-कुछ फैलने लगे हैं। (६) मास भक्ष्य हैं। छूआछूत का विचार बहुत कम, सो भी चाण्डालो के साथ है। ब्याह मे भी बन्धन वर्ग का ही अधिक है। (११) पोशाक उत्तरीय, अन्तर्वासक, जुडायुक्त उष्णीष (पगडी) स्त्री-पुरुष दोनो की है। यह है सन् ४५० ई० पू०।

२६ ५५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) सारा देश एक राज्य नहीं है। राजगृह और वैशाली प्रधान राजधानिया है। राजागृह में बिन्दुसार का शासन है, और वैशाली मे गणराज्य। (५) कोसली-पालि भाषा की प्रधानता है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं। (८) ब्राह्मण धर्म की प्रधानता है। आजीवक, निर्ग्रंथ, बौद्ध धर्मों के प्रचार का आरम्भ है। (९) सभी मासाहारी है। छूआछूत का विचार नहीं सा है। ब्याह में देश-जाति का नहीं वर्ग का ख्याल ज्यादा है। (१०) भारतीय दो महान् विचारक बुद्ध और तीर्थंकर महावीर काम कर रहे हैं। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनो की उत्तरीय, अन्तर्वासक और उष्णीय है। यह है सन् ५५० ई० पू०।

२७ ६५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) अलग-अलग राज्य और राजधानिया हैं, जिनमे कोसल की राजधानी श्रावस्ती प्रधानता रखती है। (५) कोसली-पालि अधिक व्यापक भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दासता प्रचलित है। गणराज्य और राजतन्त्र दोनो प्रकार के शासन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं। (८) ब्राह्मण धर्म की प्रधानता है। (९) छूआछूत-का विचार नहीं सा है। ब्याह मे वर्ग का विचार किया जाता है। लोग मास-भोजी हैं। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनो की उत्तरीय-अन्तर्वासक और उष्णीष है। यह है सन् ६५० ई० पू०।

२८ ७५० ई० पू०—(१) लौह-युग के आरम्भिक दिन है। (३ ४) कुरु-पाचल देश की सास्कृतिक और राजनीतिक प्रधानता का समय है। (५) छन्द (वैदिक) भाषा की ऊपरी (आर्य) वर्ग मे अधिक प्रचार है, लेकिन द्रविड भाषा भी काफी बोली जाती है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दासप्रथा का चलन है। गणो और राजाओ दोनो का शासन चल रहे हैं। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं। (८) ब्राह्मण धर्म और वैदिक कर्मकाण्ड आर्यों मे चलते हैं। दूसरे दविड, किरात देवताओ को मानते हैं। (९) सभी मासाहारी है। वर्ण का विचार बहुत कडा है। आर्य अपने से भिन्न जाति के लोगो के साथ ब्याह करने के विरुद्ध हैं। (१०) उपनिषद् के महान ऋषि याज्ञवल्क्य का यह समय है। (११) पोशाक अन्तर्वासक, उत्तरीय और उष्णीष स्त्री-पुरुष दोनो की है। आर्य ऊनी वस्त्रो को ज्यादा पसन्द करते हैं। यह है सन् ७५० ई० पू०।

२९ ८५० ई० पू०—(१) लौह-युग का अभी-अभी आरम्भ हुआ है। (३, ४) कुरु जनपद की प्रधाननता हैं। (५) छन्द (वैदिक) भाषा आर्यों की और प्राचीन द्रविड और किरात भाषा दूसरो की है। (६) गण और राज दोनो तत्र चल रहे हैं। दास-प्रधान सामन्ती समाज है। (७) परमास्त्र तीर-धनुष हैं। तीर के फल अब ताबे की जगह लोहे के बनने लगे हैं। (८) वैदिक धर्म आर्यों मे ओर दूसरो मे अपने-अपने धर्म प्रचलित हैं। (९) वर्ण-भेद उसी तरह घोर है, जिस तरह दक्षिणी अफ्रीका और दक्षीणी युक्तराष्ट्र अमेरिका मे आज देखा जाता है। (११) पोशाक ऊपर द्रापि (एक तरह का चोगा) और नीचे अन्तर्वासक है। आर्य ऊनी वस्त्र ज्यादा पहनते हैं। स्त्री-पुरुषो की पोशाक मे कोई अन्तर नहीं है। दोनो अपने लम्बे बालो को समेटकर उष्णीष बाधते हें। यह है सन् ८५० ई० पू०।

३० ११५० ई० पू०—(१) हम अब तीन सो वर्ष पीछे जाते है। ताम्र-युग है। (३, ४) सप्तसिन्धु (पजाब) मे भरत जन के राजा सुदास की तपी है। (५) वेदिक (छन्द) भाषा आर्यों की भाषा है, दूसरो की किरात और द्रविड भाषाये। (६) जन-व्यवस्था से अभी-अभी आर्य सामन्ती व्यवस्था मे आये हैं। अनार्य बहुत भारी सख्या मे उनके यहाँ दास के तौर पर काम करते हैं।

(७) ताबे के फलवाला तीर और धनुष परमास्त्र है। (८) आर्यों मे वैदिक देवताओ की पूजा होती है। किरातो और द्रविडो (मोहनजोदडो वासियो) मे अपने शिशन या दूसरे देवता मान्य है। (६) सभी मासाहारी हैं। आर्य-अनार्य और काले-गोरे का भारी भेद है। दोनो का सशस्त्र सघर्ष अभी खतम नहीं हुआ है। (१०) ऋषि वसिष्ठ और विश्वामित्र महान् कवि और राजनीति के तौर पर विराजमान है। (११) द्रापि, अन्तर्वासक और उष्णीव स्त्री-पुरुषो की पोशाक हैं, जो ऊन या चमडे के होती है।

३१ १४५० ई० पू०—तीन सौ वर्ष पीछे जाते हैं। (१) ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यका पर पाच आर्य जनो का शासन स्थापित हो गया है। (५) आर्य प्राचीन वैदिक भाषा बोलते हैं। हिमालय के पहाडो मे किरात और नीचे प्राचीन द्रविड या आर्य भाषा चलती है। हिमालय के किरातो मे जन-व्यवस्था और दूसरो मे सामन्ती या जन-व्यवस्था है। दासता का अखण्ड राज्य है। (७) ताम्र-फल वाले तीर और धनुष परमास्त्र है। (८) वैदिक और प्राग्-द्रविड या किरात देवता अपनी-अपनी जातियो मे पूजे जाते हैं। (६) सभी मासाहारी हैं। भयकर वर्णभेद का प्रचार है—जहॉ तक आर्यों और अनार्यों का सम्बन्ध है। द्रविडो मे वर्ग भेद है। (११) पोशाक आर्यो की द्रापि, अन्तर्वासक और उष्णीष स्त्री–पुरुष दोनो की है, जो ऊन और चमडे की होती है। किरात शायद चमडे और ऊन की लम्बी चादरे पहनते हैं। प्राग्-द्रविड कपास के अन्तर्वासक, उत्तरीय और शायद उष्णीष भी व्यवहार करते है। यह है सन् १४५० ई० पू०।

३२ १५५० ई० पू०—(१) ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यका मे द्रविड सामन्तो का शासन हैं, जिनकी राजधानिया मोहनजोदडो, हडप्पा आदि है। (५) भाषा मैदान मे प्राग्-द्रविड है और हिमालय के पहाडियो मे प्राग्-किरात। (६) प्राग्-द्रविडो मे दासतायुक्त सामन्ती व्यवस्था है, किरातो मे जन-व्यवस्था है। प्राग्-द्रविडो मे आर्थिक स्वार्थों ने वर्ग स्थापित किये हैं। प्राग-किरातो मे पितृसत्ताक या जन-व्यवस्था है। (७) धनुष और ताबे के फल लगे तीर परमास्त्र है। (८) प्राग्-किरात और प्राग-द्रविड देवता पूजे जाते हैं। (६) सभी मासाहारी हैं। (१०) प्राग्-द्रविड कपास के अन्तर्वासक, उत्तरीय पहनते हैं, और किरात चमडे या ऊन्न की लम्बी चादरे जाडो मे पहनते हैं, नहीं तो नगे रहते हैं।

३३ २५५० ई० पू०—(१) अभी-अभी ताम्र-युग का आरम्भ हुआ है। (३, ४) उत्तरी भारत मे प्राग्-द्रविड जाति कहीं-कहीं बसती है। हिमालय के पहाडो मे कश्मीर से आसाम और आगे तक किरात जाति जहॉ-तहॉ है। (५) दोनो अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं। (६) प्राग्-द्रविड पितृसत्ताक जन-व्यवस्था मे है, और प्राग्-किरात उनसे भी पीछे है। (७) पत्थर के हथौडो और तीर पर चकमक-पत्थर का अभी भी प्रयोग है, कभी-कभी ताबे के टुकडे भी जोडे जाते हैं। तीर-धनुष ही परमास्त्र हैं। (११) पोशाक सिर्फ जाडे के लिए चमडे या ऊन की पहनी जाती है, नहीं तो अधिकतर स्त्री-पुरुष नगे रहते हैं। जीविका का साधन खेती और शिकार दोनो है।

३४ ३०५० ई० पू०—(१) और भी पाच सौ वर्ष पीछे जाने पर हम नव-पाषाण-युग मे है। (३, ४) भारत के भिन्न-भिन्न भागो मे भिन्न-भिन्न जन रहते हैं। किरात पहाडो और तराई के जगलो मे तथा मुण्डा और निषाद मैदानी घोर जगलो मे निवास करते हैं। (५) किरात, मुण्डा, निषाद भाषाओ के प्राचीन रूप लोग बोलते हैं। (६) पितृसत्ताक जन-व्यवस्था है। (७) शिलामुख

बाण और धनुष परमास्त्र हैं। (८) मृतात्माओ और वृक्षो-पशुओ को लोग पूजते हैं। (६) भक्षाभक्ष्य का कोई परहेज नहीं है। मासाहार प्रधान खाद्य है। अन्न खेती से उत्पन्न होने लगा है, पर उसका उपयोग कम है। (११) सिर्फ जाडे के लिए चमडे का व्यवहार करते हैं, नहीं तो स्त्री-पुरुष नगे रहते हैं।

३५ १००५० ई० पू०—(१) हम और सात हजार वर्ष पीछे जाते हैं। अब ऊपरी पुरापाषाण-युग मे है। (३ ४) किरात और निषाद जाति के थोडे से लोग भारत के जगलो मे जहाँ-तहाँ मिलते हैं। (५) वह अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं, जिसका शब्द-कोश कुछ सौ शब्दो से अधिक नहीं है। (६) मातृसत्ताक व्यवस्था है, सम्पत्ति और श्रम सामूहिक है। (७) छिले हुए पत्थर के हथियार—कुल्हाडे, छुरे आदि ही परमास्त्र हैं। (८) मृतको और भयप्रद वस्तु को सतुष्ट करने की मनुष्य कोशिश करता है। (६) केवल शिकार का मास और जगल के फल जीविका के साधन हैं। (११) जाडों से बचाने के लिए आदमी चमडे और आग का इस्तेमाल करता है। हिंसक जन्तुओ को भगाने मे भी अग्नि सहायक है।

पिछले १२००० वर्षों मे भारत मे मानव समाज का विकास इस प्रकार हुआ है, उसे हम यहाँ तालिका मे दे रहे हैं—

युग	काल	राजधानी	राजा	भाषा	व्यवस्था
१	२	३	४	५	६
पाषाण	१००५० ई० पू०	०	०	०	मातृसत्ताक
नवपाषाण	३०४० ,,	०	०	०	पितृसत्ताक
ताम्र	२५५० ,,	०	०	०	दासता
,,	१५५० ,,	०	०	प्रागृद्रविड	सामन्त, दासता
,,	१४५० ,,	०	०	वैदिक	जन, सामत
,,	११५० ,,	(सप्तसिंधु)	सुदास	,,	सा० दा०
लौह	८५० ,,	(कुरु)	०	,,	,,
,,	७५० ,,	,,	०	,,	,,
,,	६५० ,,	श्रावस्ती	कोसलराज	कोसली-पालि	,,
,,	५५० ,,	राजगृह	बिंबिसार	मागधी-पा०	,,
,,	४५० ,,	पटना	उदायी	,,	,,
,,	३५० ,,	,,	महानद	,,	,,
,,	२५० ,,	,,	अशोक	,,	,,
,,	१५० ,,	,,	पुष्यमित्र	,,	,,
,,	५० ,,	,,	भूमिमित्र	,,	,,
,,	५० ई०	मथुरा	वीम	सौरसेनी प्राकृत	,,
,,	१५० ,,	,,	हुविष्क	,,	,,
,,	२५० ,,	,,	वीरसेन	,,	,,
,,	३५० ,,	पटना	समुद्रगुप्त	माग०	,,
,,	४५० ई०	पटना	कुमारगुप्त	माग०	सा० दा०
,,	५५० ,,	कन्नौज	ईशानवर्मा	मध्यदेशीय अपभ्रंश	,,
,,	६५० ,,	,,	अर्जुन	,,	,,
,,	७५० ,,	,,	यशोवर्मा	,,	,,
,,	८५० ,,	,,	मिहिरभोज	,,	,,
,,	९५० ,,	,,	देवपाल	,,	,,
,,	१०५० ,,	,,	प्रतिहार	,,	,,
,,	११५० ,,	,,	गोविंदचद	,,	,,
,,	१२५० ,,	दिल्ली	नासिरुद्दीन	परसी	,,
,,	१३५० ,,	,,	मुहम्मद तुगलक	,,	,,
बारूद	१४५० ,,	,,	बहलोल लोदी	,,	,,
,,	१५५० ,,	,,	इसलामशाह	,,	,,
,,	१६५० ,,	,,	शाहजहा	,,	,,
,,	१७५० ,,	,,	अहमदशाह	,,	,,
वाष्प	१८५० ,,	कलकत्ता	अंग्रेज	अंग्रेजी	पूँजीवाद
परमाणु	१९५० ,,	दिल्ली	राजेन्द्र प्रसाद	हिन्दी	

परमास्त्र ७	धर्म ८	छुआछूत ९	कवि (कला) १०	वेष ११
पाषाण परशु	०	०	०	नग्न
शिलामुख वाण-धनु	०	०	०	,,
वाण नव पाषाण परशु	०	०	०	,,
ताम्रमुख तीर	प्रागद्रविड	०	०	उत्तरासग अतर्वासक (सूती)
ताम्रवाण	वैदिक	वर्ण-सघर्ष	वर्ग	द्रापि, अतर्वासक
,,	,,	,,	वसिष्ठ	,,
लौहतीर	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	याज्ञवल्क्य	,,
,,	,,	,,	०	उत्तरासग, अतर्वासक, उष्णीश
,,	ब्रा० बौ० जै०	,,	बुद्ध	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	पतजलि	,,
		छुआछूत		
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	अश्वघोष	चोगा-चौवदी धोती-सुत्थन
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	भास	,,
,,	,,	,,	०	,,
लौह	ब्रा० बौ० जै०	छुआछूत	कालिदास	चोगा-चौवदी
,,	,,	,,	(अजन्ता)	धोती-सुत्थन
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	भवभूति	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	राजशेखर	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	हर्ष	चौवदी-धोती
		जातपात		
,,	हिंदू-इस्लाम	,,	०	चोगा-सुत्थन
,,	,,	,,	०	,,
तोप	,,	,,	कबीर	,,
,,	,,	,,	जायसी	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	०	,,
रेल (१८५३) तार	ईसाई	,,	गालिब	,,
परमाणुबम, विमान	शिथिल	शिथिल	निराला	कोट-पैण्ट

मसूरी
१२-५-१९५६

राहुल साकृत्यायन

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ
भाग १	
(भौगोलिक)	१
१ सप्त सिन्धु	१
१ आर्यों का आगमन	१,१३६
२. उसके पीछे ऋग्वेद	१
३ ऋग्वेद परम प्रमाण	२
४ सप्तसिन्ध की भूमि	५
२ आर्य-जन	७, १४३
१ सिन्धु-सभ्यता	७
२ आर्य-जन	६,१४३
१ पाच जन	६
२ अन्य जन	१२
भाग २	
(सामाजिक, आर्थिक)	१४
३ वर्ण और वर्ग	१४, १४८
१ वर्ण (रंग)	१४
१ आर्य-वर्ण	१४
२ अनार्य-वर्ण	१६
२ वर्ग	१६
१ दास-दासिया	१६
(आजीविका)	१७
२ चार वर्ण	१७
३ पराजित	१८
४ उत्पीडन और वर्ण-विभेद	१६
४ खान-पान	२१
१ खाद्य	२१
१ मास	२१
२ अन्न	२३
२ पान	२४
१ सोम	२४
२ सुरा	२५

अध्याय	पृष्ठ
भाग ३	
(राजनीतिक)	२६
५. ऋग्वेद के ऋषि	२६, १६४
१ प्रधान ऋषि	२६
१ भरद्वाज	२६, १६४
२ वसिष्ठ	३०, १६६
३ विश्वामित्र	३३, १६८
४ वामदेव	३५, १७२
२ अन्य ऋषि	३५
५ गृत्समद	३५, १७४
६ कक्षीवान्	३६, १७६
७ अगस्त्य	३६, १७८
८ दीर्घतमा	३६, १७६
६ गोतम	३७, १८०
१० मेधातिथि	३७, १८१
११ श्यावाश्व	३७, १८४
१२ कुत्स	३७, १८४
१३ मधुच्छन्दा	३७, १८५
१४ प्रस्कण्व	३७
६. दस्यु	३६, १८६
१ सिन्धु-जाति (पणि)	३६
२ शम्बरीय पहाडी	४२
३ मोन्ख्मेर (किरात)	४२
७. आदिम आर्य राजा	४५, १६१
१ मनु	४६
२ पुरूरवा (उर्वशी)	४६, १६२
३ नहुष	४८, १६५
४ ययाति	४८, १६५
५ मन्धाता	४८, १६५

अध्याय		पृष्ठ
८.	शंबर	४६, १६६
१	दस्यु	४६
२.	शबर के सेनापति	५१, २००
१	शुष्ण	५१
२	पिप्रु	५३, २०३
३	ञगृद	५३
४	करज	५३
५	पर्णय	५३
६	वर्ची	५३, २०५
३.	शबर	५४
४	किरात	५६
६	दिवोदास	५८, २०६
१	पूर्वकाल के आर्य-नेता	५८
१	दध्यङ	५८
२	रुम	५८
३	रुशम	५८
४	श्यावाक	५८
५	कृप	५८
६	वध्र्यश्व	५८
७	अभ्यावर्ती चायमान	५६, २१०
८	सुमीळ्ह	५६
९	पुरुणीथ	५६
१०	प्रस्तोक	५६
११	कुत्स आर्जुनेय	६०
१२	श्रुतर्य	६०, २१२
१३	तुर्वीति	६०
१४	दभीति	६०
१५	ध्वसति	६०
१६	पुरुषति	६०
१७	देवक मान्यमान	६०
१८	सुश्रवा	६०
१६	तुर्वयाण	६०, २१३
२०	ऋणचय	६०
२१	पाकस्थामा कौरयाण	६०, २१३
२२	देवश्रवा	६१
२३	देववात	६१
२४	सृञ्जय दैववात	६१, २१४
२५	महिराध साञ्ज्र्य	६१
२६	पुरुकुत्स	६१
२७	त्रसदस्यु पैरुकुत्स्य	६२
२८	कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र	६२, २१६
२.	दिवोदास के कार्य	६२, २१८
१	दिवोदास अतिथिग्व	६२
२	शबर-हत्या	६३, २१६
३	हथियार	६४
१	इषु	६५
२	निषग	६५
३	धनुष	६५
४	ज्या	६५
५	वर्म	६५, २२१
६	कुलिश	६५
७	परशु	६५, २२२
८	वाशी	६५, २२२
६	ऋष्टि	६५, २२२
१०	वज्र	६६ २२२
११	अत्क	६६, २२२
१२	नाव	६६, २२३
१०.	सुदास	६७
१	सुदास वीतहव्य	६७
१	वसिष्ठ पुरोहित	६८
२	सुदास	६८, २२५
२.	दाशराज्ञ युद्ध	६६, २२६
१	शत्रु	६६
२	युद्ध	७०, २२८
३	सुदेवी रानी	७१, २३०
३	अश्वमेध	७१
१	विश्वामित्र पुरोहित	७१
२	अश्वमेध	७१, २३२

अध्याय		पृष्ठ
११	राजव्यवस्था	७३, २३३
१	शासक, शासित	७३
१	ग्रामणी	७३, २३३
२	राष्ट्र	७३
३	विश्	७४
४	राजा	७४, २३४
२	राजा	७४, २३४
१	राजाभिषेक	७४
२	सम्राट्	७५
३.	शास	७५, २३६
४	ईशान	७५
५	स्वराट्	७५
६	नृपति	७६
७	पति, राजा	७६
८	राजपुत्र, राजदुहिता	७६ २३७
३	शासन-यन्त्र	७६
१	सभा	७६
२	समिति	७७
३	व्राजपति, कुलप	७७, २३८
४	पुरोहित (प्रधानमन्त्री)	७८
	भाग ४ (सास्कृतिक)	७६
१२	शिक्षा, स्वास्थ्य	७६, २४०
१	शिक्षा	७६
२	स्वास्थ्य	८१
३	रोग	८२
४	चिकित्सा	८३, २४२
१३	वेश-भूषा	८४, २४४
१	वस्त्र	८४, २४४
१	द्रापि	८५
२	अत्क	८५
३	शिप्र	८५
२	भूषा	८६
१	कर्ण आभूषण	८६
२	सोने का कण्ठा	८६, २४६
३	रुक्मवक्ष	८७

अध्याय		पृष्ठ
४	खादि	८७
५	ऋष्टि	८७
६	शिप्र	८७
३	सज्जा	८७, २४८
१	कपर्द	८७
२	क्षोर	८८
१४	क्रीडा, विनोद	८६, २४६
१	नृत्य	८६
२	सगीत	८६
३	पान	८६
१	सोम	८६
२	सुरा	६५, २५५
४	जूआ	६५, २५६
५	समन (मेला)	२५७
१५	देवता (धर्म)	६६, २५८
१	देवता	६६
	(देवसख्या)	६६
२	देवो के स्वरूप	६७ २६३
१	अग्नि	६७, २६३
२	अरण्य	६८, २६६
३	आप	६८
४	इळा	६८, २६७
५	इन्द्र	६८
६	ऋभु	१०२, २७४
७	क (प्रजापति)	१०२, २७४
८	पर्जन्य	१०३, २७५
६	पितरौ	१०३
१०	पुरुष	१०३
११	पूषन्	१०३, २७६
१२	प्रजापति	१०४, २७८
१३	मन्यु	१०५, २७६
१४	मित्र	१०६, २८०
१५	यम	२८१
१६	रुद्र	१०६
१७	वरुण	१०६, २८२
१८	वायु	१०७, २[illegible]

अध्याय		पृष्ठ
१६	वास्तोष्पति	१०८
२०	विश्वकर्मा	१०८
२१	विष्णु	१०८, २८४
२२	सरस्वती	१०८
२३	सविता	१०६, २८६
२४	सोम	११०
३	**(पितर आदि अन्य)**	**१११, २८८**
४	**सकाम कर्म**	**११२, २६०**
५	**अर्चना की सामग्री**	**११३, २६२**
१	हवि (पुरोडाश)	११४, २६२
२	पशुबलि	११५, २६४
६	**मन्त्र-तन्त्र**	**११५, २६६**
७	**परलोक**	**११६, २६६**
१	यमलोक	११६, २६६
२	स्वर्ग	११६, २६७
१६	**ज्ञान-विज्ञान**	**११७, २६८**
१	**कृषि**	**११७, २६८**
१	हल, फाल	११७, २६८
२	कुआ	११७, २६६
३	कुल्या	११८, २६६
२	**वास्तु**	**११८, ३००**
३	**काल**	**११८, ३००**
१	मास	११६, ३००
२	ऋतु	११६, ३००
३	नक्षत्र	११६, ३०१
४	**तोल, माप**	**११६, ३०२**
१	तोल	११६, ३०२
२	माप	१२०, ३०२
५	**सख्या**	**१२०, ३०२**
१७	**आर्य-नारी**	**१२२, ३०८**
१	अदिति	१२२, ३०८
२	इन्द्रमाताएँ	१२३, ३०८
३	इन्द्राणी	१२३, ३०६
४	उर्वशी	१२४, ३११
५	घोषा	१२४, ३११

अध्याय		पृष्ठ
६	जुहू	१२५, ३१४
७	दक्षिणा	१२६, ३१५
८	निवावरी, सिकता	१२६, ३१६
६	यमी वैवस्वती	१२७, ३१६
१०	रात्रि	१२८, ३१८
११	लोपामुद्रा	१२८, ३१६
१२	वसुक्रपत्नी	१२८, ३२०
१३	वाक्	१२८, ३२०
१४	विवृहा	१२६, ३२०
१५	विश्पला	१२६, ३२१
१६	विश्ववारा	१२६, ३२१
१७	शची	१२६, ३२१
१८	शश्वती	१२६, ३२२
१६	शिखण्डिनी काश्यपी	१२६, ३२२
२०	श्रद्धा कामायनी	१२६, ३२२
२१	सरमा	१३०, ३२३
२२	सार्पराज्ञी	१३०, ३२३
२३	सिकता	१३०, ३२३
२४	सुदेवी	१३०, ३२३
२५	सूर्या	१३०, ३२३
१८	**भाषा और काव्य**	**१३२, ३२७**
१	**भाषा**	**१३२, ३२७**
२	**छन्द**	**१३३**
३	**रचना**	**१३४, ३२८**
१	वाणी	१३४, ३२८
२	सूक्त	१३४, ३२८
३	श्लोक	१३४, ३२६
४	साम	१३४, ३२६
५	स्तोम	१३५, ३२६
४.	**काव्य**	**१३५, ३२६**
५	**कवि**	**१३६, ३३२**
१	वसिष्ठ	१३६, ३३२
२	विश्वामित्र	१३६, ३३३

अध्याय		पृष्ठ
३	वामदेव	१३७, ३३४
४	भौम	१३८, ३३५

परिशिष्ट १

अध्याय		पृष्ठ
१	सप्तसिन्धु	१३६
२	आर्यजन	१४३
३	वर्ण, वर्ग	१४८
४	खानपान	१५३
५	प्रधान ऋषि	१६४
६	दस्यु (अन्—आर्य)	१८६
७	आदिम आर्य राजा	१६१
८	शम्बर	१६६
६	दिवोदास	२०६
१०	सुदास	२२४
११	राजव्यवस्था	२३३
१२	शिक्षा आदि	२४०
१३	वेष-भूषा	२४४
१४	कीडा, विनोद	२४६
१५	देवता (धर्म)	२५८
१६	ज्ञान-विज्ञान	२६८
१७	आर्य-नारी	३०८
१८	भाषा और काव्य	३२७

परिशिष्ट २

नाम-सूची ३३७

परिशिष्ट ३

शब्द-सूची ३५१

परिशिष्ट ४

देवता-सूची ३६०

भाग १
भौगोलिक

अध्याय १
सप्तसिन्धु

१ आर्यो का आगमन

आर्यों के रक्तसम्बन्धी पडोसी ईरानी 'स' का उच्चारण 'ह' किया करते थे, इसलिए सप्त-सिन्धु की भूमि मे आ बसे अपने भाइयो के देश को वह 'हप्त हिन्दु' कहा करते थे, जिसका ही सक्षेप 'हिन्द' हुआ। पश्चिम के देशो के उस समय के सरताज ग्रीस के निवासी 'ह' का उच्चारण करने मे असमर्थ हो उसकी जगह 'अ' बोलते थे, इस प्रकार हिन्दु इन्दु या इन्द बन गया, जो ही हमारे देश का नाम आज सर्वत्र प्रचलित है। ऋग्वेद मे 'सप्तसिन्धु' नाम अनेक बार आया है, कहीं वह सात नदियो के अर्थ मे और कहीं सातो नदियो की भूमि के लिए। देश या जनपद के नाम उस समय जन (कबीले) के नाम पर पडते थे, इसलिए उसे बहुवचन मे बोलते थे। यह क्रम बुद्ध के समय और कितना ही पीछे तक रहा। पालि मे 'कोसल मे', 'काशी मे की जगह कोसलेसु' (कोसलोमे), 'कासीसु (काशियोमे) कहा गया है। अपेक्षाकृत नवीन ऋषि हिरण्यस्तूप ने अपनी ऋचा मे सविता (सूर्य) की महिमा गाते हुए कहा है— "सविता ने दाता को श्रेष्ठ रत्न (धन) देते सप्त-सिन्धुओ को प्रकाशित किया" (१। ३५ । ८)।

सप्त-सिन्धु सातो नदियो या आर्य जनो के बारे मे कुछ कहने से पहले उस स्थिति के बारे मे कुछ कहना है, जिसमे आर्य ऋग्वेद-काल मे थे।

आर्य भारत मे बाहर से आए, यदि यह न माना जाए, तो आर्यो की भाषा पश्चिम की जिन भाषावालो से अपना एक पारिवारिक सम्बन्ध बतलाती है, उन्हे भी भारत से गया मानना होगा। इसके कारण और अनेक समस्याएँ उठ खडी होगी, जिनका समाधान अति कठिन है। (अधिकतर यह ख्याल आर्य और हिन्दी-युरोपीय भाषाओ एव तत्सम्बन्धी दूसरी सामग्रियो की ओर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण ही होता है। उसी के कारण हमारे इतिहासवेत्ता कलियुग और महाभारत काल की धारणा बनाकर इतिहास को हजारो वर्ष पीछे ले जाने की कोशिश करते हैं। वस्तुत क्षुद्र—एशिया मे हित्तियो, ग्रीस मे यूनानियो और ईरान मे ईरानी-आर्यों के प्रवेश के समय पर ध्यान देने से आर्यों का भारत मे प्रवेश ई० पू० १५०० से पहले नहीं मालूम होता। और ऋग्वेद के पुरातनतम प्रसिद्ध ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र' तो उससे बहुत पीछे कम-से-कम ३०० वर्ष पीछे, हुए।

२ उसके पीछे ऋग्वेद

(काफी काल बीते बिना उनके उच्चारण मे वह भारी परिवर्तन नहीं हो सकता जो कि ऋग्वेद मे देखा जाता है। भारती आर्य हिन्दी-युरोपीय वश की पूर्वी या शतम्— शाखा के अन्तर्गत आते हैं जिसमे ही रूसी आदि स्लाव और ईरानी भी सम्मिलित हैं। ईरानी और स्लाव

मूर्धन्य वर्णों (टवर्ग आदि) का उच्चारण कर नहीं सकते, जबकि ऋग्वेद की प्रथम ऋचा मे ही' (१।१।१) 'अग्निमीळे' मे ळ आ गया है। आर्यों के मुँह से इन मूर्धन्य वर्णों का उच्चारण सप्त-सिन्धु के पुराने निवासियो— मोहनजोदडो, हडप्पा के लोगो— के घनिष्ठ सम्पर्क के कारण ही हुआ। ईरानी आर्य अपने मूल स्थान 'आर्याना बेइजा' का स्मरण रखते थे, पर भारतीय आर्य उसे भूल गये थे, यह ऋग्वेद के मौन-धारण से मालूम होता है। इसमे यह भी कारण हो सकता है, कि उनका प्रसार बीच के स्थानो को छोडकर नहीं हुआ, इसलिए उन्हे मूल-स्थान से निर्वासित होने का ख्याल नहीं हो सकता था। आखिर ऋग्वेदिक आर्यों के सबसे पश्चिम मे रहने वाले पख्त, भलान आदि जन भारत के पश्चिमी द्वार खैबर और बोलन के काफी पीछे तक बसे हुए थे। उनके भी पश्चिम आर्य जन रहे होगे, पर प्रकरण मे न आ सकने के कारण ऋग्वेद के ऋषि उनका नाम-स्मरण नहीं कर सके।

ऋग्वेद के ऋषियो का उद्देश्य इतिहास लिखना नहीं था। वह अपने देवताओ और दाताओ को प्रसन्न करना चाहते थे। इसी के सम्बन्ध से कितनी ही ऐतिहासिक और भौगोलिक बाते वहाँ आ गयी हैं। इसमे शक नहीं, उन्हीं के कारण ऋग्वेद का मूल्य अनर्घ हो जाता है। उसके इस मूल्य की तुलना बाकी तीनो वेदो से भी नहीं की जा सकती, महाभारत और पुराण आदि तो इस काल के सम्बन्ध के ज्ञान मे अत्यन्त दरिद्र तथा अविश्वसनीय हैं। ऋग्वेद के काल पर ऋग्वेद स्वय सर्वोपरि प्रमाण है। और कहीं जो भी उस काल के सम्बन्ध की बात ऋग्वेद के विरुद्ध आये, उसे जरा भी देर किए बिना त्याज्य समझना चाहिए। कितने ही आजकल के ऐतिहासिक दोनो का समन्वय करने की कोशिश करते हैं, जिसका परिणाम एक गलती के लिए सात गलती करना होता है। दिवोदास और सुदास पिता-पुत्र ऋग्वेद के सर्वोपरि नायक हैं। वह तृत्सु-भरत जन के प्रतापी राजा थे, जिनकी सीमा पर परुष्णी—आज की रावी—बहती थी। सिन्धु पार के रहने वाले आर्य-जन पक्थ, भलानस, अलिन, विषाणि और उनके सिन्धु इस पार के पडोसी शिव एक बार तृत्सुओ पर आक्रमण करने के लिए परुष्णी' (४।२२।२) के तट तक पहुँच गये थे, और बडी कठिनाई से भगाए जा सके। परुष्णी तट पर रहने वाले इन राजाओ को महाभारत ने गगा तट के पञ्चाल (काम्पिल्य-कन्नौज और रुहेलखण्ड) का राजा बना दिया है। ऐसी ऐतिहासिक गडबडी के ठीक करने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। जब ऋग्वेदिक इतिहास के बारे मे महाभारत की यह हालत है, तो पुराण दस कदम और आगे जाएँ, तो क्या आश्चर्य ? इसका यह अर्थ नहीं, कि उनका कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं। पीछे के काल के बारे मे वह प्रामाणिक सामग्री प्रदान करते हैं, मानवतत्व आदि सम्बन्धी अनुसन्धान मे भी उनसे सहायता मिल सकती है।

३. ऋग्वेद परमप्रमाण

ऋग्वेद के रूप मे उस समय के सम्बन्ध की अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री हमारे पास है। प्राय तीन हजार वर्षों से इस निधि को हमारे पूर्वजो ने भरसक जरा-सा भी परिवर्तन किए बिना रक्षित रखा। पर यह सामग्री दिवोदास और सुदास के काल के पीछे ले जाने मे असमर्थ-सी है। प्रागआर्य कालीन इतिहास लिखित सामग्री के बिना भले ही हो, और वह ऐसा नहीं है, क्योकि मोहनजोदडो और हडप्पा मे हजारो ऐसी मुहरे मिली हैं, जिन पर अक्षर उत्कीर्ण हैं, पर हम उन्हे अभी पढने मे असमर्थ हैं। लिखित सामग्री के न पढे जाने पर भी हमारे इन दोनो प्राचीनतम नगरो से इतने प्रचुर परिमाण मे मानव-जीवन की सामग्री प्राप्त हुई है, कि हम उसे खूब जान सकते हैं। ताम्र-पीतल युग मे होते हुए भी सिन्धुवासी लोग धन-धान्य-सम्पन्न भव्य अट्टालिकाओ मे

स्वच्छतापूर्वक रहते थे। नागरिक स्वास्थ्य और सफाई के नियमो के पालन मे वह अपने आज के उत्तराधिकारियो से कहीं आगे थे। वह सुन्दर कपास के कपड़े पहनते थे, जबकि उनकी जगह लेने वाले आर्य गरम देश मे भी सदा ऊनी और चमडे की पोशाक ही पहनते रहे। मोहनजोदडो-हडप्पा (सिन्धु) की सभ्यता का अन्तिम उत्कर्ष काल ई० पू० २५०० माना जाता है। उसके हजार वर्ष बाद आर्यों का प्रवेश उनकी भूमि मे हुआ और उससे कम-से-कम तीन सौ वर्ष बाद (१२०० ई० पू०) भरद्वाज-वसिष्ठ-विश्वामित्र आदि ने अपनी ऋचाएँ (पद) रचीं। आर्यो और सिन्धु के पुराने निवासियो के सघर्ष का परिचय ऋग्वेद मे देवो और असुरो के युद्ध की प्रतिध्वनि के रूप मे ही मिलता है। तब से दिवोदास-सुदास के काल (ई० पू० १२००) तक का इतिहास अन्धकारावृत है। उसके लिए हमे पुरातात्विक उत्खनन पर ही भरोसा करना पडेगा।

इस काल की पुरातात्विक सामग्री भी विरल ही मिल सकती है, क्योकि भारत मे प्रवेश करने वाले आर्य चाहे जौ जैसे कुछ अनाजो का नाम जानते हो, पर थे वह पशुपाल और घुमन्तू। ऐसे लोगो पर नागरिक जीवन का प्रभाव देर से पडता है, यह हमे चगेजखान के मगोलो के उदाहरण से मालूम होता है। मध्य-एसिया मे भी एक सप्त-सिन्धु इलि-चु आदि सात नदियो की उपत्यकाओ मे था। यही रूसी भाषा मे आज का सेमि-रेच्ये (सात नदी) प्रदेश है, जो जान पडता है, प्राचीन काल से चले आते नाम का अनुवाद मात्र है। तेरहवीं सदी के प्रथम पाद मे मगोलो के आक्रमण के पहले इस प्रदेश मे बहुत से समृद्ध ग्राम-नगर थे। पशुपाल मगोलो के लिए उनका उपयोग नहीं था, इसलिए उन्होने लोगो के खेतो को चारागाहो मे बदल दिया। उस समय के यात्रियो ने कितनी ही बस्तियाँ देखीं जिनकी दीवारे अभी भी खडी थीं, उनके बाहर मगोलो के तम्बू लगे हुए थे और उनके पशु पहले के खेतो के स्थान पर बनी चारागाहो मे चर रहे थे। घुमन्तू आर्यों ने भी अपने विरोधियो के साथ इससे बेहतर सलूक नहीं किया होगा। मगोलो के तम्बुओ के समूह को ओर्द (उर्दू) कहा जाता था। आर्य अपने निवासो के समूह को ग्राम कहते थे, जिसका अर्थ भी समूह ही है। शायद ताम्रयुग के अन्तिम काल के लोगो के लिए, जिसमे कि ऋग्वेदिक आर्य रहते थे, ऊनी या सूती कपडो के तम्बू क्षमता के बाहर की चीज थे। उस समय प्राकृतिक जगलो से भरे देश मे घास-लकडी की बनी झोपडियाँ अधिक सस्ती थीं। इनका एक यह भी लाभ था, कि यहाँ की वर्षा मे वह तम्बुओ से अधिक उपयुक्त थीं। आखिर, सप्त-सिन्धु की वर्षा मध्य-एसिया की तरह नाम मात्र की नहीं थीं। ऐसी झोपडियो वाले प्राचीन आर्य ग्रामो के अवशेष हड़प्पा या मोहनजोदडो की तरह के नहीं हो सकते। तीन, साढे तीन हजार वर्षों को पार कर हमारे पास तक पहुँचने वाली उनकी सामग्री बहुत कम ही हो सकती है। ऐसी सामग्री पञ्जाब मे ही मिल सकती है। दिवोदास-सुदास के काल मे भी आर्य अभी नागरिक नहीं हो सके थे। उनके धन उनके अश्व और गाएँ ही थीं, जिनके लिए वह अपने देवताओ से प्रार्थना किया करते थे।

आर्यों के बहुत-से जनो के नाम ऋग्वेद मे मिलते हैं, पर जिस तरह बुद्ध-काल के सोलह जनपदों की भूमि को हम आज भी जान सकते हैं, वही बात सप्त-सिन्धु के जनपदो के बारे मे नहीं है। वैदिक काल के बाद, जनो के नामो को सप्त-सिन्धु की भूमि पर से जानबूझ कर मिटा दिया गया। जो पाँच प्राचीन जन[१] (१।१०८।८)— पुरु, यदु, तुर्वश, अणु, द्रुह्य— सप्त-सिन्धु के प्रधान स्वामी थे, उनका वहाँ फिर पता नहीं लगता। उस समय के छोटे-छोटे जनो मे एक पख्त जन अब भी मौजूद है, जिसके वशज आज पख्तूनिस्तान की माँग कर रहे हैं, और जिसके कारण आजकल अफगानिस्तान और पाकिस्तान मे तनातनी चल रही है। दूसरे जन

भलान का नाम बोलन दर्रे के साथ लगा हुआ है। उस समय पख्त इतने विशाल क्षेत्र मे नहीं रहे होगे। जनो की वृद्धि स्वाभाविक सन्तान के द्वारा ही नहीं होती, बल्कि कभी-कभी छोटे या निर्बल जन किसी बडे और शक्तिशाली जन मे विलीन हो जाने को अपने लिए श्रेयस्कर समझ वैसा कर लेते हैं, यह हमे मध्य-एसिया के अवारो, तुर्कों और मगोलो के इतिहास से मालूम होता है। सप्त-सिन्धु के आर्यजनो मे भी ऐसा ही हुआ होगा। सप्त-सिन्धु की नदियो के नामो मे भी ऐसा देखा गया। जिस परुष्णी पर इन्द्र[१] (४।२२।२) की विशेष कृपा थी, वह आज रावी (इरावती) कही जाती है। असिक्नी बदल कर चनाब (चन्द्रभागा) हो गयी। विपाट् (विपाश्) जिसने कभी विश्वामित्र की सुन्दर स्तुति[७] (३।३३।१८) को सुनकर सुदास की सेना के लिए रास्ता दे दिया था, उसका नाम व्यास ऋषि के साथ जोड दिया गया। वितस्ता अब जेहलम है। हॉ, सिन्धु अब भी सिन्धु है। शुतुद्रि का पुराना नाम सतलुज मे अब भी मौजूद है। सातवीं नदी सरस्वती अल्पपरिचित-सी घग्घर की शाखा मात्र रह गयी है, जो कुरुक्षेत्र से होकर बहती है। सातो नदियो को भरद्वाज ने[६] (ऋ ६ ६१ १०) 'सप्तस्वसा सरस्वती' (सात बहने सरस्वती) कहा है। सरस्वती घग्घर मे मिलकर उसी नाम से कुछ दूर जा राजस्थान के रेगिस्तान मे लुप्त हो जाती है। उसकी सूखी धारा का पता बहुत दूर वहॉ तक मिलता है, जहॉ से चनाब—सतलुज का सगम कुछ ही मील रह जाता है, और सिन्धु भी बहुत दूर नहीं रह जाती। हो सकता है, सरस्वती ऋग्वेद के काल मे जा के सीधे सिन्धु मे मिलती हो, पर वह हिमालय की हिमानियो से निकलने वाली नदी नहीं है, जैसी कि उसकी दूसरी छ बहने। घग्घर की तरह उसकी दोनो शाखाऍ मरकण्डा और सरस्वती भी सिवालिक की तराई से निकलने-वाली छोटी नदियॉ हैं, जो वर्षा के जल को पाकर ही दो महीने इतरा के चल सकती हैं। ऋग्वेद मे तराई से निकल कर रेगिस्तान तक जाने वाली नदी का नाम सरस्वती था। जिस क्रम से तीनो नदियो के नाम सतलुज से पहले आये हैं, उससे जान पडता है,[१] (३।२३।४) मारकण्डा का नाम आपया था, और घग्घर का दृषद्वती।

सप्त-सिन्धु की भूमि सात बहनो सरस्वती से सींची जाने वाली धरती है। इस प्रकार आर्य जनो की भूमि सरस्वती (अम्बाला जिले) से सिन्धु उपत्यका तक फैली हुई थी। ऋषित्रय मे वृद्धतम भरद्वाज ने यमुना का भी नाम लिया है, पर वह सीमान्त की नदी थी। अन्तिम ऋषियो मे से एक प्रियमेघ की सन्तान सिन्धुक्षित्ने[१०] (ऋ १०।७५।६) गगा का नाम भी दिया है, पर न वह सप्त-सिन्धु की नदी थी, न उसे उस समय कोई प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि आज की यह सर्वपुनीत नदी अपने अनार्य (सम्भवत किरात) नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद मे गगा का नाम सिर्फ एक बार यहीं नदी-सूची मे आया है। यह सूची बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसमे शक नहीं। इसमे गगा से लेकर अफगानिस्तान के पहाडो तक की नदियो के नाम क्रमश पूरब से पच्छिम की ओर गिनाये गये हैं— गगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी (रावी), असिक्नी (चनाब), मरुद्वृधा, वितस्ता (जेहलम), आर्जिकीया, सुषोमा, तुष्टामा, रसा, श्वेत्या, सिन्धु, कुभा, गोमती, क्रमु, मेहत्नु। सुषोमा शायद रावलपिण्डी की तराई से निकल कर अटक से काफी नीचे सिन्धु मे जाकर गिरने वाली छोटी नदी सोहान है। सोहान हमारे इतिहास की एक पुनीत नदी है, क्योकि इसकी ऊपरी उपत्यका हमारे देश के उन चन्द स्थानो मे से है, जहॉ खुशालगढ और मक्खड मे पुरापाषाण युग के मानव-चिह्न उसके हथियारो के रूप मे मिले हैं। सिन्धु के पश्चिम की कृभा (काबुल), क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमल) की पहिचान हो चुकी है।

४. सप्तसिन्धु की भूमि

सप्त-सिन्धु-भूमि की नदियो की सूची इतने से पूरी नहीं हो जाती। महर्षि विश्वामित्र के पुत्र अष्टक" (१० ।१०४ ।८) ने सप्त-आप (पचआप, पञ्जाब नहीं), और निन्यानबे छोटी नदियो का उल्लेख किया है। इन निन्यानबे नदिकाओ मे से कुछ के नाम ऋग्वेद मे निम्न हैं अशुमती, अजसी, अनितमा, अपित् अश्मन्वती, उद्री, ऊर्णावती, लिशीकुलिशी, क्षिप्रा, देष्ट्री, पुरीषिणी, यव्यावती, रसा, विबाली, वीरपत्नी, शिफा, श्वेत्यावरी, सरयू, सीलमावती, सुवास्तु, सुसर्तु हरियूपीया। सुवास्तु आज स्वात के नाम से प्रसिद्ध है। जिस तरह ऋग्वेद की क्षिप्रा को उज्जैन की क्षिप्रा से मिलाना निरी लालबुझक्कडी है, उसी तरह वहाँ की सरयू को पूर्वी उत्तर प्रदेश की सरजू (घाघरा) से मिलाना उपहासास्पद है। मूल भूमि के नामो को प्रवासी अपनी नई निवास भूमि मे फैलाते ही हैं, यह वृहत्तर भारत के चम्बा, कम्बोज, विदेह नामो से देखा जाता है। आधुनिक काल मे भी आस्ट्रेलिया, अमेरिका, कनाडा आदि मे जाकर अग्रेज प्रवासियो ने अपनी मूलभूमि के नामो का इसी तरह प्रयोग किया है। सरयू सप्त-सिन्धु की नदी थी। प्लतिसूनु गय" (१० ।६४ ।६) ने सरस्वती, सरयू और सिन्धु को देवी आप् (दिव्य नदी) कहा है। अपेक्षाकृत नवीन गयने ही नहीं बल्कि पुराने ऋषि अत्रि के पौत्र और अर्चनाना के पुत्र श्यावाश्वने" (५ ।५३ ।६) क्रमश कुभा (काबुल), क्रमु (कुर्रम) सिन्धु सरयू और पुरीषिणी का नाम लिया है, जिससे जान पडता है, कि सरयू पश्चिमी सप्तसिन्धु की कोई नदी थी। सिन्धु के बाद उल्लेख होने से हो सकता है, वह सिन्ध और जेहलम (वितस्ता) के बीच की कोई नदी हो। सरयू के पार अर्ण और चित्ररथ मारे गये थे।

यह तो निश्चित है, कि ऋग्वेद के ऋषि (सबसे पिछले भी) गगा के पूर्व के किसी भूभाग या नदी का परिचय नहीं रखते। जिस तरह महमूद गजनवी के समय से मुस्लिम शासक पञ्जाब को लेकर वहीं जम गये, और प्राय दो सदियो तक पूर्व मे नहीं बढ सके, वही बात कुछ सदियो के लिए सप्त-सिन्धु के आर्यों की हुई। इस प्रकार पश्चिम मे खैबर से पूर्व मे यमुना के किनारे तक आर्यों का प्रभाव फैला हुआ था। उत्तर मे हिमवन्त" (१० ।१२१ ।४), या बडे पहाड" (१ ।७७ ।३) उनके रास्ते को रोके हुए थे। जहाँ ही प्रतापी राजा शम्बर ने दिवोदास के छक्के छुडाये थे। उसके सौ पहाडी दुर्ग" (६ ।३१ ।४) आर्यों के लिए लोहे के चने थे। यद्यपि ऋग्वेद मे" (३ ।२० ।७) आर्यों के "कृष्ण-योनि" (काली सन्तान) और" (१ ।१३० ।८) "कृष्ण-त्वक्" (काले चमडेवाले) मे शम्बर को भी सम्मिलित किया गया है, पर शम्बर प्राग्द्रविड जाति का नहीं, बल्कि प्राचीन किरात जाति का था। ईसा-पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी मे सारा हिमालय किरातभूमि (किन्नर-भूमि) था। कॉगडे के प्रसिद्ध मन्दिर बैजनाथ की प्रशस्तिमे इस बस्ती का नाम किरग्राम लिखा है। चम्बा-लाहुल से आसाम तक हिमालय के पहाडो मे आज भी किरात-भाषाभाषियो के अवशेष मिलते हैं, जिन्हीं को आजकल के वैज्ञानिक मोन्-ख्मेर कहते हैं। शम्बर इस अचल के किरात जनो का वीर और प्रतापी नेता था। इसे पीछे की किवदन्तियो ने मानव से दानव तथा विकराल शरीर का बना दिया। इसी शम्बर को पीछे की परम्परा ने जलन्धर असुर का नाम दिया, जिससे इस पहाडी भूभाग का नाम जलन्धर खण्ड पडा। कॉगडा मे उसका कान पडा, इसलिए उसका नाम कान-गढ कनगढा, (कॉगडा) हुआ। पहाड मे व्यास और रावी के बीच वाले प्रदेश का राजा शम्बर था, और मैदान मे इन्हीं दोनो नदियो के बीच का राजा दिवोदास इसलिए दोनो की प्रतिद्वन्द्विता स्वाभाविक थी।

हिमालय और पश्चिमी सीमान्त के सुलेमान (कृष्णगिरि) का परिचय ऋषियो को था, पर उनके अलग-अलग भागो मे[१९] (१० ।३४ ।११),[२०] (१० ।३५ ।२) केवल मुँजवत्, शर्यणावत् का ही नाम मिलता है। मुँजवत् अपने सोम (भाँग) के लिए प्रसिद्ध था, और शर्यणावत् सुषोमा (सोहान) नदी के ऊपर वाले प्रदेश का नाम मालूम होता है, जो आर्जिकीया के क्षेत्र मे पडता था।

सप्तसिन्धु की दक्षिणी सीमा राजस्थान की महामरुभूमि थी। मरु को वेद मे धन्व कहा गया है, पर इस महाधन्व का वहॉ स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। मध्य-एसिया के घुमन्तुओ की तरह आर्य व्यापार (पण्य) और व्यापारियो (पणियो) को घृणा की दृष्टि से देखते थे (२ ।२४ ।६)[२१]। पर, उन्हे पता था, कि व्यापार के लिए समुद्र मे नावे चलती हैं।[२२] (६ ।५८ ।३)। सिन्धु उस समय नदियो का साधारण और सिन्धुनद का विशेष नाम था। अर्ण (अर्णव) भी नदियो को कहते थे। पीछे इन शब्दो का प्रयोग समुद्र के लिए किया जाने लगा। पर, महासागर को तब भी समुद्र कहते थे। सप्तसिन्धु से वडी-बडी नावे सिन्धुनद होकर ही समुद्र मे पहुँचती होगी। निम्न-सिन्धु उपत्यका मे आर्य जरूर गये। वहीं उनके प्रतिद्वन्द्वियो का महान् नगर था, जिसके भव्य ध्वसावशेष आज मोहनजोदडो के नाम से प्रसिद्ध हैं। निम्न-सिन्धु सप्तसिन्धु के भीतर था, यह कहना मुश्किल है। वहॉ किसी परिचित जन का बसना निश्चित नहीं मालूम होता। चाहे सप्तसिन्धु के भीतर यह भाग न गिना जाता हो, पर वह ऋग्वेदिक आर्यों के अधीन था और उसके रास्ते पणन के लिए जाने वाले पणि आर्यों की नजर मे हीन होते हुए भी उनके लिए पशु और अन्न से भी महार्घ धन को प्रस्तुत करते थे। उनकी सहायता बिना आर्य न "निष्कग्रीव" हो सकते थे, न "रुक्मवक्ष" (छातीपर सोना झुलाने वाले)।

पणि आर्यो के पुराने तथा दक्षिण दिशा के शत्रुओ मे से थे, जिनके साथ के सघर्ष ऋग्वेद के समय से बहुत पूर्व ही समाप्त हो चुके थे। अब उनके सघर्ष जिन शत्रुओ से हो रहे थे, वह पहाड के निवासी अर्थात् हिमवन्तवासी किरात थे।

अध्याय २
आर्य-जन
१ सिंधु-सभ्यता

ऋग्वेद उस समय नहीं अस्तित्व मे आया, जबकि आर्य पहले-पहल सप्तसिन्धु मे आकर बसे। आर्यो का सप्तसिन्धु मे छा जाना शान्तिपूर्वक नहीं हुआ। अपने से अधिक सभ्य तथा नागरिक होने से अपेक्षाकृत मृदुल-प्रकृति वाले प्रतिद्वन्द्वियो से उनका खूनी सघर्ष १५०० ई० पू० के आस-पास हुआ था। हडप्पा की खुदाई मे ऐसे निर्मम हत्याकाण्ड का प्रमाण मिला है, जिसका उल्लेख मोर्टिमोर ह्वीलर ने अपनी पुस्तक[1] 'इण्डस् सिविलिजेशन' मे किया है। ऋग्वेद मे इन्द्र-वृत्र के युद्ध के रूप मे इसकी बहुत क्षीण-सी प्रतिध्वनि आती है, जिसे फिर इन्द्र-शम्बर के युद्ध से मिलाया गया है। सभी जनयुगीन जातियो की तरह आर्य-पुरोहित अपनी सभी बडी-बडी सफलताओ का श्रेय अपने देवता को देना चाहते थे, इसीलिए अपने भरतो और दूसरे आर्य-जनो के साथ मिलकर पहाड (जलन्धर खण्ड) के किरात राजा शम्बर से अनेक जबर्दस्त लडाइयॉ लडते ४० वर्ष बाद दिवोदास विजयी होने मे सफल हुआ, उसका सारा श्रेय उस काल का पुरोहित-वर्ग (ऋषि) अपने आराध्य इन्द्र को देना चाहता है। ऋग्वेद के इन स्थलो को पढने से मालूम होता है कि पराक्रमी दिवोदास महान् इन्द्र के एक हथियार से बढकर कुछ नहीं था।

यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेद के ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा उनके यजमान दिवोदास, सुदास आर्यो के सप्तसिन्धु मे प्रवेश करने से बहुत पीछे पैदा हुए थे, इतना पीछे जबकि उनकी भाषा मे मूर्धन्य उच्चारण वाले टवर्ग, और ळ जैसे रूपान्तर का सन्निवेश हो चुका था, और प्रथम सघर्ष की बहुत ही क्षीण-सी स्मृति रह गयी थी। उच्चारण तक मे परिवर्तन आना बतलाता है कि विजेताओ का अपने विजितो के साथ कहॉ तक घनिष्ठ सम्बन्ध हो चुका था। ऐसी घनिष्ठता के पक्षपाती न उनके ऋषि थे, न जनसाधारण, पर आर्यों के लिए मजबूरियॉ भी थीं। उन्हे काम करने के लिए दास चाहिये थे। उनको अपने भूतपूर्व शत्रुओ के कितने ही विलास-साधनो को अपनाने मे एतराज नहीं था। आर्यो ने वस्तुत सिन्धु की पुरानी सभ्यता को ध्वस्त करने, समाज के चक्र को उल्टे घुमाने की कोशिश की थी। वह अपने साथ लाए घुमन्तू जीवन को ही बरकरार नहीं रखना चाहते थे, बल्कि नगरो और नागरिक जीवन से ससार-विजेता चगेज के मगोलो की तरह ही घृणा करते थे। उनके विजेता दिवोदास और सुदास के किसी नगर या राजधानी का उल्लेख नहीं मिलता। अश्वो और गायो को ही अपना परम धर्म मानने वाले वह नगरो मे रह कैसे सकते थे ? अश्वगोपालक आर्यो ने कैसी सस्कृति का स्थान लिया था ? सिन्धु-सभ्यता के धनियो के पास मोहनजोदडो जैसे भव्य नगर थे जिसके बारे मे एक अग्रेज लेखक ने लिखा है— "मालूम होता हे, हम आजकल के लकाशायर जेसे किसी नगर के ध्वसो से घिरे खडे हैं।" वहॉ उत्तर से दक्खिन की ओर जाने वाली सडक इतनी चौडी थी जिस पर पहियेवाली सवारियॉ और पादचारी मजे मे चल सकते थे। नगर को एक सुव्यवस्थित

---

१ Indus Civilization — M Wheeler, Cambridge History of India, appendix

योजना के अनुसार बनाया गया था। सडके ६ से ३४ फीट तक चौडी थीं, जिनमे से कोई-कोई आधी मील तक ऋजु चली गयी थीं। वह एक दूसरे को समकोण पर काटती चौरस्ता बनाती थीं। प्रत्येक वीथी और सडक पर सार्वजनिक उपयोग के कुँए थे। अधिकाश घरो मे अपने निजी कुँए और नहान-कोष्ठक थे। पानी के निकलने के लिए नालियाँ और मोरियाँ इस तरह लगाई गयी थीं, जिससे कितने ही आजकल के नगरो को भी ईर्ष्या हो सकती है। अमीरो, व्यापारियो, शिल्पियो और मजदूरो के मुहल्लो को उनके ध्वसो को देखकर बतलाया जा सकता है। नगर देखने मे 'एक लोकतान्त्रिक पूँजीवादी नगर' सा दीख पडता है। मकान अधिकतर पक्की ईंटो के बने थे, जो आकार-प्रकार मे आजकल की ईंटो-सी और रग मे मटमैली लाल सुर्ख थीं। उनका जोड इतना बारीक है, कि उसमे बारीक चाकू के फल को घुसाना मुश्किल है।

हरेक घर बहुत सुखद और स्वच्छ था। सबसे छोटे घरो मे दो कमरे थे, और बडे-बडे घर तो महल जैसे थे। बीच मे ईंटो से बिछा ऑगन था, जिसके किनारे कमरे, उनके द्वार और खिडकियाँ थी। मुख्य दरवाजा सडक की ओर खुलता था। हरेक घर का नहान-कोष्ठक सडक के पास होता था। नीचे की ही मजिल मे नहीं कोठो पर भी नहान-कोष्ठक थे। पाखाना शायद छत पर होता था, जैसा कि पञ्जाब के पुराने घरो मे देखा जा सकता है। यह भी पता लगता है, कि शहर मे सडको पर रात को दीपक जला करते थे।

लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। धान, तिल और मटर भी पैदा की जाती थी। कम-से-कम पिण्ड-खजूर के फल उनके खाने मे था। झीलो, नदियो की ताजी मछलियो के अतिरिक्त वे गाय, बकरी, भेड, सुअर, मुर्गी ही नहीं कछुए और घडियाल के मॉस को भी खाते थे। भैंस, हाथी और ऊँट की हड्डियाँ भी वहाँ मिली हैं, अर्थात् वे बैल, भैंस, हाथी और ऊँट का इस्तेमाल जानते थे।

वे सूती-ऊनी कपडे पहनते थे। आम तौर से एक कपडा धोती की तरह पहना जाता और दूसरा उपरने या चादर के तौर पर जनेऊ की तरह दाहिना कन्धा खुला रखकर। स्त्रियो की पोशाक भी पुरुषो की तरह ही थी। वे कुषाणो के आने से पहले तक की हमारे यहाँ की स्त्रियो की तरह सिर को पगडी या कपडे से ढॉक कर रखती थीं। पुरुषो के बाल लम्बे होते थे, जिनको माँग फाड कर रखा जाता था। मूँछ छँटी और दाढी छोटी या छँटी रखते थे। स्त्रियो को सोने, चाँदी, ताँबे, पीतल और मिट्टी-पत्थर के जेवरो से बहुत प्रेम था। पुरुष कडा, कण्ठमाला और अँगूठी पहनते थे, केशो का चूडाभूषण भी उन्हे प्रिय था। स्त्रियाँ मुखचूर्ण और काजल ही नहीं शायद अधरराग का भी इस्तेमाल करती थीं।

घर के सामान मे ताँबे या पीतल की सुइयाँ, कुल्हाडा, आरा, हँसिया, चाकू, मछली की बन्सी आदि का इस्तेमाल होता था। नाप-तोल के साधनो से पता लगता है, कि वे उनका विभाजन आजकल के रुपयो की तरह सोलह से करते थे।

लडने के लिए उनके पास ताँबे या पीतल के फरसे, भाले, कटार, तलवार थे। धनुषबाण भी थे, जिनमे फल ताँबे-पीतल के होते थे। ताँबे की पतली चादरो से कवच बनाना भी वे जानते थे। गदाएँ उनकी पत्थर की थीं।

सोने-चाँदी, दूसरी धातुओ और रत्नो के लिए उनका सम्बन्ध मैसूर, काश्मीर, पूर्वी भारत ही नहीं, मध्य-एसिया और पश्चिम के देशो से भी था। उनकी नावे समुद्र मे चलती थीं, और मेसोपोटामिया ही नहीं शायद मिस्र से भी वह व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। उनके ऊँचे वर्ग मे

पुरोहित, योद्धा और व्यापारी थे। व्यापारियो का ऐश्वर्य और प्रभाव कम नहीं था। पुरोहितो और योद्धाओ का प्रभाद आर्यों की विजय के बाद कम हो गया होगा, पर व्यापारी तब भी अपना महत्त्व रखते थे। पणि कहकर आर्य उनकी लोलुपता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। पणि शब्द मालूम नहीं किस भाषा का है, आर्य-भाषा का शायद नहीं है। यद्यपि सस्कृत मे पण् धातु क्रय-विक्रय के लिए आता है, पर इसका अभाव भारत के बाहर की स्ववशीय भाषाओ मे बतलाता है, कि यह उधार लिया हुआ है।

फाब्री सिन्धु-सभ्यता का समय २८००-२५०० ई० पू० मानते हैं, ह्वीलर के अनुसार यह समय २३००-१५०० ई० पू० है, अर्थात् उसका अन्त और आर्यो का आगमन एक ही समय होता है।

हम देख चुके, आर्यों ने कैसी सभ्यता और भौतिक जीवन के नष्ट करने का प्रयत्न किया था। वस्तुत अश्व को छोड वह कोई नई चीज देने मे असमर्थ थे। मोहन-जो-दडो, हडप्पा तथा ऐसे ही कितने और नगरो के सहार के बाद सप्त-सिन्धु की विजित भूमि को पशुपाल आर्य-जनो ने आपस मे बॉटकर उसे गोचर-भूमि मे परिणत कर दिया। बहुत से नगर वीरान हो गये। गॉवो के भी बहुतसे लोग पूर्व और दक्षिण की ओर भाग गये। जो रह गये, उन्हे विजेताओ ने दास या कमकर बना लिया। मोहनजोदडो की भूमि किसी अल्प परिचित आर्य-जन ने सँभाली, इसीलिए उसका नाम ऋग्वेद मे नहीं मिलता प्रधान जनो ने सिन्धु से पूर्व की भूमि पर अधिकार किया। जहॉ जो जन बसा, उस भूमि या जनपद का नाम उस जन के नाम पर पडा। जनो का नाम भी पहले किसी पूर्वज या प्रधान व्यकित के नाम पर ही पडा होगा। पर, प्राचीन आर्य-जनो के ऐसे नामकरण का पता लगाना सम्भव नहीं है। कुरु (कोरोश्), मद्र (मेद) जैसे ईरान मे भी प्रचलित नाम बतलाते हैं, कि कुछ आर्य-जन अपने इस नाम से भारत से बाहर भी प्रसिद्ध रहे। सिन्धु-विजय के समय के उनके नामो का पता नहीं है। ऋग्वेद के समय आर्यों के पॉच जन मुख्य थे। सारी आर्य-प्रजा को बल्कि पञ्चजन, पञ्चचर्षणि, पञ्चक्षिति कहना बतलाता है, कि शायद वह पहले पॉच ही जनो मे विभक्त थे। लेकिन ऋग्वेद के जनो की सख्या एक दर्जन से भी अधिक है जिसमे यह निश्चय करना मुश्किल है, कि इनमे सबसे पुराने जन कौन रहे होगे।

यदि मूल आर्य-जन जिन्होने सिन्धु-विजय किया था— पॉच थे, और अब उनकी सख्या एक दर्जन, तो यह इसी बात को बतलाता है, कि तब तक आर्यों को आए काफी समय बीत चुका था। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि ऋग्वेद के प्रमुख आर्य-जन निम्न सिन्धु या उसके पास के इलाके मे— जहॉ मोहनजोदडो और हडप्पा हैं—नहीं रहते थे, वह सिन्धु से ही नहीं वितस्ता (जेहलम्) और असिक्नी (चनाब) से भी पूर्व रहते थे। पॉच जनो मे सबसे प्रतापी पुरु लोग सप्तसिन्धु के पूर्वी छोर पर बसे हुए थे, जो यही बतलाता है, कि ऋग्वेद के समय मे ही आर्यों का प्रताप केन्द्र पूर्व की ओर काफी दूर हट गया था। ब्राह्मण-उपनिषत्-काल (ई० पू० सातवीं सदी) मे यह और भी पूर्व की ओर हटकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश (कुरु-पञ्चाल) मे पहुँच गया जहॉ से अगली शताब्दी मे (बुद्ध से थोडा पहले) काशीकोसल और उससे अगली शताब्दी मे मगध पहुँचकर हमारे ऐतिहासिक काल से मिल गया।

२ आर्य-जन

१ पॉच जन

(१) पुरु— यह जन ऋग्वेद-काल से कुछ पहले एक जन के रूप मे, जान पडता है, परुष्णी (रावी) के पूर्व मे रहता था। ऋग्वेद के समय इसकी कई शाखाएँ हो चुकी थीं, जिनमे

भरत, तृत्सु और कुशिक का नाम हमे मालूम है। कुशिक के नेता विश्वामित्र सुदास के परम-समर्थक थे। भरतो की एक शाखा तृत्सु थी। भरतो के मुखिया बध्र्यश्व, दिवोदास और सुदास—तीनो पितामह, पिता और पुत्र थे। दिवोदास-सुदास को पुरु-भरत भी कहा जाता था, और वह तृत्सु के भी मुखिया थे। इससे जान पडता है, अभी इन जनो मे उतना बिगाड नहीं हुआ था। पीछे मूल जन पुरु अपनी शाखा भरतजन से इतना हट चुका था, कि दास-राज्ञ युद्ध मे उसने भरतो का नहीं बल्कि उनके शत्रुओ का साथ दिया।

भरत कभी परुष्णी (रावी) के तीर पर रहते थे, पर आज उनके नाम पर हमारा सारा देश प्रसिद्ध है। सिन्धु ने यदि भारत से बाहर हमारे देश को अपने नाम पर प्रसिद्ध किया, तो देश मे परुष्णी के तीर वाले भरतो ने अपना नाम हमारे देश को दिया। पुरुओ की भरतो द्वारा पराजय मे वसिष्ठ का भी हाथ था। उन्होने कहा है[१] (७।८।४) अग्नियो ने भरत की (प्रार्थना) सुनी, युद्ध मे पुरुओ के विरुद्ध खडे हुए। दाशराज्ञ युद्ध का वर्णन करते समय[२] (७।१८।१३) वह फिर दुष्ट वचन बोलने वाले पुरुओ को युद्ध मे पराजित करने के लिए इन्द्र की प्रशसा करते हैं। पुरुओ के साथ तृत्सुओ का ऐसा बुरा सम्बन्ध दिवोदास के समय नहीं था। दिवोदास के पुत्र परुच्छेप ऋषि ने[३] (१।१३०।७) बल्कि दिवोदास को मूलजन के सम्पर्क के कारण पुरु कहा है। पर किसी समय दिवोदास का पुरुओ से झगडा भी हो गया[२] (७।८।४)। पुरुओ के तीन राजाओ के नाम ऋग्वेद मे मिलते हैं—पुरुकुत्स, तत्पुत्र त्रसदस्यु तत्पुत्र कुरुश्रवण। कुरुश्रवण नाम से यह भी पता लगता है, कि भावी कुरु-वश का विकास पुरुओ से हुआ।

(२) **यदु**—ऋग्वेद का यह ऐक ऐसा जन है, जिसका पीछे भी पता लगता है। मथुरा का यदुवश कृष्ण के कारण प्रसिद्ध है। करौली के राजा ब्रज मे ही हैं, जो सम्माननीय यदुवशी माने जाते हैं। जैसलमेर के भाटी भी यादव हैं, और उनसे अपना सम्बन्ध जोडनेवाले नाहन (सिरमौर) के पर्वतीय राजा भी यादव कहे जाते हैं। मुसलमानो द्वारा ध्वस्त देवगिरि (दौलताबाद) महाराष्ट्र का एक शक्तिशाली राज्य भी यादव था। इस प्रकार मथुरा, राजस्थान, हिमालय ही नहीं सुदूर दक्षिण तक यदुओ का विस्तार रहा, पर ऋग्वेद-काल मे वह सप्त-सिन्धु मे ही और सो भी काफी पश्चिम मे रहते थे। पुरु तो घर के ही शत्रु थे, पर पिता-पुत्र दिवोदास और सुदास को सबसे अधिक सघर्ष यदु और तुर्वश जनो से करना पडा था। तुर्वश और यदु की जोडी थी, जिससे इनके कुल या स्थान की घनिष्ठता मालूम होती है। बहुत-से स्थानो मे मगलकामना या नाशकामना मे इन दोनो जनो का नाम साथ आता है। अगस्त्य (शायद वसिष्ठ के भाई) ने एक स्थान पर[४] (१।१७४।६) इन दोनो के लिए इन्द्र से मगल कामना करते हुए कहा है—"इन्द्र तुम तुर्वस और यदु का पालन और मगल करो।" सव्य आगिरस ने भी[५] (१।५८।६) इन्द्र से प्रार्थना की है—"शतक्रतो, तुमने नर्य, तुर्वश, यदु की रक्षा की, तुमने तुर्वीति की (रक्षा की)।" कण्व के पुत्र वत्स भी तुर्वश-यदु की मगलकामना करते हैं[६] (८।७।१८)—"(मरुतो), क्योकि तुमने तुर्वश-यदु की, धनेच्छुक (मेरे पिता) कण्व की रक्षा की, धन के लिए मैं (भी) तुम्हारा ध्यान धरता हूँ।" यदुओ और तुर्वशो के पुरोहित कण्व और उनके पुत्र वत्स आदि थे, इसलिए वह अपने यजमान की अमगल कामना कैसे कर सकते थे? लेकिन इससे उल्टा वसिष्ठ चाहते हैं[७] (७।१९।६८)—"मघवन्, अतिथिसेवक (सुदास) की भलाई करनेवाले हो, तुम तुर्वश और यादव को पराजित करो।"

(३) **तुर्वश**— ऋग्वेद मे तुर्वश का नाम बराबर यदु के साथ आता है। दोनो के पुरोहित कण्व, तत्पुत्र वत्स और उनके वशज थे। भरतो और पुरुओ ही ने नहीं अनार्य शत्रुओ

का मुकाबला किया था, बल्कि इन्होने भी उन्हे पराजित कर पञ्च जनो मे नाम कमाया था। अत्रि (ऋग्० पॉचवे मण्डल के रचयिता) और उनके वशज वैसे पुरुओ के पुरोहित थे, जो सतलुज से पूरब मे रहते थे, पर अवस्यु आत्रेय यदुतुर्वश के भी प्रशसक थे[८] (५।३१।८)—"इन्द्र, तुमने यदु और तुर्वश को इच्छापूरक (सुदुधा) जल (या नदियॉ) प्रदान किए।" भरतो के पुरोहित होने से भरद्वाज तुर्वशो की सफलताओ का गान नहीं कर सकते थे। उन्होने सृजयो के हाथ तुर्वशो की पराजय का उल्लेख किया है[९] (६।२७।७)— "उस (इन्द्र) ने सृजय के हाथ मे तुर्वश दे दिये।" भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र थे। बृहस्पति के दूसरे वशज शयु इन्द्र की स्तुति करते तुर्वशयदु का गुणगान करते हैं[१०] (६।४५।१)— "वह तरुण इन्द्र हमारा सखा है, जो तुर्वश ओर यदु को दूर (पच्छिम) से अच्छी तरह लाया।"

तुर्वश और यदु भरतो के प्रतिद्वन्द्वी थे, जिनके मुखिया दिवोदास और सुदास थे। उधर सृजयो से तुर्वशो की पराजय बतलाती है, कि वह इनकी भूमि के नजदीक रहते थे। जान पडता है, ये दोनो जन शतद्रु (सतलुज) और परुष्णी (रावी) के निचले भागो मे नदी के दोनो तरफ ऐसी जगह बसते थे, जहॉ से सतलुज-व्यास (विपाश्) के बीच बसने वाले सृजयो की भूमि पास पडती थी। शयु के कहने से मालूम होता है, कि पहले ये दोनो जन कहीं दूर (शायद सिन्धु के पास) रहते थे, जहॉ से आकर वह इस भूमि मे बस गये। यद्यपि वह उसी इन्द्र के "लाए हुए थे", जिसके भक्त भरत और सृजय जन भी थे पर उनका स्वार्थ एक दूसरे का अविरोधी नहीं था। भरतो ने जब अपनी प्रभुता सारे सप्तसिन्धु पर फैलाकर उसे एकताबद्ध करना चाहा, तो उनका सबसे अधिक मुकाबला तुर्वशो और यदुओ ने किया।

(४) **द्रुह्यु**— पच जनो मे से एक इस प्रतापी जन के पुरोहित भृगु थे। कुत्स आगिरस अपनी एक ऋचा[११] (१।१०८।८) मे आर्यो के दोनो प्रधान देवताओ—इन्द्र-अग्नि की महिमा गाते उनके वास-स्थान अथवा उपासक के तौर पर पॉचो जनो का नाम लेते कहते हैं— "हे इच्छापूरक, इन्द्र-अग्नि जो तुम (दोनो) यदुओ मे, तुर्वशो मे, द्रुह्युओ मे, अनुओ मे, पुरुओ मे रहते हो, वहॉ से आकर तैयार किए हुए (हमारे) सोम को पियो।" यदु-तुर्वश के बाद और पास-पास मे द्रुह्यु-अनु के जनपद थे। सभी पॉचो जन इन्द्र और अग्नि के भक्त थे। द्रुह्यु पुरुओ और तृत्सुओ के जैसे बलशाली थे, यह शयु वार्हस्पत्य की निम्न उक्ति[१२] (६।४६।८) से मालूम होता है— "हे मघवन्, तृत्सु, या द्रुह्य अथवा पुरु जन मे जो कुछ बल है, उसे अमित्रो को युद्ध मे हराने के लिए हमे दो।" लेकिन वसिष्ठ अपने यजमान सुदास के इन प्रतापी शत्रुओ को फूटी ऑखो भी नहीं देख सकते थे। दाशराज्ञ युद्ध मे सुदास के इन प्रतिद्वन्द्वियो को भारी हानि उठानी पडी, यह वसिष्ठ की निम्न ऋचाओ[१३] (७।१८।६७१२, १४) से मालूम होता है— "धन के लिए तुर्वशो ने, भृगुओ और द्रुह्युओ ने (इन्द्र के) सखा (सुदास का) मुकाबला किया— (६)। "श्रुत कवष, वृद्ध और द्रुह्य को वज्रबाहु (इन्द्र) ने पानी (नदी) मे डुबो मारा" (१२)। "गाय (छीनने) की इच्छावाले अनुओ और द्रुह्यओ के छियासठ हजार छियासठ वीर (मरकर) सो गये,—" (१४)। इससे मालूम होता है, अनुओ द्रुह्यओ और पुरोहित कुलवाले भृगुओ ने मिलकर सुदास पर आक्रमण किया था। शायद वह सीमान्त की नदी (परुष्णी रावी) को पारकर भरतो की भूमि मे आ गये थे। नदी के पास लडाई हुई, जिसमे हारकर भागते हुए उनके श्रुत कवष जेसे मुखिया नदी मे डूब गये और रणक्षेत्र मे उनके छियासठ हजार से अधिक आदमी मारे गये। द्रुह्य और अनु की भूमि परुष्णी (रावी) के पश्चिम वितस्ता (जेहलम्) तक फैली थी। द्रुह्युओ के उत्तर मे

अनु और दक्षिण मे तुर्वश लोग रहते मालूम होते हैं। स्थान का निर्देश ऋचाओ मे नहीं मिलता। किस पानी मे इतने सरदार डूब गये, इसका भी उल्लेख नहीं मिलता, पर दाशराज्ञ युद्ध के पश्चिमी जनो ने परुष्णी को पकड़कर एक बार सुदास की स्थिति भयानक बना दी थी, यह हम पक्थो के प्रकरण मे बतलाएँगे, जिससे परुष्णी के पश्चिम ही द्रुह्युओ का निवास माना जा सकता है।

(५) **अनु**— यह आर्यों के पाँच प्रधान जनो मे एक तथा द्रुह्युओ का जोडीदार था। छियासठ हजार मारे जाने वालो मे इनके वीर भी रावी के किनारे सदा के लिए सो गये थे। अनु कितने महत्त्वशाली थे, यह अवस्यु आत्रेय की एक ऋचा[१४] (५।३१।४) से मालूम होता है, जिसमे उन्हे इन्द्र के रथ का निर्माता बतलाया गया है। तुर्वशो के पुरोहित कण्व के वशज देवातिथि का तो अपने यजमानो की तरह अनुओ के प्रति विशेष पक्षपात मालूम होता है। वह कहते हैं[१५] (८।४।१)— "इन्द्र यद्यपि (तुम्हे) पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण (चारो ओर) से आदमी आह्वान करते हैं, लेकिन तुम तुर्वशो और अनुओ के लिए अधिक बुलाए जाते हो।" पर सो जादू जानने वाले (शतयातु) वसिष्ठ[१६] (६।६२।६) झूठे (द्रोघवाक्) अनुओ के ऊपर अश्वि देवतायुगल का हथियार गिरवाना चाहते हैं।

२ अन्य जन

इन पॉच मूल जनो के अतिरिक्त और भी कुछ जनो का उल्लेख ऋग्वेद मे मिलता है। उनमे कितने ही सिन्धु और असिक्नी (चनाब) के बीच के भी थे, जिन्होने सुदास के विरुद्ध हथियार उठाए थे। पर उनसे अधिक उन जनो के निवास का पता मिलता है, जो सिन्धु के पश्चिम मे रहते थे। इनमे पक्थो का नाम पहले आता है।

(६) **पक्थ**— सुदास की महत्त्वाकाक्षा को असफल करने के लिए जिन दस राजाओ (जनो) और दूसरे कितने ही आर्यजनो ने तलवार उठाई थी, उनमे पक्थ भी थे। पक्थ जन अब भी पख्तून (पठान) के नाम से सिन्धु के पश्चिम मे काबुल तक बसा हुआ है, यद्यपि उनके बारे मे यह नहीं कहा जा सकता, कि वह केवल पक्थो के वशज हैं। शायद अलिन, गन्धारि, विषाणि और भलानस भी आज के पख्तूनो के रूप मे हमारे सामने मौजूद हैं। पक्थ अश्विद्वय के उपासक आर्य थे। कण्वपुत्र सोभरिने[१७] (८।२२।१०) इन जमुये देवताओ की प्रार्थना करते हुए कहा है—"जिन (प्रेरणाओ) से तुमने पक्थ की, अध्रिगुकी और बभ्रुकी रक्षा की, उनके साथ हमारे पास जल्दी आओ, (और) व्याधिग्रस्त की चिकित्सा करो।" सुदास के इन विरोधियों का उल्लेख करते हुए वसिष्ठ कहते हैं[१८] (७।१८।७–६)—"पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी, शिव (जब) आए, तो तृत्सुओ के नेता आर्य की गाये युद्ध करके (बचा) ले आए। दुष्टो, भूखो ने परुष्णी (रावी) को आ पकडा।"

(७-६) **भलान, अलिन, विषाणी**— उपरोक्त ऋचा मे दाशराज्ञ युद्ध के एक प्रमुख नेता वसिष्ठ पक्थो के साथ इनका भी नाम लेते हैं, अत ये पक्थो के पडोसी जन होगे। भलान नाम अब भी बोलान दर्रे के नाम से सुरक्षित है, इससे जान पडता है, कि बाकी दो जन भी सिन्धु पार के लोग थे।

(१०) **शिव**— यह शायद पीछे का शिवि देश वाला जन था, जो सिन्धु के इस पार जेहलम् (वितस्ता) से पश्चिम रहता था, और जिसके नाम वाला एक अभिलेख शोरकोट मे मिला है। सुदास के प्रतिद्वन्द्वी ये दस राजा मिलकर लडे थे, जिसके कारण वह युद्ध दस राजाओ के युद्ध (दाशराज्ञ-युद्ध) के नाम से ऋग्वेद और पीछे के ग्रथो मे प्रसिद्ध हुआ।

इनके अतिरिक्त सुदास के शत्रुओ मे निम्न जन या व्यक्ति भी गिनाए गये हैं, जिनमे से दो तीन को छोड बाकी के लिए यह कहना मुश्किल है, कि वह नेता थे, या जन—

(११) शिम्यु (जन), (१२) क्रिवि (जन), (१३) मत्स्य (जन), पीछे यह जन आधुनिक जयपुर वाले प्रदेश मे रहता था। (१४) वैकर्ण (व्यक्ति ?), (१५) कवष, (१६) देवक मन्यमान, (१७) चायमान कवि, (१८) सुतुक, (१६) उचथ, (२०) श्रुत, (२१) वृद्ध, (२२) मन्यु, (२३) पृथु, (ये सब व्यक्ति)। सबसे बलवान् जन था, (२४) भरत, जो कि पुराने पुरुओ की एक शाखा थी, यह हम बतला आए हैं। भरतो की शाखा तृत्सु थे। दिवोदास और सुदास भरत भी कहे गये हैं, और तृत्सुओ के उन्नायक भी। यद्यपि एक समय तृत्सुओ से सुदास की खटपट भी देखी जाती है, पर उससे उनका और तृत्सुओ का घनिष्ठ सम्बन्ध असिद्ध नहीं होता।

इन एक दर्जन आर्य जनो मे पॉच बहुत पुराने थे। यह पॉचो भी एक ही जगह के स्थायी निवासी नहीं थे, यह शयु वार्हस्पत्य के इस कथन" (७।४५।१) से मालूम होता है — इन्द्र उन्हे सुदूर पश्चिम से (परावत) लाया था।

अथर्व ऋग्वेद से पीछे (प्राय ई० पू० सातवीं-आठवीं सदी) की कृति है, उसमे पूरब मे अग-मगध से पश्चिम मे बाह्लीक (बलख) तक के देशो के नाम मिलते हैं, जैसे — अग, अन्तदेश, गन्धार, धन्व (मरुभूमि), पटूर, बह्लिक, मगध, मघ, मुजवत्, रुम (मरु), रुशत्, विक्षर, सोन्त देश। ऋग्वेद मे निम्न देशो के नाम भी आते हैं—

(१) उदव्रज (पानी और गोचर भूमिवाला देश, शायद कागडा मे नूरपुर के पास)।
(२) कीकट (यह मगध नहीं, सप्तसिन्धु के पास ही कोई देश था)।
(३) कृत्वन्।
(४) गाग्य (गगावाला प्रदेश, जो पीछे कुरुदेश कहलाया)।
(५) गुगु (शायद कोई आर्य-भिन्न देश)।
(६) दुर्ग (?)
(७) यक्षु (गगा-यमुना के बीच गाग्य देश मे ही किसी आर्य-भिन्न जन का देश)।
(८) रुशम (?)
(६) वेतसु (?)
(१०) सरस्वतीवत्, सारस्वत (कुरुक्षेत्र की सरस्वती के पास का देश)।
(११) सिन्धु (निम्न सिन्ध वाला देश)।

अथर्ववेद के समय मे आर्यों की पहुँच अग और मगध तक अर्थात् बगाल की सीमा तक हो गयी, पर ऋग्वेद मे वह सप्तसिन्धु तक ही रहते थे, यहीं उनके जन अपना स्वतन्त्र पशुपाल जीवन बिताते थे।

भाग २
सामाजिक, आर्थिक

अध्याय ३
वर्ण और वर्ग
१. वर्ण (रग)

ऋग्वेदिक आर्यों के काल (ई० पू० १२००-१०००) मे भारत में चार जातियॉ मुख्यत बसती थीं, जिनमे कोल या कोलारी (निषाद, आस्ट्रिक) सप्तसिन्धु से बहुत दूर रहते थे, इसलिए उनसे उस समय आर्यों का कोई सबन्ध नहीं था। आर्यों के घनिष्ठ सम्पर्क और सघर्ष मे आने वाले (१) मोहनजोदडो और हडप्पा की सभ्य जाति–द्रविड और (२) कश्मीर से आसाम और आगे के पहाडो तथा तराई मे बसने वाली जाति किरया किरात (मोन्–ख्मेर) मुख्य थी। आते ही आर्यों को नागरिक द्रविडो से पहले भुगतना पडा। फिर सप्तसिन्धु मे छा जाने के बाद जब वह हिमालय की तराई और उसके भीतर घुसने लगे, तो उनका सघर्ष किरो से हुआ। ऋग्वेदिक आर्यों का वास्ता किरातो और उनके नायकों शम्बर, चुमुरि आदि से पडा था, यह भी हम बतलाने वाले हैं। द्रविड और किरात दोनो मे ऋग्वेद ने कोई भेद नहीं किया और दोनो ही को कृष्णचर्म, कृष्णयोनि या कृष्णवर्ण कहा है। यद्यपि किरात कृष्ण नहीं, बल्कि पाण्डुवर्ण मगोलायित थे। उनके चेहरे में द्रविडो से काफी अन्तर था। आज भी तिब्बती और मुण्डा मनुष्य के चेहरे को देखकर यह भेद स्पष्ट जाना जा सकता है। आर्यों ने दोनो को कृष्ण, दस्यु या दास कहा। किसी भी विजेता जाति को, यदि वह विजित को अपना साझीदार नहीं बनाती तो, वर्णभेद कायम रखना पडता है। आज दक्षिणी अफ्रीका मे विशेष तौर से और अफ्रीका के दूसरे भागों मे सामान्य तौर से यह वर्णभेद देखा जा रहा है। आज के वैज्ञानिक और जन-जागृति के युग मे यदि यह अन्धेरखाता, चल सकता है, तो आज से सवा तीन हजार वर्ष पहले के बारे मे कहना ही क्या है ?

१ आर्य-वर्ण

ऋग्वेद मे आर्यों के वर्ण का सविवरण निर्देश नहीं है, पर अपने देवताओ का जो रगरूप उन्होने वर्णन किया है, वह उनका अपना ही रग हो सकता है। मनुष्य अपने देवता को भी अपने रूप मे देखता है। "यदन्न पुरुषो ह्यति, तदन्न तस्य देवता" (जो भोजन आदमी खाता है, वही उसका देवता भी खाता है), इतना ही नहीं, बल्कि साथ ही यह भी कहना चाहिए "यद् रूप पुरुषो भवति, तद् रूपा तस्य देवता" (जिस रूपवाला आदमी होता है, उसी रूपवाला उसका देवता होता है)। इस तरह अग्नि, इन्द्र आदि का जैसा रग-रूप ऋग्वेद में वर्णित है, वही उनके भक्तो का भी था। यह भी ख्याल रखना चाहिये, कि ऋग्वेदिक आर्यों से छ शताब्दियो बाद हुए बुद्ध और हजार वर्ष बाद हुए महाभाष्यकार पतजलि के समय आर्यों का जो वर्ण उल्लिखित है,

वह भी इसी बात को बतलाता है। आर्य अपना विशेष रग रखते थे। पतजलि ने (महाभाष्य २।२।६ मे) लिखा है—"गौर शुच्याचार कपिल पिगलकेश इत्येनान् अभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान्कुर्वन्ति" (गोरा शुद्ध आचारवाला, कपिल, पीले केशवाला इन्हे ब्राह्मण होने के गुण बतलाते हैं)। यह स्पष्ट है, कि ब्राह्मण का जो-जो रूपरग पतजलि ने बतलाया है, वह अपवादरूपेण नहीं था, क्योकि उसके बाद वर्ण के सम्बन्ध मे बौद्धो और ब्राह्मणो का जो विवाद हुआ, उसमे ब्राह्मण के इस रग-रूप को प्राकृतिक कहकर वर्णव्यवस्था को स्वाभाविक साबित करने की कोशिश की जाती थी। बुद्ध के रग को सुवर्ण-वर्ण और ऑखो के रग को अलसी के फूल के रग का अभिनील बतलाया गया है। अपेक्षाकृत नवागन्तुक और दूसरो के साथ रक्त-सम्मिश्रण न करने के लिए उतारू ऋग्वेदिक आर्यो का रग जरूर कपिल, केश पीले (पिगल) और ऑखो का रग बुद्ध की तरह प्राय अभिनील रहा होगा।

(१) केशो का रग— ऋषि इष ने ऋग्वेद (५।७।७)[1] मे अग्नि की मूॅछ-दाढी (श्मश्रु) के बारे मे कहा है— "वह पीले दाढीवाले शुचिदॉत-युक्त बडे और अप्रतिहत बलवान हैं।" अगिरसगोत्री वरु ने इन्द्र के श्मश्रु और केश के बारे में[2] (१०।९६।८) कहा है— "जो पीले श्मश्रु, पीले केशवाला पत्थर सा दृढ है।" विश्वामित्र ने[3] (३।२।१३) अग्नि के केशो को भी पीला कहा है— "हम उन विचित्र गतिवाले हरित पिगल केशवाले सुप्रकाशमान अग्नि से नवीन धन के लिए प्रार्थना करते हैं।" गोतम राहूगण[4] (१।७९।१) के अग्नि भी "हिरण्यकेश (सुनहले केश), मेघ बिखेरनेवाले कम्पक, वायु की तरह शीघ्रगामी, शुभ्र प्रकाशयुक्त हैं।" हरिकेश और हिरण्यकेश का एक ही अर्थ है, यहॉ यह स्पष्ट हो जाता हे, क्योकि अग्नि को पहले हरिकेश कहा गया, और इस मन्त्र मे उसी को हिरण्यकेश कहा गया। यहॉ पीले के लिए हरि (हरित) शब्द का प्रयोग किया गया है। सस्कृत का हरित और फारसी जर्द, रूसी जोल्त, अग्रेजी गोल्ड एक ही मूल शब्द के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अभारतीय हिन्दू-युरोपीय भाषाओ मे इसका अर्थ अब भी पीला लिया जाता है। यद्यपि पीछे सस्कृत मे इसका वह अर्थ नहीं लिया गया परन्तु ऋग्वेद के काल मे अभी उस मूल अर्थ का त्याग नहीं हुआ था। इन्द्र और अग्नि दोनो ऋग्वेदिक आर्यों के परमपूज्य देवता हैं। दोनो की दाढी-मूॅछ का पीला होना उनके भक्तो की दाढी-मूॅछ के पीले होने को बतलाता है। यदि अग्नि की शिखाओ के स्वाभाविक रग पीले होने से उसे अनिवार्य समझा जाये, तो इन्द्र के लिए वह बात नहीं कही जा सकती। इन्द्र का रूप तो सबल आर्य पुरुष का रूप था।

भरद्वाज ने[5] (६।२९।६) इन्द्र की नासिका या मुख को हरि (पिगल) कहा है— "इस प्रकार हरित शिप्रवाले इन्द्र सु-आह्वान योग्य हैं, जो उपस्थित या अनुपस्थित होने पर स्तोताओ को धन देते हैं, और इस प्रकार वह उत्तम बल-युक्त प्रकट हो दस्युओ का हनन करते हैं।"

वसिष्ठ के कथनानुसार[6] (७।३३।१) आर्यों का रग श्वेत था। वह अपने कुलवालो के बारे मे कहते हैं "कर्मपूरक दक्षिण की ओर जूडा रखनेवाले श्वेत वसिष्ठ-सन्ताने मुझे प्रसन्न करती हैं। मैं यज्ञ से उठते कहता हूँ, कि वह मुझसे दूर न जाये।" वसिष्ठ ने ही मरुत् देवताओ के बारे मे कहा है[7] (७।५६।११) "स्वय बलि कवि सूर्य सी त्वचावाले मरुतो, मैं यज्ञ को पसन्द करता हूँ।" सूर्य-त्वक् अर्थात् सूर्य के समान चमडे के रगवाला का अर्थ अत्यन्त गौर वर्ण ही है। अत्रि की सन्तान अपाला ने इन्द्र की स्तुति करते हुए[8] (८।८०।७) कृतज्ञता प्रकट की है— "सौ यज्ञ करनेवाले रथ के छिद्र और शकट के छिद्र को मूँदनेवाले इन्द्र, तुमने अपाला को सूर्यत्वक् बनाया।" अपाला किसी चर्मरोग से पीडित थी, जिससे मुक्त होने का इसमे सकेत है।

पिशग हिरण्य या हरित वर्ण को ही (पिगल) भी कहते हैं। गृत्समदने[९] (२३।१०) पुत्र की कामना करते हुए कहा है— "त्वष्टा हमे पिशगरूप सुभर आयुष्मान् क्षिप्रकारी देव-भक्त वीर सन्तान दे। देवो का अन्न हमारे पास और आये।"

(२) **शरीर**— इन्द्र का शरीर आर्यों के सबसे शक्तिशाली वीर के शरीर जैसा था। उसके वर्णन से हमे सप्तसिन्धु के किसी पहलवान का सकेत मिलता है। ऋषि इरिम्बिठ[१०] (८।१७।८) ने इन्द्र के शरीर के बारे मे कहा है— "बडी ग्रीवा, पुष्ट उदर, सुन्दर बाहुवाले इन्द्र भोजन से प्रसन्न हो शत्रुओ को मारते हैं।" प्रगाथ कण्व-पुत्र ने भी[११] (८।५३।७)— "वृषभ युवा, तुविग्रीव (बडी ग्रीवा) न झुकनेवाला इन्द्र है। कौन उसकी सपर्या (पूजा) करता है ?"

ऋग्वेद के इन उद्धरणो से आर्यों के शरीर और वर्ण (रग) का पता लगता है। उनके प्रतिद्वद्वियो के शरीर-लक्षण का पता भी ऋग्वेद की कितनी ही ऋचाओ से मिलता है।

२ अनार्य-वर्ण

विश्वामित्र ने आर्यो के प्रतिद्वद्वियो के बारे मे कहा है[१२] (३।३१।२१) "शत्रुनाशक गोपति गाये हमे दे। दीप्तिमान् तेज से कालो (कृष्णो) को नष्ट करे। सत्य से अगिरा सन्तान को गाये दे। उसने सारे दरवाजो को बन्द कर दिया।"

आगिरस शुनहोत्र-पुत्र गृत्समदने[१३] (२।२०।७) आर्यों के शत्रुओ के बारे मे कहा है — "शत्रुनाशक दुर्गध्वसक इन्द्र ने कृष्णयोनि (काले दास) सेनाओ को नष्ट किया। मनुष्य के लिए पृथिवी और जल का जन्म दिया। वह यजमान की इच्छा पूरी करे।"

२. वर्ग

१. दास-दासियाँ

पराजित शत्रु स्त्री-पुरुषो मे बहुतो को विजेता दास-दासी बना कर काम लेते थे, यह दास-प्रथा के समय सर्वत्र देखा जाता था। हमारे देश मे दास-प्रथा का अन्त १९वीं शताब्दी के दूसरे पाद मे हुआ। ऋग्वेदिक काल मे, जब कि विजेता और विजित के रग-रूप और स्वार्थों मे भारी भेद था, दास-प्रथा और भी क्रूर रही होगी, यह निश्चित है। बालखिल्य सूक्तो[१४] (१४।८।८।३) मे पृषध्र ऋषि ने इन्द्र से प्रार्थना की है— "मुझे सौ गदहे, सौ भेड और सौ दास दो।" आर्य अपने शत्रुओ को भी दास और दस्यु कहा करते थे। उनको ही लेकर क्रय-विक्रय होनेवाले पुरुषो का नाम पीछे दास पड गया। यहाँ ऋषि ने सौ दासो की जो कामना की है, वह जाति से भी और कार्य से भी दास होते, यह निश्चित है। ऋषि गृत्समदने इन्द्र की प्रार्थना करते[१५] (२।२।४) कहा है— "हे इन्द्र, हम तुम्हारे शुभ्र बल को बढाते हैं। हाथो मे शुभ्र वज्र को धारण करते शुभ्र हो बढते तुम सूर्य से अपने तेज द्वारा दास लोगो (दास विशा) को पराजित करो।" इसी ऋषि ने फिर[१६] (२।१२।४) कहा है— "जिसने इस विश्व (सारे) को बनाया, जिसने दास-वर्ण को निकृष्ट (नीच) और गुहावासी बनाया, जो व्याधि की तरह आर्य पुष्ट धन को देता है, लोगो, वही वह इन्द्र है।" वामदेव गौतम ने भी उन्हीं के बारे मे कहा है[१७] (४।२८।४) "हे सोम, तुम्हारी मित्रता से युक्त हो इन्द्र ने तुम्हारी सहायता से मनुष्य के लिए सुख (जल) प्रवाहित किया, शत्रु (अहि) को मारा, सप्तसिन्धु को प्रेरणा दी। ढॅके हुए छिद्रो को खोला।" कण्व गोत्री या कण्व-पुत्र ऋषि सोभरि को पुरुकुत्स-पुत्र राजा त्रसदस्यु ने पचास बधुये दी थीं। बधू का मूल अर्थ बादी है, यद्यपि वह बहू के अर्थ मे भी ऋग्वेद मे प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इस स्थल[१८]

(८।११।३६ ३७) पर दासी के लिए ही इस्तेमाल हुआ है— "पुरुकुत्स-पुत्र अतिमहान् स्वामी (अर्य) सच्चे मालिक त्रसदस्यु ने मुझे पचास वधुये दीं।" सुवास्तु (स्वात) नदी के तट पर तीन-सत्तर (२१०) काली गायो के लानेवाले पति ने धन दिया।"

आजीविका

आर्यों का मुख्य धन गाय-घोडे और भेड-बकरियॉं थीं। वह कुछ खेती भी करते थे, क्योकि जौ का सत्तू और रोटी उनके आहार मे शामिल थे। अधिक धनी और प्रभुताशाली आर्य अपने पशुपालन और कृषि मे दासो और दासियो से सहायता लेते थे। आखिर पचास-पचास दासियो और दासो को लेने का प्रयोजन क्या हो सकता था ? पर, साधारण स्थिति के आर्य अपने ही कृषि ओर पशुपालन कर लिया करते थे। आर्यों को पहनने के लिए कपडो की भी आवश्यकता थी, जो ऊन या चमडे के होते थे। सप्तसिन्धु की गर्मी उस समय भी कम असह्य नहीं रही होगी पर वह ऊन की पोशाक पसन्द करते थे। इसे आदत कहना चाहिये, नहीं तो सिन्धु-उपत्यका के निवासी उनसे पहले ही सूती कपडो को पहनते थे। आज भी गडेरिये लोग कडी धूप मे कम्बल को ओढे अपनी भेडो को चराते हैं। कहते हैं कम्बल तरावट देता है। यही बात सप्तसिन्धु के आर्य भी कहते होगे। उनके घरो मे कपडे बुने जाते थे। कपडे बुनने और दूसरे कामो के बारे में आगिरसगोत्री ऋषि शिशु" (९।११३।१–४) ने कहा है — "हमारे और दूसरो के भी अनेक प्रकार के कार्य हैं। तरखान (बढई) अपना काम चाहता है, वैद्य रोग की चिकित्सा करता है ब्राह्मण सोम छानने वाले यजमान को चाहता है। इन्द्र के लिए सोम परिस्नुत हो (छाना) जाये।

"पुरानी औषधियो, पक्षियो के पखो द्वारा अश्म (धातु) के हथियारो से तोडनेवाले कमार सोनेवाले आदमी को चाहते हैं।। २।।

"मैं कवि हूँ। मेरा पुत्र वैद्य है। मेरी कन्या पत्थर की चक्की चलानेवाली है। धन की कामना करनेवाले नाना कर्मोवाले हम गौओ की तरह एक गोष्ठ मे रहते हैं।। ३ ।।

"वाहक घोडे अच्छे रथ को, पासवाले मन्त्री (उप-मन्त्री) हँसने को, पुरुषेन्द्रिय रोम-युक्त भग्न स्थान को मेढक जल-युक्त सर को चाहता है।। ४ ।।

यहाँ वेद्य ब्रह्मा (पुरोहित) कमार कारु (कवि), पिसनहारी और उपमत्री के कामो का उल्लेख है।

२. चार वर्ण

डॉ० वटेकृष्ण घोष ऋग्वेद की भाषा के बारे मे कहते हैं*— "सब मिलाकर पहले नौ मण्डलो की भाषा एक समान हे, यद्यपि पहले की बोली के भेदो का असर, विशेषकर र और ल के बारे मे मिलता है।" दसवे मण्डल को सभी विद्वान् भाषा और दूसरे विचारो से भी पीछे का मानते हैं। पहले नो मण्डलो ने चारो वर्णों का नाम नहीं मिलता है, पर दसवे मण्डल मे इसका स्पष्ट उल्लेख आया है" (१०।९०।१२)— "इस (पुरुष) का ब्राह्मण मुख है, राजन्य (क्षत्रिय) दोनो बाहु। जो वैश्य है, वह उसकी जॉघ है, ओर पैरो से शूद्र उत्पन्न हुआ।" ब्राह्मण या पुरोहित ऋग्वेदिक आर्यों के आरम्भिक काल मे भी रहे लेकिन वह लडाई मे दूसरो की तरह ही भाग लेते थे। भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र के पुत्रो और कुलवालो ने दिवोदास और सुदास के अनेक युद्धो मे शस्त्र चलाये। ब्राह्मणो और राजन्य मे वैसा भेद उस समय नहीं था, जो उपनिषद्-काल

---

* The Vedic Age, P 336

और पीछे देखा जाता है अथवा जो इस पुरुष-सूक्त मे मिलता है। विश् प्रजा या लोक का पर्याय था। इसमे सारी आर्य जाति शामिल थी। राजा को विशापति (विशो का स्वामी) कहते थे। विश् से उत्पन्न वैश्य शब्द को नये अर्थों मे बहुत पीछे इस्तेमाल किया जाने लगा, जिसे ही हम यहाँ पाते हैं। शूद्र से दास वर्ण का मतलब है, जो कि पहले आर्यों के प्रतिद्वन्द्वी और पीछे उनके शासित या दास बन गये। चारो वर्णों की कल्पना पीछे हुई, यह साफ मालूम होता है। पहले की आर्य प्रजा मे, चाहे ब्रह्म (ब्राह्मण) हो या राजन्य (क्षत्रिय), उनके रोटी बेटी का कोई भेद नहीं था। पर, जब चारो वर्णो की कल्पना हो गयी, तो उसके साथ ऊँच-नीच का भाव भी आने लगा। उसके साथ ही धन और भोग मे उनके भाग को कम-बेशी माना जाने लगा। इस विषमता से वैमनस्य बढना आवश्यक था। वैमनस्य को हटाने की इच्छा न आर्य ऋषियो को हो सकती थी, और न वह हटाया जा सकता था। तो भी आर्यों के भीतर समानता और भेदभाव को हटाने का प्रयत्न वह जरूर करते रहे। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त" (१० ।१९१) मे सवनन ऋषि इसी की ओर ध्यान दिलाते हैं

"तुम साथ चलो, साथ बोलो। तुम्हारे मन साथ सोचे। जैसे कि पूर्वकाल के देव एकमत हो उपासना (भोग) करते थे।। २।।"

"इन (आर्यजनो) का मन्त्र एक सा हो। समिति एक सी हो, चित्तसहित मन एक सा हो। एक से मन्त्र को तुम्हारे लिए मैं आमन्त्रण करता हूँ। एक समान हवि से तुम्हारे लिए हवन करता हूँ।। ३।।"

"तुम्हारा अध्यवसाय समान हो, तुम्हारे हृदय समान हो। तुम्हारा मन समान हो, जिसमे कि तुम्हारा सुन्दर सगठन हो।। ४।।"

यह अनेक बार बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदिक ऋषियो का काम आर्यों का सामाजिक या राजनैतिक इतिहास लिखना नहीं था। उनका उद्देश्य था देवताओ को प्रसन्न करने के लिए स्तुतियॉ और विधि-विधान बनाना। दूसरी बाते वहॉ आनुषगिक रूप से ही आई हैं। पर, जिस सामाजिक और आर्थिक स्थिति मे आर्य थे, उससे उनके जीवन के अनेक अगो पर प्रकाश पडता है। आर्यो और आर्य-भिन्नो—द्रविडो और किरातो—मे भारी आर्थिक-सामाजिक भेद था। विजेता और स्वामी होने के कारण सबसे अधिक सम्पत्ति और भोग को आर्य अपने लिए चाहते थे, और बचे-खुचे को ही दूसरे पा सकते थे। पणि व्यापारी थे—पणि शब्द से ही वणिक या बनिया शब्द की उत्पत्ति हुई है। ये सम्पत्तिशाली थे। व्यापार भी उनके हाथ मे था, और उनके पास गाये भी बहुत होती थीं। पणियो की गायो को लूटना आर्य अपना धर्म समझते थे। इसके लिए बहाने की भी जरूरत नहीं थी। यह सरमा और पणियो के सवाद मे हम देखेगे। यदि सर्वस्व-हरण कर लिया जाता तो व्यापार हो ही नहीं सकता था। इसीलिए आर्य पणियो की पूँजी और उनके व्यवसाय के साधनो का हरण करना नहीं चाहते थे। उन्हे सोने की जरूरत थी। मणि और रत्न की भी कदर उनमे बढी थी। ये चीजे पणियो द्वारा ही मिल सकती थीं। इसलिए पणियो की रक्षा करना भी वह अपना कर्तव्य समझते थे। पणि भी उदारतापूर्वक आर्य ऋषियो को दान देते थे, यह भी हम देखेगे।

३ पराजित

पणि जिस जाति-द्रविड-के थे, उसके सभी लोग ऐसे सौभाग्यशाली नहीं थे। उनमे कितने ही आर्यो की कृपा पर कृषक या शिल्पी रहकर जीवन-निर्वाह करते थ, कितने ही आर्यों के दास-दासी बने थे। पर्वत गुहावासी शम्बर के लोग-किरात-नरनारी सभी लडने मरने को तैयार

थे। उन्हे आर्यो की पकड से बाहर जाने का सुभीता भी था। कॉगडे की उपत्यका और पास के पहाडो पर आर्यों के साथ जो खूनी सघर्ष चला था और दिवोदास चालीस साल की लडाई के बाद ही शम्बर का सहार कर सका, इसी के कारण किरात पराजित हुए। उस वक्त जो भी युद्धबन्दी हाथ आये होगे, वह दास-दासी बन गये होगे, इसमे भी सन्देह नहीं। पर, द्रविडो की तरह किरात एक जगह रहने के लिए मजबूर नहीं थे। उनके उत्तर और भी दुर्गम पर्वत, वहॉ की चारागाहे और हरी-भरी उपत्यकाये मौजूद थीं। शवर-वशी उधर हट सकते थे, और वैसा ही हुआ भी। किर (किरात) लोग कॉगडे के निचले पहाडो मे किरग्राम (बैजनाथ) जैसे नाम छोड गये हैं। आज उनका पता कॉगडा से शताधिक मील दूर लाहुल, मलाणा (कुल्लू) और कनौर मे मिलता है, इसलिए आर्यों के पास जो दास-दासी थे, वह अधिकतर द्रविड जाति के ही रहे होगे, किरात वहुत कम, इसमे सन्देह नहीं।

४ उत्पीडन और वर्ण-विभेद

आर्थिक तौर से पराजितो का भीषण शोषण तो होता ही था, सामाजिक तौर से भी उन्हे बहुत हीन समझा जाता था। गुत्समद ने मान लिया था, कि देवताओ ने ही उन्हे अधम (नीच) वर्ण का बना दिया है। आर्यों को रक्त-सम्मिश्रण का डर कितना था, इसका अन्दाज हमे अमेरिका के नीग्रो ओर श्वेतागो से लग सकता है। अमेरिका सारी दुनिया मे स्वतत्रता और समानता की ढोल पीटता है, पर वहॉ चिराग के नीचे अन्धेरा है। विश्वविद्यालयो मे काले छात्र गोरो के साथ पढ नहीं सकते। किसी गोरी तरुणी का सम्बन्ध यदि नीग्रो से हुआ समझा जाता, तो गोरे स्वय कानून को हाथ मे लेकर उसे जला देते हैं। ऐसे खूनी काण्ड वहॉ हर साल हुआ करते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के गोरे तो इस वात मे और भी निर्लज्ज तथा क्रूर हैं। अपने से चौगुनी-पचगुनी सख्यावाले अफ्रीकियो को वह मनुष्यरूपी पशु मानते हैं। उनको अपने घरो और बस्तियो के पास नहीं रहने देना चाहते। रेलो और सवारियो मे कालो को अलग रखते हैं जीविका के साधनो को कम से कम देकर उन्हे अछूत बनाये हुए हैं। वर्ण-भेद के यह दो रूप हमारे सामने सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका मे मौजूद हैं। आर्यों ने वर्ण-भेद की खाईं को सुदृढ रखने की कोशिश की। यद्यपि वर्ण—रग—का इस तरह का भेदभाव हमारी जातियो मे आज बिल्कुल नहीं मिलता। ब्राह्मण भी कोयले से काले मिलते हैं, और शूद्र या अछूत अच्छे खासे गोरे। एक सा साफ-सुथरा कपडा पहनाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के लडको को खडा कर दिया जाये तो कोई उन्हे नहीं वतला सकता। इतना होने पर भी पुराने शास्त्रो की दुहाई देकर पुराने नीच-ऊँच के भेद को कायम रखने की कोशिश की जा रही है। इसका बुरा परिणाम हमारी तीन-चौथाई जनता को भोगना पड रहा है। बडे वर्ण या जाति का मतलब है सम्पत्ति का स्वामी होना और छोटे वर्ण या जाति का अर्थ है सम्पत्ति से वचित होना। सम्पत्ति से वचित होने का मतलब है, मनुष्यता के दूसरे अधिकारो से भी वचित होना। सम्पत्ति के न होने पर शिक्षा और सस्कृति की सुविधा नहीं रह जाती। हरेक देश मे विजेता और विजित के सम्बन्ध कटु होते हैं, पर यदि उनमे वर्ण-भेद, जाति-भेद न हो, तो कुछ समय बाद दोनो मे एकता स्थापित हो जाती है सम्बन्ध अच्छे हो जाते हैं। हमारे देश मे ऐतिहासिक काल मे यवन (ग्रीक), शक, श्वेत-हूण आये। उनके प्रति आरम्भ मे कुछ भेदभाव जरूर रक्खा गया लेकिन रग का सवाल नहीं उठ सकता था क्योकि नवागन्तुक वर्ण-सम्पत्ति मे आदिम आर्यों जैसे थे, जिनके रूप-रग नख-शिख को हमारे यहॉ बराबर सौन्दर्य की कसौटी माना जाता रहा। इसीलिए यवन-शक उच्च वर्ण के लोगो मे मिल गये ओर उन्हे अछूत या सम्पत्तिहीन नहीं बनना पडा।

तीव्र वर्ण-भेद के ख्याल से आर्य अपने दास-दासियो के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के विरोधी थे। पर, दास-दासियो के श्रम का वह कैसे त्याज्य कर सकते थे ? दक्षिणी अफ्रीका के गोरे भी कालो के श्रम से लाभ उठाने से बाज नहीं आते। सिन्धु-उपत्यकावासी भौतिक सस्कृति मे आर्यो से बहुत आगे बढे हुए थे। मोहनजोदडो जैसे ताम्र-युग के भव्य नगर के निर्माण करनेवाले उनके शिल्पी, अपने कला-कौशल तथा शिल्प से आर्यों के लिए लाभदायक थे। इस लाभ से वह अपने को वचित नहीं करना चाहते थे। कपडा बुनना, चिकित्सा करना, हथियार बनाना आदि कुछ शिल्प आर्यो को भारत मे आने से पहले ही मालूम थे। उन्होने सिन्धु-उपत्यकावासियो के अधिक विकसित शिल्प भी कुछ सीखे। उससे भी अधिक उन्हीं द्वारा काम करवा कर लाभ उठाया पर, खान-पान की जो छूत-छात पीछे पैदा हुई, उसका अस्तित्व उस काल मे था, यह कहना मुश्किल है। जहॉ तक उत्तर भारत का सम्बन्ध है "शूद्रा सस्कर्तार" (शूद्र पाचक हैं) बराबर माना जाता रहा। रोटी-पानी मे शूद्रो से नहीं, बल्कि अतिशूद्रो से भेद बरता जाता रहा, जिसका कारण वर्ण नहीं, बल्कि अधिक गन्दे समझे जानेवाले काम थे। यह बिल्कुल सम्भव है, कि ऋग्वेदिक आर्यो के धनी परिवारो मे दासियॉ भोजन बनाती थीं। उनके हाथ के खाने-पीने मे किसी को एतराज नहीं था। छूत-छात का रिवाज आर्यों मे क्रमश बढा। सूत्र-ग्रन्थो मे शौच के लिए जल लेने का विधान नहीं है। गुरुकुल से सुशिक्षित होकर निकले स्नातक को वहॉ सूखे काठ इस्तेमाल करने की बात कहने का मतलब यही है, कि अभी जल की प्रथा नहीं चली थी। कच्चे-पक्के खाने और उसके छू जाने का भाव उस युग मे नहीं हो सकता था। ऊन के वस्त्र को पवित्र मानने की भावना भी ऋग्वेदिक आर्यों की ही देन है। आर्यों का कपास के वस्त्र न व्यवहार कर ऊनी वस्त्र को अपनाना दोनो वस्त्रो के प्रति दो प्रकार के भावो के पैदा करने का कारण हुआ। कालान्तर मे ऊन को शुद्ध मान लिया गया, और कपास को अशुद्ध। सूती कपडे को बदल कर खाना खाने या रसोई मे जाना चाहिए। पर ऊनी कपडा स्वत पवित्र है। कश्मीर मे सर्दी के कारण गीला चौका लगाना सुखद नहीं है, वहॉ ऊनी लोई चौके का काम देती है और ऊनी कपडे से ढॅके घडे का पानी या भात मुसलमान के हाथ मे पडकर भी अशुद्ध नहीं होता। किसी समय बैल के चमडे को भी ऊन के समान शुद्ध माना जाता था। कल्प-सूत्रो मे (पारस्कर) वर-वधू को बैल के चमडे पर बैठा कर मधुपर्क देने का विधान है। गाय के चर्म की शुद्धता पीछे जाती रही, पर मृगछाला अब भी शुद्ध-पवित्र माना जाता है। यह आर्यो के चमडे की पोशाक होने के कारण ही।

अध्याय ४

खान-पान

१ खाद्य

१ माँस

ऋग्वेदिक आर्य कृषि भी करते थे, लेकिन उनका सबसे बडा धन गौ-अश्व, अज-अवि था, इसीलिए उनमे शायद ही कोई ऐसा हो, जो मास न खाता था। बडे-बडे ऋषियो के लिए भी आतिथ्य करने के वास्ते मास अत्यावश्यक चीज थी। पीछे के धर्मसूत्रकारो ने तो कहा — "नामासो मधुपर्को भवति"* (बिना मास का मधुपर्क नहीं हो सकता)। अतिथि के सत्कार के लिए जो खाद्य तैयार किया जाता, उसे मधुपर्क कहते थे। ऋग्वेद के बाद ब्राह्मण-काल (८०० ई० पू०) मे भी मास आर्यों का प्रधान भोजन था, और इसके टोटके-टोने भी प्रचलित थे। बृहदारण्यक (६/४/१८) मे बतलाया गया है, कि यदि कोई इच्छा करे, कि मेरा पुत्र पण्डित, प्रसिद्ध, सभा-समाजवाला हो, और ऐसी वाणी बोले, जिसे लोग सुनना चाहे, तथा वह सारे वेदो को पढे, पूरी आयु को प्राप्त होवे, तो माता को चाहिए, कि घी-सहित साँड या बैल के मासवाला ओदन पकाकर खाये।

"य इच्छेत् पुत्रोमे पण्डितो विगीत समितिगम शुश्रूषिता वाच भाषिता जायेत, सर्वान् वेदा अनुब्रवीत, सर्वमायुरियादिति, मासोदन पाचयित्वा सर्पिष्मन्त अश्ननीयताम् ईश्वरी जनयितवा औक्षेण वाऽऽर्षमेण वा।"

कोई सन्देह की गुजाइश न रहे, इसके लिए शकराचार्य अपनी टीका मे कहते हैं — "मास-मिश्रमोदनम्। तन्मासनियमार्थमाह—औक्षेण वा मासेन। उक्षा सेचनसमर्थ पुगवस्तदीय मासम्। ऋषभस्ततोऽप्यधिकवया तदीयमार्षभ मासम्।" अर्थात् मास वयस्क बैल या उससे अधिक आयु के बैल का होना चाहिए। गोमास के प्रति आज चाहे जितनी जुगुप्सा हो, पर प्राचीनकाल मे इसके प्रति यह भावना नहीं थी। बुद्ध-काल मे भी यह बहुप्रचलित भक्ष्य था। मज्झिमनिकाय (३।५।४) मे आता है—

"जैसे चतुर गोघातक या गोघातक का शागिर्द गाय को मार कर गाय काटने के तेज छुरे से गाय के भीतरी मास और बाहरी चमडे को नुकसान पहुँचाये बिना गाय को काटे — जो-जो वहाँ भीतर विलिम, स्नायु, बन्धन है, उसे तेज छुरे से छेदन करे, काटे । छेदन कर काट कर ', बाहरी चमडे को झाड फटकार कर, उसी चमडे मे उस गाय को ढाँक कर यह कहे—'यह गाय पहिले की तरह ही इस चर्म से युक्त है'।"

गोमास काट कर गोघातक के चौरस्ते मे बेचने के लिए राशि करके रखने का भी उल्लेख मिलता है। गौ काटने के लिए जो स्थान होता था, उसे गोघातक सूना कहते थे। वहाँ पर हड्डियो के लालच से कुत्ते प्रतीक्षा करते रहते थे। मज्झिमनिकाय (२।१।४) है—

---

* आश्वलायन गृह्यसूत्र १।२४

"गृहपति, जैसे भूख से अति-दुर्बल कुक्कुर गोघातक के सूना के पास खडा हो। चतुर गो-घातक या गोघातक का अन्तेवासी उसको मासरहित लोहू मे सनी हड्डी फेक दे। तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या वह कुक्कुर उस हड्डी को खाकर भूख की दुर्बलता को हटा सकता है ?"

गाय काटने के छुरे को गोभिकर्तन कहते थे (मज्झिमनिकाय २।४।५)। ऋग्वेद (१०।७६।६) मे ऋषि ने कहा है "विपर्वशश्चकर्त गोमिवासि" (जैसे तलवार पोर-पोर गाय को काटे)। यह भी उसी बात की तरफ इशारा है। बहुत पीछे यदि सातवीं-आठवीं सदी के भवभूति अतिथि के लिए बछिया मारने की बात कहते हैं, तो वह अवश्य अपने समय के प्रतिकूल है, परन्तु जहॉ तक प्राचीनकाल का सम्बन्ध है, यह बिल्कुल साधारण सी बात थी। जैन आगम के "उपासगदसा" से भी इस बात की पुष्टि मिलती है। वहॉ एक सेठानी ने अपने पीहर से दो गाय के बच्चो (गोपोतक) का मास मॅगवाया था। वस्तुत आर्यों के आने से ईसवी-सन् के आरम्भ तक यह भक्ष्य इतना प्रचलित था, कि उसके बारे मे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। लेकिन, सवसे अधिक प्रिय मास आर्यों का मोटा भेडा ओर बकरा था। भेडे के लिए ऋग्वेद[१] (१०।२७।१७) मे कहा गया है "पीवान मेषमपचन्त वीरा" (मोटे मेष को वीरो ने पकाया)।

उस काल मे घोडे का मास भी भक्ष्य था, और उसके पके सोधे मास को आर्यजन बहुत चाव से खाते थे। दीर्घतमा ऋषि कहते हैं[२] (१।१६२।१२) जो घोडे को अच्छी तरह पका देखते हैं और उसकी सुगन्ध को बखानते हैं, और जो घोडे के मास भोजन का सेवन करते हैं। (ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभि निर्हरेति। ये चार्वतो मासभिक्षामुपासते)।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि ऋग्वेद का काम इतिहास या सामाजिक जीवन का चित्रण करना नहीं है। वहॉ देवताओ की प्रशसा के प्रसग मे ही कहीं-कहीं दूसरी बाते आती हैं। उससे यह मालूम ही होता है, कि प्रधान तौर से मासभोजी आर्य गौ, अश्व, अजा, अविका न मास खाते थे। मछली खाते तो जरूर होगे, पर ऋचाओ मे उसका उल्लेख नहीं है।

कई तरह का गोरस भी उनका प्रधान भोजन था। घृत तो मुख्य था ही, पुरोडाश[३] (४।२४।५) भी उनका और उनके देवताओ का प्रिय खाद्य था, जो शायद दूध और किसी अन्न को मिलाकर बनाया जाता था। पीछे तो खीर का यह पर्याय हो गया, लेकिन, ऋग्वेद मे चावल का कहीं उल्लेख नहीं है, अधिकतर जौ का नाम आया है। हो सकता है, जौ की दलिया को दूध मे पकाया जाता हो, जिसे वह पुरोडाश कहते थे। विश्वामित्र[४] (३।२८।२) भी पुरोडाश के पकाने की बात कहते हैं। दूध या दही से एक तरह का भोजन अशिर तैयार किया जाता था, जिसका उल्लेख बहुत जगहो पर हुआ है—[५] (१।१३४।६, ३।५३।१४, ८।२।१०,११, ६।७५।५, ८६ २१ १०।४६।१०, ६७६) अशिर कई तरह के होते थे, जैसे गवाशिर, दध्याशिर। गवाशिर[६] (३।४२।१७) और दध्याशिर[७] (५।५१।७) दोनो भोजन सोम और दूध-दही के योग से अथवा दूध-दही और दूसरी चीजो के मिश्रण से बनते थे। एक जगह[८] (८।७७।१०) क्षीरपाक का उल्लेख है। आजकल खीरपाक दूध मे पके चावल का ही दूसरा नाम है। उस समय क्षीर के साथ पका हुआ दूसरा अन्न जौ हो सकता था। पशुपालन की प्रधानता रखनेवाले आर्यों के भोजन मे मास और गोरस की प्रधानता थी। मास मे मसाले का उपयोग बहुत पीछे हुआ। लहसुन-प्याज का इस्तेमाल होता था, इसका भी कोई पता नहीं। घी मे तलने या बघाडने को छोडकर और तरह का कोई मसाला उस समय उपयोग मे नहीं आता था। नमक का पहाड सप्तसिन्धु की भूमि मे था, इसलिए वह सुलभ था। हो सकता है, उसका इस्तेमाल किया जाता हो। आग मे भूनकर मास को खाना यह कृषियुग से पहले भी प्रचलित था। इस समय तो अब पकाने के लिए उखा

(हडिया) का उपयोग होने लगा था[९] (१।१६२।१३), इसलिए उबले मास को भी खाया जाता था। "सुरभि पक्व मास" से भी इसी बात की पुष्टि होती है।

२ अन्न

अन्न का अर्थ पुराने काल मे भोजन होता था, लेकिन धान्य की प्रचुरता के कारण अब अन्न अनाज के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। तभी तो एक जगह[१०] (१०।१४६।६) कहा गया है— "बहवन्नामकृषीवला।" (किसानरहित बहुत अनाजवाली)। इससे किसान और अनाज का सम्बन्ध निश्चित है। "धाना करभ, अपूप"[११] (८।८०।२) धाना, करभ[१२] (३।५२।१, ७), करभ[१३] (६।५६।१, ५।७।२) के उल्लेख भरद्वाज, विश्वामित्र और वामदेव जैसे प्राचीन ऋषियो ने अनेक बार किये हैं। धाना भुने हुए अनाज को कहते है, आज भी उसे दाना कहा जाता है। करभ सत्तू का नाम था और अपूप रोटी को कहते थे। आजकल पूआ या माजपूआ यद्यपि एक खास तरह के बहुत स्वादिष्ट घृतपक्क भोजन को कहते हैं, लेकिन ऋग्वेदिक आर्यों का अपूप कण्डे पर या मिट्टी के तवे पर पकाई रोटी होगी। कृषि के आरम्भिक युग मे तन्दूर की रोटी मध्य-एसिया मे अनौके लोगो को मालूम थी, और तन्दूर आज भी सप्तसिन्धु की रोटियो के लिए प्रसिद्ध है। हो सकता है, आर्य लोग तन्दूरी रोटियॉ पकाते हो। इनके अतिरिक्त सक्तु[१४] (१०।७१।२) का भी उल्लेख हुआ है, जो करभ का ही दूसरा नाम था। सत्तू को छानकर इस्तेमाल करते थे, जैसा कि "सक्तुमिव तितउना" से मालूम होता है। भोजन बनाने के लिए इस्तेमाल होनेवाली चीजो मे उलूखल (ओखल)[१५] (१।२८।१), तितउ (छलनी), एक प्रकार की हॉडी चषाल[१६] (१।१६२।६) और उखा का उल्लेख हुआ है। हो सकता है, इससे अधिक भी पात्र रहे हो। कम से कम मोहनजोदडो मे इस्तेमाल होने वाले पात्रो को तो आर्य अपने सामने देख रहे थे।

आर्य कृषि भी करते थे, यह कृषीबल (किसान) (१०।१४६।६) से ही मालूम होता है। भूमि क्षेत्र और अरण्य मे विभक्त थी[१७] (६।६१।१४), जिनमे क्षेत्रो मे वह जौ की खेती करते थे और अरण्य पशुओ के चराने के काम आते थे। जाडे मे वनो के पत्ते झड जाते थे— "हिमेव पर्णा मुषिता वनानि"[१८] (१०।६८।१०)। आजकल इसे ऊँचे पहाडो मे ही देखा जा सकता है। सप्तसिन्धु के कम से कम मध्य और पूर्वी भाग मे इतना जाडा नहीं होता था कि हिमकाल मे वृक्षो पर पत्ते न रहे। उनके गिरने का समय जाडो के अन्त मे आता है। पत्तो और घासो की पशुपालो को बडी आवश्यकता थी, इसलिए ऋतु-अनुसार जो परिवर्तन आते थे उसकी ओर उनका ध्यान जाता था।

उनकी खेती मे जौ की प्रधानता थी। खेतो को वह बैलो से जोतते थे— "गोभिर्यव न चकृर्षत्"[१९] (१।२३।१५ जैसे बैलो से जौ के खेत को जोता जाये)। खेती के लिए नहरो का भी इस्तेमाल करते थे। ये नहरे छोटी नालियॉ होगी, जिनको कुल्या[२०] (४।८३।८) कहते थे। आजकल भी पहाडो मे इन्हे कूल या गुल कहते हैं। हल (लागल) का भी जिक्र[२१] (४।५७।४) वाम देव ऋषि ने किया है और उन्होने ही जोती हुई हराई सीता[२२] (४।५७।४) और फाल[२३] (४।५७।८) का जिक्र किया है। लागल मे आजकल लोहे का फाल इस्तेमाल करते हैं। उस समय लोहा अज्ञात था तॉबे का फाल भी लग सकता था, लेकिन तॉबा अभी महार्घ धातु थी। इसलिए फाल भी लकडी का रहा होगा, हॉ अपेक्षाकृत कडी लकडी का।

फल भी आर्य लोगो का भक्ष्य था। वह तो कृषि और गोपालन से अपरिचित जातियो के लिए भी जगल मे सुलभ था। आर्य "स्वादो फलस्य जग्ध्वाय"[२४] (१०।१४६।५, स्वादिष्ट स्वादु फल

के खाने) की बात कहते है। फल को अधिक स्वादु बनाने का काम आदमी ने कृत्रिम रूप से किया। जगली फल सयोग से भले स्वादु निकल आये, नहीं तो अधिकतर वह स्वादिष्ट नहीं होते, यह हम जगली सेब, नास्पाती, अगूर या जगली जामुन, शरीफे, आम आदि को देखकर जानते हैं। फलो को स्वादिष्ट बनाने के लिए बगीचो के लगाने की जरूरत थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेद मे ही नहीं, बल्कि काफी पीछे तक नहीं मिलता। आर्य लोग जगलो मे स्वत उगे वृक्षो के ही स्वादु फलो पर सन्तोष करते होगे। पक्व फल वृक्ष[२५] (३।५४।४) का भी उल्लेख देखा जाता है। आर्यो के भोजन मे फल भी शामिल थे। जिन्हे वह सुखा कर रख सकते थे, और दूसरे समय मे भी इस्तेमाल करते रहे होगे। पञ्जाब की भूमि मे कौन से फली वृक्ष प्राकृतिक रूप मे मौजूद थे, इनकी गिनती करना मुश्किल है। आम रहा होगा, जामुन भी होगी, करौंदे, कुँदरू जैसे फल भी रहे होगे, केला के होने मे सन्देह है, क्योकि उसे अधिक वर्षा की जरुरत है। कटहल-बडहल अब भी पञ्जाब मे दुर्लभ फल है। जगली बेर जरूर रही होगी।

२ पान

गोरस-सम्बन्धी पान अर्थात् दूध, दही, छाछ उनके सबसे प्रिय और सुलभ थे, जैसा कि अब भी पञ्जाब मे देखा जाता है। सत्तू खाने मे दही का इस्तेमाल जो पीछे देखा जाता है, वह उस समय भी रहा होगा। बहुत अधिक गायो के रखने से छाछ या दही बहुत अधिक पैदा होता होगा। पनीर की शकल मे सुखाकर रखने का रिवाज था, या नहीं, इसके बारे मे नहीं कहा जा सकता। पिछले काल मे पनीर की तरह की ही एक गीली-सी चीज आमिक्षा का उल्लेख मिलता है। आर्य मधु[२६] (१०।१०६।१०) से सुपरिचित थे बल्कि वह इस खाद्य से बहुत पहले से परिचित थे, क्योकि आर्यो के दूर के सम्बन्धी रूसियो के पूर्वज भी इसे जानते थे, यह दोनो भाषाओ मे मधु और मेदु के एक-से नाम से मालूम होता है।

१ सोम

आर्यों का सबसे प्रिय पेय सोम था। सोम का उल्लेख ऋग्वेद के सारे नवे मण्डल और सैकडो दूसरी ऋचाओ मे हुआ है। सोम कोई ऐसी पेय चीज नहीं थी, जो कि दुर्लभ होने के कारण बहुत कम लोग ही उसे पी सकते हो। उसके घडे के घडे (चमू) भरे रहते थे[२७] (६।२०।६)। सोम छनने मे छना जाता था। छना हुआ (सुत) सोम उस समय के आर्यों का बहुत प्रिय पान था। सोम उनके लिए दिव्य वस्तु थी। ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं[२८] (६।१।१)— "स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत।" (इन्द्र के पीने के लिए छाने हुए हे सोम, स्वादिष्ट और मदिष्ट धारा से क्षरित होओ)। सोमपान स्वादिष्ट भी होता था। स्वादु ही नहीं बल्कि अत्यन्त स्वादु और मदिष्ठ भी। कहते हैं[२९] (८।४८।३)— "अपाम सोम अमृता भवेम" (हमने सोम पिया और अमर हो गये)। सोम दुर्लभ अमृत सजीवनी का नाम नहीं था। सोम घडो के घडे तैयार किये जाते थे, —"सोम चामूषु"[३०] (६।२०।६)। मदिर सोम[३१] (८।२१।५) आर्यों का नित्यप्रति का पान था। सोम-याग मे विशेष तौर से पीने का विधि-विधान पीछे हुआ। हम देख चुके हैं, कि पके घोडे के मास की तारीफ सोधा-सोधा कहकर आर्य लोग करते थे, यह मास केवल अश्वमेध यज्ञ तक ही सीमित नहीं था। उसी तरह मदिरसोम का पान केवल सोम-याग तक ही सीमित नहीं था। शाम के वक्त नृत्य और पानगोष्ठी आर्यों के स्वच्छन्द और सुखी जीवन का एक अभिन्न अग था। उस समय घडो सोम की जरूरत होती थी।

सोम को भाँग बतलाने पर पुराणपन्थी चौंक उठते हैं। प्राचीनो ने उसके बारे मे बहुत सी गप्पे उडाई हैं। चन्द्रमा का भी नाम सोम है, इसलिए सोम को उनके साथ जोडकर कहते हैं— सोमलता चन्द्रमा की तरह एक-एक अश बढती पूर्णिमा को अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँचती

है, उसके बाद घटते-घटते अमावस्या को अत्यन्त खर्ब हो जाती है। कोई वनस्पति ऐसी देखने म नहीं आती। सूर्य के प्रकाश या हाथ के स्पर्श से छुई-मुई हो जाने वाली लाजवन्ती का हमे पता है। ऐसे भी वनस्पति मालूम हैं जो कीडो-मकोडो को अपने विशेष स्थान पर पकड कर भख जाते हैं। लेकिन कला-कला बढने-घटनेवाली वनस्पति का हमे पता नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता, कि साढे तीन हजार वर्ष पहले जो वनस्पति इतने परिमाण मे मौजूद थी, कि उसका घडो रस तैयार किया जा सके और अब वह बिल्कुल उच्छिन्न हो जाये। वस्तुत सोम के साथ धीरे-धीरे जिन सेकडो दिव्य गुणो को जोड दिया गया, वह भॉग मे नहीं है। भॉग कितनी ही जगहो मे अधिक उपजनेवाली बेहया वनस्पति हे, जिसको लोग भाड झोकने के काम मे लाते हैं, इसलिए दिव्य सोम यही भॉग है इसे वह कैसे मानने के लिए तैयार हो सकते थे ? पर, सोम है वस्तुत भॉग। तिब्बत मे आज भी उसे "सोमराजा" कहते हैं। पठान लोग भॉग को "ओम" कहते हैं, जो सोम से होम होकर बना है। सोम मे दूध और मधु मिलाकर सोमरस तैयार किया जाता था। दूधिया भॉग अपने स्वाद के लिए हमारे यहॉ प्रसिद्ध है ही। अगर पता न हो, तो सामने रख देने पर आदमी लोटा भर भॉग पी सकता है। भॉग की माजून उस समय नहीं बनती थी, जिसकी खोयेवाली बर्फी अपने स्वाद के लिए प्रसिद्ध हे। एक बार खतरे को न जानकर इन पक्तियो के लेखक ने कई बर्फियॉ खा डालीं, जिसका दण्ड हफ्तो भुगतना पडा था। सोम को बहुत स्वादिष्ट बनाते थे उसकी स्वादिष्ट धारा की बडी ख्याति थी। और मदिर होने से वह गम-गलत करने के लिए किसी भी नशीली चीज से कम नहीं था।

आर्य स्वास्थ्यप्रेमी थे। पशुपालन का जीवन परिश्रम का जीवन होता है। फिर आर्यो को सेनिक का जीवन भी बिताना पडता था, इसलिए दुर्बल आदमियो की उनके यहॉ कदर नहीं हो सकती थी। इन्द्र उनके इष्टदेवता पौरुष के आगर थे। उनके लिए कहा गया है[31] (८।१७।८)— "तुबिग्रीव बपोदर सुबाहु" (पुष्ट गर्दन चर्बीदार पेट और सुन्दर भुजाओवाला)। चर्बीवाला पेट अर्थात् तोद को शायद इन्द्र के प्रौढ होने के ख्याल से कहा गया हे, नहीं तो आर्य-तरुणो का आदर्श तुदिल शरीर नहीं हो सकता। हॉ मोटी गर्दन और बलिष्ट भुजा के साथ विशाल छाती को वह पसन्द करते थे, जैसा कि गुप्तकाल की मूर्तियो और अजन्ता के चित्रो मे देखा जाता है। भरद्वाज के बुढापे का चित्र ऐत्रेय ब्राह्मण (३।५।४६) मे मिलता है, जहॉ वह दुबले लम्बे ओर श्वेतकेश (कृश दीर्घ पलित) बतलाये गये हैं। तरुणाई मे वह पलितकेश नही सुवर्ण केश रहे होगे, लम्बे होगे और मासल, पर छरहरा बदन रहा होगा।

आर्यो का खानपान बहुत पुष्टिकर और स्वास्थ्यकर था। सप्तसिन्धु की गर्मियॉ उस समय भी असह्य रही होगी, लेकिन अब १५ पीढियो से रहते वह उनके लिए सह्य हो गयी होगी। पञ्जाब (सप्तसिन्धु) आज की तरह ही तब भी अधिक स्वास्थ्यकर रहा होगा। सत्तू-रोटी और मास-गोरस का उस समय कोई अभाव नहीं था। कृषि और गोरक्ष्य ही उनकी जीविका के साधन थे, गोओ की लूट से भी कभी-कभी आमदनी हो जाती थी। पर, अब सारी सप्तसिन्धु भूमि उनकी अपनी थी आर्य-भिन्न लोग भी उनके अधीन थे, इसलिए वह तीन शताब्दियो पहले की तरह अपने लिए भी लूट की छूट नहीं कर सकते थे। उनके कर्मठ जीवन को कायम रखने के लिए उत्तर के पहाडो के शम्बर और उसकी जाति वाले शत्रु मौजूद थे।

२ सुरा

सुरा भी आर्य पीते थे, यद्यपि उसे सुपान नहीं मानते थे। इसके बारे मे अध्याय १४ मे हम लिखेगे।

भाग ३

राजनीतिक

अध्याय ५

ऋग्वेद के ऋषि

१ प्रधान ऋषि

यदि इन्द्र, अग्नि आदि अमानुष तथा कल्पित नामो को छोड भी दिया जाये, तो भी ऋग्वेद के ऋषियो की सख्या साढे तीन सौ से कुछ ऊपर है। इनमे सबसे पुराने अगिरा, रहूगण, कुशिक हैं, परन्तु उनके एकाध ही मन्त्र मिलते हैं। उनके बाद सबसे पुराने तथा प्रधान ऋषि एक सूक्त मे साथ आये हैं, जो क्रमश भरद्वाज, कश्यप, गोतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ हैं। यदि ऋग्वेद के दसो मण्डलो के क्रम के अनुसार देखा जाये, तो द्वितीय मण्डल के गृत्समद, तृतीय मण्डल के विश्वामित्र, चतुर्थ मण्डल के वामदेव, पञ्चम मण्डल के अत्रि, षष्ठ मण्डल के भरद्वाज, सप्तम मण्डल के वसिष्ठ और आठवे मण्डल के कण्व प्रधान मालूम होते हैं। प्रथम, नवम और दशम मण्डलो मे किसी एक ऋषि या उसके कुल-गोत्र की प्रधानता नहीं है। बौद्ध त्रिपिटक के दीघनिकाय के तेविज्जसुत्त (१।१३) मे और दूसरे स्थानो मे भी मन्त्रो के कर्ता मन्त्रो के प्रवक्ता दस ऋषि गिनाए गये हैं— अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अगिरा, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप और भृगु। इनमे वामक नाम का कोई ऋषि नहीं मिलता, बाकी सबके मन्त्र ऋग्वेद मे मिलते हैं, और वामदेव, विश्वामित्र, भरद्वाज तथा वसिष्ठ तो सबसे अधिक मन्त्रो के कर्ता हैं। यदि मन्त्रो की अधिक सख्या के कर्ता के अनुसार देखा जाये, तो सबसे अधिक—१०३ सूक्तो—के कर्ता वसिष्ठ हैं। उनके बाद दूसरे हैं— भरद्वाज ६०, वामदेव ५५, विश्वामित्र ४८, गृत्समद ४०, कक्षीवान् २७, अगस्त्य २६, दीर्घतमा २५, गोतम २०, मेधातिथि २०, श्यावाश्व १५, कुत्स १४, मधुच्छन्दा १०, प्रस्कण्व ६, पराशर ५, जमदग्नि ५। कम सूक्तो के कर्ता किन्तु कुछ महत्त्व रखने वाले ऋषि हैं— कवष ४, बृहस्पति २, हर्यत १, अपाला १, अष्टक १, कुशिक १ और सुदास १। ऋग्वेदकालीन आर्यजनो के पुरोहित निम्न ऋषि थे—

	पुरोहित	जन	प्रदेश
१	भृगु	द्रुह्यु	(परुष्णी-असिक्नी के बीच)
२	अत्रि, गृत्समद (पञ्चम मण्डल)	पुरु	(विपाश्-शुतुद्रिके बीच)
३	भरद्वाज (षष्ठ मण्डल)	दिवोदास, सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के बीच)
४	वसिष्ठ (सप्तम मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के बीच)
५	विश्वामित्र (तृतीय मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के बीच)
६	दीर्घतमा मामतेय	भरत-तृत्सु	(परुष्णी-विपाश्के बीच)
७	कण्व (अष्टम मण्डल)	तुर्वश, यदु	(परुष्णी-असिक्नीके बीच)

अधिक मन्त्रो के रचयिता और ऐतिहासिक महत्त्व रखने के कारण आर्यजनो के इन पुरोहित-ऋषियो को प्रधानता देनी पडेगी, जो उमर मे छोटे-बडे हो सकते है, पर समकालीन हैं। इनमे भी भरद्वाज वसिष्ठ और विश्वामित्र का सबसे अधिक महत्त्व है। यह शम्बर-युद्ध फिर राजा सुदास के दाशराज्ञयुद्ध के समय मौजूद थे। वसिष्ठ और विश्वामित्र ने धरू सघर्ष मे मुख्य तौर से हाथ बॅटाया था। "दाशराज्ञयुद्ध" का काल ईसा-पूर्व १२०० के करीब है ओर आर्य सप्तसिन्धु मे ई० पू० ५००१ मे आये अर्थात् तबसे विश्वामित्र के काल तक आर्यो की चौदह-पन्द्रह पीढियॉ बीत चुकी थीं।

जब हम ऋषियो के पूर्वजो को देखते हैं, तो किसी की पीढी अपने परदादा से आगे नहीं जाती। भरद्वाज के पिता बृहस्पति, पितामह लोकनामा और प्रपितामह अगिरा थे। कण्व के पिता घोर और पितामह अगिरा थे। कश्यप के पिता मरीचितक का ही नाम हमे मालूम है। गौतम की भी एक ही पीढी अर्थात् पित रहूगणका पता मालूम है। अत्रि के पिता का भी नाम निश्चित मालूम नहीं है। विश्वामित्र की चार पीढी— अर्थात् पिता गाथी, पितामह कुशिक और प्रपितामह इषीरथ— मालूम है। वसिष्ठ और उनके भाई अगस्त के पिता मित्रावरुण बतलाए गये हें, यदि वह मनुष्य नहीं देवता हैं, तो इसका मतलब है, कि उनके पूर्वजो मे किसी का नाम मालूम नहीं है। भृगु के पिता वरुण थे। इस प्रकार चार पीढी अर्थात् एक शताब्दी अथवा ई० पू० १३०० से पहले के किसी ऋषिपूर्वज का पता नहीं है। पीछे की ओर देखते हैं, कि इन ऋषियो की परम्पराओ को काफी सुरक्षित रखने की कोशिश की गयी है। यह आश्चर्य की बात है, पूर्वजो की स्मृति क्यो नहीं कायम रंखी गयी। लेकिन आश्चर्य करने की कोई जरूरत नहीं। आर्य जब सप्तसिन्धु मे आए तो घुमन्तू जीवन बिताते थे, अभी वह जनयुग—कबीलाशाही—से बाहर नहीं आए थे। गाय-घोडो ओर भेडो को पालना उनकी जीविका का मुख्य साधन था। यदि कृषि करते थे, तो नाममात्र ही। उनके उपयोग के लिए अन्न जुटानेवाले पराजित सिन्धुवासी मौजूद थे। लेकिन जीवन तथा विलास की बहुत-सी सामग्रियो को स्वीकार कर वह सामन्तयुगीन सस्कृति और आर्थिक जीवन से अछूते कैसे रह सकते थे ? सामन्तवाद की ओर वढने के लिए जनयुग की दीवारो को तोडना आवश्यक था, अर्थात् भिन्न-भिन्न जनो (कबीलो) को एकताबद्ध करना था। एकताबद्ध करने के प्रयास का अन्तिम परिणाम "दाशराज्ञयुद्ध" हुआ था।

इस पृष्ठभूमि मे देखने पर मालूम हो जाएगा कि ऋषियो की जो पहले की तीन-चार ही पीढियॉ हमे मालूम होती हैं, उसका कारण यही हे, कि तभी से वह जनयुग से सामन्त-युग की ओर दृढ कदम रखने लगे। जिस तरह ऋग्वेद के प्रधान तीन ऋषियो से पहले के ३०० वर्षो का आर्यों का इतिहास हमे अन्धकाराच्छन्न मालूम होता है, वेसे ही उसके बाद— जहॉ तक ऐतिहासिक साहित्यिकसामग्री का सम्बन्ध है—फिर तीन सो वर्षों तक अन्धकार छा जाता है। ऋग्वेद के ऋषि सप्तसिन्धु के ऋषि थे। उस वक्त आर्यो का निवास और प्रभुता क्षेत्र सप्तसिन्धु अर्थात् सरस्वती से लेकर सिन्धु की उपत्यका तक का देश (हरियाणा पञ्जाब और पख्तूनिस्तान) था। तीन सौ वर्ष बाद यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण जैसे प्राचीन ग्रन्थ मिलते है। इन ब्राह्मणो के कर्ता ऐतरेय महीदास और याज्ञवल्क्य उस समय पैदा हुए, जबकि सप्तसिन्धु नहीं कुरू-पञ्चाल (पश्चिमी उत्तर-प्रदेश) आर्यों का गढ वन चुका था और उनका प्रभाव पूर्व मे विदेह (उत्तरी बिहार) और दक्षिण मे भोज (मध्य नर्मदा उपत्यका) तक पहुॅच गया था। यदि इन तीन सौ वर्षों की बाते अविच्छिन्न रूप से प्राप्त होतीं, तो मालूम होता, कि आर्य सप्तसिन्धु से पूर्व की ओर किस तरह बढे ?

ऋषियो के वंशवृक्ष —

ई० पू०
१२७५
अगिरा
११५०
लोकनामा
घोर
वरुण
१२२५
बृहस्पति
कण्व
भृगु
१२००
भरद्वाज
प्रस्कण्व
वत्स
मेघातिथि
अजीगर्त
यमदग्नि
११७५
गर्ग
शुन शेप
१२७५
इषीरथ
१२५०
कुशिक
रहूगण
पिजवन
१२२५
गाथी
मित्रावरुण
गौतम
बध्र्श्व
१२००
विश्वामित्र
वसिष्ठ
अगस्त्य
वामदेव
दिवोदास
११७५
मधुच्छन्दा
शक्ति
सुदास
११५०
पराशर
गौरवीति
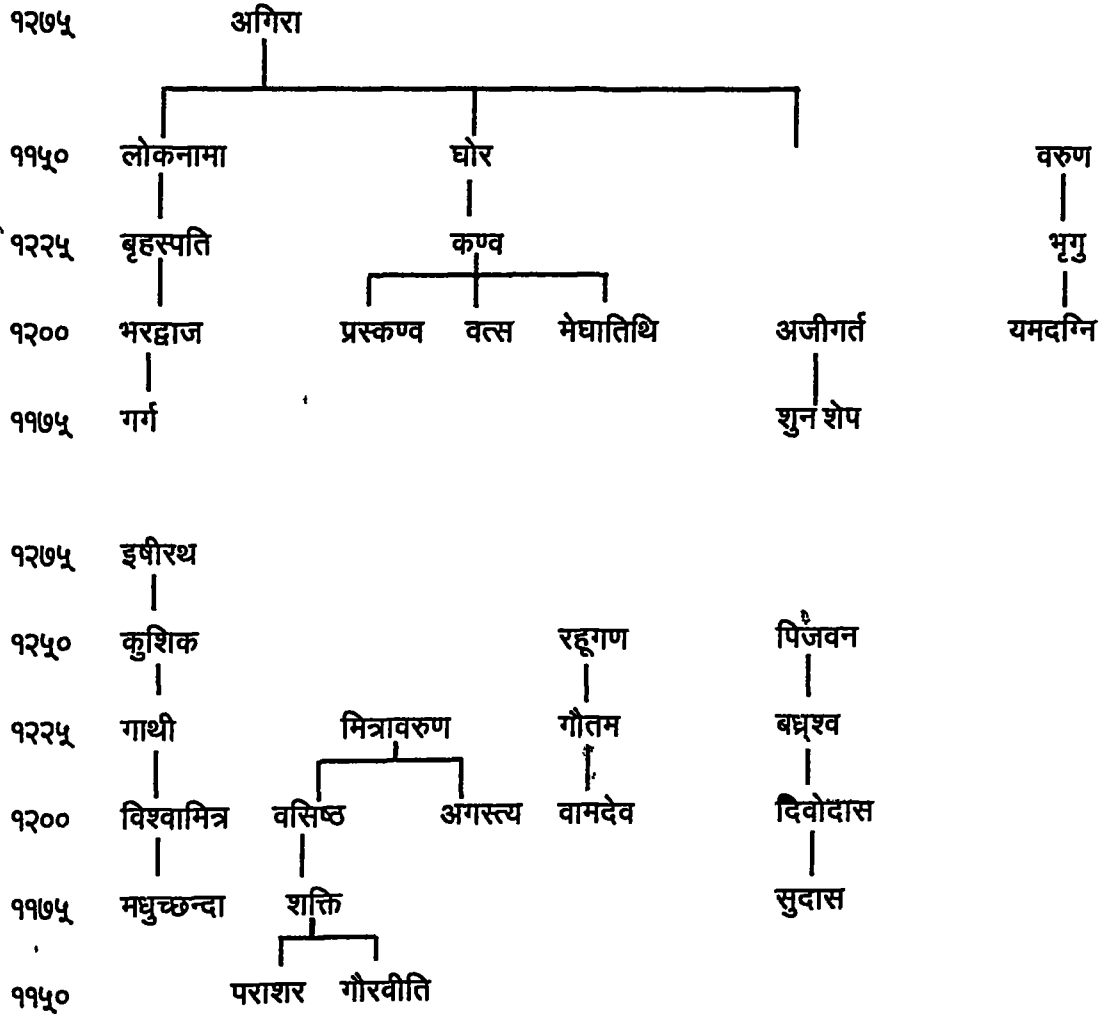
सप्तसिन्धु मे प्रवेश करने की बात का भी हमारे साहित्य मे कोई उल्लेख नहीं मिलता हमें उसके बारे मे तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और नृतत्व से मदद लेनी पडती है। फिर एकाएक कूदकर तीन सौ वर्षों बाद हमे दिवोदास और सुदास तथा उनके पुरोहित भरद्वाज, वसिष्ठ आदि एव उनके सघर्षों का पता लगता है। इसके बाद फिर इतिहास की सरस्वती लुप्त होकर तीन सौ वर्ष बाद ब्राह्मणो के रूप में हमारे सामने आती है। तब हमे कुरु और पञ्चाल के समृद्ध जनपद और राज्य दिखाई पडते हैं तथा इसी समय उपनिषद् के रूप मे आर्य-विचारक जनयुगीन देवमाला से अपने को ऊपर उठाते दिखाई पडते हैं।

प्रधान ऋषियो के राजनीतिक जीवन के सम्बन्ध मे हम उनके यजमानो के सघर्ष के वर्णन मे बतलाएँगे। वह वस्तुत केवल धार्मिक नेता (पुरोहित) और कवि (कारु) मात्र ही नहीं थे, बल्कि अपने लोगो के प्रधानमन्त्री तथा सेनानायक भी थे। यदि बुढापे के कारण युद्ध मे सीधे भाग नहीं ले सकते थे तो अपनी तरुण सन्तानो और वशजो को उसमे शामिल होने के लिए आह्वान करते थे। उनकी स्तुतियों और देवताओ की कृपा से उनके यजमानो को सफलता नहीं मिली, बल्कि उनके शक्तिशाली कुल-तरुणो की तलवारो और धनुषबाणो ने सफलता मे सहायता की।

१ भरद्वाज

रचना के ख्याल से ६० सूक्तो के रचयिता बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज का ऋग्वेद के ऋषियो मे दूसरा नम्बर आता है। वह सुदास के पिता दिवोदास के पुरोहित थे। यदि आर्यजनो के आपसी सघर्ष मे वसिष्ठ ने सुदास की बडी सहायता की थी, तो भरद्वाज का हाथ सुदास के पिता दिवोदास की सफलताओ मे कम नहीं था। ऋग्वेद का छठा मण्डल उनका और उनके वशजो का मण्डल है, जिसमें ऋषि ने दिवोदास की सफलताओ का वर्णन किया है। इनका अपना मोटो था "तरें हम तरें तेरी रक्षा से हम तरें" (५।१।१२) [१](६।१५।१५ आदि)। दूसरा वाक्य जो इनकी ऋचाओ मे दोहराया जाता है, वह है— "हम अच्छे वीरो के साथ सौ सर्दियो तक आनन्दपूर्वक रहें" [२] (७।४।८, ७।२४।१०)। इन्होने आधे दर्जन से अधिक स्थानो मे "अद्रोघवाच" (अमिथ्यावादी) शब्द का प्रयोग किया है[३] (६।५।१, ६।६।१२ आदि)।

दिवोदास का उल्लेख इनकी बहुत-सी ऋचाओ मे मिलता है, किन्तु सुदास का कहीं नहीं है। तब मर गये होंगे या सुदास के लिए अमगल कामनाएँ की हो, इसलिए उन ऋचाओ का सग्रह नहीं किया गया। लोभ, द्वेष मे यह पुराने ऋषि-पुरोहित अपने आज के वश-धरो से बहुत ऊपर नहीं थे, इसलिए जिस सुदास ने उनको राजपुरोहित पद से दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर किया, उसके लिए वह अमगल-कामना नहीं करेंगे, यह नहीं हो सकता। ऋग्वेद मे सगृहीत ऋचाएँ मुख्यत ऋषि-पुरोहितों के इष्टदेवताओ की महिमा-वर्णन करने के लिए हैं। भरद्वाज के देवता असफल साबित हुए, फिर असफलता के प्रदर्शन के लिए उनकी की गयी स्तुति को क्यों सुरक्षित किया जाता ?

भरद्वाज अध्यात्म-शक्ति के कायल नहीं थे। उन्होने प्रार्थना की थी "अश्मा भवतु नस्तनू" (हमारे शरीर पत्थर के हो ६।७५।१२)[४]। इनके यजमान दिवोदास और सारे आर्यजनो का प्रबल शत्रु शम्बर नामक दस्यु-राजा था। वह विपाश् (व्यास) और परुष्णी (रावी) के बीच के वर्तमान कॉगडावाले पहाड का राजा था और जैसा कि हमने अन्यत्र बतलाया है, वह द्रविड (सिन्धु) जाति का नहीं बल्कि किरात (मगोलायित) जाति का था। उसके सौ पहाड़ी दुर्ग थे, जिनमे १६वीं सदी तक शत्रुओ के दॉत खट्टे करने वाला कॉगडा जैसा कोई किला (पुर) शायद इसी स्थान पर

था। आयसी (ताँबे जैसी दृढ) के स्थान पर दूसरी जगह अश्मन्मयी (पत्थर जैसी दृढ) पुरियो (किलो) का भी जिक्र आया है। ये पहाडी किले पत्थर के रहे होगे। शम्बर के अलावा चुमुरि, धुनि, शुष्ण, अशुष, पिप्रु, नाम वाले दूसरे आर्य-विरोधी असुर राजाओ का उल्लेख भरद्वाज ने किया है। यह भी पहाडी राजा तथा शम्बर के सहयोगी थे। इसमे शक नहीं कि सबसे प्रबल शत्रु शम्बर था। भयकर युद्धो के नेता-पुरोहित भरद्वाज यदि वर्म (कवच), धनु ज्या, इषुधि (तर्कश), रथ, घोडे, परशु (फर्से) जैसे युद्धो के साधनो का वर्णन करे, तो यह स्वाभाविक ही है।

क्षेत्र और अरण्य का भी उल्लेख भरद्वाज करते हैं[१] (६१।१४), जिससे पता चलता है, कि आर्यों को खेतो और जगलो दोनो से काम था। खेतो मे वे जौ और दूसरे अनाजो की थोडी-सी खेती करते थे, जिससे करम्भ (सत्तू) बना कर दही से खाते थे। पर, उनका प्रधान भोजन दूध और मास था, जिसके लिए एक-एक परिवार के पास हजारो गाये होती थीं। इस प्रकार खेतो से भी अधिक चारागाहो की उनको आवश्यकता थी। घोडे इस वक्त युद्ध और साधारण सवारी के अत्यन्त उपयोगी जानवर थे और उनके मास का उपयोग भी होता था। दिवोदास के पुत्र सुदास से वसिष्ठ ने अश्वमेध यज्ञ कराया था (ऐतरेय ८।४।२१)। अश्वमेध यज्ञ का यही सबसे पुराना उल्लेख है। चायमान अभ्यावर्ती राजा ने दो हजार गाये दान दी थीं। गोदान उस समय अधिक हुआ करता था, आर्य ऋषि प्रभूत गौओ और अश्वो की कामना करते थे। भरद्वाज ने दिवोदास की सोम-गोष्ठियो मे सहभागी होने का वर्णन किया है[२] (६।१६।५)। उस समय सोमपान इतना साधारण था, कि उसे सोमयाग कह कर दिव्य पूजा का रूप देने की आवश्यकता नहीं थी।

दिवोदास के पिता वध्र्यश्व ने आर्यों मे कबीलाशाही का अन्त करके उन्हे एकताबद्ध करने का श्रीगणेश किया था, जिसको उसके सुपुत्र दिवोदास ने आगे बढाया। इसमे बडे विरोधी यदु और दुर्वश दो आर्यजन थे। दिवोदास ने उनको दबाने मे सफलता पाई। उसने ६० हजार दासो (असुरो) का सहार किया था। बार्हस्पत्य भरद्वाज ने सात बहने सरस्वती [१](६।६१।१०), तटो को तोडनेवाली सरस्वती[१] (६।६१।२) का भी उल्लेख किया है। दासो की सात पुरियो को पुरुकुत्स (पुरुओ के राजा कुत्स) ने ध्वस्त किया था[१०] (६।२०।१०)। इससे मालूम होता है, कि भरतो के राजा दिवोदास के ही कृपापात्र नहीं थे, बल्कि दूसरे जनो मे भी भरद्वाज का मान था। बृहस्पति देवता का भी नाम है। भरद्वाज के पिता यदि बृहस्पति देवता थे, तो इसका अर्थ यही हुआ, कि उनके पिता के नाम का पता नहीं है। पर ऋग्वेद के ऋषियो की अनुक्रमणी को देखने से मालूम होता है, कि इनके पिता बृहस्पति लोकनामा ऋषि के पुत्र और अगिरा के पौत्र थे। अगिरा के एक ओर पुत्र घोर थे। अगिरा की सन्तानो मे तिरश्ची, हिरण्यस्तूप, वसुश्रुत, श्रुतकक्ष भी थे। तिरश्ची के ऋषिश्वा और सुमित्र दो बेटो के ऋषि होने का पता लगता है। लेकिन अगिरा के घोर और लोकनामा दोनो पुत्रो की सन्तानें ही अधिक ख्याति–प्राप्त हुईं। घोर के पुत्र कण्व थे, जिनके वत्स, मेधातिथि, प्रस्कण्व, प्रगाथ जैसे प्रसिद्ध ऋषि पुत्र थे। प्रगाथ के कई पुत्र ऋषि थे। अगिरा के प्रपौत्र भरद्वाज भी -योग्य पुत्रो और सन्तानों के लिए सौभाग्यशाली थे। उनके पुत्र गर्ग, ऋजिश्वा, शिरिन्बिठ ऋषि हुए।

२. वसिष्ठ

इन्होने दूसरे सभी ऋषियो से अधिक सख्या में (१०३) सूक्त रचे हैं। इनके बाद इनके प्रतिद्वन्द्वी भरद्वाज का नम्बर आता है, जिनके ६० सूक्त मिलते हैं। यह माना जा सकता है, कि इन ऋषियो ने जिन्दगी में जितनी ऋचाये रचीं, सभी को उनके वशज इकट्ठा नहीं कर सके। आखिर रचनाकाल से कम से कम दो सौ वर्ष बाद (ई० पू० १,०००) ऋचाओं का सग्रह किया

गया, और सो भी लिपिबद्ध करके नहीं बल्कि केवल श्रुति के रूप मे कण्ठस्थ करके, लिपिबद्ध करने मे और कई शताब्दियाँ बीतीं। लिपिबद्ध होने के बाद भी वेदपाठी अभी तक अपने-अपने वेदों को स्वरसहित कण्ठस्थ करके रखते हैं। आधुनिक युग मे यह डर है, कि वेदपाठियो की सख्या का जिस प्रकार ह्रास होता जा रहा है उससे सौ दो सौ वर्ष बाद शायद उनका मिलना मुश्किल हो जाये।

वसिष्ठ के पिता का नाम मित्रावरुण देवता बतलाया जाता है। इनके सहोदर अगस्त्य मुनि थे। वसिष्ठ के चित्रमह मृलीक दो और पुत्रो का भी नाम और उनकी रची ऋचाये मिलती हैं पर उनके पुत्रो मे प्रधान और शायद ज्येष्ठ भी शक्ति थे। इनके दो पुत्र पराशर गौरवीति भी ऋग्वेद के ऋषि हैं। पराशर को व्यास या कृष्णद्वैपायन से मिलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मणो के पिछले साहित्य—महाभारत, रामायण और सबसे अधिक पुराणो में इन ऋषियों और उनके समकालीन राजाओ की वशावलियों—मे बहुत गड़बड़ी की गयी है।

ऋग्वेद के सातवें मडल के ऋषि वसिष्ठ हैं। एक एक मडल के प्रधान ऋषि और भी हैं। लेकिन उनमे और वसिष्ठ में यह भेद है कि जहाँ दूसरे मडलों की रचना मे उन ऋषियों के पुत्र पौत्रों का भी काफी हाथ है, वहाँ वसिष्ठ सातवे मडल के सभी १०४ सूक्तों के कर्ता हैं। उनके पुत्र शक्ति की रचना ३२वाँ और कुमार ऋषि के १०१ १०२वे सूक्त सदिग्ध रूप से बतलाये जाते हैं। वसिष्ठ के मत्रो की सबसे महत्ता यह है कि इनकी रचना द्वारा तत्कालीन इतिहास और भूगोल पर जितना प्रकाश पडता है, उतना दूसरे किसी भी ऋषि की रचना से नहीं पडता। इनका तकियाकलाम "यूय पात स्वस्तिभि सदा न" (तुम स्वस्ति के साथ सदा हमारी रक्षा करो) है, जिसको उन्होने एक दर्जन से अधिक बार अपने मत्रो मे दोहराया है। आर्यो और उनके ऋषियो की तरह वसिष्ठ के भी सबसे बड़े आराध्य देवता इन्द्र थे। उसके बाद मित्र, सूर्य, अग्नि, विश्वेदेव, वरुण, अश्विद्वय उषा सरस्वती थे। जिस तरह आज शैव लोग मरने पर कैलाशवासी बनने की इच्छा रखते हैं वैष्णव लोग बैकुण्ठ के कुछ कृष्णभक्त गोलोकवासी बनने की इच्छा से भी मरे जाते हैं, उसी तरह उस समय आर्य मरने पर इन्द्रलोक मे जाने की इच्छा रखते थे।

ऋग्वेद के बाद यद्यपि कालक्रम से साम, यजु और अथर्व-वेदो का नम्बर आता है, पर जहाँ तक इतिहास का सम्बन्ध है, उनसे हमे अधिक सहायता नहीं मिलती। उसके बाद प्राचीन ब्राह्मणों का नम्बर आता है। ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद का अपना ब्राह्मण है। ब्राह्मणो का काम मत्रो की व्याख्या करना नहीं है। ब्राह्मण (ब्रह्म-सम्बन्धी) ग्रथ हैं, ब्रह्म से अभिप्राय यज्ञ या मत्र का है। यह यज्ञो की भिन्न-भिन्न क्रियाओं और उनमें वेद-मत्रों के विनियोग की बात बतलाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में आधे दर्जन जगहों पर वसिष्ठ का नाम आया है, एक (७।३।१६) से मालूम होता है, कि एक यज्ञ में विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु वसिष्ठ ब्रह्मा, अयास्य उद्गाता थे। इसी यज्ञ मे सुयवस का पुत्र अजीगर्त एक पुरोहित था। लालची अजीगर्त ने तीन सौ गौवो के लोभ मे अपने पुत्र शुन शेप को खुद तलवार से काट कर बलि देना स्वीकार किया। पुत्र ने ऐसे बाप से पिंड छुडाने के लिए विश्वामित्र को अपना पिता बनाना चाहा और उनकी गोद मे जाकर बैठ गया। अजीगर्त ने विश्वामित्र से कहा—"ऋषि, मेरे पुत्र को मुझे दे दो।"

—"नहीं, देवों ने इसे मुझे दिया है।" उन्होने शुन शेप का नाम बदलकर देवरात वैश्वामित्र रख दिया। अजीगर्त ने पुत्र से प्रार्थना की—

"हम दोनों (माता-पिता) तुझे बुलाते हैं। तू आगिरस-गोत्री अजीगर्त का पुत्र ऋषि है। हे ऋषि, तू अपने बाप-दादों के घर को मत छोड़। हमारे पास आ जा।"

शुनशेप ने कहा—"मैंने तेरे हाथ मे वह चीज (तलवार) देखी है, जो शूद्र भी नहीं लेता। हे आगिरस, तूने तीन सौ गायो को मुझसे बढकर समझा।"

अजीगर्त ने कहा—"तात, मैं अपने किये पर दुःखी हूँ। मैं उसका निवारण करता हूँ। मैं सौ गाये तुझे देता हूँ।"

शुनशेप ने कहा—"जो एक बार पाप कर सकता है, वह दूसरी बार भी कर सकता है। तू शूद्रता से मुक्त नहीं है। जो पाप तूने किया है, वह किसी प्रकार निवारित नहीं हो सकता।"

विश्वामित्र ने बीच मे कहा—"हॉ, निवारित नहीं हो सकता। यह सुयवस का पुत्र जब हाथ मे तलवार लिये मारने को तैयार था, उस समय बडा भयानक लगता था। इसलिए तू अपने को उसका पुत्र मत समझ, मेरा पुत्र होजा।"

ऐतरेय के इस उद्धरण से पता लगता है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, अयास्य, अजीगर्त तथा शुनशेप एक काल मे मौजूद थे। दूसरे वाक्य (७।५।३४) से मालूम होता है, कि एक यज्ञविधि को वसिष्ठ ने सुदास पैजवन को बतलाया था। आठवीं पजिका (८।४।२१) मे एक बडी महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है—"इन्द्र के इसी महाभिषेक से वसिष्ठ ने पैजवन सुदास का महाभिषेक किया और उसने पृथ्वी भर मे विजय पाई और अश्वमेध-यज्ञ किया।" उसके पिता दिवोदास के सम्माननीय पुरोहित भरद्वाज ने क्यो नहीं सुदास का अभिषेक किया ? वसिष्ठ ने क्यो किया ? दिवोदास का एक पुत्र प्रतर्दन भी था, जिसे पीछे हुए काशिराज प्रतर्दन से एक नहीं करना चाहिए। खानदानी पुरोहित को छोडकर दूसरे पुरोहित को स्वीकार करना यही बतलाता है, कि दोनो भाइयो मे पिता के सिहासन के लिए झगडा था। प्रतर्दन शायद बडा लडका था। दिवोदास की गद्दी पर भरद्वाज ने उसे अभिषिक्त किया। चन्द्रगुप्त (गुप्तवशी) की तरह सुदास अपने पिता का योग्यतर अधिकारी था। दोनो भाइयो मे झगडा हुआ। भरद्वाज ने प्रतर्दन का पक्ष लिया, पर सुदास की पीठ पर वसिष्ठ जैसा चतुर और बहुवशवाला पुरुष था। ऐतरेय ब्राह्मण मे साफ बतलाया गया है, इस ऋषि ने "इन्द्र के महाभिषेक से पैजवन सुदास का महाभिषेक किया।" यद्यपि स्वय ऋग्वेद मे प्रतर्दन और वसिष्ठ के झगडे का वर्णन नहीं है, और न यही बतलाया गया है, कि सुदास को गद्दी पाने मे अपने भाई से मुकाबला करना पडा। पर ऐतरेय ब्राह्मण के कथन का वहाँ कोई विरोध नही मिलता बल्कि वसिष्ठ का सुदास का पुरोहित बनकर दाशराज्ञयुद्ध मे सफलता प्राप्त करने के लिए सब कुछ करना, इसकी पुष्टि करता है।

सुदास के पिता दिवोदास ने वसिष्ठ के अनुसार" (७।४।७) सौ आयसी पुरियो का नाश किया था। वसिष्ठ को इसका अभिमान था, कि भरतो के प्रताप को बढाने मे मेरा सबसे बडा हाथ है—"दण्ड से (पिटती) गौओ की तरह पहले भरत लोग (अनाथ) शिशु जैसे तथा परिच्छिन्न थे। वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए, तो तृत्सु बने लडेगे।"" (७।३३।६) भरतो की सफलताओ का वसिष्ठ ने अपने सातवे मण्डल मे कई जगह वर्णन किया है। भरतो ने पुरु लोगो को अभिभूत किया" (७।८।४) सुदास के साथ सघर्ष मे द्रुह्यवो और अणुओ के ६६ हजार आदमी मारे गये" (७।१८।१४)। तृत्सुओ ने जमुना के परे भेद, अज, शिग्रु और यक्षु लोगो को परास्त किया" (७।१८।१९)। ये अनार्य जन मालूम होते है। वसिष्ठ ने अनार्य लोगो को "शिश्नदेव" (लिगको देवता माननेवाले) बतलाया है" (७।२१।५)। वसिष्ठ के एक कथन से मालूम होता है, कि दाशराज्ञयुद्ध सिन्धु के तीर पर हुआ था, जहाँ पर इन्द्र ने सुदास की रक्षा की, अर्थात् सुदास विजयी हुआ" (७।३३।३)।

पौराणिक युग मे वसिष्ठ को वेश्या-पुत्र कहा गया है। देव (जन युगीन) कन्याये सदा कुमारिया रहती हैं उनका प्रणय स्थायी नहीं होता है, इसलिए उन्हे देवगणिका भी कहा जाता है। वसिष्ठ को मैत्रावरुण (मित्र और वरुण की सन्तान) और उर्वशी से उत्पन्न बतलाया गया है" (७।३३।११)। अप्सरा से वसिष्ठ का उत्पन्न होना भी उल्लिखित है" (७।३३।१२)। देवता या देवकन्या से उत्पन्न होने का मतलब यही है कि पीछे के लोगो को वसिष्ठ के माता-पिता का नाम नहीं मालूम था। यातुधान यातुमावान (जादूगर) "(७।१०४।१५, ७।१।१५) का वर्णन वसिष्ठ ने किया है। झूठ के लिए दरोग शब्द फारसी मे आज भी प्रयुक्त होता है, वसिष्ठ ने "द्रोधवाच" "(७।१०४।१४) का प्रयोग किया है। वसिष्ठ और अगस्त्य पीछे के साहित्य मे भाई बतलाये जाते हैं, जिसकी पुष्टि ऋग्वेद के एक मत्र "(७।३३।१०) से होती मालूम होती है। वसिष्ठ के जीवन की सबसे बडी घटना और सफलता दाशराज्ञयुद्ध मे सुदास की विजय अर्थात् सप्तसिन्धु के बिखरे हुए आर्यजनो को एकताबद्ध करना है। "दस राजाओ ने मिलकर सुदास से लडाई की।" " (७।८३।७)। तृत्सुओ के देश मे दाशराज्ञ (युद्ध) मे सुदास के लडने का भी उल्लेख है। (७।८३।७–८)।

३ विश्वामित्र

यद्यपि गाथी के पुत्र कुशिक के पौत्र और इषीरथ के प्रपौत्र, विश्वामित्र की ऋचाओ से अधिक सख्या रचनावाले गोतमपुत्र वामदेव हैं किन्तु विश्वामित्र का महत्त्व वसिष्ठ और भरद्वाज के समान है, इसलिए हम उनको यहाँ ले रहे हैं। यह ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के ऋषि हैं। विश्वामित्र और वसिष्ठ का जो वर्णन हम रामायण म पाते हैं, उसका ऋग्वेद से कोई सम्बन्ध नहीं है, और वह ऐतिहासिक तथ्य नहीं बल्कि पौराणिक कल्पना मात्र है। इन्द्र, वरुण बृहस्पति, पूषा, सविता सोम मित्र आदि देवताओ की इन्होने स्तुति की है और ३३३६ देवो (३।९।९)०३३ करोड नहीं ३३ देवताओ का उल्लेख सबसे पहले इन्होंने ही किया— "त्रिशत त्रींश्च देवान्" "(३।६।६, ३।२४।३०)। अपन साथी यमदग्नि "(१०।१६७।११३) और अपने वश कुशिक (लोगो) "(३।२६।१२) का इन्होने उल्लेख किया है। पुरखिये कुशिक सख्या और प्रभुत्व मे बढेचढे थे, इसीलिए शायद सुदास को अपने अभिषेक करने वाले तथा दाशराज्ञयुद्ध मे परम सहायक वसिष्ठ की ओर से मुँह मोडकर विश्वामित्र की ओर मुँह फेरना पडा। उस मनस्वी कार्यार्थी राजा के लिए एक उपकारक पुरोहित को छोड़कर दूसरे पुरोहित को अपनाना स्वाभाविक था। इस तोताचश्मी को देखकर वसिष्ठ के पुत्र शक्ति ने विरोध किया लेकिन प्राण गँवाने के सिवाय उन्हे कोई लाभ नहीं हुआ। नदियो को थाह मे लाने का दावा वसिष्ठ ने भी किया है "(७।१८।५ "सुदासे अर्णांसि गाधानि अकरोत्"), और विश्वामित्र ने भी। विश्वामित्र ने व्यास और सतलुज को गाधा (थाहवाली) होने के लिए सवाल-जवाब मे जो प्रार्थना की है, वह ऋग्वेद की बहुत सुन्दर ऋचाओ मे से तथा अच्छा काव्य है। नदियो के भी दिल को हिला देने वाली कविता वसिष्ठ मे नहीं विश्वामित्र ने ही की थी। इसके कुछ अश निम्न प्रकार हैं— "(३।३३)।

विश्वामित्र— "विपाश् और शुतुद्री जल-सहित पर्वतो के पास से बन्धनमुक्त घोडियो की तरह अट्टहास करती बछडो के चाटने की इच्छावाली शुभ्र गौ-माताओ की तरह समुद्र की ओर दौड रही हैं।" ।। १।।

"हे दोनो नदियो, इन्द्र द्वारा प्रेरित, स्तुतियो की सुननेवाली तुम रथियो की तरह स्वच्छ समुद्र की ओर जा रही हो। साथ-साथ चलती ऊर्मियो से बढी हुई हे शुभ्रो, दोनो पासपास से चल रही हो।" ।।२।।

मेरे सौम्य वचन को (सुनने के) लिए मुहूर्त भर अपनी दौड से रुक जाओ। कुशिक का सुत विशाल नदियो का आह्वान मैं मन की बात के लिए कर रहा हूँ" ।।५।।

नदिया— "वज्रहस्त इन्द्र ने पर्वत का हनन कर हमारे लिए नदियो की परिधि खोदी। सुपाणि सवितादेव हमे ले जा रहा है। हम उसकी आज्ञा मे विस्तृत होकर जा रही हैं"।।६।।

विश्वा०— "ठहरो बहनो, (उस) कवि की बात सुनो, जो कि दूर से बैल के रथ पर आया है। थोडा नीची होकर सुपारा हो और (रथ के) अक्ष से नीचे के जलवाली नदी बन जाओ"।।६।।

नदिया—"कवि, दूर से अनसृरथ द्वारा आये तेरे वचन को हम सुनती हैं। दूध पिलाने की इच्छा वाली स्त्री, या पुरुष के लिए युवती की तरह हम तेरे लिए निम्न हो जाती हैं"।।१०।।

विश्वा०— "प्यारियो, यदि सग्राम मे गायो के इच्छुक तथा इन्द्र-प्रेरित भरत तुम्हे तर जाये, तो इसके लिए मैं तुम्हे यज्ञ-योग्य मानकर स्तुति करूँगा"।।११।। गोइ-च्छुक भरत लोग (नदी) पार हो गये। विप्र ने नदियो की सुन्दर स्तुति की ।।१२।।

विश्वामित्र ने सुदास को बडा किया, सिन्धु (नदी) को स्तम्भित किया [२९](३।५३।६) और सुदास के पीछे की विजयो मे बडी सहायता की। अपने समकालीन दोनो ऋषियो की तरह इनका भी एक मोटो था, जिसे इनकी अनेक रचनाओ मे[३०] (३।१।२३, ३।७।११, ३।१५।७, ३।२।५, ३।२३।५) दोहराया गया है— "स्यान्न सूनुस्तनयो विजावा अग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे", जिसके अनुसार वह पुत्र-पौत्रो को सतान और सुमति (सुस्तुति) वाले होने की प्रार्थना करते थे।[३१] (३।३०।२२)। उनको विश्वास था कि "विश्वामित्रका यह वचन भरत जन की रक्षा करेगा"[३२] (३।५३।१२)।

तीन सौ गायो के बदले बेचकर मारने के लिए तलवार उठाए अपने पिता अजीगर्तको छोडकर शुनशेप ने किस तरह विश्वामित्र का पुत्र बनना स्वीकार किया, इसका उल्लेख हम पहले कर आए हैं। वामदेव यद्यपि गोतम के पुत्र थे, लेकिन ऐतरेय ब्राह्मण से मालूम होता है, कि विश्वामित्र के सूक्तो का उन्होने प्रसार किया (ऐ० ६।४।१८)। ऐतरेय के अनुसार विश्वामित्र सबका मित्र था (६।४।२०), लेकिन बडे-बडे युद्धो का समर्थक कैसे सबका मित्र हो सकता था ? हॉ, शुनशेप की प्राणरक्षा जिस तरह विश्वामित्र के कारण हुई थी, उससे मालूम होता है, कि नर-बलि को वह मान्य नहीं समझते थे। विश्वामित्र के सौ पुत्रो की बात सदेहास्पद है। हो सकता है, इसमे उनके पुत्रो, पौत्रो और प्रपौत्रो को भी गिन लिया गया हो। पर मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु और ऋत ऋषि उनके पुत्र मालूम होते है। पौत्रो मे मधुच्छन्दा के पुत्र अघमर्षण और जेता तथा ऋत के पुत्र उत्कील भी ऋषि हैं। ऐतरेय ब्राह्मण मे लिखा है—"विश्वामित्र के सौ पुत्र थे। ५० मधुच्छन्दा से बडे और ५० छोटे। (शुनशेप का गोद लिया जाना) बडो को अच्छा नहीं लगा। तब विश्वामित्र ने उनको शाप दिया—'तुम्हारी सन्तान अभक्ष्यभक्षी हो जाए।' इस प्रकार आन्ध्र, पुड्र शबर, पुलिद आदि दस्यु लोग विश्वामित्र की सन्तान हैं। लेकिन मधुच्छन्दा और उसके पचास भाइयो ने कहा—"हमारे पिता जो कुछ कहेगे हम उसी को मानेगे। हम तुझ (शुनशेप) को ज्येष्ठ मानते हैं। हम तेरा अनुसरण करेगे। विश्वामित्र इस उत्तर से प्रसन्न हो गये। उन्होने निम्न मन्त्रो से पुत्रो के लिए स्तुति की—

मेरे पुत्रो तुम पशु और सन्तान से फूलो-फलो।
तुमने मेरा कहा मानकर मुझे पुत्रवान् बनाया।
हे गाधि की सन्तानो, देवरात के सरक्षण मे तुम पुत्रवान् होगे
वह तुमको सत्य के मार्ग पर ले चलेगा।
हे कुशिक सन्तानो, वीर देवरात के अनुचर बनो।
यह तुम्हारा पथ-प्रदर्शक और हमारी विद्या का दायभागी होगा।
विश्वामित्र के सब सच्चे पुत्र और गाथी के पौत्र जो देवरात के साथ हुए
उनको धन यश और कीर्ति की प्राप्ति होगी।" (७।३।१८)

यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मण ने शुनःशेपको देवरात वैश्वामित्र प्रख्यापित करने की कोशिश की है पर ऋग्वेद के ऋषि शुनःशेप आजीगर्त के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

४. वामदेव

गोतम के पुत्र वामदेव शायद वसिष्ठ, विश्वामित्र की अगली पीढ़ी के ऋषि थे पर उनकी प्रतिष्ठा इन तीन महान् ऋषियों से कम नहीं है। विश्वामित्र के सूक्तो का वामदेव ने प्रसार किया, इसे हम अभी बतला आए हैं। अपनी ऋचा मे वामदेव ने "गोतमात्पितु"" (गोतम पिता से ४।४।११) और "मामतेय"" (ममता का पुत्र ४।४।१३) का उल्लेख किया है जिससे वामदेव के पिता का नाम गोतम मामतेय जान पड़ता है। वामदेव ने कहीं नाम और कहीं बिना नाम दिए दिवोदास और उसके पुत्र सुदास की सफलताओ का वर्णन किया है। अतिथिग्व दिवोदास ने सौ पुर जीते" (४।२६।३)। ये सौ पुर (किले) आयसी थे" (४।२७।१)। दिवोदास के लिए सौ अश्मन्मयी पुर इन्द्र ने जीते " (४।३०।२०)। युद्ध मे ३० हजार दास मूर्छित हुए। परुष्णी (भरतो की नदी रावी) पर इन्द्र ने कृपा की " (४।२२।२)। इन स्थलो पर वामदेव ने भरतों और उनके राजा की महिमा गाई है। सहदेव पुत्र कुमार सोमक "(४।१५।७–६), सृजयो का राजा देववात वैदथी ऋजिश्वा, आर्जुनय कुत्स—इन राजाओ की भी वामदेव ने प्रशसा की है। हो सकता है इनमे से कुछ उनके समकालीन और दाता हो। ५० हजार कृष्णो (काले असुरों) के मारे जाने का भी उल्लेख वामदेव ने किया है "(४।१६।१३)। असिक्नी (चनाब) का भी उल्लेख उनकी ऋचा "(४।१७।१५) मे हुआ है। इनके समय आर्यो मे यह मशहूर था, कि प्रातःकाल की देवी उषा जब आकाश मे गमन कर रही थी, तो विपाश् (व्यास) नदी के तीर उसका शकट गिर गया "(४।३०।११)। दासो में कौलितर शम्बर का उल्लेख इन्होने किया है "(४।३०।१४–१५)। तुर्वश और यदु दोनो प्रभावशाली आर्यजनो का भी उल्लेख है। "कृषतु लागल" (४।५७।४) "सीता सुफला "(४।५७।६–७), "फाल" " (४।५७।८) हल के जोतने हल की हराइयो के सुफल होने और हलके फालो का जिक करके वामदेव ने आर्यो मे कृषि के प्रचार का उल्लेख किया है। मुस्कुराती हुई सुन्दर स्त्रियॉ "(योषा कल्याण्य स्मयमाना ४।५८।८) मे उन्होने सुन्दरियों का उल्लेख किया है। वामदेव और नोधा के पिता गोतम और पितामह रहूगण थे। वामदेव के पुत्रो मे मूर्धन्वा, वृहद्दिव और वृहदुक्थ ऋषियो का नाम मिलता है।

२, अन्य ऋषि

५. गृत्समद

यह शौनक के पुत्र थे। शोनक के तौर पर उल्लेख इनका "(६।८६।४६–४८) हुआ है। शायद यह अत्रि के वशज थे। "(२–८–५) दिवोदास और शम्बर के सघर्ष का इन्होने भी

उल्लेख किया है। दिवोदास ने ६६ पुरो (किलो) को जीता [४९](२ |१६ |६), शम्बर की सौ पुरियाँ ध्वस्त हुई [५०](२ |१४ |६–७), शत्रु कृष्णयोनि (काली जातियॉ, दास) थे [५१](२ |२० |७), शम्बर के अतिरिक्त स्वस्न, शुष्ण, अशुष, व्यस, पिप्रु, नमुचि [५२](२ |१४ |५), चुमुरि, धुनि [५३](२ |१५ |६), कुयव[५४] (५४ |२ |११ |६) जैसे दास-राजाओ का भी इन्होने उल्लेख किया है। "पहाड के वासी शम्बर को चालीसवे वर्ष मे पकडा, [५५](२ |१२ |११) यह उल्लेख वामदेव ने किया है, अर्थात् चालीस वर्ष तक पराक्रमी शम्बर आर्यो के हाथ नहीं आया था। भेड के ऊनी वस्त्र मे छाने हुए सोम कलशो मे रक्खे हैं[५६] ("सोमो मेष्य पुनान कलशेषु सीदति" ६ |८६ |४७) के कथन से मालूम होता है, कि सोम को पीस और घोलकर ऊनी कपडे के छन्ने मे छानकर कलशे मे रक्खा जाता था।

६ कक्षीवान्

यह दीर्घत्तमा औचथ्य के पुत्र थे। पीछे की परम्परा बतलाती है, कि दीर्घतमा और गोतम एक ही व्यक्ति का नाम है। कक्षीवान् ने गोतम का उल्लेख [५७](१ |११६ |६) किया है, पर उससे यह नहीं मालूम होता, कि गोतम का इनसे पैतृक सम्बन्ध था। भरद्वाज का इन्होने दो बार और अत्रि का दो बार उल्लेख किया, पर उससे इन्हे भरद्वाज या अत्रि के वश का नहीं कहा जा सकता। दिवोदास का इन्होने भी उल्लेख [५८](१ |११६ |१५, १६, १८ मे) किया है। सौ पतवारोवाली नौका ("नौ शतारित्रा) [५९](१ |११६ |५) का इनका उल्लेख बतलाता है, कि समुद्रगामी पोत उस वक्त सप्तसिन्धु मे भी देखे जा सकते थे। विश्पला (१ |११७ |७, ११) घोषा [६०](१ |११७ |७,११) जैसी मेधाविनी आर्य महिलाओ का भी उल्लेख इन्होने किया है। सिन्धुतटवासी राजा भाव्य ने पुरोहित को बहुत-सा दान दिया था। [६१] (१ |१२६ |१–४, ७)। इसमे शायद कक्षीवान् को भी कुछ प्राप्त हुआ। गन्धार की भेडे ("गान्धारी अविका" (१ |१२६ |७) के उल्लेख से मालूम होता है, कि वर्तमान पख्तूनिस्तान की भेडे अपने कोमल ऊन के लिए उस समय भी प्रसिद्ध हो चुकी थीं। गोतम और दीर्घतमा यदि एक ही होते, तो गोतम के पुत्र वामदेव और नोधा के साथ इनका भी नाम आना चाहिए था।

७ अगस्त्य

मित्र-वरुण के पुत्र तथा वसिष्ठ के भाई अगस्त्य ऋग्वेद के २६ सूक्तो के रचयिता हैं। इनकी रचनाये प्रथम मण्डल के १६५-१६१ सूक्तो मे आती हैं। अपनी ऋचाओ मे वसिष्ठ का इन्होने उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि अपनी पत्नी लोपामुद्रा [६२](१ |१७६ |४) का नाम दिया है। प्रसिद्ध आर्यमहिला विश्पला [६३](१ |१८२ |१) का इन्होने जिक्र किया है और तुर्वश-यदु आर्यजनो का भी ६४ (१ |१७ |६), पर उनके सघर्षों के बारे मे कुछ नहीं कहा है। तुर्वश-यदु आदि के साथ सुदास का जो दाशराज्ञयुद्ध हुआ था, उसके सारथी यदि इनके सगे भाई वसिष्ठ थे, तो उसकी कुछ प्रतिध्वनि अगस्त्य की रचनाओ मे आनी चाहिए थी, पर उसका पता नहीं लगता। करम्भ (सत्तू) तथा लाभकारी तृण, शर, कुशर, दर्भ ओर मूँज का इन्होने जिक्र किया है[६५] (१ |१८७ |१०, १ |१६-१ |३)। अगस्त्य के नाम पर जो कथाये पुराणो मे मिलती हैं, उनका ऋचाओ में कहीं भी आभास नहीं मिलता वह पर्वतो के गुरु थे, अन्तिम जीवन मे दक्षिणापथ को चले गये, इसका भी कहीं पता नहीं है। उलटे यह 'पचक्षिति' (आर्यों के पॉच जनो) से चिपके रहनेवाले मालूम होते है। [६६](१ |१७६ |३)।

८ दीर्घतमा

उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा २५ सूक्तो के कर्ता हैं। औचथ्य[६७] (१ |१५८ |२,४) और मामतेय दीर्घतमा[६८] (१ |१५८ |१) के उल्लेख से मालूम होता है, कि इनके माता-पिता का नाम उचथ्य और

ममता था। दासो का उल्लेख इन्होने भी किया है[66] (१।१५८।५)। वीरो का उल्लेख करना[70] (१।१४०।१२) बतलाता है, कि इन्हे भी युद्ध मे दिलचस्पी थी। घोडे के पक्व सुगधित मास[71] ("वाजिन पक्व सुरभि मासम्" १।१६२।१२) से पता लगता है, कि घोडे का मास खाया जाता था। यज्ञ मे मारे गये घोडे के बारे मे ये कहते हैं "न म्रियते वाजी"[72] (घोडा नहीं मरता १।१६२१)।

९ गोतम

रहूगण के पुत्र गोतम बीसेक सूक्तो (प्रथम मण्डल ७४६३)[73] (१७८।५।७४)[74] (१।१८०।१६)[75] (१।८३।४।५)[76] (१।८४।१, १४)[77] (१।६१।१२)[78], (१।६३।४) के कर्ता हैं।

१० मेधातिथि

कण्व के पुत्र मेधातिथि २० सूक्तो के कर्ता हैं। अपने खानदान वालो को "कण्व लोग" (कण्वास) के तौर पर इन्होने याद किया है[79] (१।१४।२,५)। आर्जुनेय कुत्स का आभार इनके ऊपर था[80] (८।३।१६)। इनको मेध्यातिथि भी कहा जाता है[81] (८।१।८,११)। मेधातिथि के पिता कण्व, पितामह घोर और प्रपितामह अगिरा थे।

११ श्यावाश्व

१५ सूक्तो के कर्ता अत्रि के पुत्र (या सन्तान) श्यावाश्व भी प्रसिद्ध ऋषि हैं। इन्होने सुन्दर दान देने वाले अर्हत्[82] (५।५२।५) शब्द का प्रयोग किया है। उस समय अर्हत् शब्द का मुक्त-पुरुष अर्थ नहीं लिया जाता था, जैसा कि पीछे बौद्धो और जैनो मे हुआ। सप्तसिन्धु के भूगोल के जानने मे इनकी ऋचाएँ बडी काम की हैं। इन्होने सप्तसिन्धु के पूर्वी छोर पर बहती यमुना[83] (५।५२।१७) का उल्लेख किया है। उसके सबसे पश्चिम मे बहने वाली कुभा (काबुल), क्रमु (कुर्रम), सिन्धु (सिन्ध) और सरयू (सिन्ध के पश्चिम की कोई नदी) का भी जिक्र किया है। एक जगह सुदास का भी नाम लिया है[84] (५।५३।२)। अत्रि के वशजो मे ये सबसे बडे ऋषि थे।

१२ कुत्स

१५ सूक्तो के कर्ता यह अगिरा के पुत्र (या सन्तान) थे। इन्होने अपनी ऋचाओ मे कुत्स का उल्लेख कई जगहो पर किया है[85] (१।१०४।२, १।१०६।६)। अर्हत् (१।१६५।१) का, दास-राजाओ मे शुष्ण, पिप्रु, वृत्र और शम्बर का भी उल्लेख किया है[86] (१।१०३।८)। कहा है, कुयव असुर की दो स्त्रियाँ थीं[87] (१।१०४।३)।

१३ मधुच्छन्दा

विश्वामित्र के पुत्र तथा अपने पिता के भक्त मधुच्छन्दा दस सूक्तो के कर्ता हैं। मुष्टिहत्या[88] (१।८।२) का उल्लेख इन्होने किया है और स्वादिष्ट और मदिष्ट सोम का भी[89] (६।१।१)। इनके पुत्रों मे जेता और अघमर्षण दो ऋषि हुए है, जो एक-एक सूक्तो के रचयिता हैं।

१४ प्रस्कण्व

कण्व के पुत्र इस ऋषि ने दस सूक्त रचे हैं। अपनी ऋचाओ मे इन्होने कण्व का उल्लेख आधे दर्जन से अधिक स्थलो मे किया है। अत्रि, अगिरा जैसे ऋषियो तथा तुर्वश पक्थ जनो का उल्लेख किया है। इनके उल्लिखित दशव्रज और गोशर्य सम्भवत सप्तसिन्धु के पश्चिमोत्तरी भाग मे कोई स्थान थे। "सिन्धुना तीर्थे"[90] (सिन्धुओं के घाट पर १।४६।८) के कहने से हम सिन्धु नद का नाम नहीं ले सकते, क्योकि उस समय सिन्धु शब्द नदी का भी पर्याय था। प्रस्कण्व घोडे भेड, आदमी, नारी और गाय की मगल कामना करते हैं—"श न करत्यर्वते मेषामेष्ये नृभ्यो नारिभ्यो गवे"[91] (१।४७।६)। सुदास और तुर्वशजन का जिक्र इन्होंने किया है।

तुर्वशो और यदुओ के कण्व और प्रस्कण्व पुरोहित थे, जिनका खूनी सघर्ष सुदास के साथ हुआ था। मुमकिन है पिता-पुत्रो ने अपने यजमानो की विजय के लिए इन्द्र से कामना की हो, पर विजय उनके शत्रु सुदास की हुई, इसलिए उन ऋचाओ के सग्रह करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी।

दस और उसके ऊपर सूक्तो के कर्ता ऋषियो के बारे मे हमने यहाँ कहा। ऋषियो की सख्या साढेतीन सौ से ऊपर है, यह हम बतला आये हैं। अन्य ऋषियो मे शुन शेप अजीगर्त-पुत्र, पराशर शक्ति-पुत्र और अत्रि नौ-नौ सूक्तो के रचयिता हैं। वसिष्ठ के पोते पराशर सप्तसिन्धु के ऋषि थे, उन्हे कुरु-पचाल काल मे नहीं लाया जा सकता मेधातिथि के पिता तथा घोर के पुत्र काण्व, एव गरीचि के पुत्र कश्यप आठ-आठ सूक्तो के रचयिता हैं। सोभरि कण्व, प्रगाथ काण्व और जमदग्नि ने पॉच-पॉच सूक्त रचे हैं। ऋषियो मे एक अपाला आर्यनारी भी है, जिसका एक सूक्त ऋग्वेद (८।८०) मे मिलता है। प्रार्थना करने पर देवताओ ने इसके चर्मरोग को हटाकर इसे सूरज जैसी चमडे वाली बना दिया। आर्यनारियो मे पतियो से द्वेष करने वाली भी थीं, इसका उल्लेख अपाला ने किया है।[१२] (८।८०।४)। बुद्ध के उल्लेख किए दस ऋषियो मे विश्वामित्र-पुत्र अष्टक का सिर्फ एक सूक्त (१०।१०४) मिलता है, जिसमे सप्तसिन्धु की सात नदियो, नौ शाखा नदियो और नब्बे नालो का उल्लेख किया गया है—"सप्तापो नवति स्रोत्या नव च स्रवन्ती"[१३] (१०।१०४।८)। कई ऋषियो के पूर्वज वरुण-पुत्र भृगु, इषीरथ-पुत्र कुशिक के एक-एक सूक्त मिलते हैं और कण्व-वशज-वत्स का भी एक सूक्त है। सप्तसिन्धु से १८-१६ शताब्दियो बाद वत्न की वास्तविक स्थिति का कितना अज्ञान हो गया था, इसका पता हमे "हर्षचरत" मे वर्णित वत्स के जन्म आदि के बारे मे वाण के कथन से मालूम होता है।

अध्याय ६

दस्यु

१ सिधु-जाति (पणि)

सिन्धु-उपत्यका मे प्रवेश करने के समय जिस जाति से घुमन्तू आर्य घोडसवारो का मुकाबला हुआ था, वह वस्तुत सिन्धु-उपत्यकाकी बहुत सस्कृत जाति थी, जिसके नगरो के अवशेष मोहनजोदडो, हडप्पा मे तथा जिसकी सस्कृति के चिह्न दक्षिण मे गुजरात और पूर्व मे यमुना-उपत्यका तक मिले हैं। यदि वह पूर्व मे और दूर तक मिले, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर, ऋग्वेदिक ऋषि अपने जिन भयकर प्रतिद्वन्द्वियो का उल्लेख करते है, वे मैदान के सिन्धु-सस्कृतिवाले---द्रविड---नहीं थे, बल्कि वे पहाडो मे रहते थे। उनके किले (पुर) पत्थरो के बने (अश्मन्मय) होते थे। इन किलो के तोडने मे आर्यों को लोहे के चने चबाने पडे। सिन्धु-जाति के साथ आर्यों के सघर्ष का समय ई० पू० १,५०० और पत्थरो के किलो को तोडने का समय अर्थात् ऋग्वेद के प्राचीनतम ऋषियो का काल, उससे तीन सौ वर्ष बाद है, जबकि मण्डूक-प्लुति (मेढककुदान) करके नहीं, बल्कि सर्प-गतिसे क्रमश बढते हुए आर्य सारे सप्तसिन्धु (जमुना से सिन्धु पार की भूमि) तक फैल गये। मोहनजोदडो और हडप्पा जैसे ताम्र-युगीन भव्य नगरो के विजेता होने पर भी आर्य घुमन्तू, उनमे बसने के लिए तैयार नहीं हुए। ये गौ, अश्व चराने वाले लोग घरो के झुण्डो या ग्रामो मे रहते थे। उनके ग्राम स्थायी नहीं थे। जिन लोगो की जीविका गायो-घोडो, अज-अवि (भेड-बकरियो) के पालन पर निर्भर हो, तथा जिनको धाना और करम्भ (सत्तू) के लिए थोडे-से जौ की जरूरत हो, वह एक जगह सालभर ठहरने के लिए कैसे तैयार हो सकते थे ? ये भी मध्य-एसिया से शक, हूण, अवार और तुर्क घुमन्तुओ की तरह घोडे के बालो के तम्बुओ मे ही अपना गुजर-बसर करते। लेकिन उसमे सबसे बडी बाधा भारत की वर्षा थी, जिसके लिए घास-फूस की झोपडियॉ अधिक अनुकूल और सस्ती थीं।

सिन्धु-जाति के लोगो की मुठभेड आर्यों के साथ पहले हुई। यह निश्चय है, कि उन लोगो ने आसानी से हथियार नहीं रखा होगा। पर, ऋग्वेद के काल मे वे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी नहीं थे। आर्य सिन्धु-जाति और अपने पहाडी दोनो प्रतिद्वन्द्वियो को कृष्ण (काला) या कृष्णयोनि और अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियो को दास या दस्यु कहते थे। एक थोडा-सा भेद जरूर मिलता है। प्रतिद्वन्द्वियो मे पणि प्रतिद्वन्द्वी नहीं, बल्कि दुधारू गाये थे, जो अपने धन के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उनके पास भी बहुत गाये थीं। कभी-कभी उनसे झडप भी होती थी, लेकिन वह ऐसी नहीं होती, जिसके लिए आर्य अधिक चिन्तित होते। सिन्धु-जाति के प्रतिनिधि यही पणि थे।

पणि---- पणि से ही पणन (बेचना), पण्य (विक्रेय वस्तु), आपण (बाजार) और वणिक (बनिया) शब्दो का सम्बन्ध है। यह नाम शासन से वचित पर श्रेष्ठतर सस्कृति के धनी सिन्धु जाति के लिए अधिक उपयुक्त था। राज्य से वचित होने के बाद दासता से बचे लोग कृषि ओर वाणिज्य से ही अपनी जीविका कमा सकते थे, जिनमे वाणिज्य अधिक लाभदायक था। ऋग्वेद मे पणियो का उल्लेख बहुत स्थानो मे है। इनका जिक्र करने वालो मे भरद्वाज वसिष्ठ, दीर्घतमा औचथ्य, गोतम, राहूगण, गृत्समद, हिरण्यस्तूप, असितदेवल जैसे प्रसिद्ध ऋषि हैं।-सबसे वृद्ध

भरद्वाज का कहना है, कि अग्नि पणियो के धन को हरण करता है (६।१३।३)। कुत्स का पणियो से झगडा हुआ था, जिसके बारे मे भरद्वाज कहते हैं (६।२०।४) इन्द्र, तुम्हारे कृपापात्र कवि (कुत्स) से सैकडो पणि भाग गये। आर्य ऋषि केवल सीनाजोरी से ही पणियों का धन हरण नहीं करते थे, बल्कि उनको प्रभावित करके भी काम निकालना चाहते थे। भरद्वाज ने ही कहा है (६।५३।३) हे पूषा, न देने की इच्छा करने वाले को दान करने के लिए प्रेरित करो, पणि के मन को मृदु करो। फिर कहते हैं (६।५३।५) पणियो के हृदय को फाड दो, हमारे बस मे कर दो, आरा से पणि के हृदय को छेद दो। भरद्वाज के समकालीन ऋषि वसिष्ठ भी पणियो के साथ साम-दाम दोनो नीति के पक्षपाती थे। वह कहते हैं (७।६।२) सुयज्ञ अग्नि ने पणियो का दरवाजा खोला। पणि श्रद्धाहीन अयज्ञ बकवासी हिसावादी हैं। उन दस्युओं को अग्नि दूर करता है (७।६।३)। इसी काल के ऋषि उचथ्य-पुत्र दीर्घतमा का कहना था (१।१५१।६) हे मित्रावरुण, सिन्धुओ ने तुम्हारे देवत्व को नहीं पाया और न पणियों ने। पीछे की परम्परा के अनुसार दीर्घतमा ही अन्धे-से आँखवाले होने के बाद गोतम के नाम से प्रसिद्ध हुए, परन्तु यह ऋग्वेद के प्रतिकूल है। दीर्घतमा उचथ्य के पुत्र थे और गोतम राहूगण के। इन दोनो के सूक्त भी अगल-अलग हैं। गोतम की भी दृष्टि पणियो के गायो के ऊपर थी (१।६३।४) हे अग्नि—सोम, तुम दोनो ने पराक्रम से पणि से गायें छीनीं। अपने शत्रुओ की गायो या धन का अपहरण करना, मुषना (चुराना) आर्यो और उनके देवताओ के लिए कोई बुरी बात नहीं थी।

यही नहीं, ऋषि गृत्समद (२।२४।६) के कहने के अनुसार अत्यन्त गुह्य (गुहा)—स्थानो मे निहित पणियो की निधि को भी आर्य ज्ञानियो ने प्राप्त किया था। पणि धनी होने के साथ अदित्सु (देने के अनिच्छुक) हो, यह कोई नई बात नहीं थी। बनियो के स्वभाव के अनुसार वह कुछ अधिक कजूस होते थे, जो अतिथि-सेवी अर्ध-घुमन्तू आर्यों की प्रकृति के विरुद्ध बात थी। हिरण्यस्तूप (१।३३।३) इन्द्र को पणियो की मनोवृत्ति न धारण करने की प्रार्थना करते हैं— हे इन्द्र, बहुत सा धन देते पणि मत होना, हमसे अधिक लाभ नहीं चाहना। पणियो के लिए भी "बनिया अपने बाप का नहीं होता" वाली कहावत थी। कक्षीवान् (१।१२४।१०) चाहते हैं, कि पणि बिना जागे ही सोये रहे। पणियो के धन और गाय की अभिलाषा—हरेक आर्य करता था, इसलिए उनका सोये रहना अपहारको के लिए अनुकूल था। सवरण (५।३४।७) के अनुसार इन्द्र पणियो से अन्न मुषने (चुराने) के लिए जाते हैं और यजमानो मे बाँटते हैं।

ऋजिश्वा (६।५१।१४) के कहने के मुताबिक भोजन-सम्पन्न पणिको सोम नष्ट करे क्योकि वह वृक (भेडिया) है। असित देवल (९।२२।७) सोम प्रार्थना करते हैं, कि तुम पणियो से वसु (धन) ओर गायो को ले लो। दिवोदास-पुत्र परुक्षेप के सुपुत्र अनानत सोम से प्रार्थना करते हैं (९।१११।२) तुमने पणियो के धन को हथियाया।

बन्धु किसी राजा से कहते हैं (१०।६०।६) राजन् दो लाल घोडो को रथ मे जोडो और दान न देने वाले सारे पणियो पर आक्रमण करो। शयु (६।४५।३१) के समय पणियो का सर्दार बृबु गगा के विस्तृत कछार की तरह ऊँचे स्थान पर रहता था। बृबु जानता था, कि पणियो पर गजब ढाने की प्रेरणा यही ऋषि देते हैं, इसलिए उसने बृहस्पति-पुत्र शयु के साथ ऐसी उदारता दिखलाई कि वह मगन हो बृबु की प्रशसा करने लगे (७।४५।३१–३३)। बृबु जिस भूमि मे रहता था, वह गगा की कछार की तरह ही विस्तृत नहीं थी, बल्कि उसका हृदय भी उतना ही विशाल था। उसने वायु के वेग से धावित होते हजार गायो का भारी दान तुरन्त

किया। शायद शयु ही उसकी उदारता से लाभान्वित नहीं थे, बल्कि अनेक कारु (कवि, ऋषि) हजारो गाये देने वाले, हजारो प्रशसा के पात्र वृबु का यशोगान करते थे।

पणियो के साथ आर्यों के सम्बन्ध के बारे मे ऋग्वेद के दसवें मण्डल मे एक पूरा सूक्त" (१०।१०८) है, जिसमे पणि और सरमा का सवाद दिया हुआ है। सरमा देवताओ की कुतिया थी किन्तु यहाँ वह आर्यो की हिसापूर्ण लुब्धक मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। इन ऋचाओ के रचयिता (ऋषि) पणिगण और सरमा को बतलाया गया है, जिसका मतलब यही है, कि असली रचयिता का नाम अज्ञात है। यह मनोरञ्जक वार्तालाप इस प्रकार है—

पणिगण— सरमा, क्या इच्छा करके तुम आई ? रास्ता बहुत दूर का है, जिस पर से नजर पीछे नहीं फेकी जा सकती। हमारे पास क्या है ? कैसे तुमने रास्ते की नदियो के जल को पार किया ।।१।।

सरमा— हे पणियो, मैं इन्द्र की दूती होकर तुम्हारे निधियो की चाह मे डोलती हूँ। तुमने बहुत सग्रह किया, इसके लिए आई। जल ने मुझे बचाया मैं नदियो के जल को पार करती हुई आई ।।२।।

पणि— सरमा, कैसा इन्द्र है, जिसकी दूती होकर तुम दूर से आयी ? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेगे। वह गायो को लेकर हमारा गोपति बने ।।३।।

सरमा— मैं नहीं जानती (कौन हैं) जो उसे हरा सकते हैं जिसकी कि दूती बनकर मैं दूर से आयी हूँ। गहरी नदियाँ भी उसको नहीं रोक सकतीं। हे पणियो उस इन्द्र द्वारा निहत होकर तुम सो जाओगे ।।४।।

पणि— हे सुभगे सरमा, आकाश के अन्तिम भाग से जिनकी इच्छा करती आई हो, उन गायो को बिना युद्ध के कौन छीन सकता है ? हमारे आयुध तीक्ष्ण हैं ।।५।।

सरमा— पणियो तुम्हारे वचन सैनिको के से नहीं हैं, तुम्हारे शरीर पापी हैं। आने का मार्ग अप्रचलित है। कहीं वृहस्पति तुम्हे सकटापन्न न कर द ।।६।।

पणि— सरमा, हमारी निधि पर्वतो से सुरक्षित, घोडो, अश्वा, गायो और वसुओ (धनो) से पूर्ण है। सुरक्षक पणि उसकी रक्षा करते हैं। हमारे स्थान में तुम व्यर्थ ही आई ।।७।।

सरमा— यहाँ सोम म मतवाले अयास, आगिरस, नवगु जेसे ऋषि आयगे। वह इन गायो को छीन ले जायेंगे। फिर पणियो, तुम्हारा यह वचन बकना भर है ।।८।।

पणिगण— हे सरमे, देवताओ ने डरकर तुम्हे यहाँ भेजा। हम तुम्हे अपनी बहिन (स्वसा) बनाते हैं, तुम मत जाओ। हे सुन्दरि, हम तुम्हे गाये देगे ।।९।।

सरमा— मैं न भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व (भगिनीपन)। इन्द्र और घोर-अगिरावशी जानते हैं, जिन्होने गाय की इच्छा से मुझे सुरक्षित भेजा, मैं आई। पणियो, यहाँ से दूर भाग जाओ।।१०।।

पणियो यहाँ से, बहुत दूर भाग जाओ। गाये बाधा से कष्ट पा रही हैं जिन निगूढ गायो को वृहस्पति, सोम, सोम पीसने वाले पत्थर ओर विप्र ऋषि प्राप्त करे।

पणि बेचारो की उस समय क्या स्थिति थी, यह इस सवाद से स्पष्ट मालूम होता है। यह ठीक उसी दृश्य को हमारे सामने उपस्थित करता है, जो १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक मध्य-एसिया के ग्राम-नगर निवासियो की उत्तरी घुमन्तुओ के सामने थी, जो कि लूट के धन को धर्मार्जित धन समझते थे।

२ शम्बरीय पहाडी

ऋग्वेदिक आर्यों के असली शत्रु शम्बर और उसके पहाडी लोग थे। शम्बर दिवोदास का प्रतिद्वन्द्वी था। उससे पहले ही उसके पहाडी लोगो ने आर्यों के बढाव को रोकने के लिए सघर्ष छेडा था। इन पहाडियो को आर्य दास और दस्यु नाम से पुकारते थे। पणियो के लिए भी यह नाम इस्तेमाल होता था, जो कि सिन्धु जाति के थे। ऋग्वेद के ऋषियो का उद्देश्य व्यवस्थित इतिहास लिखने का नहीं था, वे कभी-कभी ही इन बातो का जिक्र करते हैं। यह आशा नहीं रखनी चाहिए, कि वहॉ हमे सिन्धु-जाति और पर्वतीय जाति के स्पष्ट परिचायक वाक्य मिलेगे। तो भी उस समय की स्थिति देखने से बाते स्पष्ट हो जाती हैं।

पणि राजनीतिक सघर्ष छोड चुके सिन्धु-जाति के ही लोग थे। अब तलवार पहाडियो ने उठायी थी। शम्बर के पास सौ अजेय पर्वतीय दुर्ग थे, जिनको दिवोदास ने नष्ट किया। दिवोदास का जन पुरुओ की शाखा भरत था, जिसे त्रित्सु भी कहते थे। परुष्णी (रावी) इनकी पश्चिमी सीमा थी, जिसके किनारे तक पहुँचकर सुदास के समय एक बार पक्थो (पठानो) और दूसरे पश्चिमी आर्यजनो ने त्रित्सुओ की हालत बुरी कर दी थी। पूर्व मे त्रित्सुओ की सीमा पर शुतुद्रि (सतलुज) और विपाश् (व्यास) नदियॉ थीं। पश्चिम मे पख्तो, भलानसो के पास पश्चिमी पहाड जरूर थे, लेकिन भरतो के पास मे सिर्फ कॉगडा ही का पहाड था। इसलिए जिस पहाडी जाति ने आर्यों को लोहे के चने चबवाये, वह कॉगडा के पहाडो की ही होगी। लेकिन, वहॉ के आज के खश या हिन्दी-आर्य निवासियो को हम तीन हजार वर्ष पहले ताम्र-युग की जाति नहीं कह सकते। तब यहॉ कौन जाति रही होगी ? क्या सिन्धु-जाति के ही लोग यहॉ भी रहते थे ? इन पहाडियो के लिए भी कृष्ण और कृष्णयोनि (काला) शब्द यही बतलाता है कि शायद वह भी मोहनजोदडो-हडप्पा के निवासियो के भाई-बन्द थे। लेकिन यह भिन्न जाति के थे, इसे समझना आसान हो जाता है, यदि हम ताम्र-युग के हिमालय के किरातो पर विचार करते हैं।

३. मोन्-ख्मेर (किरात)

किसी समय सारे हिमालय मे किरात लोग बसते थे। पश्चिम मे चम्बा से लेकर पूर्व मे आसाम के नागा लोगो की भूमि तक और आगे बर्मा-थाई होते हिन्द-चीन तक इस जाति का पता आज भी लगता है। आजकल के विद्वान् सस्कृत के किरातो को मोन्-ख्मेर के नाम से पुकारते हैं। किर या किरात जाति का उल्लेख ऋग्वेद मे नहीं मिलता, पर इन पहाडो मे उस समय केवल यही जाति निवास करती थी। आज इस जाति के अवशेष या तो तिब्बत की सीमा के पास रह गये हैं या तराई के कितने ही स्थानो मे। पश्चिम से जितना ही पूर्व चले, उतनी ही इनकी सख्या बढती जाती है, और पूर्वी नेपाल को तो आज भी किराती देश कहते हैं। किरात लोग चीनी, मगोल, तिब्बती जाति से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन यह सम्बन्ध बहुत दूर का है, वैसे ही जैसा हिन्दी आर्यों का पश्चिमी यूरोपियो के साथ। किरात या मोन्-ख्मेर के मुखो पर मगोलायित मुख-मुद्रा होती है, इसलिए तिब्बती सीमा पर बच रहे मोन्-ख्मेरो को कितने ही विद्वान् भी तिब्बती समझ बैठते हैं, साधारण लोगो की तो बात ही क्या ?

कितने ही मोन्-ख्मेर हैं, जो अपनी भाषा छोड बैठे हैं, कुछ ने अपनी मुख-मुद्रा को भी अल्पसख्यक होने के कारण खो दिया, तो इसमे आश्चर्य की बात नहीं। कितने ही अब भी अपनी भाषा बोलते हैं। ये लोग हैं, चम्बा के लाहुली, लाहुल के निम्न भागो के निवासी, कुल्लू के मलाणा गॉव के वासी, ऊपरी सतलुज के किन्नर या कनौर, माणा-नीती के मारछा, अस्कोट (अल्मोडा) के राजी या राजकिरात, पश्चिमी नेपाल के मगर, गुरग, मध्य नेपाल के तमग, नेपाल

उपत्यका के नेवार, पूर्वी नेपाल की तीनो किराती जातियाँ—लिम्बू, याखा, राई—सिकिम के लेपचा, आसाम के नागा आदि। गणना और महाभूतो के कितने ही नाम इनकी बोलियो म तिब्बती से मिलते-जुलते हैं, लेकिन कितने ही शब्द इनके स्वतन्त्र हैं। पानी के पर्याय ती शब्द को ले ले। यह चम्बा से नागा पर्वतो तक एक-सा चला गया है। नेवार लोग यद्यपि पानी के लिए इस शब्द को इस्तेमाल नहीं करते, लेकिन मास के पानी के लिए वह ला-ती (मास-जल) कहते हैं, जिससे पता लगता है, कि तो का प्रयोग उनके यहाँ भी रहा है। बदरीनाथ से केलास की ओर जाते वक्त एक निर्जन पडाव का नाम ती-पानी है। यहाँ हिन्दी और किरात दोनो भाषाओ के एक ही अर्थ के वाचक दो शब्दो को रख दिया गया है। ये जातियाँ ऐसी हैं, जो अब भी किरात-भाषा बोलती हैं, और कितने ही जगहो पर इन्हे किरात कहा भी जाता है। लेकिन कुछ किरात ऐसे भी हैं, जो अपनी भाषा छोडकर पहाडी या तिब्बती भाषा बोलने लगे। तिब्बती भाषा-भाषियों के बारे में कहना मुश्किल है, क्योकि दोनो की मुख-मुद्रा मे कोई अन्तर नहीं है। तो भी यह हमे मालूम है कि तिब्बती लोग ईसा की सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध से पश्चिमी मानसरोवर और नेपाल के हिमालयो की ओर बढे। वह यहाँ के पुराने लोगो को मोन्पा ओर उनके देश को मोन्-युल (मोनदेश) कहते थे। काठमाण्डू से सीधे उत्तर की तिब्बती सीमान्त के भीतर के इलाके को आज भी मोन्-युल कहा जाता है।

यह मोन् शब्द बर्मा के पुराने बाशिन्दो के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। इन्हे मोन् और कम्बोडिया (कम्बुज) के ख्मेर को लेकर विद्वानो ने मोन्-ख्मेर नाम को गढा हे। जान पडता हे, स्पिती के लोग भी पहले मोन् (किरात) थे। गगोत्री से ऊपर नेलग के रहने वाले भी मोन् हैं, यद्यपि वह आज मोन् (किरात) भाषा नहीं बोलते। नीती-माणा के तोलछा आज भी पहाडी भाषा बोलते हैं उसी तरह अल्मोडा के मिलमवाले भी। पर इनके चेहरे-मोहरे किरातो से हें। ये किरातो के ही अवशेष हैं। नेपाल मे जो मोन्पा अधिक दक्षिण मे खस भाषा बोलने वाली बहुसख्यक लोगो मे बसे हैं, वे धीरे-धीरे अपनी भाषा को भूल गये।

किरात या मोन् लोगो की एक शाखा हिमालय के नीचे तराई मे बसती है, जिसे थारू या भोग्ता कहते हैं। थारू लोग हरद्वार या जमुना से पश्चिम नहीं पाये जाते, पर उनके ताम्र-युगीन पूर्वज जम्मू तक रहे हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। आज थारू नैनीताल की तराई से दरभगा की उत्तरवाली तराई तक मिलते हैं, जिनसे पूर्व के मेची, कोच आदि भी मोन् हैं। थारू लोग अपने दक्षिण वाले सबसे नजदीकी पडोसियो की भाषा बोलते हैं—उनमे मैथिली, भोजपुरी, अवधी भाषाएँ प्रचलित हें। लेकिन उनके चेहरे पर मगोलायित मुख-मुद्रा की छाप बतलाती है, कि वे अपने दक्षिणी पडोसिया मे से नहीं हैं।

ऊपर के कथन से मालूम हुआ, कि हिमालय मे मोन् या किरात जाति के लोग अब भी रहते हें। यह अवश्य है, कि पश्चिम मे उनकी सख्या कम होती गयी है। इसका कारण यही है, कि वहाँ उनकी भूमि मे दूसरे लोग जबरदस्ती घुस आये। इस प्रयत्न का श्रीगणेश ऋग्वेदिक आर्यो ने कॉगडा के पहाडी किरातो के दुर्गो को छीन कर किया कॉगडा जिले मे केवल कुल्लू सब-डिवीजन की मलाणा-उपत्यका मे किरात बोली बोलने वाला मलाणा एक बडा-सा गॉव है। वह भाषा मे जरूर किरात है, किन्तु आसपास के खसो के समुद्र मे एक छोटा-सा द्वीप कैसे जातीय तौर पर अपने को अछूता रख सकता था ? मिलमवाले मुख-मुद्रा से मोन् होते भाषा मे ख्वस हैं, उससे उलटे मालाणा वाले मुख-मुद्रा से खस होते भाषा से मोन् हैं। खास कागडा मे न अब किरात मुखमुद्रा मिलती है, और न किरात भाषा का कहीं पता है। लेकिन स्थानो के नामो

मे उसका पता जरूर लगता है। बैजनाथ का ऐतिहासिक मन्दिर जिस गॉव मे है, उसे यद्यपि आजकल बैजनाथ कहते हैं, किन्तु दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के शिलालेख मे उसे किरग्राम (किरातो का ग्राम) कहा गया है। बैजनाथ तराई से बहुत दूर भीतर नहीं है।

परुष्णी, विपाश्-शुतुद्रि के बीच भरत त्रित्सुओ की भूमि के पडोस के पहाडी कॉगडा के लोग ही हो सकते थे और वे उस समय किरात थे। किरात काले नहीं, कुछ पीले रग के होते हैं। ऋग्वेदिक आर्यों ने क्यो पणियो की तरह इन्हे भी कृष्ण कहा, इसका कारण समझना आसान है। ऋग्वेदिक आर्य रग-रूप मे यूरोपियनो की तरह गोरे थे, उनके लिए यह दोनो ही काले हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

पणियो की तरह किरात जनो के धन-वैभव ने आर्यों को अपनी ओर खींचा होगा, इसकी सम्भावना कम है। उस समय यद्यपि पहाडो मे भी जगल और अच्छी चारागाहे थीं, लेकिन पजाब की चारागाहो और जगलो का वह मुकाबला नहीं कर सकती थीं। तो भी आर्यों की सख्या और उनके गो-अश्वो की वृद्धि ने उन्हे उत्तर की तरफ बढने के लिए मजबूर किया, फिर पशु-पाल मोनो और आर्यों का झगडा शुरू हो गया। आर्य बलपूर्वक पहाड के नीचे रहने वाले मोनो को भगाने मे सफल हुए। यह इससे भी साबित है कि सप्तसिन्धु-जमुना से सिन्धु पार तक की भूमि—के उत्तर की पहाडी तराई मे कहीं भी थारू जैसी मगोलायित जाति नहीं मिलती। लेकिन इसे मोन् चुपचाप बर्दाश्त कैसे कर सकते थे ? आखिर वह भी पशुपाल, घुमन्तू और लडाकू लोग थे। उन्होने भी बदला लेने के लिए आर्यग्रामो पर आक्रमण शुरू किया होगा। अब आर्य आगे बढे बिना रह नहीं सकते थे। फिर मोनो के पहाडी दुर्गों से यही शम्बर युद्ध था, जिससे उन्हे पाला पडा।

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

प्रागैतिहासिक काल होते भी ऋग्वेद के आदिम ऋषियो—भरद्वाज, विश्वामित्र, वसिष्ठ—के समकालीन राजाओ दिवोदास और उसके पुत्र सुदास के समय मे पहुँचकर हम देशकाल के बारे मे कल्पना मे टॅगे नहीं रहते। भीतरी और उससे भी अधिक बाहरी हिन्दू-युरोपीय जातियो की भाषा और दूसरी सामग्रियो के आधार पर आर्यों के सिन्धु-उपत्यका मे दाखिल होने का समय ई० पू० १५०० ठीक मालूम होता है। ऋग्वेद के ऋषि इस काल से इतने बाद हुए, कि अपने प्रथम पूर्वजो के बारे मे वह बहुत कम बतला सकते हैं। ऋग्वेद के ऋषियो ने अपनी ऋचाये इतिहास या ऐतिहासिक पुरुषो को अमर करने के लिए नहीं बनाईं। वह मुख्यत पुरोहित थे, और अपने देवताओ के रिझाने के लिए ही इन ऋचाओ को उन्होने रचा था। जहॉ-तहॉ बिखरी हुई यजमानो की प्रशसाओ से अनुमान होता है, शायद इस तरह की और भी ऋचाये रहीं हो। लेकिन, अन्त मे तो ऋचाओ का लक्ष्य देवताओ को प्रसन्न करना ही था इसलिए ऋषियो के उत्तराधिकारी अपने पूर्वजो की हर तरह की ऋचाओ के कण्ठस्थ रखने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे। ऋग्वेद के समकालीन राजाओ दिवोदास, त्रसदस्यु आदि को देखने से उनकी दो तीन पीढियो तक का ही पता लगता है।

ऋग्वेद के सबसे पुराने पॉच जन (कबीले) थे—द्रुह्य, अनु यदु तुर्वश और पुरु। सम्भव है इन जनो के नाम अपने किसी पूर्वज नेता के ऊपर पडा हो। उज्बेको की तरह घुमन्तू जातियो मे ऐसा अकसर देखा जाता है, और सप्तसिन्धु के आर्य घुमन्तू थे। यही क्यो ? उनके ऋग्वेदकालीन उत्तराधिकारी भी अर्ध-घुमन्तू थे, जिनके ग्राम वस्तुत गौओ और अश्वो की सुविधा के ख्याल से तत्कालीन उपयोग के लिए इकट्ठे बसे घरो के समुदाय थे। वहीं पास मे वह कुछ जौ की खेती भी कर लिया करते थे। इन्हीं पॉचो जनो की प्रधानता थी। इसीलिए पीछे पञ्चजन शब्द मनुष्य का पर्याय माना जाने लगा। पॉचो जनो मे सबसे पूर्व मे पुरु लोग बसे हुए थे। ऋग्वेद के समय मे इनकी कुशिक, भरत, तृत्सु आदि कई स्वतन्त्र शाखाऍ हो गयी थीं, जिनमे कुशिक जमुना के करीब सरस्वती-उपत्यका मे बसे हुए थे। सीमान्त पर विरोधियो का भारी डर था, इसलिए वहॉ आर्यों के वही जन टिक सकते थे, जो सख्या और बल मे अधिक थे। पुरु जन ऐसा ही था। पीछे इसी पुरु जन मे कुरु पैदा हुए, जिन्होने जमुना और गगा की उपत्यकाओ मे अपने प्रभुत्व का विस्तार किया, लेकिन, यह ऋग्वेद से पीछे की बात है।

ऋग्वेदकालीन राजाओ के पहले के राजाओ की ओर जब हम ध्यान देते हैं, तो पॉच ही प्रभावशाली राजा पाते हैं— मनु, पुरुरवा, नहुष, ययाति और मान्धाता। पुरुरवा का सम्बन्ध सम्भवत पुरु जन से था। मनु की प्रजा होने से मनुष्य आदमियो का वाचक समझा जाता है। वेद मे नाहुषी प्रजा से मनुष्य-साधारण का अर्थ लिया जाता है, जिससे नहुष की विशेषता सिद्ध होती है।

१ मनु

ऋग्वेद मे मनु का नाम ३१ स्थानो मे आया है, लेकिन इनमे से कुछ जगहो मे वह इस प्राचीन राजा का वाचक नही है। वस्तुत ऋग्वेद के पहले के तीन सौ वर्ष के काल मे सिर्फ तीन-चार राजाओ का नाम मिलना राजाओ की दुर्लभता को ही बतलाता है, जिसका अर्थ यह है, कि अभी राजतन्त्र नहीं जनतन्त्र का बोलबाला था। मनु का नाम लेने वाले ऋषियो मे भरद्वाज, गोतम और कुत्स जैसे अत्यन्त पुराने ऋषि हैं। वामदेव भी उसी समय के ऋषि हैं, जिन्होने मनु का उल्लेख किया है। दिवोदास के पुत्र या वशज परुच्छेप ने भी मनु का जिक्र किया है। गृत्समद, सदापृण, कश्यप भी उनका नाम लेते हैं। मनु देवताओ के भक्त थे, यह ऋचाओ से मालूम होता है, और वैसे भी समझा जा सकता है। सदापृण ऋषि के कहने[1] (५।४५।६) से मालूम होता है, कि मनु ने विशिशिप्र को जीता था। यह पता नहीं लगता कि विशिशिप्र आर्य शत्रु था या अनार्य ? अनार्य होने पर वह उत्तर के पहाडो (कॉगडा-जम्मू) का निवासी था, या मैदान का ? पिता या पितर के तौर पर मनु का अगिरस गोत्री कुत्स और गृत्समद ने उल्लेख किया है। कुत्स के कहे अनुसार[2] (१।१४।२) पिता मनु ने रुद्र की पूजा की ? गृत्समद के अनुसार[3] (२।३३।१३) पिता मनु ने मरुत् देवताओ की औषधि स्वीकार की। द्युवस्यु वान्दन (१०।१००।५) भी मनु को "हमारे पिता" कहते हैं। भरद्वाज[4] (६।२१।११) के अनुसार अग्नि देवता ने मनु को दासो के ऊपर किया। दास आर्य-भिन्न सप्तसिन्धु के या पास के पहाडो के, निवासी थे, यह हमे मालूम ही है, कश्यप मारीच[5] (६।६२।५) कहते हैं, कि पवमान सोम देवता ने दस्यु से मनु की रक्षा की। इन कथनो से पता लगता है, कि दासो या दस्युओ के साथ के सघर्ष में सफलता प्राप्त करने पर ही मनु की महिमा बढी। इतना तो निश्चित ही है, कि मनु आर्यों के प्रथम या सबसे अधिक प्रभावशाली राजा थे। पर उनका राज्य सप्तसिन्धु मे कहॉ था, यह कहना मुश्किल है।

२ पुरुरवा

अगिरा गोत्रीय हिरण्यस्तूप ऋषि[6] (१।३१।४) के अनुसार अग्नि ने मनु के लिए द्यौ (स्वर्ग) को बनाया, पुरुरवा के लिए सुकृत (सुकर्म, स्वर्ग) सुकृत्तर हुआ। पुरुरवा वीर था, इसका उल्लेख ऋग्वेद मे है। वह एक रगीला राजा था। अप्सरा उर्वशी के साथ उसका प्रेम कुछ ऐसी रोमाञ्चक घटना थी, जिसे ऋग्वेद के सग्रहकर्ता नहीं भूल सके। यह प्रेम-गाथा वास्तविक घटना हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। पर तब उर्वशी अप्सरा नहीं मानवी होगी। हो सकता है, वह किसी ऐसे पराक्रमी जन की कन्या रही हो, जो पुरुरवा के प्रभाव को नहीं मानता था। दोनो प्रेमी हृदयो को अग्नि-परीक्षा से गुजरना पडा था। पुरुरवा अपनी प्रेमिका के हृदय पर अधिकार प्राप्त करने मे सफल हुआ, लेकिन सदा के लिए नहीं। इसी का वर्णन ऋग्वेद के दसवे मण्डल[7] (७।१०।९५) मे है। यह सूक्त पुरुरवा और उर्वशी के सवाद के रूप मे है, और जो ऋचाये जिसके मुँह से कहलवाई गयी हैं, उनको उसी की रचना बतलाया जाता है। यह ऋग्वेद के उन थोडे से सूक्तो मे है, जो बहुत सरस हैं। हम यहॉ कुछ ऋचाओ को देते हैं —

पुरुरवा—हे जाया, हे घोरे (निष्ठुर), मन इधर कर ठहर, हम आपस में बात करे। यदि हम दोनों मत्रणा न करेगे, तो आनेवाले दिन हमारे सुख के नहीं होगे।।१।।

उर्वशी—इस हमारी बात से क्या ? प्रथम उषा सी मैं तेरे पास आई हूँ। हे पुरुरवा, फिर अपने घर चला जा। वायु की तरह मैं दुर्लभ हूँ ।।२।।

पुरुरवा—तेरे बिना मेरे तूणीर से बाण नहीं फेका जाता, श्री नहीं मिलती, सैकडो गायो को मैं जीत कर नहीं ला सकता, वीरो-रहित मेरे कार्य शोभते नहीं, न (मेरे) योद्धा नाद करने की सोचते हैं ।।३।।

उर्वशी— हे उषा, यदि वह 'उर्वशी' श्वसुर को धन देने की इच्छा करती, तो पास के घर से शयन-घर मे जाती और दिनरात आराम से रहती ।।४।।

हे पुरुरवा, दिन मे तीन बार मुझे तुम दण्ड से पीटते थे। मेरा किसी सौत से झगडा नहीं था। मेरे ही घर मे तुम आते थे, तब तुम हे सुवीर, मेरे (अभिन्न) अग थे ।।५।।

जब पुरुरवा पैदा हुआ, उस समय देवपत्नियाँ आईं, बहने वाली समर्थ नदियो ने उसे पालापोसा। हे पुरुरवा, भारी रण मे दस्युओ की हत्या के लिए देवो ने तुम्हारा सवर्धन किया था ।।७।।

पुरुरवा—जब पुरुरवा मानुष होकर अमानुषियो को सेवन करने के लिए बढा, तो वे हरिनी की तरह या रथ मे जोते अश्वो की तरह भयभीत होकर भागीं।।८।।

जब (उसने) मरणधर्मा होते अमृताओ से सम्पर्क करने के लिए उनके पास जाने का प्रयत्न किया, तो वे अन्तर्धान हो गयीं। उन्होने शरीर को नहीं दिखाया, क्रीडा करते अश्वो की तरह भाग गयी ।।६।। बिजली की तरह चमक धारण करती जो उर्वशी मेरी कामनाओ को पूरा करती थी, जिसने (मेरे लिए) सुजात मानुष-पुत्र जना, वह उर्वशी उसे दीर्घायु करे।।१०।।

उर्वशी—हे पुरुरवा, तूने रक्षा के लिए (उसे) ऐसे पैदा किया, मेरे मे ओज धारण किया। जानते हुए मैंने तुझे कहा था। उस समय मेरी बात तूने नहीं सुनी, (अब) क्यो व्यर्थ बोलता है।११।।

पुरुरवा—पैदा हुआ पुत्र (तेरी) इच्छा करेगा। क्या जानते हुए वह ऑसू नहीं गिरायेगा ? स्नेहयुक्त पति-पत्नी को कौन वियुक्त करेगा ? जो श्वसुर के घर मे आग जल रही है, उसे कौन बुझाएगा।१२।।

उर्वशी—मैं तुझे बतलाती हूँ। वह तेरे पास ऑसू नहीं गिरायेगा, न रोयेगा। मैं उसका कल्याण करूँगी, उसे मैं तेरे पास भेज दूँगी। तू घर लौट जा, तू मुझे नहीं पा सकता ।१३।।

पुरुरवा—सुदेव (पुरुरवा) आज गिरेगा, अत्यन्त दूर जाके (वह) फिर नहीं लौटैगा। वह आपदाओके नीचे दबेगा, उसे भेडिये बलात् खा जायेगे।। १४ ।।

उर्वशी—हे पुरुरवा, तू नहीं मरे, नहीं गिरे, न अशिव भेडिये तूझे खाये। स्त्रियो की मित्रता नहीं हुआ करती, (उनके) ये हृदय (नहीं, वे तो) शालावृको (भेडियो) के (हृदय) होते हैं।।१५।।

नाना रूप मे घूमती मैंने मनुष्यो मे चार शरदो (सालो) की रात्रियाँ बिताई। थोडा-सा घी एक बार दिन मे खाया, उससे ही तृप्त हो विचरण करती रही।।१६।।

पुरुरवा—आकाश को पूरनेवाली लोको की विमानवाली उर्वशी की मैं वसिष्ठ (वासेच्छुक) प्रार्थना करता हूँ, मैं सुकृत का दाता तेरे पास रहूँ। (हे) लौट आ, मेरा हृदय जल रहा है।।१७।।

उर्वशी—हे ऐल (इला-पुत्र), यह देवता तुझसे कह रहे हैं, कि तू मृत्यु का बन्धु होगा। तेरी प्रजा हवि से देवो की पूजा करेगी और तू भी स्वर्ग मे सुखी होगा।।१८।।

इस सूक्त से पता लगता है, कि पुरुरवा ने दस्युओ के युद्ध मे भाग लिया था। उसकी माँ का नाम इला था। उर्वशी से उसके एक पुत्र पैदा हुआ था। महाभारत और पुराणो मे उर्वशी और पुरुरवा की बहुत-सी कथाएँ आती हैं, पीछे के लेखको ने प्रयाग के सामने झूँसी (प्रतिष्ठान) को पुरुरवा की राजधानी बतलाया है। लेकिन, पीछे की परम्पराओ का ऋग्वेद से पग-पग पर इतना विरोध है, कि जो भी उनके सहारे वेदार्थ का उपबृहण करना चाहेगा, वह दलदल मे गिरे बिना नहीं रहेगा।

३ नहुष

वसिष्ठ[८] (७।६।५) ने कहा है, कि अग्नि ने नहुष को प्रजाओ का बलिहृत् (शुल्क पाने वाला) बनाया। इसी बात को हिरण्यस्तूप आगिरस[९] (१।३१।११) ने भी दोहराया है— देवो ने नहुष को प्रजाओ (विशो) का पति बनाया।

४ ययाति

गय प्लात ऋषि[१०] (१०।६३।१) के कहने से पता लगता है, कि ययाति नहुष्य, अर्थात् नहुष का पुत्र था। हिरण्यस्तूप आगिरस[११] (३१।१७) से मालूम होता है, कि अग्नि देवता की तरह ययाति के पास मनु अगिरा आया करते थे।

५ मान्धाता

यह भी दस्युहन्ता[१२] (८।३६।८) प्राचीन आर्य राजा थे।

ऋग्वेद के प्राचीनतम राजाओ मे यही पॉच नाम मिलते हैं। इनका आर्य-जनो के विरोधियो के साथ सघर्ष भी हुआ था, पर यह नहीं कहा जा सकता, कि सप्तसिन्धु (जमुना से सिन्धु के परले पार तक भूमि) के किस स्थान के ये राजा थे, और आर्यों के सिन्ध-उपत्यका मे प्रवेश करने (१५०० ई० पू०) के कितने बाद हुए, तथा इनसे कितने वर्षों या पीढियो बाद ऋग्वेद के प्रसिद्ध राजा दिवोदास और सुदास आये।

अध्याय ८

शम्बर

१ दस्यु

आर्य अपने प्रतिद्वन्द्वियो को दास कहते थे। ऋग्वेद के समय (१२०० ई० पू०) उनके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी पर्वतवासी दास या दस्यु थे, मैदानी दासो से उनको कोई खतरा नहीं था। पर्वतीय दास हिमालय के किरात थे। यह हम बतला चुके हैं, कि इन्हीं को नष्ट करने के लिए आर्य तुले हुए थे। "इन कृष्णा-योनि दासो का इन्द्र ने नाश किया" (२।२०।७)। "इन्द्र ने कृष्ण चमड़े वालो को मारा" (१।१३०।८) परुच्छेप ने कहा। परुच्छेप पर्वतीय दासो के सबसे प्रतापी राजा शम्बर के विजेता दिवोदास का पुत्र था। दासो का रूप काला बतलाया गया है। वसिष्ठ उन्हे शिश्नदेव कहते हैं (७।२१।५)। शिश्नदेव का मतलब है, लिंग को देवता मानकर पूजनेवाले। पूजा के लिए पाषाण-लिंग मैदानी दासों के प्राचीन नगरो मोहनजोदडो और हडप्पा मे भी मिले हैं। किरातो के ताम्र-युगीन अवशेषो की अभी उतनी छान-बीन नहीं हुई है। सम्भव है, उनमे भी लिंग को देवता माना जाता हो। नाग को देवता तो वह मानते ही थे, जिसके बहुत से नामावशेष हिमालय मे मिलते हैं। शिश्न को देवता माननेवाले पर्वतीय शत्रु आर्यों के सत्य (ऋत) को दबा न दें, इसकी वसिष्ठ को बड़ी चिन्ता थी। भरद्वाज शम्बर-हन्ता राजा दिवोदास के पुरोहित थे। पुरोहित का अर्थ देवताओ की स्तुति करनेवाला, यज्ञ-सम्पादक ही नहीं था। प्रधानपुरोधा अपने राजा का प्रधानमन्त्री भी था। दिवोदास और उसके पुत्र सुदास बडे सेनानी थे। उनका सबसे बडा बल योग्य पुरोहित था। पर्वतीय शत्रुओ के शिश्नदेव होने का उल्लेख बभ्रु वैखानस ने भी किया है" (१०।९९।३)।

अपने उत्तरी शत्रुओ के जादू और माया से भी आर्य बहुत डरा करते थे। वसिष्ठ भी शतयातु (सौ जादू वाले) कहे गये हैं" (७।१८।२१)। असुर (दस्यु) बडे मायावी थे। गृत्समद के अनुसार इन्द्र ने मायावी दानव को माया से ही गिराया' (२।११।१०—१६)। जादू और माया का अर्थ है उनकी चाले बडी गम्भीर होती थीं, उनके पञ्जे आर्यों के गले पर पहुँचे रहते थे। वह केवल सीधी लडाई नहीं लडते थे, बल्कि अपने-से हजार वर्ष बाद पैदा होने वाले कौटिल्य के कुछ बातों मे गुरु थे।

अपने शत्रुओ मे सभी दुर्गुणो को और अपने मे सारे गुणो को देखना, आज भी देखा जाता है। आर्यो को शम्बर के लोग सारे दुर्गुणो की खान जान पडते थे। प्रजापति-पुत्र विमद के अनुसार" (१०।२२।८) वह अकर्म (दुष्कर्मा) थे, वह अमन्तु थे। वह अन्यव्रत (दूसरे धार्मिक आचारो के माननेवाले) ही नहीं बल्कि वह अमानुष भी थे। आर्य ऋषि मनु की सन्तान तो वह सचमुच ही नहीं थे, इसी अर्थ मे उन्हे अमानुष कहा गया है। विमद गिडगिडा कर कह रहे हैं, कि दस्यु हमारे चारो ओर हैं, अमित्रो के हननकर्ता इन्द्र, इन दासो को मार। लेकिन, क्या सचमुच ही दस्यु आर्यो को चारो ओर से घेरे हुए थे। दक्षिण के मैदानी इलाके के लिए वह दावेदार नहीं थे। अधिक-से-अधिक वह हिमालय के चरण पर अवस्थित तराई के जगलो से

वास्ता रखते थे, और आर्यों के आने से पहले ही उस भूमि मे उनका बसेरा था। पजाब की तराई उतनी अस्वास्थ्यकर न रही होगी, जितनी कि गगा से पूर्व की। अपने पूर्वजो के समय से चली आई धरती को यदि वह छोडना नहीं चाहते थे, तो इसमे अपराध क्या था ? जब उनके भीतर आर्य पशुपाल घुस आये, तो वह उन्हे चैन से कैसे रहने देते ?

गीता मे कहा गया है "यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।" (जो करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो देते हो, जो तपस्या करते हो, उस सबको हे अर्जुन, मुझे अर्पित करो)। सब कुछ को कृष्णार्पण करने की बात यद्यपि यहाँ कही गयी है, लेकिन ऐसा सर्व-समर्पणकर्ता गीता की इन पक्तियो के लिखे जाने के बाद शायद ही कोई हुआ हो। लेकिन, ऋग्वेद के ऋषि इस वचन का पूरा-पूरा पालन करते थे। गीता के लेखक के समय वेद की ऋचाये सिर्फ रटी जाती थीं, उनके अर्थों को जानने की जरूरत नहीं समझी जाती थी। ऐसा न होता, तो बाण जैसे प्रतिभाशाली लोग, बचपन में वेद को पूरी तौर से कण्ठस्थ करके भी ऋषियो के बारे मे ऐसी बाते न करते, जो वेद के विरुद्ध हैं। इसीलिए हम यह नहीं कह सकते, कि वेद के प्रभाव के कारण गीता मे सर्व-समर्पण की बात कही गयी। वेद के ऋषि अपनी सारी सफलताओ का एकमात्र कारण अपने देवताओ को समझते थे। उनके लिए असली विजेता बध्र्यश्व, कुत्स, दिवोदास, सुदास या उनके प्रधान मन्त्रदाता भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र नहीं थे। वस्तुत सारा काम इन्द्र ने किया। मानुष विजेता केवल इन्द्र के हाथ के हथियार थे।

वह नियति (विधिके विधान) को भी अपनी विजयो का श्रेय नहीं देते थे। "इन्द्र ने दास वर्ण को नीचा और गुमनाम किया" (गृत्समद २।१२।४)। "हे इन्द्र, धनी दस्यु को मारो" (हिरण्यस्तूप १।३३।४)। "इन्द्र, दास प्रजा को अभिभूत कर"[10] (गृत्समद २।१।४) ऋषि साधन के तौर पर आर्यों के पौरुष से इन्कार नहीं करते थे। कण्व-पुत्र घोर के अनुसार [11] (१।३६।१८) अग्नि के साथ यदु और तुर्वश लोग बुलाये गये। अग्नि इसी उद्देश्य से नववास्तु बृहद्रथ तुर्वीति को लाये। यदु और तुर्वश आर्यों के पॉच प्रधान जनो मे बहुत अधिक शक्तिशाली थे। एक समय तक भरतो और इन दोनो महान् जनों मे आर्यों के मुखिया बनने की होड रही। दिवोदास ने इनको अपने बस मे करने मे सफलता पाई, लेकिन उसमे बल का उतना हाथ नहीं था, जितना कि शम्बर के विरुद्ध सभी आर्यों के एक होने की आवश्यकता का। नववास्तु (नये निवास वाले) **बृहद्रथ**, तुर्वीति इन्हीं दोनो जनो के उस समय नेता थे, जब वह पश्चिम से उस भूमि मे आये, जो कि दासो के सघर्ष का मैदान बनी हुई थी। ऋषि वामदेव ने कहा है[12] (४।१६।१३) "इन्द्र ने ५० हजार कृष्णो (कालो) को मारा। उनके दुर्गों (पुरो) को ध्वस्त किया।" यह ५० हजार कृष्ण किस वक्त मारे गये ? शायद उसी समय, जब कि दिवोदास से दासो का जीवन-मरण का सघर्ष चल रहा था। गृत्समद के अनुसार[13] (२।२०।८) "इन्द्र ने दस्युओ को मारकर उनके आयसी पुरो को नष्ट किया।" अयस् से यहाँ न लोहे का मतलब है, न तॉबे ही का, क्योकि उन्हीं पुरो को कितनी ही जगह अश्मन्मयी भी कहा गया है, जिसका अर्थ है पाषाणमय। इन पुरियों को नष्ट करने वाला दिवोदास था।

दासो मे शत्रुओ से सिर्फ पुरुष ही नहीं लडते थे, बल्कि उनकी स्त्रियॉ भी डटकर मुकाबला करती थीं। आर्य अपनी स्त्रियो को हथियारबन्द नहीं करते थे। हो सकता है, सप्तसिन्धु मे १५ पीढियाँ रहने के बाद उन्होने पराजित सिन्धु-जाति के लोगो के नागरिक आचार-विचार की कितनी ही बाते सीखी थीं, उनमे एक यह भी थी— हमे स्त्रियो को पुरुषो की पक्ति मे नहीं

लाना चाहिए। बभ्रु कीं एक ऋचा[१] (४।३०।६) मे है—"दास ने स्त्रियो का आयुध (हथियार) बनाया।" इस पर इन्द्र ने कहा— "इसकी अबला सेना मेरा क्या करेगी?" स्त्रियो के लिए अबला शब्द का प्रयोग शायद यहीं सबसे पहिले हुआ, जिससे ध्वनित होता है, कि स्त्रियो मे योद्धा होने की योग्यता नहीं है।

ऋग्वेद के सबसे पुराने आर्य-शासक का नाम मनु है। मनु ऋषि और विजेता था। वह ऋग्वेद से बहुत पहले हुआ था। ऋग्वेद में शम्बर-युद्ध से पहले के ऋषियो की ऋचाओ को जमा नहीं किया गया है। तो भी वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के सुत गौरिवीति के अनुसार[१] (१०।७३।७) मनु ऋषि थे— "ऋषि मनु के लिए इन्द्र ने दास नमुचि को मारा।" नमुचि शायद शम्बर का पूर्वज पहाडी राजा था। पीछे की परम्परा इसके सम्बन्ध शम्बर से ही बतलाती है। शम्बर के प्रतिद्वन्द्वी के प्रधान-मन्त्रदाता भरद्वाज भी कहते हैं[१] (६।२०।६) "दास नमुचि के सिर को इन्द्र ने चूर्ण किया", दूसरे स्थान[१] (५।३०।७,८) के अनुसार इन्द्र ने दास नमुचि के सिर को काटा।" यह कटाकटी मनु के समय मे हुई थी। वामदेव के अनुसार[१] (४।।३०।२१) "दभीति के लिए ३० हजार दास सुला दिये।" आर्य राजा दभीति का प्रतिद्वन्द्वी कौन दस्यु था, जिसके ३० हजार आदमी खेत आये ? हो सकता है दभीति दिवोदास से पहले का कोई आर्य नायक था।

आर्यों को जिन दास-सेनानियो का जबर्दस्त मुकाबला करना पडा था, उनके नाम हमे कई ऋचाओ मे मिलते हैं, जैसे–

भरद्वाज[१] (६।१८।८)— चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण।
वसिष्ठ[१] (७।६६।४)— दास वृषशिप्र का उल्लेख करते हैं।
कुत्स आगिरस[१] (१।१०३।८)— शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्र, शम्बर।
गृत्समद[१] (२।१४।५)— शुष्ण, अशुष, व्यस, रुधिक्रा।

वश अश्व-पुत्र (८।४६।३२) एक सज्जन दस्यु बल्बूत का नाम लेते हैं, जिसने उन्हे सौ दास (गुलाम) प्रदान किये थे।

पुराने दास महावीरो मे नमुचि और ऋग्वेदकालीनो मे शम्बर महापराक्रमी थे। शम्बर के सहायको मे कितने ही और भी पराक्रमी सेनानी थे, पहाडी शत्रुओ के पास सिर्फ शम्बर ही एकमात्र महान् सेना-नायक नहीं था। शम्बर के बाद जिस पहाडी वीर का सबसे अधिक उल्लेख उसके शत्रु करते हैं, वह शुष्ण है।

२ शंबर के सेनापति

१. शुष्ण

शुष्ण और उसके प्रतिद्वन्द्वी कुत्स आर्जुनेय औशिज, शम्बर और दिवोदास के समकालीन तथा उनके ही सेनानी थे, यह स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद मे नहीं मिलता, लेकिन सब देखने से यही पता लगता है, कि शुष्ण शम्बर का, और कुत्स आर्जुनेय दिवोदास का दाहिना हाथ था। ऋग्वेद में तीन कुत्सों का पता लगता है। कुत्स आगिरस एक ऋषि थे, और शायद कुत्स आर्जुनेय के समकालीन थे। पुरु जन का एक कुत्स (पुरुकुत्स) था, जो शम्बर के युद्ध से कुछ पहले हुआ था। शम्बर के प्रतिद्वन्द्वी दिवोदास का समकालीन त्रसदस्यु (दस्युओ को त्रास देने वाला) इसी का पुत्र था। तीसरा कुत्स यही अर्जुन-पुत्र था, जो पराक्रम मे दिवोदास से कम नहीं था। शुष्ण को इसी ने खतम किया था, लेकिन आर्य ऋषि किसी मनुष्य को यह श्रेय कैसे दे सकते थे ? इसीलिये नाभाक ने कहा[१] (८।४०।१०।११)— "इन्द्र ने शुष्ण के अडों (संतानों) को भी छिन्न-भिन्न कर दिया।" कण्व-पुत्र मेघातिथि[१] (८।१।२८) के अनुसार शुष्ण के चलायमान

(चरिष्णु) पुरो को नष्ट किया गया था। पुर उस समय मोर्चाबन्द स्थान, दुर्ग या किले को कहते थे। यह पत्थर के और लकडी के भी होते थे। लेकिन, खास कर पहाडी लोगो को पत्थरो को जोड कर-पुर-बनाने मे अधिक सुभीता और लाभ था। स्थायी पुरो के अतिरिक्त चरिष्णुपुर शायद वह थे, जो लडाई के दौरान मे या घमतप्पी के लिए मोर्चाबन्दी करके बना लिये जाते थे।

हिरण्यस्तूप आगिरस[२६] (१।३२।१२) के अनुसार "इन्द्र ने शुष्ण को छिन्न-भिन्न किया।" पर यह छिन्न-भिन्न करना इतना आसान नहीं रहा होगा, क्योकि शुष्ण बडा मायावी था। उसके दॉव-पेच का मुकाबला इन्द्र जैसा आर्यों का सर्वश्रेष्ठ देवता ही कर सकता था, इसीलिए विश्वामित्र के पौत्र और मधुच्छन्दा के पुत्र जेता ने कहा है[२७] (१।११।७)— "हे इन्द्र, तुमने माया (चालो) द्वारा मायी शुष्ण को नष्ट किया।" सभ्य आगिरस[२८] (१।५६।३३) ने भी शुष्ण को मायी और उसके दुर्गों को आयसी (पत्थर का) कहा है। "शुष्ण के पुरो को चूर्ण किया गया"[२९] (वामदेव ४।३।१३)।

शुष्ण और कुत्स— जब शुष्ण को नष्ट करनेवाले इन्द्र थे, तो उन बाहुओ के उल्लेख की क्या आवश्यकता, जिन्होने शुष्ण का सहार किया था ? पर, ऋषि लोग ऐसी बाहुओ से इन्कार नहीं करते। इसीलिए वसिष्ठ कहते हैं[३०] (७।१६।२)— "इन्द्र, तुमने कुत्स की रक्षा की, जो कि तुमने दास शुष्ण और कुयव को आर्जुनेय के लिए मारा।" कुत्स आर्जुनेय का प्रतिद्वन्द्वी शुष्ण के अतिरिक्त कुयव भी था, यह इससे पता लगता है। वसिष्ठ भी कुत्स और शुष्ण के युद्ध का उल्लेख करते हैं[३१] (७।२०।५)— "इन्द्र ने सारथी कुत्स के लिए शुष्ण (जेसे) महान् शत्रु को मारा।" कुत्स को भरद्वाज सारथी कहते हैं। लेकिन, सारथी से हमे यहॉ वह अर्थ नहीं लेना चाहिए, जो कि महाभारत और पुराणो मे लिया जाता है। सारथी महारथी या महासेनापति का वाचक था। इन दोनो ऋषियो के तरुण समकालीन वामदेव[३२] (४।३।१३) सिर्फ शुष्ण, की पुरियो के नष्ट करने की ही बात कहते हैं। कुत्स बडा दानी (दाशुष) था (भरद्वाज[३३] ६।२६।३)। जिस वक्त शुष्ण और कुत्स की लडाई हो रही थी, उस समय कुत्स युवा था, यह नोधा गौतम[३४] (१।६३।३) के वचन से मालूम होता है। सव्य के अनुसार[३५] (१।५१।६) इन्द्र ने युद्ध मे कुत्स को शुष्ण से बचाया था। जिसका अर्थ यही है कि शुष्ण ने तरुण कुत्स के जीवन को सकट मे डाल दिया था। कुत्स को वायु के घोडो से वहन करते इन्द्र ने शुष्ण का वध किया था[३६] (१।१७५।४), जिसका अर्थ शब्दश यह नहीं लेना चाहिये, कि कुत्स आर्जुनेय घोडे पर चढकर युद्ध से भाग गया, और इन्द्र ने आकर अपने वज्र से शुष्ण का शिरश्छेद किया।

शुष्ण के साथी कुयव के साथ कुत्स के सघर्ष का उल्लेख वामदेव करते हैं[३७] (४।१६।१२)— "कुत्स के लिए शुष्ण असुर को मारा, इन्द्र, तुमने कुयव के हजारो दस्युओ का तुरन्त हनन किया।" शुष्ण और अशुष के मारने और कुत्स की रक्षा करने की बात सव्य आगिरस[३८] (१।५१।६) भी करते हैं। कुत्स आगिरस ऋषि[३९] (१।१०४।३) आर्जुनेय के लिए कुयव के ही नहीं बल्कि उसकी दो पत्नियो को भी मारने की बात कहते हैं। कुयव को क्षीर से स्नात कहा गया है। हो सकता है, दुग्ध-स्नान को टोटके के तौर पर उस समय माना जाता हो। कुयव की दोनो पत्नियॉ अपने पति के साथ हथियार लेकर लडती होगी। न लडतीं, तब भी स्त्रियो पर आर्य इतनी उदारता दिखाने के लिए तैयार नहीं थे। सारथी (महासेनापति) कुत्स के लिए शुष्ण, अशुज और कुयव के मारने तथा दिवोदास के लिए शम्बर की ९९ पुरियो के इन्द्र द्वारा नष्ट होने का उल्लेख गुत्समद[४०] (२।१९।४) ने भी किया है। गौरिवीति[४१] (५।२९।९) और भरद्वाज ने सारथी कुत्स का उल्लेख किया है। सारथी विशेषण कुत्स आर्जुनेय के लिए विशेष तौर से प्रयुक्त मालूम होता है।

२. पिप्रु

यह दूसरा दस्यु सेनानी था, जिसका उल्लेख ऋग्वेद मे अनेक वार आया है। इसने आर्य-वीर ऋजिश्वा के साथ युद्ध किया था। महानतम चार ऋषियो मे वामदेव[17] (४।१६।१३) ने कहा है,— "इन्द्र तुमने विदथी के पुत्र ऋजिश्वा के लिए पिप्रु मृगयु को मारा, ५० हजार कृष्णो (कालो) को नष्ट किया और उनके पुरो को ध्वस्त किया।" बभ्रु वैखानस के अनुसार[18] (१०।९९।११) "ऋजिश्वा औशिज ने पिप्रु के व्रज को विदारित किया।" इससे पता लगता है, कि ऋजिश्वा उशिज-कुल का था। पिप्रु अपने व्रज (गौओ के झुण्ड) को लेकर रहता था, इसी समय ऋजिश्वा ने गौओ की लूट के लिए उसके ऊपर आक्रमण किया और उसका आक्रमण सफल रहा। वसिष्ठ के पौत्र गौरिवीति इस सफलता मे अपने भी श्रेय लेना चाहते हैं, इसीलिए कहते हैं[19] (५।२९।११)— "गौरिवीति की स्तुतियो ने इन्द्र तेरी वृद्धि की, और तूने वैदथी के लिए पिप्रु को मारा।" ऋजिश्वा पिप्रु के सघर्ष में खतरे मे पडा था, या ऋषि ने यो ही इन्द्र को उसका श्रेय दिया यह नहीं कहा जा सकता। सव्य आगिरस[20] (१।५१।५) के अनुसार भी "इन्द्र ने पिप्रु के पुर को नष्ट किया और दस्यु-हत्या (दासयुद्ध) में ऋजिश्वा की रक्षा की।"

चालीस साल से ऊपर तक शम्बर और उसके सहायको के साथ आर्यो का जो युद्ध हुआ, उसे ऋग्वेद मे दस्यु-हत्या कहा गया है। हत्या केवल व्यक्तिगत हनन को ही उस समय नहीं कहा जाता था बल्कि वह युद्ध के लिए भी इस्तेमाल होता था।

३ वगृद, ४. करंज, ५ पर्णय

ऋजिश्वा के मुकाबिले मे लडने वाले सेनानियो मे पिप्रु के अतिरिक्त वगृद भी था। सव्य के अनुसार ऋजिश्वा ने वगृद के सौ वीरो को हराया था[21] (१।५३।८)। ऋजिश्वा ने बहुत से कृष्णगर्भो (दस्युओ) को मारा था, इसे कुत्स आगिरस भी बतलाते हैं[22] (१।१०१।१)। पिप्रु के साधन बहुत दृढ थे। अग औरव[23] (१०।१३८।३) के अनुसार पिप्रु असुर मायी था, जिसे इन्द्र की सहायता से ऋजिश्वा हराने में सफल हुआ। यहाँ असुर शब्द पिप्रु के लिए इस्तेमाल किया गया है, दास और असुर दोनों शब्द पर्याय माने जाते थे।

६ वर्ची

उदव्रज मे शम्बर के साथ वर्ची भी मारा गया था, यह गर्ग के कथन[24] (६।४२।२१) से मालूम है। वसिष्ठ ने उदव्रज और शम्बर का एक साथ उल्लेख नहीं किया है, पर उनके कहने[25] (७।९९।५) से मालूम होता है, कि वर्ची ने भारी सख्या मे असुर योद्धाओ के साथ दिवोदास का मुकावला किया था— "सौ हजार वीरो के साथ वर्ची असुर को मारा।" सौ हजार (एक लाख) योद्धा किसी एक जगह जमा होकर मारे गये होंगे, इसकी सभावना कम है। इसका यही अर्थ है, कि बहुत भारी सख्या मे दास युद्ध मे काम आये। दासो की इतनी बडी सेना जहाँ एकत्रित हुई होगी, वहाँ आर्यो की भी सेना कम नहीं रही होगी, इसलिए उदव्रज किसी ऐसे स्थान मे रहा होगा, जो पहाड में होने पर भी काफी समतल था, और वह स्थान काँगडे के पहाडो मे घुसने का द्वार होगा, जैसे धमेरी (नूरपुर)। वर्ची के सौ हजार आदमियो के मारे जाने की बात गृत्समद[26] (२।१४।६) भी करते हैं, और वामदेव[27] (४।३०।१५) भी कहते हैं— "दासस्य वर्चिन सहस्राणि शता वधी।" (दास वर्ची के सौ हजार मारे।) इससे यह भी पता लगता है, कि वर्ची शम्बर का कोई मामूली अनुयायी नहीं था, वह अपने तौर से भी बहुत भारी प्रभुता रखता था।

गृत्समद[28] (२।१२।१४) वर्ची के शतसहस्र आदमियो के मारने के साथ शम्बर के सौ पुरियों के ध्वस की भी बात करते हैं।

जिन असुर सेनापतियो का उल्लेख अभी किया गया है, उनके अतिरिक्त कुछ और भी रहे होगे, लेकिन इन्द्र की महिमा गाने के लिए उनके नामो के गिनाने की आवश्यकता" (७।१८।२०) नहीं थी। मन्यमान पुत्र देवक को शम्बर के साथ इन्द्र द्वारा मारे जाने का उल्लेख वसिष्ठ ने किया है। जिससे सन्देह होता है, कि देवक भी शम्बर की तरह अनार्य राजा था। पर, देवक और पिता का नाम मन्यमान उसे आर्यजन का आदमी बतलाते हैं। देवक अपने लोगो के विरुद्ध असुरो की तरफ रहा होगा, इस तरह का उदाहरण हमे ऋग्वेद मे और नहीं मिलता। उस समय सप्तसिन्धु के आर्यों का शम्बर से जबर्दस्त मुकाबला था। शम्बर ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता था। यदि आर्य कृष्णो, कृष्ण-गर्भों का नाम तक मिटा देना चाहते थे, तो वह भी श्वेतों और श्वेतगर्भो को कम से कम अपनी सीमा के पास जिन्दा नहीं छोड़ना चाहता था। शम्बर के लोग बडे वीर और लडाके थे, इसकी गवाही ऋग्वेद के ऋषि भी देते हैं, और साथ ही हमे यह भी मालूम होना चाहिये, कि जिन गोरखो की वीरता को देखकर अग्रेजो ने उन्हे अपनी भाडे की सेना मे सबसे ऊँचा स्थान दिया, और आज भी भरती करके अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए मलाया के जगलो मे जिन्हे कटवा रहे हैं, उनमे सबसे बडी सख्या किरात-सतानो की है, जिसे आप उनकी ऑख और नाक पर मगोलायित मुख-मुद्रा देखकर जान सकते हैं।

पिप्रु के व्रज से पता लगता है, कि दस्यु लोग बहुत भारी सख्या मे गायो को रखते थे। आर्यों की आजीविका का मुख्यत· गो-अश्व तथा उसके बाद अजअवि (भेडबकरी) थे। दास शायद अश्व का अधिक उपयोग नहीं रखते थे। पहाडी रास्तो के लिए अभी पहाडी टाघन तैयार नहीं हुए थे, और आर्यों के बृहत्काय सैन्धव घोडे पहाडी युद्ध और यात्रा के लिए उतने सहायक नहीं हो सकते थे। कुत्स आर्जुनेय को यद्यपि सारथी कहा गया है, किन्तु पहाडी युद्ध मे रथ का कोई उपयोग न हो सकता था, इससे भी मालूम होता है, कि सारथी रथचालक नहीं बल्कि सेनापति जैसी कोई बडी सैनिक उपाधि थी।

३. शम्बर

ऋग्वेदिक आर्यों के समय दो बहुत जबर्दस्त युद्ध लडे गए थे— दस्यु-हत्या (शम्बर युद्ध) या दासो के साथ युद्ध और दूसरा आर्यों के अपने बीच का "दाशराज्ञयुद्ध।" पहले युद्ध के प्रधान प्रतिद्वन्द्वी शम्बर और दिवोदास थे, और दूसरे मे दस राजाओ के खिलाफ सुदास ने तलवार उठाई थी। इन दोनो युद्धो का उल्लेख यद्यपि ऋग्वेद मे है, लेकिन सबसे अधिक शम्बर-हत्या (शम्बर-युद्ध) को ही दोहराया गया है। इसका कारण भी है। दाशराज्ञयुद्ध मे लडनेवाले दोनो पक्ष इन्द्र के भक्त थे, इसलिए इन्द्र की महिमा बढाने के लिए उसका उतना उपयोग नहीं हो सकता था। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता था, कि इन्द्र ने दस राजाओ से किसी कारण रूठ कर सुदास को विजय प्रदान की। लडते वक्त दोनो ही ओर के ऋषि इन्द्र को प्रसन्न करने की कोशिश करते रहे होगे। शम्बर-हत्या (४० वर्षों) की तरह दाशराज्ञ युद्ध भी बहुत दिनो तक चलता रहा— उसमे सदा अतिम विजेता की ही विजय नहीं होती रही। बीच-बीच के विजयो के लिए दसो राजाओ के ऋषियो ने इन्द्र की महिमा गाते ऋचाये बनायी होगी, जिन्हे पीछे सुरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं थी। शम्बर-हत्या इन्द्रदेवो और शिश्नदेवो के बीच थी। इसमे दस्युओ की पूर्ण पराजय और इन्द्र के भक्तो की विजय हुई। इन्द्र की महिमा को पूरी तौर से यहीं दिखाया जा सकता था, इसीलिए ऋग्वेद मे सबसे अधिक आई इन्द्र-सम्बन्धी ऋचाओ मे यदि शम्बर-हत्या का अधिक उल्लेख हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। कुछ विद्वानो का तो कहना है, कि सारे ऋग्वेद मे शम्बर-हत्या की ही प्रतिध्वनि पायी जाती है।

भरद्वाज, वसिष्ठ, वामदेव सभी ने शम्बर के युद्ध का वर्णन किया है, लेकिन, शम्बर से लड़नेवाला दिवोदास था, जिसके पुरोहित (प्रधान-मन्त्री) भरद्वाज थे। भरद्वाज ने सोम (भाँग या भाँग जैसी किसी नशीली वनस्पति) की महिमा गाते हुए कहा है" (६।४३।१)— "जिसके मद मे (मस्त) इन्द्र ने दिवोदास के लिए शम्बर को मारा।" शम्बर के पिता का नाम कुलितर था, यह वामदेव के कथन" (४।३०।१४) से मालूम होता है— "इन्द्र ने दास कौलितर शम्बर को बडे पर्वतों के भीतर (बृहत पर्वतादधि) मारा।" शम्बर बृहत् पर्वत के भीतर रहता था। बृहत् पर्वत उस समय हिमालय को कहा जाता था। भरतो की भूमि उस समय परुष्णि (रावी) और शुतुद्रिविपाश् (सतलुज-व्यास) के बीच मे थी, इसके पास वडा पर्वत कॉगडे का हिमालय ही था। सिवालिक का छोटा पर्वत उसी से मिला हुआ था, जिसे अब भी अलग नहीं समझा जाता। छोटे पर्वत मे नहीं, बल्कि बृहत् पर्वत मे शम्बर के होने की बात यही बतलाती है, कि उसके पुर सिवालिक के पीछे वाले वडे पहाडो मे थे। १९वीं शताब्दी के आरम्भ तक अजेय माने जानेवाला किला-कॉगडा उसी में पडता है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इस पहाडी ने शम्बर के पुर का भी काम दिया हो। किला-कॉगडा मे इस शताब्दी के भयानक भूकम्प के पहले वहुत सी पुरातात्विक सामग्री थी, जिनमे से अधिकाश को भूकम्प ने ध्वस्त कर दिया। यह ऐसे क्षेत्र मे पडता है, जिसे भूकम्प का क्षेत्र माना जाता है, इसलिए शम्बर की अश्मन्मयी किसी अजेय पुरी के अवशेष के पाने की आशा नहीं रखी जा सकती।

शम्बर के पुरो के दर्दरा ने (ध्वस्त करने), तथा धन-सम्पन्न (वसुमन्त) पर्वत मे आर्यों के प्रवेश करने का उल्लेख सोमाहुति ने किया है" (२।२४।२)— "शम्बर पर्वतो में रहता था (पर्वतेषु क्षियन्)" और ४०वें वर्ष मे उसे मारने में आर्यों को सफलता मिली "(गृत्समद २।१२।११)। वह गिरि का दास था, जिसे मारकर अपनी अद्भुत रक्षाओ से इन्द्र ने दिवोदास को बचाया— वामदेव" (६।२६।५)। वसिष्ठ के अनुसार" (७।९९।५)—"इन्द्र और विष्णु ने शम्बर की ९९ पुरियो को भ्रष्ट किया।"

शम्बर की ९९, १०० या ९० पुरियो के होने का उल्लेख मिलता है। वसिष्ठ की तरह वामदेव भी" (४।२६।३) शम्बर की ९९ पुरियो के नष्ट करने और एक (सौवीं) पुरी को दिवोदास अतिथिग्व को देने का उल्लेख करते हैं। वामदेव ने अपनी ऋचाओ मे इन्द्र के मुख से सारी बाते कहलवायी हैं, जिससे पता लगता है, कि ऋषियो के ऊपर उनके देवता आते थे। यह आश्चर्य की बात नहीं। हिमालय मे अब भी हजारो ऐसे पुरुष-स्त्री मिलेगे, जिनके सिर पर देवता आकर "मैं" कह कर सारी बाते बतलाते हैं। हिमालय ही मे क्यो, दूसरी जगहो मे भी ऐसे ओझा सयानो या देववाहनो की कमी नहीं है। फर्क इतना ही है, कि ऋग्वेद-काल मे जिस तरह सभी लोग देवताओ के ऐसे प्रादुर्भाव पर एकान्त श्रद्धा रखते थे, वैसी श्रद्धा अब मैदान मे नहीं देखी जाती। दिवोदास का दूसरा नाम अतिथिग्व था। कितनी ही ऋचाएँ उसे केवल अतिथिग्व के नाम से स्मरण करती हैं। इस शब्द से यह तो साफ मालूम होता है, कि दिवोदास अतिथियो का अनन्य सेवक था। अतिथि के साथ गौ शब्द क्यो इस्तेमाल हुआ, इसका अर्थ लोग गोघ्न से लगाते हैं। लेकिन उसको उपाधियो मे शामिल करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। गौ का कोई ऐसा ही अर्थ था, जिससे दिवोदास के अतिथिदेव होने का भाव निकलता हो।

दिवोदास के पुत्र या सतान परुच्छेप" (१।१३०।७) ने ९९ नहीं, ९० पुरियो के नष्ट करने का उल्लेख किया है— "इन्द्र ने दिवोदास अतिथिग्व के लिए ९० पुरियाँ छिन्न-भिन्न कीं।" पीछे के ऋषि सुहोत्र" (६।३१।४) के अनुसार "दस्यु शम्बर की सौ पुरियो को इन्द्र ने नष्ट किया।"

यह ६०, ६६ और १०० पुरियो का भेद क्यो ? वसिष्ठ और भरद्वाज का कहना ही ठीक है ६६ पुरियो को दिवोदास ने नष्ट कर दिया, और एक को अपने लिए सुरक्षित रक्खा।

शम्बर को कहाँ मारा गया, इसका उल्लेख भरद्वाज के पुत्र गर्ग करते हैं" (६।४७।२१), जो शायद शम्बर-युद्ध के समय अपने पिता के दाहिने हाथ होकर दिवोदास की सहायता कर रहे थे। उनका कहना है— "इन्द्र (दिवोदास) ने शम्बर और दास वर्ची को उदव्रज मे मारा।" दूसरे दासो की तरह शम्बर के भी व्रज या गोष्ठ रहे होगे। किसी विशेष जल के पास एक व्रज था, जिसे उदव्रज कहते थे। यह स्थान कॉगडा जिले मे ही कहीं रहा होगा, लेकिन तीन हजार वर्ष बाद भी उस स्थान का वही नाम रहे, यह जरूरी नहीं है।

शम्बर और उसकी जाति के साथ जो भीषण युद्ध हुआ था, उसका कुछ वर्णन हम विजेता दिवोदास के प्रकरण मे भी करेगे।

४ किरात

जान पडता है, कॉगडे मे अब भी इस सघर्ष की परपरा नामान्तर से मौजूद है। काँगडा प्रदेश का नाम जलन्धर है। हिमालय के पॉच खण्डो—नेपाल, कूर्माचल (कुमाऊँ), केदार (गढवाल), जलन्धर और कश्मीर मे एक जलन्धर है। कश्मीर की सीमा से पूर्व सतलुज तक के इलाके को जलन्धर और पश्चिमी को दुर्गर (डोगरा) इन दो हिस्सो मे बॉटा जाता था। दोनो की सीमा रावी थी। आज जलधर का अर्थ मैदानी जलन्धर नगर लिया जाता है, लेकिन पहले यह पहाडी भाग का नाम था। पौराणिक परम्परा बतलाती है जलन्धर एक भयकर राक्षस था, जिसे देवी ने मारा। देवी नगरकोट (भवन) की प्रसिद्ध भवानी थीं। मरने पर जलन्धर का विशाल शरीर जितने भूखड मे गिरा, उसका नाम जलन्धर पडा। जलन्धर के कान की जगह पर बने गढ का नाम कनगढा या कॉगडा पडा। जलन्धर शब्द का अर्थ, जलो (रावी आदि) का धारण करनेवाला है। इस भूभाग से होकर सतलज, व्यास, जैसी नदियॉ आती हैं, इसलिए उसका यह नाम उचित ही है।

वैदिक-काल की परपरा वृत्र को पानी को रोक रखनेवाला बतलाती है, जिसे इन्द्र ने अपने वज्र से मारकर पानियो को मुक्त किया। शम्बर को भी वृत्र कहा गया है। यद्यपि अपने समकालीन ऋषियो के वचनो मे वह एक दुर्दान्त असुर शत्रु, बहुत यातु (जादू) और माया रखते भी वह आदमी ही था। जैसे-जैसे समय बीतता गया, शम्बर के आदमी के रूप को लुप्त कर उसे दानव बना दिया गया। शम्बर के साथ ४० वर्षों तक जो भीषण सघर्ष चला था, उसको पुराने काल मे इन्द्र-वृत्र-युद्ध भी कहा जाता था। उस समय पौराणिक-काल की दुर्गा भवानी आर्यों मे ख्याति नहीं रखती थीं। पीछे इनकी महिमा बढी। इन्द्र को जब लोग भूल से गये, तो शम्बर-दिवोदास, वृत्र-इन्द्र के युद्ध को देवी और जलन्धर का युद्ध बना दिया गया, और जलन्धर के विकराल शरीर के पर्वताकार गिरने से इस भूमि का नाम जलन्धर रख दिया गया।

हमारे पास तक शम्बर-दिवोदास (किरात-आर्य) युद्ध की जो कुछ भी सूचना आयी, वह आर्यो के स्रोतो से ही आयी। शम्बर के लोग भी इस घटना को जरूर याद करते रहे होगे, पर उसके जानने का हमारे पास अब कोई साधन नहीं है। जहॉ तक शम्बर की जाति के लोगो का सवाल है, ४० साल के युद्ध मे लाखो की सख्या मे मरने पर भी, पहाड मे उन्हे शरण लेने के लिए बहुत जगह थी, जहॉ पर आर्य पहुँच नहीं सकते थे। पराजित होने पर वह पहाड मे और भीतर की तरफ चले गये। व्यास, रावी के ऊपरी भागो मे चम्बा-कुल्लू के इलाको मे वह बहुत समय तक आर्यो से सुरक्षित रहे, लेकिन अब वहाँ भी उनका पता केवल चम्बा के लाहुली,

लाहुल के निचले भागो और कुल्लू के मलाणा गॉव मे ही किरात-भाषा के उपयोग के कारण लगता है। यह लोग भी भाषा मे किरात-वश की ही सूचना देते हैं धर्म मे अपने दूसरे भाइयो की तरह ही हैं। किरातो की मगोलायित मुख-मुद्रा चनाब के ऊपरी भागो मे ही देखी जाती है। पर, उनसे आशा नही हो सकती, कि वह शम्बर-युद्ध सम्बन्धी अपनी प्राचीन परम्परा को रक्षित रखेगे। तो भी उनकी लोक-परम्पराओ और पुरातात्विक अवशेषो के अध्ययन की आवश्यकता है।

किरातो को निचले पहाडो से भगानेवाले आर्य थे। उनको अपने मे विलीन करने वाले या और उत्तर की ओर भगानेवाले आर्य नहीं, बल्कि उन्हीं के मध्य-एसिया के भाई-वन्द खस थे, जो मैदान से नहीं बल्कि पहाडो ही पहाड काशगर, कशकर (गिलगित), कश्मीर मे अपने खस या कश नाम की छाप छोडकर आगे बढे थे। वह किरातो की भूमि मे नेपाल तक पवेश कर गये। यह प्रवेश शान्तिपूर्वक ही नहीं रहा होगा। दोनो ही जातियॉ पशुपाल थीं। चारागाहो के लिए पशुपालो की खूनी लडाइयॉ हुआ ही करती हैं, यह ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी के मध्य-एसिया मे हूणो और शको के बारे मे हम जानते है। चीन के प्रहार से जान बचाकर भागते हूण (मगोलायित) जब अपनी भूमि से निकल पशुपाल शको की भूमि मे आये, तो दोनो मे खूनी सघर्ष हुए जिनमे असफल हो शक अपनी भूमि को छोडने के लिए मजबूर हुए, और भागते हुए हिन्दुस्तान तक पहुँचे। खसो और किरातो के भी आरभिक सघर्ष हुए होगे। किरात जिन उपत्यकाओ को छोडते गये, खस उन पर अधिकार करते गये। जो किरात आत्म-समर्पण करने के लिए तैयार हुए, वह वहीं रह कर समयान्तर मे खस बन गये।

शम्बर के वशजो का यही परिणाम हुआ।

अध्याय ६
दिवोदास
१ पूर्वकाल के आर्य-नेता
१ दध्यड (दधीच)

दिवोदास के पहले मनु आदि राजाओ के बारे मे हम बतला चुके हैं। दिवोदास के पुत्र या सन्तान परुच्छेप ने निम्न प्राचीन आर्य नेताओ का नाम लिया है [1] (१।१३६।६) दध्यड (दधीचि), अगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु। इनमे अत्रि, कण्व राजा थे, इसमे सन्देह है।

२ रुम, ३ रुशम, ४. श्यावाक, ५. कृप

कुछ और भी राजाओ का नाम ऋग्वेद मे मिलता है, पर यह नहीं कहा जा सकता, कि वह दिवोदास से पहले हुए या बाद मे। मेधातिथि[2] (८।३।१२) ने रुशमश्यावककृप की इद्र द्वारा रक्षा करने की बात कही है। देवातिथि ने[3] (८।४।२) भी रुम, रुशम, श्यावक, कृप के रक्षण की बात कही है। पिजवन भी कोई पुराना वशस्थापक था, जिसके ही कुल मे दिवोदास का पिता वध्र्यश्व और पुत्र सुदास पैदा हुए। पिजवन के बारे मे इससे अधिक कोई सूचना हमे नहीं मिलती।

६ वध्र्यश्व

वध्र्यश्व के साथ हमारा पैर इतिहास की ठोस भूमि पर पडता है। भरद्वाज और सुमित्र ने इसका उल्लेख किया है। सुमित्र अपने को वध्र्यश्व की सन्तान (वाध्र्यश्व) कहता है। उसके कहे अनुसार[4] (१०।६९।१, २।११।१२) वध्र्यश्व द्वारा स्थापित अग्नि दर्शनीय था। अग्नि सप्तसिन् के आर्यों के लिए जीता-जागता देवता था। हरेक घर मे अग्नि की स्थापना और पूजा होती थी आर्य इस साकार देवता के बडे भक्त थे। सुमित्र के अनुसार (२) वध्र्यश्व का अग्नि घृतवर्ध था। पुराने जमाने मे उसे वध्र्यश्व ने जलाया था। जैसे पिता पुत्र की, उसी तरह वध्र्यश्व अग्नि की सपर्या (सेवा) करता था (१०)। वध्र्यश्व की अग्नि ने बराबर शत्रुओ को जीतने मे सहायता की। वध्र्यश्व की अग्नि वृत्रहा (शत्रु-नाशक) है (१२)। सुमित्र के इन वचनो से पता लगता है, कि वध्र्यश्व एक शक्तिशाली आर्य-वीर था। उसने बहुत से शत्रुओ पर विजय प्राप्त की थी। शत्रु के लिए वृत्र शब्द का उपयोग बतलाता है, कि वह दस्यु रहे होगे। वध्र्यश्व के पुत्र दिवोदास के प्रधान शत्रु यद्यपि दस्यु थे, पर उन्हे हाथ मे करने के लिए आर्यों से भी उसे लडना पडा था। वध्र्यश्व आरभिक विजेता था, जैसा कि इतिहास मे हम सिकन्दर से पहले फिलिप, समुद्रगुप्त से पहले चन्द्रगुप्त को पाते हैं। पुत्र की विजयो के सामने पिता की कीर्ति धूमिल हो गयी। वध्र्यश्व जिस भरत-पुरु-त्रित्सु जन का था, उसका निवास रावी सतलुज के बीच मे था। भरद्वाज के कथन[5] (६।६१।१) के अनुसार सरस्वती ने वध्र्यश्व को प्रतापी पुत्र दिवोदास प्रदान किया। जान पडता है, अपनी विजयो के सिलसिले मे वह सतलुज से पूर्व सरस्वती के किनारे पहुँचा, वहीं

सरस्वती-तट पर दिवोदास का जन्म हुआ। सरस्वती सप्तसिन्धु की पवित्र नदी थी। उसका माहात्म्य आज की गगा जैसा था।

भरद्वाज— दिवोदास की सफलताओ के बारे मे कहने से पहले भरद्वाज के बारे मे कुछ विशेष तौर से कहना आवश्यक है, क्योकि भरद्वाज ही दिवोदास के चाणक्य, अपने समय के सबसे प्रभावशाली पुरोहित थे। वह ऊँचे दर्जे के कवि थे। उनकी सैकडो ऋचाएँ ऋग्वेद के छठे मण्डल मे मिलती हैं, जिसका नाम ही भरद्वाज-मण्डल है। भरद्वाज भरतो के ही नहीं, दूसरे जनो के राजाओ के भी श्रद्धाभाजन थे। जिन राजाओ ने उन्हे बडे-बडे दान दिये, उनका उल्लेख स्वय, उनके पुत्र गर्ग तथा दूसरे ऋषियो ने किया है। इनसे साफ है, कि ये सभी राजा भरद्वाज और दिवोदास के समकालीन थे।

७ अभ्यावर्ती चायमान

पार्थवो के इस सम्राट् ने वधू के साथ एक रथ और बीस गाये दीं[१] (६।२७।८)। वधू दासी को भी कहा करते थे। चायमान ने दासी के साथ रथ दिया था।

८ सुमीढ

भरद्वाज को सुमीढ ने दो घोडियॉ और सौ गाये, पेरुक ने पक्व अन्न और शाड ने हिरण्यसहित दस रथ दिये[२] (६।६३।६)। सबसे अधिक दान शाड का था।

६ पुरुणीथ

नोधा गौतम[३] (१।५६।७) के अनुसार पुरुनीथ शातवनेय ने भी भरद्वाज को दान दिया। शतवन शायद किसी स्थान का नाम था।

१० प्रस्तोक

गर्ग के अनुसार[४] (६।४७।२२) इसने "दस कोश और दस घोडे दिये।" कोश आजकल खजाने को कहा जाता है, लेकिन उस समय यह कोई निश्चित निधि थी। यहीं गर्ग ने यह भी बतलाया है, कि "दिवोदास अतिथिग्व से शम्बर का धन हमने पाया।" शम्बर से जो धन मिला था, सभी भरद्वाज को कैसे दिया जा सकता था, उसके और भी भागीदार थे। शायद इसीलिए गर्ग अगली ऋचा मे कहते हैं— "मैंने दिवोदास से दस घोडे, दस कोश, दस वस्त्र-भोजन, और दस हिरण्यपिण्ड (सोने के डले) पाये।"

दिवोदास के मरने के बाद यद्यपि भरद्वाज या उनके पुत्र गर्ग को पुरोहिती (प्रधानमन्त्रित्व) नहीं मिली, और दिवोदास के प्रतापी पुत्र सुदास के पुरोहित वसिष्ठ बने, पर, जान पडता है, इसके कारण वसिष्ठ और भरद्वाज का वैमनस्य उतना उग्र नहीं हुआ, जितना कि वसिष्ठ का स्थान विश्वामित्र के लेने पर। वसिष्ठ सन्तानो मे भी कडवाहट का पता नहीं लगता, जैसा कि मृळीक वासिष्ठ की इस ऋचा से मालूम होता है[५] (१०।१५०।५)— "अग्नि ने अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व की रक्षा की", अग्नि को वसिष्ठ आह्वान करते हैं।

इन उद्धरणो से मालूम होगा, कि भरद्वाज अनेक जनो मे प्रभाव रखते थे। उन्होने अपने इस प्रभाव का शम्बर-युद्ध मे दिवोदास के पक्ष मे पूरी तौर से इस्तेमाल किया था। बाहरी शत्रुओ के इस भयकर सघर्ष के समय आर्यों के भीतरी सघर्ष को यदि स्थगित न किया गया होता, तो इसमें सन्देह है, कि ४० वर्ष की लडाइयो के बाद भी शम्बर पर विजय प्राप्त की जा सकी होती। इससे भरद्वाज का महत्त्व मालूम होता है।

११ कुत्स आर्जुनेय, १२ श्रुतर्य, १३. तुर्वीति, १४ दभीति, १५. ध्वसति, १६ पुरुषति।

आर्य सेनानियो के बारे मे हम कुछ बतला चुके हैं, जिनमे कुत्स आर्जुनेय मुख्य था। भरद्वाज ने" (६।२०।५) सारथी (सेनापति) कुत्स के लिए स्तुति की है। वसुक्र ऋषि ने तो" (१०।२६।२) कहा है, कि इन्द्र स्वय कुत्स के साथ रथ पर बैठकर लडने गये। क्या इसी कारण तो कुत्स को सारथी नहीं कहा गया ? कुत्स आगिरस (कुत्स आर्जुनेय से भिन्न)" (१।११२।६, २३) के अनुसार "इन्द्र ने वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य, कुत्स आर्जुनेय, तुर्वीति और दभीति की रक्षा की थी।" ये सभी समकालीन थे, यह कहना मुश्किल है। भरद्वाज" (६।१६।१३) एक ही वाक्य मे कुत्स, आयु और अतिथिग्व की रक्षा करने की बात करते हैं। अतिथिग्व दिवोदास था, कुत्स आर्जुनेय को हम जानते हैं, आयु भी इसी समय का कोई आर्य योद्धा रहा होगा।

१७ देवक मान्यमान

शम्बर और उसकी जाति वालो के अतिरिक्त एक आर्य नाम वाला व्यक्ति देवक मान्यमान है, जिसे एक ही ऋचा मे शम्बर के साथ मारे जाने का उल्लेख वसिष्ठ ने किया है" (७।१८।२०)। अन्य आर्य राजाओ या जननायको के सघर्ष का जो उल्लेख ऋग्वेद मे है, उनके बारे मे हम निश्चय नहीं कह सकते, कि वह दिवोदास के समकालीन थे। कुछ उनमे समकालीन रहे होगे, और कुछ उसके बाद के।

१८. सुश्रवा

भव्य ने इन्द्र की महिमा गाते" (१।५३।६) बतलाया है, कि उसने सुश्रवा के ऊपर आक्रमण करनेवाले दो-दस (बीस) जन-राजाओ को ६० हजार ६६ आदमियो के साथ हराया। यह बीस जन-राजा (जन-राज) कौन थे, और सुश्रवा कौन था ? भव्य ही आगे कहते हैं" (१।५३।१०)— "तुम (इन्द्र) ने सुश्रवा की रक्षा की (१०)।" सुश्रवा के बारे मे इससे अधिक हमे कुछ मालूम नहीं है।

१६ तुर्वयाण

भव्य आगिरस ने सुश्रवा के साथ तुर्वयाण की भी इन्द्र द्वारा रक्षा की बात कही है (१०), और कुत्स, अतिथिग्व और आयु को तरुण महान् राजा सुश्रवा के अधीन होने की बात बतलायी है। इससे सुश्रवा के बारे मे हमारी जिज्ञासा बढ जाती है, परन्तु आगे कोई समाधान नहीं मिलता।

२० ऋणचय

यह रुशम जन का बहुत ही धनाढ्य राजा था, जिसने वभ्रु" — (५।३०।१२, १४) को चार हजार गाये दीं — "रुशमो के राजा ने चार हजार गाये दीं, ऋणचय के धन को मैंने ग्रहण किया। वह रात मैंने रुशमो के राजा ऋणचय के पास बितायी।" चार हजार गायो के (आज ८ लाख रूपये) दान देने वाले राजा का वैभव असाधारण रहा होगा।

२१ पाकस्थामा कौरयाण

कण्व ऋषि दिवोदास के समकालीन थे, और तुर्वश-यदु जनो के पुरोहित होने से उनके सहायक और उनके पुत्र सुदास के विरोधियो के समर्थक रहे होगे, यदि वह तब भी जिन्दा थे। उनके पुत्र मेधातिथि (मेध्यातिथि) ने कुरयाण के पुत्र पाकस्थामा की महिमा गायी" (८।३।२१, २२) है— "मरुत् देवताओ ने जो दिया था, उसे पाकस्थामा कौरयाण ने मुझे दिया। पाकस्थामा ने सुन्दर धुरोवाला लाल रग का रथ दिया। उसने वस्त्र और शक्तिदायक अभ्यञ्जन दिये। लाल (रथ) के दाता उस भोज (पाकस्थामा) का मैं वर्णन करता हूँ (२४)। यदु-तुर्वश जनो की भूमि के

पास ही पाकस्थामा की भूमि रही होगी। कुरयाण उसके दादा का नाम होगा अथवा पिता या पूर्वज का।

२२. देवश्रवा, २३ देववात

देवश्रवा और देववात भारत दो रिश्ता भाई थे यह भरतजन के थे। पीछे हुए भरत राजा का ऋग्वेद मे कोई वर्णन नही आता। देववात की सन्तान सुदास का उल्लेख वामदेव ने भी किया है" (४।१५।४) इसलिए यह देववात पहले ही का कोई पुरुष है। देवश्रवा और देववात दोनो भाई अग्नि देवता के परम उपासक थे जिनकी महिमा गाते हुए दोनो ने कहा है" (३।२३।१-५)— 'अग्नि मथित हुआ (यह) युवा अग्नि अध्वर का नेता गृह मे है। वनो को विनाश करते भी यह अजेय अमृत जातवेदा है। भरतो की सन्तान देवश्रवा और देववात ने सुदक्ष धनवान् अग्नि को मथा। दस अगुलियो ने पुराना सुजात माताओ मे प्रिय अग्नि को पैदा किया। देववात देवश्रवा इस अग्नि की शुभ स्तुति करो। पृथ्वी के श्रेष्ठ इन सम्पन्न स्थान मे स्थापित किया। हे अग्नि तुम दृषद्वती, आपया सरस्वती के तट पर धनसहित प्रज्वलित रहो।'

लकडी के दो पाटो वाली अरणियो मे मथ (रगड) कर अग्नि को उत्पन्न किया जाता था उसी का जिक्र यहाँ आया है। इन ऋचाओ मे वर्णित दृषद्वती आज की घग्घर नदी है सरस्वती आज भी शिवालिक से कुरुक्षेत्र होकर बहने वाली इसी नाम से पुकारी जाती है। इन दोनो के बीच की नदी मरकण्डा ही आपया है।

२४ सृञ्जय दैववात, २५. महिराध सार्ञ्जय

उपर्युक्त दैववात के पुत्र सृञ्जय का उल्लेख भरद्वाज ने" (६।२७।७) किया है— 'उस (इन्द्र) ने तुर्वश को सृञ्जय के लिए प्रदान किया वृचीवतो को दैववात के लिए दिया।' तुर्वश और वृचीवतो को दैववात सृञ्जय के वश मे कर देना यहाँ अभिप्रेत है। दैववात अपत्य वाचक है मुख्य नाम सृञ्जय है यह बात वामदेव के इस कथन से स्पष्ट हो जाती है" (४।१५।४)— 'यह जो अग्नि पूर्व मे दैववात सृञ्जय के लिए प्रज्वलित हुआ।' भरद्वाज पुत्र गर्ग के कथन" (६।४७।२५) से यह भी पता लगता है, कि 'सृञ्जय पुत्र (सार्ञ्जय) ने भरद्वाजो की पूजा की।' यह सृञ्जय पुत्र कौन था ? महिराध।

२६ पुरुकुत्स

कुत्स नामधारी तीन व्यक्तियो का पता ऋचाओ से मिलता है यह हम बतला आये हैं। यह कुत्स पुरुजन का था इसीलिए इसे पुरुकुत्स कहा गया। इसका पुत्र त्रसदस्यु सुदास का समकालीन था, इसलिए पिता दिवोदास का समकालीन रहा होगा। भरद्वाज ने इसकी महिमा गाई इससे भी इसी बात का समर्थन होता है। भरद्वाज के कहने" (६।२०।१०) से पता लगता है, कि इन्द्र ने पुरुकुत्स के लिए दासो की सात शारदी पुरों को दर्दराया शरदकालीन पुरो के कहने से जान पडता है, कि पहाड के लोग उस समय सर्दियो से बचने के लिए तराई की गरम जगहो मे आ अपने दुर्गबद्ध स्थानो मे रहते थे। कुमाऊँ-गढवाल में ठण्डी जगहो के निवासियो का अपने पशुओ के साथ तराई मे घमतप्पी के लिए आना अब भी देखा जाता है। पुरुकुत्स ने किरातो की ऐसी सात शारदी पुरों को लूटा होगा। वसिष्ठ के भाई अगस्त्य" (१।१७४।२) की ऋचा मे भी इस बात का उल्लेख मिलता है— 'इन्द्र ने मृध्रवाच (म्लेच्छ) के सात शारदी पुरो को नष्ट किया और युवा पुरुकुत्स के लिए अनवद्य अरणा (नदी) को देकर वृत्र (शत्रु) का वध किया।' इससे पता लगता है, कि सात पुरियो को लेते उनके पास बहने वाली नदी को भी पुरुकुत्स ने दखल कर लिया। नोधा गोतम भी यही बात" (१।६३।७) दुहराते हैं— 'इन्द्र ने पुरुकुत्स के लिए

सात पुरो को ध्वस्त किया।" कुत्स आगिरस[२८] (१।११२।७) बतलाते हैं, कि अश्विद्वय ने पृष्णिगु पुरुकुत्स की रक्षा की। पृष्णिगु विचित्र गौओ वाले पुरुकुत्स का विशेषण है, या वह एक अलग राजा था ?

२७. त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य

यह सुदास के पुरोहित वसिष्ठ के अनुसार[२९] (७।१६।३) पुरुकुत्स का पुत्र था— "इन्द्र तुमने सुदास की रक्षा की, वृत्रहत्या (शबर-युद्ध) मे पौरुकुत्सि त्रसदस्यु की रक्षा की।" त्रसदस्यु ने स्वय कहा है,[३०] (४।४२।८—६)— "दौर्गह त्रसदस्यु के बन्धन मे रहते समय सात ऋषि पितर थे, उन्होने इस त्रसदस्यु के यज्ञ को कराया। पुरुकुत्सानी ने इन्द्र वरुण को हव्य प्रदान किया। तब राजा त्रसदस्यु को शत्रुनाशक अर्धदेव मिला।" पुरुकुत्सानी त्रसदस्यु की मॉ रही होगी। इसका नाम ही बतलाता है, कि यह दस्युओ के लिए त्रासकारी था। अर्धदेव क्या इसके पुत्र का नाम था ? त्रसदस्यु को दौर्गह कहा गया है, दुर्गह कोई पूर्वज रहा होगा ? सवरण[३१] (५।३३।८) ने गैरिक्षित पौरुकुत्स्य से हिरण्ययुक्त दस सफेद घोडो के पाने का उल्लेख किया है। गैरिक्षित का मतलब है गिरि मे रहने वाला। शायद उत्तर (व्यास-सतलुज के बीच) के पहाडो मे त्रसदस्यु का कोई दुर्ग था। वामदेव के कहने[३२] (४।३८।१) से मालूम होता है कि त्रसदस्यु भारी दाता था। त्रसदस्यु से दान पाने वालो मे सौभरि भी थे, जिन्होने कहा है[३३] (८।१६।३६, ३७)— "अतिमहान् अर्य, सत्पति पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु ने मुझे पचास वधुये दीं, और सूवास्तु नदी के किनारे तीनसत्तर (२१०) श्यामा गौएँ दीं।" वधुओ का अर्थ यहॉ बहुए नहीं है। सोभरि को इतनी वधुओ की आवश्यकता क्या थी ? वह दासियॉ थीं, जो पर्वतवासियो की लडकियॉ रही होगी। सौभरि ने इसी सूक्त मे[३४] (८।१६।३२) मे कहा है— "अग्नि सम्राट् त्रसदस्यु का रक्षक है।" सम्राट शब्द का अभी उतना प्रचार नहीं था, और न उसका वैसा भारी अर्थ उस समय लिया जाता था, जैसा कि आजकल पुरुकुत्स का पुत्र होने के कारण त्रसदस्यु पुरु-जन का था, जो कि सतलुज-व्यास के पूर्व मे पहाड तक उस समय निवास करता था।

२८ कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र

इसी के नाम मे पहले पहल हम कुरु शब्द का उपयोग पाते हैं। पुरुकुत्स का पौत्र होने के कारण यह पुरु और सुदास के समय भी मौजूद और शायद उसका शत्रु भी था। इसका पुरोहित कवष ऐंलूष था, जो दाशराज्ञ-युद्ध मे पानी मे डूबकर मरा था। कवष ने अपने यजमान की उदारता का[३५] (१०।३२।६ और १०।३३।४) उल्लेख किया है। "दाता कुरुश्रवण के दिये हुए धन भद्र हैं। मै (कवष ऋषि) ने त्रसदस्यु के पुत्र राजा कुरुश्रवण से याचना की, जो कि दाताओ मे बहुत बडा है।

२. दिवोदास के कार्य

१ दिवोदास अतिथिग्व

दिवोदास को अपने आर्य जनो के साथ भी पहिले कुछ सघर्ष करना पडा था, लेकिन उतना नहीं, जितना कि उसके पुत्र सुदास को। यह हमे मालूम ही है, कि दस्युओ के साथ लोहा लेने वाले आर्य-नायको मे कुत्स आर्जुनेय, ऋजिश्वा, वैदथी आदि भी थे। हम यह भी बतला चुके हैं, कि कुत्स आर्जुनेय शायद दिवोदास का सेनापति था। पञ्चजनो में तुर्वश और यदु ने पश्चिम से आकर दस्युओ से लोहा लिया था। जान पडता है, तुर्वश और यदु ने शम्बर से निर्णायक युद्ध लडने के पहले ही दिवोदास से समझौता कर लिया था। यह समझौता बिल्कुल शान्तिपूर्वक नहीं

हुआ था क्योकि दिवोदास के मरने के वाद उसके उत्तराधिकारी सुदास के साथ लडने वाले दस राजाओ मे यह दोनो जन मुख्य थे। जहाँ तक दिवोदास का सम्बन्ध है, वसिष्ठ के अनुसार[11] (७।१६।८) तुर्वश और याद्व (यदु) ने अतिथिग्व की अधीनता स्वीकार की थी। अमहीयु आगिरस[12] (६।६१।२) ने भी सोम की महिमा गाते हुए कहा है, कि उसने तुर्वश और यदु को दिवोदास के वश में कर दिया।

शम्वर के अतिरिक्त कुछ और दस्यु-शासको को दिवोदास ने हराया था, जिनमे वर्ची तो शम्वर के साथ ही उदव्रज के महायुद्ध मे मारा गया। सव्य आगिरस कहते हैं[14] (१।५३।८)— करञ्ज और पर्णय को अतिथिग्व (दिवोदास) के लिए इन्द्र ने मारा। वगृद के सौ पुरो को ऋजिश्वा ने तोडा। सौ पुरो का तोड़ने वाला दिवोदास था। वगृद शम्वर का दूसरा नाम नहीं है। सव्य की सौ सख्या का अर्थ वहुसख्यक है। किसी अज्ञात ऋषि की एक ऋचा[15] (१०।४८।८) मे इन्द्र से कहलाया गया है— "मैंने गुँगुओ से अतिथिग्व (दिवोदास) को अन्न-धन दिलवाया, पर्णय और करञ्ज को मारा"। गुँगु जान पड़ता है, किसी अनार्य कवीले का नाम था।

दिवोदास देवो का प्रिय था, यद्यपि उसने अशोक की तरह "देवाना प्रिय" की उपाधि नहीं धारण की। उसके पुत्र ने ऋचाओं को वनाकर ऋषियो की सूची मे नाम लिखवाया, और पौत्र या दूसरा पुत्र परुच्छेप भी ऋषि था, लेकिन, दिवोदास की कोई ऋचा नहीं मिलती। तो भी देवताओ का साक्षात्कार उसे होता था। दीर्घतमा के पुत्र कक्षीवान् के अनुसार[16] (१।११६।८) दोनो अश्वि-देवता दिवोदास के पास आये थे। कुत्स आगिरस के अनुसार[17] (१।११२।१४) अश्विद्वय ने शम्वर-हत्या में अतिथिग्व दिवोदास की रक्षा की थी। कक्षीवान्[17] (१।११६।४) सिर्फ अश्विद्वय द्वारा दिवोदास की भारी रक्षा करने की ही वात नहीं करते, वल्कि यह भी सूचित करते हैं, कि उन्होने उसे वचाया। भुज्यु शायद दिवोदास का कोई सहकारी आर्यनायक था।

२ शम्वर-हत्या

शम्वर के वर्णन में हम इस महायुद्ध के वारे में भी वतला आये हैं। इसमे लाख के करीव दस्युओ के मारे जाने की वात अतिरञ्जित है। दिवोदास के पुरोहित (प्रधानमन्त्री) भरद्वाज के प्रभाव की वात हम वतला चुके हैं। इसमे शक नहीं, आर्यजनों मे इस समय जो एकता थी, उसका वहुत कुछ श्रेय भरद्वाज को है। जहाँ तक हथियार का सम्बन्ध है, जिसके ही वल पर शम्वर को जीता गया था उसका श्रेय दिवोदास को ही देना होगा। ऋषि अपने देवताओ को दूर स्वर्ग मे रहकर तमाशा देखने वाले नहीं मानते थे। देवता सघर्षों मे उनके साथ रहते सीधे भाग लेते थे। कुत्स आर्जुनेय के रथ पर इन्द्र स्वय चढकर शुष्ण से लडने गया था। देवताओ के साथ यह सम्पर्क कैसे स्थापित होता था, इसका स्पष्ट वर्णन हमे नहीं मिलता। लेकिन, वामदेव ने अपनी ऋचाओ मे इन्द्र को उत्तम पुरुष "मैं" में जिस तरह वर्णित किया है, उससे जान पडता है, कि देवता शरीर पर आया करते थे। गढवाल मे पाण्डव-नृत्य होते हैं। वहाँ पञ्च पाण्डव और द्रौपदी जीवन भर के लिए एक व्यक्ति को चुन लेते हैं, और उनके शरीर पर आकर सारी वात उत्तम पुरुष में वतलाते हैं। वह पाण्डव-नृत्य मे भी अपने वाहन के शरीर द्वारा शामिल होते हैं। किन्नर देश मे अव भी देवताओं के साथ उनके भक्तो का सजीव सम्बन्ध देखा जाता है। वहाँ के एक देवता ने तो एक वडे अग्रेज अफसर के ऊपर इतना प्रभाव डाला था, कि उसने उसके लिए राजा से कहकर जमीन की माफी दिलवायी। यह ठीक है, कि इसके भीतर यदि कोई वास्तविकता है, तो यही, कि आदमी हैपनाटिज्म मे आकर वैसी चेष्टाएँ करने लगता है, और चित्त की अत्यन्त एकाग्रता के कारण उसकी कुछ वाते सही भी निकलती हैं। इन और दूसरे

स्थानो मे आधुनिक उच्च-शिक्षा-प्राप्त पुरुषो को भी आज इसके बारे मे अकल बेच खाते देखते हैं, तो आज से तीन हजार वर्ष पहले इन बातो पर कितना विश्वास किया जाता होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। इन्द्र, अग्नि, सोम, अश्विद्वय आदि वेदकालीन आर्य देवता ऐसे ही किसी ढग से अपने भक्तो के सहायक होते थे।

भरद्वाज के अनुसार[७३] (६।२६।३) इन्द्र ने अतिथिग्व (दिवोदास) की महिमा बढाते अमर्मा (शम्बर) के सिर को काटा। परुच्छेप दैवोदासि[७४] (१।१३०।७) के अनुसार— "इन्द्र ने दिवोदास के लिए ६० पुर तोडे, अतिथिग्व के लिए शम्बर को पहाड से नीचे मारा।"

शम्बर-हत्या के प्रत्यक्षदर्शी भरद्वाज कहते हैं—

"अग्नि, तुमने सोम छानने वाले दिवोदास का बहुत श्रेष्ठ धन, भरद्वाज को भी दिया[७५] (६।१६।५)।"

"वृत्रहा (शत्रुनाशक) अग्नि दिवोदास का सच्चा पति है"[७६] (६।१६।१९)।"

"इन्द्र, तुमने दिवोदास के लिए शम्बर को मारा। यह सोम छना है, इसे पीयो"[७७] (६।४३।१)।

इन वचनो से पता लगता है, कि शम्बर को पहाड के नीचे लडाई लडनी पडी। युद्ध का स्थान उदव्रज था, इसे ऋषि गर्ग ने बतलाया है*।

भरद्वाज के समकालीन वामदेव भी कहते हैं[७८] (४।२६।३)— "मैं (इन्द्र) ने शम्बर की ९९ पुरियो को तोडा, और सौवीं को दिवोदास अतिथिग्व को दिया।" इस प्रकार सौवीं पुरी इस दिवोदास के हाथ मे पहाडो मे उसके और उसके वशजो के हाथ मे रही, जिससे वह पहाड के लोगो पर अपना प्रभुत्व रखते थे। शम्बर की भूमि का देश सुमन्त (धन-सम्पन्न) था। यह तो निश्चय ही है, कि उस समय की सबसे उपयोगी धातु ताम्र—जिसे आर्य अयस् कहते थे— इसी तरफ से आर्यों के पास आती थी। गाय-भेड-बकरी भी पहाड निवासियो के पास बहुत थी।

ऋचाओ के जगल मे बिखरी ऐतिहासिक सूचनाओ से मालूम होता है, कि दिवोदास ओर सुदास यद्यपि अपने काल के सबसे बडे आर्य-नायक थे, किन्तु वही एक मात्र नायक नहीं थे। दूसरे भी वैभव मे न नगण्य थे, न पराक्रम मे। पुरुओ मे पुरुकुत्स, त्रसदस्यु और कुरुश्रवण अपने समय के प्रतापी राजा थे, जो हजारो का दान देते थे। पुरुओ की कीर्ति बढाने मे इन्होने बहुत काम किया था, और इसी के कारण वेद-काल के बाद पुरु-कुरु वश का प्रताप बढा। यद्यपि दस हजार ऋचाओ के जगल मे से हमे सूई की तरह ऐतिहासिक तथ्यो को ढूँढना पडता है, पर वह अधिक विश्वसनीय है। उसके बाद की परम्परा महाभारत, रामायण और पुराणो मे मिलती है, जो अधिक व्यवस्थित रूप मे होने पर भी उतनी विश्वसनीय नहीं है। तो भी, सप्तसिन्धु के बाद मे गगा-जमुना की उपत्यकाओ से कुरुओ की प्रधानता स्थापित हुई।

३ हथियार

ऋग्वेदिक आर्य ताम्र-युग मे थे, जिसमे सिन्धु-उपत्यका के नागरिक उससे डेढ हजार वर्ष पहले से रहते आये थे। अयस्, लोह, अश्मन् तॉबे के नाम थे। इसी के इषु (वाण), कुलिश या वज्र (गदा), परशु (फरसा) जैसे युद्ध के हथियार बनते थे। उनके निषग (तूणीर) और ज्या चमडे के थे। असैनिक हथियारो मे वाशी (बसूला), आदि तॉबे के थे।

* देखो अध्याय ८।३ (पृष्ठ ५४)

१ इषु, २ निषग

प्रजापति पुत्र ऋषि यश ने" (१०।१०३।२, ३) कहा है—"योद्धा पुरुषो, इन्द्र की सहायता पा विजयी वनो, शत्रुओ को पराजित करो। रुलानेवाले जागरूक विजयी अजेय दुर्धर्ष (वीर) हाथ मे वाण लिये हैं।।२।।

"हाथ मे वाण लिये तूणीरवालो के गण के साथ स्वयवशी इन्द्र युद्ध मे रहते हैं। फेके वाणो द्वारा शत्रु को जीतनेवाले सोमपायी और श्रेष्ठ धनुर्धर इन्द्र, शत्रुओ को परास्त करते हैं।"

३ धनुष, ४ ज्या, ५ वर्म

भरद्वाज के पुत्र पायु हथियारों की बडी प्रशसा करते हैं। आखिर उनके पिता शम्वर विजता दिवोदास के पुरोहित (प्रधानमन्त्री) भी तो थे। अपने पिता की तरह ही दिवोदास के युद्ध में उन्हे भी सर्वस्व की वाजी लगानी पडी होगी। उन्होने वर्म, कवच, धनुष, इषुधि (तर्कश) की तारीफ की है। ज्या के वारे मे कहते हैं" (६।७५।१-४)— यह ज्या युद्ध से पार ले जाने की इच्छा करती है मानो प्रिय वचन वोलने के लिए ही धनुर्धर के कान के पास आती है, जैसे स्त्री प्रिय सखा का आलिगन करती वात करती है ।।३।।

"धनुष के दोनो छोर विमनस्क स्त्री की तरह हो शत्रु के ऊपर आक्रमण करते समय, पुत्र का माता की तरह रक्षा करें, और अच्छी तरह जानते (दिवोदास के) शत्रुओ को वेध डाले ।।४।।"

सुदास ऋग्वेद का एक महान् विजेता था। वह यदि हथियारो की महिमा गाये, तो आश्चर्य क्या ? उसने अपने सूक्त" (१०।१३३।१) की सात मे से छ ऋचाओ मे यही प्रार्थना की है, कि दूसरो (शत्रुओ) की ज्या छिन्न भिन्न हो जाये— "अन्येषा ज्या का अधिधन्वपु नभन्ता।"

६ कुलिश

विश्वामित्र ने कुलिश की उपमा देते हुए कहा है" (३।२।१)— "हम यज्ञ वढाने वाले वैश्वानर (अग्नि) के लिए पवित्र घृत की तरह स्तुति करेगे। जैसे कुलिश (कुल्हाडा) रथ को वनाता है वैसे ही मनुष्य और ऋत्विक् देवो को बुलाते दो प्रकार के (गार्हपत्य और आहवनीय) अग्नि का सस्कार करते हैं।"

७. परशु

कुलिश केवल वज्र या गदा को ही नहीं कहा जाता था, वह कुल्हाडे का भी पर्याय था। परशु लडाई का फरसा था, जिसे परशुराम के नाम में भी हम देखते हैं। विश्वामित्र ने परशु का उल्लेख करते हुए कहा है" (३।५३।२२)— "हे इन्द्र, जैसे फरसे को पाकर शिम्वल (वृक्ष) दुखी होता है, वैसे ही हमारे शत्रु सन्तप्त हो। जैसे सेमल का वृक्ष गिर जाता है, जैसे हॉडी (उखा) उवलकर फेन गिराती है, वैसे ही हमारे शत्रु गिर जाये।"

८ वाशी, ९ ऋष्टि

वाशी आजकल वसूले को कहते हैं। इसका इस्तेमाल उस समय भी होता था। ऋषि श्यावास्य की ऋचा" (५।५७।२) है— "हे सुवुद्धि मनीषी मरुतो, तुम वाशी-सहित, ऋष्टि (छुरी)-सहित, सुन्दर धनुष-युक्त, वाण-युक्त, तूणीरधारी सुन्दर घोडे, सुन्दर रथवाले, सुन्दर आयुध के साथ तैयार होओ।" मरीचि-पुत्र कश्यप भी" (८।२९।३) वाशी का उल्लेख करते हैं— "देवो मे निश्चल (वह) एक आयसी (तॉवे की) वाशी (वसूला) हाथ मे धारण करता है।"

१० वज्र

वज्र को कुलिश भी कहते हैं। यह एक तरह की गदा थी, जो पाषाणयुग से चली आयी थी। दधीचि विदथ-पुत्र की हड्डियो का इन्द्र ने वज्र बनाया, यह कथा पुराणो मे आती है। कश्यप ने[५६] (८।२६।४) कहा है— "एक (देव) हाथ मे रक्खे वज्र को धारण करता है, उससे वृत्रो (शत्रुओ) का नाश करता है।"

११ अत्क

यह एक परिधान का भी नाम था, पर शुनहोत्र[५७] (६।३३।३) के कथन से किसी हथियार का भी यह नाम मालूम होता है— "हे सूर्य इन्द्र, तुम आर्य और दास दोनो अमित्रो वृत्रो (शत्रुओ) को मानो तेज धारावाले अत्को से मारते हो, युद्ध मे मनुष्यो को विदारण करते हो।"

१२ नाव

हल के बारे मे हम वामदेव ऋषि के प्रकरण मे बतला आये हैं। आर्य नावो का इस्तेमाल करते थे, व्यापार की ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक नहीं थी। उनकी नावे अधिकतर साधारण यातायात के साधन के तौर पर इस्तेमाल होती थीं। दीर्घतमा-सन्तान कक्षीवान् की ऋचा[५८] (१।११६।५) मे सौ पतवारो वाली (शतारित्रा) नाव का उल्लेख आया है— "हे दोनो अश्विनीकुमारो, तुमने निरालम्ब, अयुक्त स्थान, अगाध समुद्र मे सौ पतवारो वाली नाव पर बैठाकर डूबते भुज्यु को पार किया।"

अध्याय १०

सुदास

१ सुदास वीतहव्य

एक महाप्रतापी राजा के बाद उसका पुत्र उससे भी अधिक प्रतापी हो, ऐसा इतिहास मे कम देखा जाता है। सुदास अपवाद रूप से प्रतापी पुत्र था, जिसने दिवोदास की सफलताओ को बहुत आगे बढाया। दिवोदास ने पहाड के दस्युओ के सकट को नष्ट करके सप्तसिन्धु को आर्यों के लिए सुरक्षित ही नहीं कर दिया, वल्कि हिमालय की समृद्ध चारागाहो और उपत्यकाओ, उसकी खानो का रास्ता भी खोल दिया, और सिन्धु से सरस्वती तक के आर्य-जनो मे एकता स्थापित करके उसे एक राज्य का रूप दे दिया। लेकिन, सारे आर्यजन इसके लिए तैयार नहीं थे, इसलिए दिवोदास के मरते ही उन्होने हर जगह सिर उठाया। इसके लिए सुदास को अपने पिता से भी अधिक सघर्ष करना पडा। सुदास और दाशराज्ञ-युद्ध के सम्बन्ध की बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री ऋग्वेद मे मिलती है। वसिष्ठ का एक पूरा सूक्त (७।१८) इसी के वर्णन मे है। त्रित्सु जन भी पहले विरुद्ध था। त्रित्सु-भरत के वैभव के लिए ही उसने सघर्ष किया था। पृथु और पर्शु जन भी उसके सहायक थे। पृथु और पर्शु नाम के जन ईरानियो मे भी मिलते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए, कि वैदिक पृथु-पर्शु पीछे ईरान मे देखे जानेवाले पर्सियन और पार्थियन जन हैं। ईरानी और सप्तसिन्धु के आर्य एक ही वश की दो शाखाएँ थीं। दोनो के एक जगह रहने के समय प्राचीन पृथु-पर्शु जन के ही कुछ लोग ईरान मे गये, और कुछ सप्तसिन्धु मे आये, यह असम्भव नहीं है। सुदास के सहायको मे भरतो के पुराने पुरोहित दीर्घतमा की सन्ताने भी थीं। भरद्वाज की सन्तानो को यद्यपि सुदास के समय पुरोहित (मन्त्री) पद से वचित किया गया, किन्तु उन्होने सुदास के शत्रुओ का साथ दिया हो, ऐसा पता नहीं लगता। वसिष्ठ तो युद्ध के मुख्य सूत्रधार थे, और शायद उनके सम्बन्धी जमदग्नि भी उनके साथ रहे। विश्वामित्र ने पीछे वसिष्ठ का स्थान ग्रहण किया, दाशराज्ञयुद्ध मे वह और उनका जन कुशिक सुदास का सहायक था।

दस राजा शत्रु थे, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं, कि शत्रुओ की सख्या केवल दस ही थी। मुख्य शत्रु दस थे। लेकिन इनकी गणना ऋग्वेद मे नहीं दी गयी है। विद्वानो का भी इसमे मतभेद है। तो भी दस प्रधान शत्रुओ मे १ तुर्वश, २ यदु, ३ अनु ४ द्रुह्यु, ५ पुरु तो अवश्य ही थे। बाकी पॉच ६ शिम्यु ७ कवष (कुरुश्रवण का पुरोहित), ८ भेद, ६–१० दो वैकर्ण रहे होगे। तुर्वश और यदु के पुरोहित कण्व थे, एव द्रुह्यु के भृगु (गृत्समद), पुरु के अत्रि। इनके भी अपने यजमानो के साथ होने की अधिक सम्भावना है। कवष के कारण उनका यजमान कुरुश्रवण भी सुदास के विरोध मे खिच गया हो, तो कोई अचरज नहीं। तुर्वश-यदु ने मत्स्यो पर एक बार प्रहार किया था लेकिन मत्स्य अब अपने शत्रुओ के साथ मिलकर सुदास के विरोधी थे। इस प्रकार (११) मत्स्य दस की सूची से बाहर के शत्रु थे। १२ पक्थ (पख्तून), १३ भलानस, १४ अलिन १५ विषाणी, १६ अज १७ शिव, १८ शिग्रु १६ यक्षु ये सभी किसी न किसी समय शत्रु थे।

युध्यामधि, चायमान कवि, सतुक, उचथ, श्रुत, वृद्ध, मन्यु के नाम भी आते हैं, जो भी सुदास के विरुद्ध इस सघर्ष मे शामिल हुए थे।

१ वसिष्ठ पुरोहित

भरद्वाज दिवोदास के समय बहुत प्रभावशाली पुरुष थे, लेकिन सुदास के दाशराज्ञ-युद्ध-विजय के समय वसिष्ठ उनसे भी अधिक प्रभाव रखते थे। वसिष्ठ अपने को भरतो (सुदास के जन) का विधाता मानते थे। वह कहते हैं[1] (७।३३।६)— "गौ की तरह भरत पहले दण्ड से भयभीत अ-जन, (अनाथ) बच्चे से थे, इससे पहले (जब) कि वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए। फिर त्रित्सुओ (भरतो) की प्रजा खूब बढी।" दुर्मित्र (त्रित्सु) सुदास के अपने जन युद्ध मे भागने के लिए मजबूर हुए, और उन्होने सारा धन (भोजन) सुदास को प्रदान किया[2] (७।१८।१४)।" सारे भोजन के देने की बात का उल्लेख फिर (१७) वसिष्ठ करते हैं। भरद्वाज के कुलवालो ने शरीर से भी दिवोदास की सहायता की थी। उस वक्त अभी श्रुवा और असि का पक्का बँटवारा नहीं हुआ था, और न असि उठाने का काम किसी एक वर्ग के हाथ मे दे दिया गया था। वसिष्ठ के लोग सुदास के लिए खुलकर लड़े थे, जिसके लिए ऋषि ने स्वय उन्हे प्रेरित किया था[3] (७।३३।१—३)— "मेरे गोरे, दक्षिण ओर चूडा बाँधनेवाले प्रसन्न हो, मैं उठकर कहता हूँ, कि तुम मुझसे दूर न रहो।" फिर सुदास की सफलता मे अपने कुलवालो की सहायता का उल्लेख करते कहते हैं (३)— "कौन इस प्रकार नदी पार हुआ है, किसने इस प्रकार भेद को मारा, किसने इस प्रकार दाशराज्ञ मे सुदास की रक्षा की ? वसिष्ठो, तुम्हारी वाणी से इन्द्र ने रक्षा की।" सिर पर सारे केश को रखना प्राचीनकाल से मुसलमानो के आने के समय तक हमारे यहाँ प्रचलित था। उसे बहुत सजा कर जूडे की शक्ल मे बाँधा जाता था। चूडा (जूडा), अलग-अलग जनो की अलग-अलग ढग से बाँधी जाती थी। वसिष्ठ के कुल के लोग सिर के दाहिनी ओर बाँधते थे, इसलिए उन्हे "दक्षिणत कपर्दा" (दाहिने जूडावाले) कहा गया है। ईसवी सन् के आरम्भ होने के करीब तक स्त्रियाँ भी पगडी बाँधती थीं। वैदिक नारियाँ भी उसे बाँधती होगी। ऐसा होने पर वसिष्ठ के कुल की स्त्रियाँ भी दक्षिणत कपर्दा रही होगी। कुमारियाँ चार-चार कपर्द बाँधती थीं।[4] (१०।११४।३) उन्हे चतुष्कपर्दा कहते थे। यहाँ कपर्द से जूडा नहीं, बल्कि चोटी अभिप्रेत हो सकती है— शायद दो कपर्द कानो के पास से सामने लटकते थे, और दो पीछे की ओर।

सुदास का कोई भाई प्रतर्दन भी था। यद्यपि ऋचाओ मे इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ वेदानुशीलको का मत है, कि प्रतर्दन बडा लडका था, जिसे भरद्वाज ने पिता की गद्दी पर बैठाया। पर, मनस्वी सुदास इसे बर्दाश्त नहीं कर सका अथवा वह योग्य पिता का योग्य पुत्र नहीं था, और दिवोदास की सफलताओ को अक्षुण्ण नहीं रख सकता था। असन्तुष्ट लोगो ने सुदास का पक्ष लिया, जिनमे वसिष्ठ मुख्य थे। वसिष्ठ ने सुदास का अभिषेक करके उसे भरतो का राजा घोषित किया। दोनो भाइयो मे लडाई हुई, जिसमे ही शायद प्रतर्दन मारा गया, और जिस तरह समुद्रगुप्त की गद्दी पर बैठे अपने बडे भाई रामगुप्त को मारकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य बन बैठा, वैसे ही सुदास भरतो का अधिराज हुआ। ऐसा मानने पर त्रित्सुओ के साथ आरम्भ मे सुदास के सघर्ष की भी व्याख्या हो जाती है।

२. सुदास

वसिष्ठ को सुदास ने दान दिये, जिनका उल्लेख वसिष्ठ ने स्वय किया है[5] (७।१८।२२—२३)— "देववात के नाती सुदास ने वधुओ के साथ दो रथ और दो सौ गाये मुझे

दीं। हे अर्हन (पूजनीय) अग्नि, पैजवन (सुदास) के दान को पा होता की तरह मैं स्तुतिगान करता घर जा रहा हूँ।" "पैजवन (सुदास) ने सोने के आभूषणवाले चार घोडे मेरे लिए दान दिये (२३)।"

दिवोदास का पुत्र सुदास था, इस पर कुछ विद्वान् सन्देह प्रकट करते हैं, जिसकी वसिष्ठ के इस वचन[१] (७।१८।२५) से गुजाइश नहीं रहती— "हे मरुतो, पिता दिवोदास की तरह सुदास की सहायता करो (दिवोदास न पितर)। और पैजवन के घर की रक्षा करो।" वसिष्ठ सुदास के ही श्रद्धाभाजन नहीं थे बल्कि पौरुकत्सि त्रसदस्यु भी उनकी कृपा का पात्र था, इसीलिए वह इन्द्र की महिमा गाते कहते हैं[२] (७।१९।३)— "तुमने सुदास की सारी रक्षाओ से रक्षा की युद्ध मे पौरुकत्सि त्रसदस्यु की रक्षा की।" इससे यह सन्देह हो सकता है, कि त्रसदस्यु सुदास से नहीं लडा पर यह भिन्न समय की बात हो सकती है। वसिष्ठ कहते हैं—

"इन्द्र, हवि-दाता दानी सुदास के लिए वह भोजन अन्न-धन सदा है[३] (७।१९।६)।"

"इन्द्र ने सुदास के लिए लोक बनाया, धन दिया[४] (७।२०।२)।"

"इन्द्र, तुम्हारी सैकडो रक्षाएँ और सहस्रो प्रशसाएँ सुदास के लिए हो[५] (७।२५।३)।"

"सुदास के रथ को न कोई हटा सकता न रोक सकता है, जिसका कि रक्षक इन्द्र है। वह गौओवाले व्रज मे जाता है[६] (७।३२।१०)।"

"हे इन्द्र-वरुण, दास और आर्य शत्रुओ को मारो, सुदास की रक्षा करो।"

वसिष्ठ के कथन से[७] (७।८३।१) पता लगता है, कि इन्द्र-वरुण की कृपा पा पृथु और पर्शु गायो के (लूटने के) लिए पूर्व दिशा मे गये। "तुमने दासो और वृत्रो को मारा, आर्य शत्रु को मारा और सुदास की रक्षा की।" पहले जिन शत्रुओं के विरुद्ध ऋषि अपने देवताओ से प्रार्थना करते थे वह दस्यु थे किन्तु अब आर्य ओर दस्यु दोनो के नाश के लिए उन्हे प्रार्थना करनी पडी। सुदास के शत्रु तो मुख्यत आर्य ही थे।

२ दाशराज्ञयुद्ध

१ शत्रु

शम्बर-युद्ध की तरह दाशराज्ञयुद्ध भी कोई एकाध साल का सघर्ष नहीं था। इसमे सुदास का काफी समय लगा था। वसिष्ठ कहते हैं[८] (७।८३।६–७)— "इन्द्र-वरुण ने दस राजाओ से बाधित सुदास की त्रित्सुओ के साथ रक्षा की।" इसका अर्थ यह है कि त्रित्सुओ के साथ जो गृह-कलह हुआ था, वह अब शान्त हो गया था, एव दस राजाओ ने सुदास और उसके त्रित्सुजन को पराजित करने का प्रयत्न किया था। अगली ऋचा मे वसिष्ठ कहते हैं, कि अ-यज्ञकर्ता अ-भक्त दस राजाओ ने इकट्ठा हो (समिता) सुदास से युद्ध किया। "समिता" का अर्थ एकत्रित होना है, या समितो (युद्धक्षेत्र) मे लडने की बात यहॉ की गयी है। सुदास के शत्रुओ मे तुर्वश और यदु मुख्य थे। वसिष्ठ के कहने से[९] (७।१८।६–८) पता लगता है, कि "तुर्वश, मत्स्य, भृगु और द्रुह्यु ने मिलकर एक दूँसरे का सहायक बन आक्रमण किया था।" अगली दो ऋचाओ (७, ८) से मालूम होता है, कि पक्थो, भलानसो, अलिनो, विषाणियो, शिवो ने भी आक्रमण किया था जिसमे आर्य की गाये त्रित्सुओ को मिलीं। दुर्दान्त, बुरी नीयतवाले शत्रुओ ने परुष्णी को ले लिया पर अन्त मे चयमान का पुत्र कवि पृथिवी पर गिर पडा। परुष्णी मे शत्रुओ को मुँह की खानी पडी, और सुदास ने उनको छिन्न-भिन्न कर दिया। अन्यत्र[१०] (७।८३।८) फिर इसी युद्ध के बारे मे वसिष्ठ कहते हैं—"दाशराज्ञ मे सब तरफ से घिरे सुदास को इन्द्र-वरुण ने सहायता की। युद्ध मे कपर्द वाले सफेद त्रित्सु प्रार्थना करते थे।"

विश्वामित्र ने व्यास और सतलुज को अगाध से गाध बनने के लिए ऐसी सुन्दर प्रार्थना की है, जिसे ऋग्वेद की सर्वोत्त्कृष्ट कविता कह सकते हैं। परन्तु, नदियो को गाध बनाने का दावा वसिष्ठ भी करते हैं। नदियाँ ऋषि की प्रार्थना से गाध न हुई हो, सयोग से वैसा हो जाना असम्भव नहीं। शत्रुओ का पीछा करते सुदास के घोडसवारो ने कहीं पर नदी मे कम पानी पाया होगा। यह घटना दाशराज्ञयुद्ध के समय हुई थी, अत वसिष्ठ को ही इसका श्रेय देना पडेगा। वसिष्ठ इसके बारे मे कहते है[१६] (७।१८।५)— "इन्द्र ने सुदास के लिए नदियो को गाध और सुपारा कर दिया।" इसके बाद ही तुर्वश, मत्स्य, भृगु, द्रुह्यु आदि के ऊपर प्रहार और चायमान कवि के मारे जाने का उल्लेख है। इससे यही जान पडता है, कि जिस नदी को पार करके सुदास ने शत्रुओ पर आक्रमण किया था, वह शुतुद्रि और विपाश् नहीं, बल्कि परुष्णी (रावी) थी। दोनो वैकर्णो के २१ लोगो को राजा (सुदास) ने काटा, वैसे ही जैसे ऋत्विज यज्ञ मे कुश को काटता है।[१७] (७।१८।११–१४) यही नहीं, बल्कि वहीं (१२) उल्लेख है, कि वज्रबाहु (इन्द्र) ने श्रुत कवष, बृद्ध और द्रुह्यु को पानी मे डुबा दिया। जान पडता है, परुष्णी (रावी) को पार कर शत्रुओ ने एक बार भरतो की भूमि (रावी और सतलुज के बीच के द्वाब) मे आने मे सफलता प्राप्त की थी। सुदास ने उनके ऊपर जो भीषण आक्रमण किया, उससे भागते शत्रुओ के कितने ही लोग नदी मे डूब कर मर गये। सुदास ने किसी जगह नदी को सुपार पा उसे पार कर शत्रुओ का पीछा किया। वसिष्ठ के आगे के वचन (१३) से यह पता लगता है कि सुदास ने अपने शत्रुओ के सात दुर्गों को ध्वस्त किया। उनकी बहुत सी स्म्पत्ति त्रित्सुओ को मिली। इस युद्ध मे भारी नर सहार हुआ था— "आक्रमणकारी अनु और द्रुह्यु थे साठ सौ, छ हजार, छियासठ वीर मर कर सो गये (१४)।"

सुदास का सबसे बडा युद्ध यही दाशराज्ञयुद्ध था, जिसमे उसने अपने बुरी तरह स हरा कर शत्रुओ को परुष्णी (रावी) के पश्चिम भगाते उनके देश पर आक्रमण किया।

वसिष्ठ सुदास के शत्रु भेद का भी उल्लेख[१८] (७।१८।१८) करते सुदास की सफलता का श्रेय इन्द्र को देते हुए कहते हैं— "इन्द्र, तुम्हारे बहुत से शत्रु पराजित हो गये। अब अश्रद्धालु भेद को बस मे करो। जो (कोई) तुम्हारी स्तुति करता है, उसको यह हानि पहुँचाता है। उसे वज्र से मारो।" भेद नाम आर्य जैसा मालूम नहीं होता, हो सकता है, दाशराज्ञयुद्ध मे सुदास को फॅसा और निर्बल देखकर इस नाम के किसी राजा या जन ने हाथ पैर फैलाने की कोशिश की हो।

इन सफलताओ के बाद सुदास की कीर्ति का बढना स्वाभाविक था। वसिष्ठ ने भी कहा है[१९] (७।१८।२४, २५)— जिस (सुदास) की कीर्ति पृथिवी-आकाश के भीतर विस्तृत है, जिसने खूब दान बॉटा है लोग जिसकी स्तुति इन्द्र की तरह करते हैं, जिसने युद्ध मे युध्यामधि को नष्ट किया। मरुत इस सुदास को पिता दिवोदास की तरह माने। पैजवन के निकेत की रक्षा करे, सुदास का बल अविनाशी अजर तथा अशिथिल हो।"

२ युद्ध

वसिष्ठ की पुरोहिती (प्रधान मन्त्रित्व) मे ही सुदास ने दाशराज्ञयुद्ध[२०] (७।८३।१–१०) और पूर्व मे जमुना तक की विजय-यात्रा की थी, यह वसिष्ठ के इस वचन[२१] (७।१८।१९) से मालूम होता है— "यमुना और त्रित्सुओ ने इन्द्र को सतुष्ट किया। यहॉ भेद को इन्द्र ने मारा। अज शिग्रु और यक्षु अश्वो के सिरो की बलि लेकर आये।" भेद जमुना के पास का ही कोई

राजा या जन था। अज, शिग्रु और यक्षु शायद जमुना और गगा के बीच मे रहनेवाली आर्य-भिन्न जातियॉ थीं जिन्होने सुदास की अधीनता स्वीकार की।

वसिष्ठ ने भरतो के नाम को अमर करते हुए कहा[३२] (७।८।४)— "जब सूर्य की तरह बडे प्रकाश के साथ अग्नि चमकते हुए (उन) भरतो की स्तुति सुनते हैं। जिस भरत जन ने युद्ध मे पुरुओ को पराजित किया।"

सुदास की सफलता का सबसे अधिक श्रेय वसिष्ठ और उनके लोग लेना चाहते थे इसके लिए सुदास बहुत दिनो तक तैयार नहीं रह सकता था। हो सकता है, अभिमानवश कुछ अवहेलना भी की गयी हो। वसिष्ठ का पुत्र शक्ति शायद पिता की गम्भीरता का उत्तराधिकारी नहीं था। पीछे की परम्परा से मालूम होता है कि मन्त्रिपद को दूसरे के हाथ मे देना उसे बहुत बुरा लगा, और विरोध का परिणाम शक्ति को सुदास के हाथो अपने प्राणो से हाथ धोना पडा। सुदास के पहले सघर्षो मे विश्वामित्र ने भी सहायता की थी, इसलिए वसिष्ठ से विमुख होने पर सुदास ने विश्वामित्र को वह स्थान दिया।

३ सुदेवी रानी

सुदास की रानी सुदेवी अपने पति की योग्य पत्नी थी जिसे सुदास ने कुत्स आगिरस[३३] (१।११२।१९) के अनुसार अश्विनृका प्रासाद से पाया।

३ अश्वमेध

१ विश्वामित्र

विश्वामित्र के नदी-सूक्त के देखने से मालूम होता है, कि वह ऋग्वेद के सर्वश्रेष्ठ कवि है। उनको इसका कुछ अभिमान भी था[३४] (३।५३।१२)— "जो यह दोनो पृथिवी और आकाश है, उनकी और इन्द्र की मैंने स्तुति की। विश्वामित्र की यह स्तुति भरतो के जन की रक्षा करती है।" विश्वामित्र ने नदियो को गाध बनाकर सुदास को पार कराया, यह दावा गलत मालूम होता है लेकिन विश्वामित्र कहते हैं[३५] (३।५३।६)— "महान् ऋषि विश्वामित्र ने सिन्धु अर्णव (नदी) को रोका, जिससे इन्द्र ने कुशिको के साथ प्यार करते पार कराया।"

कुशिक पुराने पुरुजन से ही सम्बन्ध रखनेवाला एक जन था जो सरस्वती की उपत्यका मे रहता था। वसिष्ठ के लोगो की तरह यह भी बहुत शक्तिशाली जन था। विश्वामित्र कहते हैं[३६] (३।२६।३)— "वैश्वानर अग्नि अश्व की तरह हिनहिनाते कुशिको के यहॉ प्रज्वलित किये जाते है। वह अग्नि हमे सुवीर्य सुअश्वयुक्त रत्न प्रदान करे।" "कुशिक लोग एक-एक घर मे अग्नि का सेवन करते हैं"[३७] (३।२९।१५)। सरस्वती की उपत्यका के ये आर्य इस बात का अभिमान करते थे कि हमारे हरेक घर मे अग्नि की प्रतिष्ठा है सभी अग्निदेव के भक्त हैं। जहॉ तक बडे शत्रुओ को पराजित करने और जमुना-उपत्यका के अनार्यो को अधीन करने का सम्बन्ध था यह काम वसिष्ठ के समय ही हो चुका था। विश्वामित्र के समय इन सफलताओ को कायम रखना भर था लेकिन उतने से विशेषता क्या रहती ? इसीलिए विश्वामित्र ने सुदास से अश्वमेध करवाया।

२ अश्वमेध

सुरभि सुगन्धित अश्व-मास आर्यो का एक प्रिय खाद्य था यह ऋचाओ से मालूम हाता है (१।१६२।१२)। पर अश्व को हवन के रूप मे बलि देकर एक बडे यज्ञ द्वारा अपने प्रभुत्व को प्रख्यापित करना शायद इसी समय पहल पहल किया गया। इस यज्ञ का ऋचाओ म सिर्फ एक

उल्लेख है, यद्यपि वहाँ अश्व के साथ मेध के शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन, निम्न ऋचा" (३।५३।११) से स्पष्ट हो जाता है, कि सुदास ने जो घोडा छोडा था, उसका उद्देश्य राजनीतिक था— "हे कुशिको, सजग हो जाओ, सुदास ने घोडे को छोडा है। राजा ने पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे शत्रु का नाश किया। वह पृथिवी मे यश (पैदा) कर रहा है" पूर्व, पश्चिम और उत्तर (प्राक्, अपाक्, उदक्) का ही नाम लेना और दक्षिण को छोड देना बतलाता है, कि सुदास की विजय सिन्धुनद, हिमालय और जमुना की ओर हुई। दक्षिण (मरुभूमि) का वहुत सा भाग उस समय भी शायद इतना समृद्ध नहीं था, कि वह किसी विजेता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता। इस घोडे को रोकनेवाला शायद कोई नहीं था, इसलिए इसके कारण और कोई सघर्ष नहीं करना पडा अन्यथा विश्वामित्र की ऋचाओ में उसका उल्लेख जरूर होता। भरतों के राजा सुदास के विश्वामित्र जीवन भर पुरोहित रहे। भरतो के अभिमान के प्रति भी उनकी एक ऋचा से असतोष व्यक्त होता है" (३।५३।२४)— "हे इन्द्र, भरत-पुत्र लडाई (फूट) जानते हैं, मेल नहीं। शत्रु की तरफ घोडा भेजते हैं और नित्य युद्ध मे धनुष धारण करते हैं।"

सुदास के समय सप्तसिन्धु के आर्यों का चरम उत्कर्ष हुआ। उसी के समय सबसे बडे ऋषि पैदा हुए। यही समय है, जब कि जन-तन्त्र की अलग-अलग रखने की मनोवृत्ति पर भारी प्रहार हुआ। हरेक अभिमानी आर्यजन अपनी सीमाओं के भीतर किसी दूसरे जन के हस्तक्षेप को बरदाश्त नहीं कर सकता था, पर, यह नीति तभी तक चल सकती थी, जब तक कि किसी प्रबल शत्रु से मुकाबिला नहीं था। दुर्दान्त शम्बर ने अपनी सफलताओ से आर्यों को बतला दिया, कि तुम्हारी डेढ चावल की खिचडी बहुत दिनो तक नहीं पक सकती। पडोस के आर्यजनो ने शत्रुओ के मुकाबले मे पूरी सफलता न देखकर यदुओ और तुर्वशो को पश्चिम से बुलाया। फिर पृथु और पर्शु भी इसी उद्देश्य से पूर्व की ओर आये। लेकिन, अलग-अलग रहकर कोई सफल नहीं हो सकता था। दिवोदास ने सारे आर्यजनो के बल को लेकर शम्बर की शक्ति का सर्वदा के लिए उच्छेद किया। दिवोदास के बाद फिर आर्यजनो ने अपनी पुरानी मनोवृत्ति को अपनाना चाहा। पर, वह उसमे सफल कैसे होते ? विकसित आर्थिक जीवन और पराक्रमी सुदास उसमे बाधक थे। उसने सारे सप्तसिन्धु को एकताबद्ध करने का काम किया, और जमुना से पूर्व भी आर्यों के प्रसार का रास्ता खोला।

अध्याय ११
राज-व्यवस्था
१ शासक, शासित

यह बतला चुके हैं, कि सप्तसिन्धु मे पहलेपहल आते समय आर्य जनव्यवस्था मे थे। उनके प्रमुख पॉच जन थे, जिनमे सबसे पूर्ववाले का नाम पुरु था। इसी की एक शाखा भरत जन था। दिवोदास और सुदास भरत जन मे हुए। आर्यो के निवास और प्रभाव को पूर्व मे बढाने मे यही जन सबसे आगे था। पीछे भरत नामक कोई राजा भी हो सकता है लेकिन देश की ख्याति उसके नाम पर नहीं, बल्कि ऋग्वेद के इसी भरतजन के नाम पर हुई। जन-प्रथा से निकलकर अब वह सामन्ती-व्यवस्था मे आ चुके थे और पितृसत्ता के स्वच्छन्द वातावरण से निकल राजा की निरकुशता की ओर बढ रहे थे। पर, जनतान्त्रिकता से उनको इस तरह छुट्टी नहीं मिल सकती थी। आर्यो की आर्थिक व्यवस्था अभी पुरानी थी। गाय-घोडे भेड-बकरी उनके सबसे बडे धन थे वही उनकी जीविका के साधन थे। अपने पशुओ के चरने के लिए उन्हे खुली गोचर भूमि और रहने के लिए गोष्ठ चाहिये थे। एक-एक के पास हजारो गाये-घोडे होते थे। ऐसे लोगो के लिए घना बसा नगर उपयुक्त नहीं हो सकता था। मोहनजोदडो और हडप्पा जैसे नगर मौजूद थे, पर ग्राम उनके अधिक अनुकूल थे। आरम्भ मे ग्राम का अर्थ झुण्ड था, अर्थात् हूण और तुर्क भाषा का ओर्दू। पीछे ग्राम मनुष्यो के झुण्ड की जगह मकानो का झुण्ड माना जाने लगा। आर्य बस्तियो का विभाजन, ग्राम और राष्ट्र के रूप मे था। राष्ट्र और जनपद एक ही अर्थ के वाचक थे। जनो की प्रधानता का द्योतक— जनो का निवासस्थान— जनपद और सामन्तो की प्रधानता का द्योतक राष्ट्र। ग्राम के मुखिया को ग्रामणी (ग्राम + नी) कहते थे, और राष्ट्र के मुखिया को राजा। राजा के लिए, सम्राट्, स्वराट् शारा ईशान, भूपति पति का भी प्रयोग देखा जाता है। राजा की सन्तानो को राजपुत्र और राजदुहिता कहते थे।

१ ग्रामणी

ऋषि नाभानेदिष्ट ने मनु को ग्रामणी की उपाधि दी हे, जो ग्राम के नेता के लिए नहीं बल्कि आर्यो के समूह के नेता के लिए इस्तेमाल हुआ है। इससे हजार वर्ष बाद सिहल के एक प्रतापी राजा को ग्रामणी-नटखटपन के कारण दुष्ट-ग्रामणी— कहा जाता था। ऋषि ने मनु की उदारता की प्रशसा करते कहा है' (१० ।६२ ।११)— "सहस्र के दाता ग्रामणी मनु का कोई अनिष्ट न करे। इसकी दक्षिणा (दान) सूर्य के साथ सब जगह पहुँचे। सावर्णि मनु को देव आयु प्रदान करे जिससे न थके हम धन पाये।"

२ राष्ट्र

वसिष्ठ ने वरुण को राष्ट्रो का राजा कहा है' (७ ।३४ ।१० ११)—

इन नदियो के जल को सहस्र नेत्रवाले उग्र वरुण देखते है।"

वह राष्ट्रो के राजा नदियो के रूप हैं। उनका क्षत्र (बल) अपूर्व और सर्वगत ।"

एक कल्पित महिला-ऋषि जुहू ने भी राष्ट्र का उल्लेख किया है[३] (१० ।१०९ ।३)—

"उन्होने कहा, हाथ से इसको ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्मजाया हैं।

भेजे दूत मे यह (वैसे ही) आसक्त नहीं हुई, जैसे कि क्षत्रिय से रक्षित राष्ट्र।"

क्षत्रिय (राजा) अभी अपने पुराने अर्थ मे व्यवहृत होता था, जैसा कि ईरान के सम्राट् दारयवहु (दारा) ने इस शब्द को अपने लिए इस्तेमाल किया। जूहू को उसके पति बृहस्पति ने त्याग दिया था। उसे पत्नी को पुन स्वीकार करने के लिए इन ऋचाओ मे कहा गया है।

३ विश्

विश् का अर्थ जनता था, जिससे ही पीछे वैश्य (विश् की सन्तान) शब्द बना। विश् शक्तिशाली जन का वाचक था, वैश्य या बनिये का नहीं। विश् राजा को बनाने-बिगाडने का अधिकार रखती थी, जैसा कि राजा के गद्दी पर बैठने के समय पढे जानेवाले (आगे उद्धृत) मन्त्रो से मालूम होगा। सर्वपुरातन ऋषि भरद्वाज ने विशो के राजा को उपस्थान (मुजरा) करने का उल्लेख किया है[४] (६ ।८ ।४)— "महान् मरुतो ने आकाश मे अग्नि को धारण किया, विशो ने पूजनीय समझकर उस राजा की स्तुति की। विवस्वान् (सूर्य) के दूत वायु ने दूर से वैश्वानर अग्नि को यहाँ पहुँचाया।"

४ राजा

राष्ट्रो के राजा के बारे मे अभी हम (वसिष्ठ के वचन मे) कह चुके हैं। उनके वृद्ध समसामयिक भरद्वाज ने अग्नि की उपमा राजा से दी है[५] (६ ।४ ।४)— "हे अग्नि, तुम हमे अन्न दो। राजा की तरह शत्रुओ को नष्ट करके अन्न हमे प्रदान करो।" आगे भी[६] (६ ।१२ ।२)— "हे राजन्, तुम यशस्वी बुद्धिमान् हो। यज्ञ करते (यजमान) बहुत सा हव्य तुम्हे प्रदान करते हैं। तुम त्रिभुवन मे अवस्थित मनुष्य के उत्तम हव्यो को बडे वेग से (देवताओ के पास) ले जाओ।"

फिर[७] (६ ।३० ।५) भरद्वाज कहते हैं— "इन्द्र, तुमने जल को फैलने के लिए मुक्त किया, दृढ पर्वत को तोडा। सूर्य के साथ द्यौ और उषा को पैदा करते तुम ससार के लोगो के राजा हुए।" अथवा[८] (६ ।३६ ।४) इन्द्र को "जनो के अद्वितीय पति और सारे भुवन का एक राजा" कहा है। वसिष्ठ भी इन्द्र के बारे मे भरद्वाज के कथन का समर्थन करते हैं[९] (७ ।२७ ।३)— "इन्द्र जगत् (जगम) के लोगो के राजा, पृथिवी मे नाना रूप जो धन है, उसके राजा हैं। उसी से वह दाता (यजमान) को धन देते हैं, वह स्तुनि करने पर हमारे पास धन भेजे।" वसिष्ठ ने मित्र (सूर्य) और वरुण की एक साथ स्तुति करते उन्हे राजा कहा है[१०] (७ ।६४ ।२)— "महान् सत्य-रक्षक, सिन्धुओ के पति, क्षत्रिय (राजा) मित्र-वरुण सामने पधारो। हे शीघ्र दाता, मित्र और वरुण द्यौलोक से अन्न और वृष्टि भेजो।"

कण्व पुत्र प्रगाथ ने इन्द्र को जनो का राजा कहा है[११] (८ ।५३ ।३)— "हे इन्द्र, तुम छाने और अनछाने (सोम) के स्वामी हो। तुम जनो के राजा हो।"

२ राजा

१ राजाभिषेक

अगिरा की सन्तान ध्रुव ने उन मन्त्रो[१२] (१० ।१७३) को बनाया है, जिन्हे राजगद्दी के समय हाल तक पढा जाता था। इनमे राजा को चेतावनी दी गयी है, कि विश् (जनता) की इच्छा ही तुम्हे अचल रख सकती है—

"मैंने तुम्हे लाकर बैठाया। तुम भीतर से बढो, ध्रुव और अचल बनो।

"सारी विश् (जनता) तुम्हे पसन्द करे, तुम राष्ट्र से भ्रष्ट न हो। तुम्हारा राष्ट्र भ्रष्ट न हो।।१।।

"पर्वत की तरह अचल हो यहाँ बढो, च्युत मत हो।"

"इन्द्र के समान यहाँ ध्रुव रहो, इस राष्ट्र को धारण करो।।२।।"

"इस (राजा) को हव्य से इन्द्र ने ध्रुव करके धारण किया।"

"उसे सोम ने ब्रह्मणस्पतिने आशीर्वाद दिया।।३।।"

"द्यौलोक ध्रुव (अचल) है, पृथिवी ध्रुव है, ये पर्वत ध्रुव हैं।"

"यह सारा जगत् ध्रुव है, विशो का यह राजा ध्रुव है।।४।।"

"तेरे राष्ट्र को देव बृहस्पति ध्रुव।"

"राजा वरुण ध्रुव, इन्द्र-अग्नि ध्रुव धारण करे।।५।।"

"ध्रुव हविष् से हम ध्रुव सोम (विजया) को मिश्रित करते हैं।"

"इन्द्र प्रजाओ को एक तथा बलि लाने वाली बनाओ।।६।।"

२ सम्राट्

सम्राट का अर्थ राजाओ का राजा नहीं था। याज्ञवल्क्य ने वृहदारण्यक उपनिषद् (४।२।१) मे जनक को "सम्राट्" कहा है। पर, जनक केवल विदेह जनपद का राजा था। भरद्वाज ने" (६।७) वैश्वानर अग्नि को भी उसी या अच्छे राजा के अर्थ मे सम्राट कहा है—

"द्युलोक की मूर्धा, भूमि के विचरनेवाले यज्ञ के लिए उत्पन्न,"

"कवि, सम्राट्, जनो के अतिथि वैश्वानर अग्नि को देवताओ ने पैदा किया।।१।।"

वसिष्ठ ने सविता (सूर्य) को सम्राट् कहा है" (७।३८)—

"देवी अदिति देव सविता की सेवा करती आज्ञा पालन करती स्तुति करती है। वरुण, मित्र अर्यमा-सहित सम्राट् (सम्यक् प्रकाशमान) देवता की स्तुति करते हैं।।४।।"

३ शास

शास राजा के अर्थ मे आया है। शासन शब्द मे वही भाव मिलता है। पीछे राजा के लिए शास (शाह) ईरान मे ही रह गया। स का ह होना ईरानी भाषा मे आम तौर से देखा जाता है— शास का शाह और शासानुशास का शाहशाह बना। ऋग्वेद मे भी यही उसका अर्थ है जैसा कि विश्वामित्र की ऋचा" (३।४७) से मालूम होता है—

"मरुतो सहित वृषम, बर्धनशील दिव्य शास (राजा),

विश्वविजेता उस उग्र इन्द्र को हम नवीन रक्षा के लिए यहाँ आह्वान करते हैं।।५।।"

४ ईशान

ईशान ऋग्वेद मे अभी शकर का पर्यायवाची नहीं बना था। यह भी राजा के लिए वैसे ही इस्तेमाल होता था, जैसे बहुत पीछे तक ईश्वर और परमेश्वर। वसिष्ठ ने इन्द्र के बारे मे कहा है" (७।३२)—

"हे सूर्य इन्द्र, न दुही गायो की तरह हम तुम्हे नमस्कार करते है। इस जगत् के सर्वदर्शी जग-स्थावर के ईशान तुम्हे ।।२२।।"

५ स्वराट्

राट् राजा एक ही शब्द है और उसके साथ स्व लगाने से उसका अर्थ स्वय राजा होता है। गौतम नोधा ने कहा है" (१।६१)—

"द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष से भी बढकर इसकी महिमा है। इन्द्र अपने गृह मे स्वराट् है।।८।।"

६. नृपति

आगिरस कुत्स ने इन्द्र की प्रशसा मे कहा है" (१।१०२)—

"हे नृपति, तुम बल मे तेहरी रस्सी की तरह, तीन भूमि और तीन प्रकाशोवाले हो। तुम इस सारे भुवन को वहन करते हो। सनातन से जन्म लिये तुम शत्रु-रहित हो।।८।।"

७ पति राजा

पति और राजा दोनो शब्दो का इकट्ठा राजा के लिए इस्तेमाल आगिरस तिरश्ची के वचन" (८।८४) मे मिलता है—

"हे इन्द्र, श्येन (बाज) द्वारा लाये गये छाने हुए सुखमय 'सोम को खुशी के लिए पियो। तुम शाश्वत विशो (जनता) के पतिराजा हो।।३।।"

८ राजपुत्र, राजदुहिता

राजा होने पर राजपुत्र और राजदुहिता का होना स्वाभाविक है। राजा जनता का आदमी नहीं था, उसका सिहासन अब उसके ऊपर था, वैसे ही, जैसे कि इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्र का। इसलिए राजा का लडका होना विशेष सम्मान को प्रकट करता था। दीर्घतमासन्तान ऋषि कक्षीवान् की पुत्री घोषा अपने को राजदुहिता कहती है। इससे यह जरूर मालूम होता है, कि राजा का शब्द अभी बहुत व्यापक था, तभी कक्षीवान् राजा हो सकते थे। घोषा ने दोनो अश्विनीकुमारो की स्तुति करते कहा है" (१०।४०)—

"हे अश्विनो, सबेरे जगाने के लिए दो बूढे राजाओ की तरह तुम्हारी स्तुति की जाती है। सेवा के लिए किसके घर तुम जाते हो ? किसके पास नष्ट करते हो ? नरो, किसके हवन (यज्ञ) मे राजपुत्र की तरह तुम जाते हो।।३।।

"हे नरो अश्विनो, राजा की दुहिता घोषा चारो ओर घूमती, तुम्हे पूछती है। दिन हो या रात तुम मेरे पास रहते हो। रथ और अश्व-युक्त मेरे भतीजे का दमन करते हो।।५।।"

इन उद्धरणो से मालूम होगा, कि विश् (जनता) अभी पगु नहीं हुई थी। वह शस्त्र-बद्ध मौजूद थी। उसके शस्त्रो की जरूरत हर जगह थी। गॉवो के निवास के कारण आर्य जनयुगीन अर्थतन्त्र से बिल्कुल मुक्त नहीं हुए थे, इसलिए निरकुश राजा पैदा नहीं हो सकता था। तो भी अब राजा विश् से ऊपर था।

३. शासन-यत्र

ऋग्वेद से उस काल के प्रशासन का सकेत भर मिलता है। गण-पति शब्द मे गण का सकेत मिलता है। बुद्ध के समकालीन लिच्छवि और कितने ही दूसरे गण मौजूद थे। बुद्धकाल मे ग्राम का मुखिया ग्रामणी होता था, जिसे गामजेट्ठ (गॉव का मुखिया) भी कहते थे। गॉव के ज्येष्ठ की प्रतिध्वनि हिमालय के कुछ स्थानो मे बूढे या बुढेरे मे मिलता है। बूढे गॉव मे व्यवस्था रखने के जिम्मेदार होते थे, कर उगाहने मे भी उनसे सहायता ली जाती थी। ऋग्वेद के ग्रामो के ग्रामणी भी यही काम करते होगे।

१ सभा

सभा और समिति का उल्लेख ऋग्वेद मे कई जगह आया है। सभा का अर्थ कुछ व्यापक था। उसमे राजनीतिक—ग्राम, राष्ट्र, जन—सभाएँ ही शामिल नहीं थीं बल्कि जुए की सभा भी। कवष एलूष-पुत्र ने इसका उल्लेख किया है" (१०।३४)—

"जुआडी पूछने पर शरीर फुलाकर 'मैं जीतूँगा' कहते सभा मे जाता है।"

"पाशे कभी इसकी इच्छा पूरा करते हैं, कभी प्रतिद्वन्द्वी की।।६।।"

सभा का प्रयोग जान पडता है, पीछे जुए की सभा के लिए ज्यादा होने लगा, इसीलिए जुआशाला के अध्यक्ष को सभिक कहा जाता था। शुनहोत्र-पुत्र गृत्समद सभेय को सभासद् के अर्थ मे प्रयुक्त करते हैं[२३] (२।२४)—

"बृहस्पति के वाहन (घोडे) हमारा स्तोत्र सुनते हैं। सभेय विप्र (ऋत्विक्) स्तुति-सहित हव्य प्रदान करते हैं।।१३।।"

आर्य अपने जवानो को "सभेय" होने की प्रार्थना करते थे, अत उनकी सभाएँ महत्त्वपूर्ण थीं, जिनमे उनके जवान अपनी वाग्मिता दिखलाते थे। देवातिथि काण्व कहते हैं[२३] (८।४)—

"हे इन्द्र, तुम्हारा सखा, अश्व-युक्त रथी, सुरूप, गोमान्, धनी, वय से युक्त हो सदा आह्लाद करता सभा मे जाता है।।६।।"

भरद्वाज ने भी गायो की प्रशसा करते सभा का उल्लेख किया है[२४] (६।२८) —

"हे गायो हमे तुम मोटा करो, हमारे कृश और असुन्दर शरीर को सुदर बनाओ, घर को भद्र बनाओ। हे भद्र बोलनेवालियो, सभाओ मे तुम्हारे महाभोजन (अन्न) का बखान किया जाता है।।६।।"

२ समिति

समिति ही युरोपीय भाषाओ मे कमीटी या कमीती है। (शतम और केन्तम का मुख्य भेद यह है, कि शतम के श का केन्तम मे क हो जाता है।) समिति या कमीटी आज छोटी सभा को कहते हैं, लेकिन ऋग्वेदिक काल मे यह राजसभा, राष्ट्र की बडी सभा अथवा ससद् को कहा जाता था। बुद्धकाल मे गणो की पार्लियामेण्ट के लिए सस्था शब्द का प्रयोग होता था। हरेक गणराजधानी मे सस्थागार (सथागार) का होना आवश्यक था। पालि-सूत्रो मे उन्हीं नगरो मे सथागारो का उल्लेख मिलता है, जो गणराज्यो की राजधानी थे। ऋग्वेद मे सस्था का प्रयोग नहीं है। उस समय भी सस्था रही होगी, पर राजतत्र के अधिक अनुकूल समिति थी। मरीचि-पुत्र कश्यप ने सोम की उपमा देते कहा है[२५] (१०।६७।६)—

"राजा जैसे समिति मे जाते हैं।"

लेकिन, समिति का अर्थ युद्धक्षेत्र भी होता था, जैसा कि कश्यप के ही वचन से मालूम होता है[२६] (६।६२।६)—

"जैसे होता ऋत्विज पशुगृह मे जाते हैं, जैसे भला राजा युद्ध मे जाता है। वैसे ही पवित्र होता सोम कलशो मे जाता है।

सवनन ऋषि समिति का उल्लेख मन्त्र (सलाह) के सम्बन्ध मे करते हैं[२७] (१०।१९१।३)—

"तुम्हारा मन्त्र समान (एक साथ), समिति एक सी हो।"

३ व्राजपति, कुलप

शासन या सामाजिक व्यवस्था मे कुलो और व्राज (समुदायो) का भी स्थान था। प्रतर्दन ने[२८] (१०।१७९।२) कुलप और व्राजपति का उल्लेख किया है—

"हे इन्द्र हवि पक चुका है, आओ। सूर्य काल (दिन) के भाग के मध्य मे पहुँच गया है। कुलप जैसे विचरते व्राजपति का वैसे ही (तुम्हारे) सखा निधियो के साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

इससे मालूम होता है, कि कुलो के मुखिया से ऊपर व्राजो के मुखिया का स्थान होता था। ग्राम कुलो का समुदाय था। शायद ग्राम समुदाय व्राज कहा जाता था, जिसका पति व्राजपति था। एक ग्राम कई कुलो मे बँटा होता था। बडे गॉव या नगर को पुर नहीं कहते थे। शम्बर की पुरियॉ किलेबन्द स्थान थे, यह हम देख चुके हैं।

ऋग्वेद मे जो छिटपुट वर्णन आता है, उससे उस समय के शासन का पूरा रूप अकित करना सम्भव नहीं है। राज-व्यवस्था मे प्रशासन, न्याय-व्यवस्था, कर (बलि) उगाहना मुख्य था। प्रशासन के लिए शायद १ कुलपति, २ व्राजपति, ग्रामणी, गणपति और अन्त मे समिति तथा उसका प्रधान ३ राजा था। दीवानी-फौजदारी मुकद्दमो को देखने का भार भी इन्हीं के ऊपर होगा। विश् को बलिहृत् (कर देनेवाला) कहा गया है। बहुत सम्भव है, कर नगद नहीं, जिन्स के रूप मे उगाहा जाता था। कर उगाहने मे कुलपति, व्राजपति सहायक होते होगे।

सैनिक प्रशासन के बारे मे इतना ही कह सकते हैं, कि आर्य सैनिक अनुशासनबद्ध थे। वह हजारो की सख्या मे शत्रुओ पर आक्रमण करने या प्रतिरक्षण के लिए जाते थे। सेना का सबसे ऊपर का अधिकारी राजा था, लेकिन आर्जुनेय कुत्स को सारथी उपाधि शायद राजा के बाद सबसे बडे सेनापति होने के कारण मिली थी। सम्भवत अफसर दशिन् (दशपति), शतिन् (शतपति) और सहस्रिन् (सहस्रपति) होते थे। चतुरग नहीं त्रिरग सेना थी— रथ, घोडे और पैदल की। अभी हाथी की सेना नहीं बनी थी। सप्तसिन्धु मे सिह जरूर थे, पर हाथियो के होने का ऋग्वेद से पता नहीं लगता, और न उनके पालतू बनाने का ही कोई उल्लेख है।

४. पुरोहित (प्रधान-मत्री)

राजा के पुरोहित का काम केवल यज्ञ और धार्मिक बातो मे सलाह देना भर नहीं था। वसिष्ठ ने बडे अभिमान से कहा है— त्रित्सु भरत अनाथ शिशु की तरह थे। जब वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए, तो वह शक्तिशाली बन गये। पुरोहित को वृहस्पति भी कहा जाता था। वामदेव ने वृहस्पति पुरोहित के बारे मे कहा है[२९] (४।५०।१)। वसिष्ठ ने तृत्सुओ की अपनी पुरोहिती का उल्लेख किया है[३०] (७।८३।४)।

भाग ४
सांस्कृतिक

अध्याय १२
शिक्षा, स्वास्थ्य

१ शिक्षा

चाहे कितनी भी पिछडी मानव-जाति हो, उसके लिए भी पूर्वजो द्वारा अर्जित ज्ञान और अनुभव को एक पीढी से दूसरी पीढी मे पहुँचाना आवश्यक होता है, जिसके वास्ते उसे किसी न किसी तरह की शिक्षा-प्रणाली अपनानी पडती है। वैदिक आर्य अपने पूर्वार्जित ज्ञान को एक पीढी से दूसरी पीढी मे पहुँचाते थे। जिस ज्ञान को वह परम पवित्र मानते थे, वह वेद के मन्त्र थे। ऋग्वेदिक आर्यो के समय से पहले मोहनजोदडो के लोग एक तरह की चित्रलिपि इस्तेमाल करते थे, जिसके हजार के करीब अक्षर मिल चुके हैं, पर अभी तक पढने की कुजी नहीं मिली है। लिखने का पूरी तौर से प्रचार हो जाने पर भी वेदो को गुरुमुख से सुनकर पढने का रिवाज हमारे यहाँ अभी भी पसद किया जाता था, फिर ऋग्वेद के काल मे उसे लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया गया होगा, इसकी सम्भावना नहीं है। आर्य बहुत पीछे तक वेद को लिपिबद्ध करने के खिलाफ रहे, क्योकि तब उनकी गोप्यता नष्ट हो जाती। वैदिक वाङ्मय ही क्यो, बौद्ध और जैन पिटक भी शताब्दियों तक कठस्थ रखे गये। बौद्ध त्रिपिटक बुद्ध-निर्वाण के चार शताब्दी बाद और जैन-आगम आठ शताब्दी बाद लिपिबद्ध हुए। कान से सुनकर सीखे जाने के कारण वेद को श्रुति कहते हैं। इसीलिए भारी विद्वान् को बहुश्रुत—बहुत सुना हुआ—कहा जाता। हमारी लिपि की उत्पत्ति कैसे हुई और उसका सम्बन्ध किस पुरानी लिपि से है, इसका निर्णय अभी नहीं हो सका है। इतना मालूम है, कि हमारी सबसे पुरानी वर्णमाला ब्राह्मी है, जिसके निश्चित कालवाले नमूने अशोक के अभिलेखो मे मिलते है, जो ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दी मे या बुद्ध-निर्वाण से ढाई सौ वर्ष बाद के हैं। पिपरहवा के ब्राह्मी अक्षर बुद्धकालीन हैं, यह विवादास्पद है। ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दी से पहिले की वर्णमाला के नमूने मोहनजोदडो, हडप्पा की चित्रलिपि में मिलते हैं। दोनो लिपियो का सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल है। यद्यपि मोहनजोदडो की चित्रलिपि से उच्चारण वाली वर्णमाला का निकलना बिल्कुल सम्भव है, पर, ब्राह्मी मोहनजोदडो की लिपि से निकली, इसे सिद्ध करना अभी सभव नहीं है।

उस समय किसी प्रकार की मौखिक शिक्षा पुरानी (अतएव पवित्र) कविताओ की जरूर होती थी। उसका सग्रह ऋग्वेद मे होना चाहिये था। पर वैसा नहीं देखा जाता। ऋग्वेद के प्राचीनतम ऋषि और उनकी कृतियॉ, हमे भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तक ले जाती हैं उससे पुराने दो-चार ही ऐसे ऋषि मिलते है, जिनकी कृतियॉ पुरानी हो सकती है, पर, भाष और सग्रह की गडबडी ने उनकी प्राचीनता को बहुत कुछ गॅवा दिया है। अनुमान किया ज सकता है, कि ऋग्वेद के महान् ऋषियो ने इन्द्र, अग्नि, मित्र के ऊपर जो हजारो ऋचाएँ बनाई

थीं, उनमे कुछ शब्द या भाव मे भरद्वाज से पुरानी हो सकती हैं, पर, इसे निश्चयपूर्वक नहीं बतलाया जा सकता। हमारे सबसे पुराने देवता द्यौ और पृथिवी हैं, जिन्हे ऋग्वेद मे पितरो (दोनो माता-पिता) कहा गया है। द्यौ पिता और पृथिवी माता द्यौ-पितर का ख्याल बहुत पुराना है। वह केवल शतम (आर्य-स्लाव) वश का ही नहीं बल्कि केन्तम् (ग्रीस, रोम आदि) का भी पूज्य देवता था। जुपितर द्यौ-पितर का ही शब्दान्तर है, ज्यौस द्यौस् ही है। द्यौ-सम्बन्धी कितनी ही ऋचाएँ मिलती हैं, किन्तु ऋग्वेदिक काल मे द्यौ की नहीं, बल्कि इन्द्र की प्रधानता थी।

ऋग्वेद से पहले की परम्परा से आई ज्ञान-सम्पत्ति अलग नहीं मिलती, इसलिए हम नहीं कह सकते, कि उस काल मे श्रुति की शिक्षण-परम्परा किस तरह की थी। शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण शब्दो का जो अर्थ आज है, वह उस समय नहीं था। ऋग्वेद में शिक्षा का अर्थ देना है, जैसा कि वसिष्ठ की एक ऋचा[1] (७।२७।२) से मालूम होता है—

"हे पुरुहत इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे सखा मनुष्यो को दो (शिक्ष)।"

वसिष्ठ की ही दूसरी ऋचा मे[2] (७।१०।३५) शिक्षा का अर्थ अनुकरण है—

"इन मेढको मे एक के वचन को दूसरा शाक्त (आचार्य) की तरह अनुकरण करता बोलता है। मेढको, जब तुम सुन्दर तौर से बोलते हो, तो जल मे सब अग अच्छा हो जाता है।"

यहाँ बरसात के आरम्भ मे मेढको को एक दूसरे का अनुकरण करते बोलने को ऋग्वेद-कालीन गुरु-शिष्यो के पाठ से तुलना की गयी है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस ऋचा को शायद ही देखा हो, पर जान पडता है, यह उपमा परम्परा से चली आई थी, इसीलिए उन्होने कहा—

"दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। वेद पढई जनु बटु समुदाई।"

एक मेढक आवाज निकालता है। उसके बाद दूसरे अनुकरण करते है, फिर लढी लग जाती है। पुराने समय की वेद पढाने की प्रक्रिया अब भी देखी जाती है। गुरु स्वर-सहित मन्त्र को एक बार पढता है। शिष्य उसे दो बार दोहराते है। आज गुरु-शिष्य-पुस्तक का सहारा लेते है। वेद जब लिपिबद्ध नहीं थे, तो गुरु कठस्थ ऋचा को एक बार बोलता होगा, और शिष्य दो बार। इस प्रकार बराबर दोहराते छोटी आयु मे ही बच्चो को अपना वेद कठस्थ हो जाता था। यद्यपि साम को छोडकर और किसी वेद को सगीत के स्वरो के साथ नहीं पढा या दोहराया जाता था पर तो भी पद्य पाठ की तरह उसकी एक लय हो ही जाती थी। पवित्र ऋचाओ या छन्दो की शिक्षा शिष्य गुरु से इसी तरह पाता था। भरद्वाज-वसिष्ठ की चौथी-पाँचवी पीढी तक के ही रचित मन्त्र ऋग्वेद मे मिलते हैं, ऋग्वेद के सबसे पिछले ऋषियो ने गुरुमुख से अपने पूर्वज ऋषियो के ब्रह्म (मन्त्र, पद) का अध्ययन किया था।

ब्रह्म (ऋचा) मे अद्‌भुत शक्ति मानी जाती थी। तभी तो विश्वामित्र ने कहा[3](३।५३।१२)—

"जो यह दोनो द्यौ तथा पृथिवी हैं, उनसे मैंने इन्द्र को तुष्ट किया।

विश्वामित्र का यह ब्रह्म भारत-जन की रक्षा करता है।"

वेदवाणी की अद्‌भुत शक्ति को स्वय प्राचीनतम ऋषियो ने अपने मुँह से बखाना था, इसलिए उसके सीखने और कठस्थ करने की ओर लोगो का ध्यान बहुत हो यह स्वाभाविक था।

लेकिन, केवल देवताओ को प्रसन्न करने से ही उनकी लोक-यात्रा नहीं चल सकती थी। उस समय सीखने की और भी बहुत सी चीजे थीं। जिस युद्ध-कौशल को आर्य तरुण गुरुमुख से सीखते थे, वह सब वेद मे नहीं दिया गया है। नाना शिल्प भी उस वक्त प्रचलित थे, जिन्हे भी सीखना जरूरी था। इन शिल्पो मे से कुछ का ही नाम ऋग्वेद मे मिलता है। मोहनजोदडो और हडप्पा मे ऋग्वेद से डेढ-दो हजार वर्ष पहले की जो चीजे उपलब्ध हुई हैं, उनसे पता लगता है, कि उस समय इजीनियर (वास्तुशिल्पी), राजगीर, शखरकार, पटकार (जुलाहे) सुनार, चर्मकार, वेणुकार लोहार, कुम्हार आदि बहुत से शिल्पकार थे जिन्हे अपनी बाते अगली पीढी मे पहुँचानी पडती थीं। खेती और उसके लिए उपयोगी ऋतुओ के ज्ञान की भी शिक्षा आवश्यक थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्यो को जितनी शिक्षा लेनी पडती थी, वह उतनी ही नही थीं, जिनका उल्लेख ऋग्वेद मे मिलता है।

२ स्वास्थ्य

आर्य यथार्थवादी थे। अपने देवताओ पर उनकी परम भक्ति थी, लेकिन पौरुष को भूलकर नही। वह जानते थे, इन्द्र भी दिवोदास, सुदास के पौरुष के सहारे ही शत्रुओ का सहार कर सके इसलिए शरीर की पुष्टि और स्वास्थ्य की ओर उनका ध्यान विशेष था। सप्तसिन्धु मे अपने से अधिक सभ्य, सस्कृत तथा साधन-सम्पन्न लोगो को पराजित करने मे आर्य इसीलिए सफल हुए कि उनके पास तेज चलनेवाले घोडो और घुमन्तुओ की लडाकू प्रकृति के अतिरिक्त तगडा शरीर भी था। उनके सामने मोहनजोदडो के नागरिक खर्बकाय थे। हरेक घुमन्तू या अर्ध-घुमन्तू की तरह आर्य खुले मे रहना पसन्द करते थे, इसीलिए उन्होने अपना वास नगरो मे नहीं ग्रामो मे रखा। खुली हवा मे वास, दूध-घी-मास प्रधानभोजन स्वास्थ्य सवर्धन के ये सबसे अच्छे साधन उनके पास मौजूद थे। घुडसवारी स्वय एक व्यायाम है। उस समय शायद ही कोई ऐसा आर्य हो, जो चतुर घोडसवार न हो। शत्रुओ से प्रतिरक्षा तथा स्वय भी दूसरो की गायो और भेडो को लूटने के लिए उन्हे हर वक्त हथियारबन्द रहना पडता था। इसीलिए वह घोडसवारी मे भी चुस्त थे। मल्ल या मल्लविद्या का उल्लेख ऋग्वेद मे नहीं मिलता। पर पीछे पजाब और पूर्वी उत्तर-प्रदेश मे एक जन का नाम मल्ल बतलाता है, कि उनमे कुश्ती का खाज था। मुष्टियुद्ध का स्पष्ट उल्लेख विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा की ऋचा[1] (१।८।२) मे है—

"हे इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित हम घोडो से मुष्टिहत्या (मुष्टियुद्ध) द्वारा शत्रुओ को रोकेगे।"

कुश्ती (मल्लयुद्ध) या मुष्टियुद्ध केवल स्वास्थ्य के लिए ही उपयुक्त नहीं थी, बल्कि युद्ध मे भी इनका उपयोग था, इसलिए आर्य तरुण इनको अच्छी तरह सीखते थे।

नृत्य मनोरजन की एक उत्तम और मानव की सबसे पुरानी ललितकला है। यह अच्छा व्यायाम भी है। घोर जाडे के दिनो मे अहीरो के नृत्य नाचते एक तरुण को मैंने पसीने-पसीने होते देखा था। उस समय आधुनिक व्यायाम के शौकीन एक तरुण दर्शक ने बतलाया था, कि इस नृत्य से कमर के दोनो तरफ की पेशियो पर भी बहुत जोर पड रहा है, जहाँ पर आधुनिक व्यायाम की शैलियो से भी जोर पहुँचाना असम्भव नहीं, तो मुश्किल है। अगिरा-गोत्री सव्य ने नर्तयन् (नचाते) शब्द का प्रयोग[4] (१।५१।३) किया है, पर वह हथियार नचाने के अर्थ मे—

"हे इन्द्र, तुमने अगिराओ (पुरोहितो) के लिए वर्षा कराई। अत्रि को शतदुर हथियार से बचने के लिए भगाया। विमद को अन्न-सहित (धन) दिया, और सग्राम मे वज्र नचाते हुए स्तुतिकर्त्ता की रक्षा की।"

सस्कृत-असस्कृत सभी आदिम तथा सभ्यता मे सबसे आगे बढी आधुनिक जातियो मे नृत्य बहुप्रचलित व्यायाम और विनोद है। ऋग्वेदिक आर्य सोम (भाग) के बडे प्रेमी थे। उसे पीकर मस्त होने मे उन्हे बडा आनन्द आता था। मस्ती और आनन्द दोनो के लिए मद शब्द का प्रयोग इसी को बतलाता है। आर्य नर-नारी अपनी सोमगोष्ठियो मे गीत और नृत्य का भी आनन्द लेते थे, जिससे उनके स्वास्थ्य को बहुत लाभ था।

३ रोग

रोगो मे यक्ष्मा, हृदयरोग, कुष्ठ का उल्लेख ऋग्वेद मे आता है। यक्ष्मा शायद ज्वर का ही दूसरा नाम था, और तपेदिक (टी० बी०) के लिए राजयक्ष्मा का प्रयोग होता था। आथर्वन ऋषि ने कहा है[१] (१० ।९७ ।११, १२)

"जब मैं इन औषधियो को हाथ मे लेता हूँ, तो यक्ष्मा की आत्मा वैसे ही नष्ट होती है, जैसे पकडनेवाली मृत्यु से जीव।

"हे औषधियो, जैसे उग्र और मध्यस्थ दूसरो को बाधित करता है, वैसे ही तुम इसके पर्व-पर्व (पोर-पोर) मे व्याप्त हो यक्ष्म को हरो।"

कल्पित नाम वाले प्रजापति-पुत्र यक्ष्मनाशन ऋषि यक्ष्मा से राजयक्ष्मा का भेद करते हुए कहते है[२] (१० ।१६१ ।१)—

"हवि द्वारा तुझे अज्ञात यक्ष्मा और राजयक्ष्मा से मुक्त करता हूँ। यदि किसी ग्रह (भूत-प्रेत) ने पकडा है, तो उससे इन्द्र-अग्नि इसे मुक्त करे।"

हृदय रोग पुराना रोग है। बुढापे से शरीर के भीतरी अगो के जीर्ण-शीर्ण होने का ही यह एक रूप है। बिना किसी ज्वर या दूसरे रोग के हृदय के विपन्न होने से आदमी का एकाएक प्राणान्त होने को पुरानी परिभाषा मे रोगियो की (श्लाघनीय) मृत्यु कहा जाता था। मृत्यु न देकर यदि वह कष्ट देता रहे तो वह उत्पीडक रोग है। कण्व-पुत्र प्रस्कण्व ने मित्र (सूर्य) से इससे बचने की कामना की[३] (१ ।५० ।११)—

"आज द्यौलोक के ऊपर चढता मित्र (सूर्य) मेरे हृद्रोग और पीलिया को नष्ट करे।"

पीलिया के कारण शरीर पीला (हरिमाण) हो जाता था।

यक्ष्मा, जान पडता है, शरीर के बहुत से रोगो का नाम था जैसा कि विवृहा काश्यप के कथन[४] (१० ।१६३ ।१—६) से मालूम होता है—

"तेरे दोनो नेत्रो, दोनो नासिका-छिद्रो, दोनो कानो, चिबुक, मस्तिष्क और जिह्वा से शीर्ष स्थानीय यक्ष्मा को दूर करता हूँ।।१।।"

"तेरी ग्रीवा से, धमनियो से, स्नायुओ से, हड्डी से, दोनो पहुचो दोनो बाहुओ और दोनो कन्धो से यक्ष्मा को दूर करता हूँ।।२।।"

"तेरी अतडियो से, गुदा से, हृदय से, मूत्राशय से यकृत से तेरे मासपिण्डो से यक्ष्मा को दूर करता हूँ।।३।।"

"तेरी जॉघो से, दोनो पिडलियो से, दोनो गुल्फो से, दोनो एडियो से, दोनो नितम्बो से कमर और मलस्थान से यक्ष्मा को दूर करता हूँ।।४।।'

"तेरे मूत्रस्थान से, लोम से, नख से, तेरे सर्व आत्मा (शरीर) से इस यक्ष्मा को दूर करता हूँ ।।५।।'

"अग-अग से, रोम रोम से, पर्व-पर्व मे उत्पन्न तेरी सारी आत्मा (शरीर) से इस यक्ष्मा को दूर करता हूँ ।।६।।"

घोषा के कुष्ट रोग से पीडित होने की बात का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद मे नही आता, जिसका कि दूसरी जगहो मे जिक्र आया है। दीर्घतमा-पुत्र कक्षीवान् के कथन[५] (१ ।११७ ।७) से मालूम होता है कि वह किसी रोग से पीडित होकर बिना व्याहे ही पिता के घर मे बैठी थी—

"हे अश्विनो, तुमने स्तुति करते कृष्ण-पुत्र विष्वक विष्वापु को पिता के घर मे बैठी झुराती घोषा के लिए पति प्रदान किया।

रोगो की सख्या उस समय भी काफी होगी, पर उनके रोगो का अधिक विभाजन नहीं हुआ था।

४ चिकित्सा

ऋग्वेद से छ शताब्दियो बाद बुद्ध के समय औषधियो का काफी विस्तार और विकास हो चुका था। पर, अभी रस और धातु-भस्मो के प्रयोग मे आने मे शताब्दियो की देर थी। बुद्ध के समय पचभैषज्य (घी-मक्खन-तेल-मधु खॉड), चर्बी, मूल, कषाय, पत्ता, फल, गोद, नमकवाली दवा कच्चे मास-रक्त की दवाइयॉ प्रचलित थीं। अजन, तेल नस्य, धूमबत्ती और मद्ययुक्त औषध भी इस्तेमाल किये जाते थे। ताप देकर पसीना निकालना, सींग से खून निकालना, मालिश चीर-फाड मलहम-पट्टी, सर्प-चिकित्सा, विष-चिकित्सा पाण्डुरोग-चिकित्सा, ग्रह (भूत) चिकित्सा, चर्मरोग चिकित्सा, का भी उल्लेख "विनय-पिटक" (महावग्ग, भैषज्य-स्कन्धक) मे आता है। इनमे से अधिकाश औषधियो और चिकित्साओ का पहिले भी प्रचार रहा होगा।

ऋग्वेद मे निम्न रोगो का उल्लेख आता है—

अगद, अजका, अज्ञात यक्ष्मा, अनमीव, अनूक्य, अप्वा, अम, अशीपद, अशीमिद, जीवगृभ, दुर्नामा (बवासीर) नवज्वार, पृषन्य, पृष्ठ्यामयी यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, वदन, बध्रि, विवबृ विसूचि, सुराम श्राम हरिमा, हृद्रोग।

औषधियो की सख्या बहुत थी, तभी तो भिषग् आथर्वन ने[११] (१० ।९७ ।६) कहा है—

"जैसे राजा लोग समिति मे एकत्रित होते हैं, वैसे ही जिसके पास औषधियो का समागम होता है उसे रोगनाशक, राक्षसनाशक विप्र भिषग् कहा जाता है।"

आजकल वैद्य लोग धन्वतरि को इष्ट मानते हैं, किन्तु वैदिक काल मे यमल अश्विनो (अश्विनीकुमारो) की महिमा गायी जाती थी। इरिन्विठि ने [१२] (८ ।१८ ।८) कहा है—

"वे (दिव्य) भिषग् अश्विद्वय हमारा कल्याण करे, बाधाओ को यहॉ से दूर हटावे।"

हिरण्यस्तूप अश्विनीकुमारो की प्रशसा मे कहते है[१३] (१ ।३४ ।६—६)—

"शुभ के स्वामी, हे अश्विनो हमे तीन बार ,दिव्य, तीन बार पार्थिव और तीन बार जलीय दवाइयो को दो। सयु की तरह मेरी सन्तानो को तीनो प्रकार से सुख दो।।६।।"

"हे नासत्यो, तुम्हारे तीन प्रकार के रथ के तीन चक्के कहॉ है ? नीडसहित तीनो धुरे कहॉ हे ? उस शक्तिशाली गदहे का जोडना कब होगा जिसके साथ तुम यज्ञ मे आओगे।।६।।"

इससे मालूम होता है कि अश्विनीकुमारो के रथ मे गदहा (रासभ) जुतता था। चाहे घोडे के समान न समझते हो, लेकिन गदहे पालने और उसके इस्तेमाल करने मे आर्य हीनता नहीं अनुभव करते थे।

मादक सोम को भी औषध माना जाता था, यह आश्चर्य की बात नहीं। आजकल भी दवाइयो मे मद्यसार का प्रयोग काफी देखा जाता है। प्रगाथपुत्र हर्यत ने कहा है[१४] (८ ।६१ ।१७)—

"मित्र वरुण, सूर्य के उदय होने पर सोम को ग्रहण करते हैं, सो आतुर (रोगी) का भेषज है।"

कण्व-पुत्र सोभरि ऋग्वेद के प्रसिद्ध ऋषि हैं। वह अश्विनीकुमारो की महिमा गाते[१५] (८ ।२२ ।१०) कहते हैं—

"हे जिनसे तुमने पक्थ की, जिनसे अध्रिगु जिनसे वभ्रु की रक्षा की उनके साथ अति शीघ्र आओ। जो आतुर (रोग) है, उसकी चिकित्सा करो।"

अध्याय १३
वेष-भूषा

आर्य ठण्डे मुल्क से आये थे। जाडो मे सप्तसिन्धु (पजाब) मे भी काफी सर्दी पडती थी। सुवास्तु-उपत्यका जैसे स्थानो मे जिन्हे रहना पडता था, वहाँ हर साल बर्फ पडती देखते थे। पर, आर्यों के अधिकाश निवास सर्द होते भी हिमपात की भूमि से हट कर थे। सर्दी से बचने के लिए शरीर का ढँकना आवश्यक था। "अग्निर्हिमस्य भेषजम्" (आग सर्दी की दवा है) की उक्ति चरितार्थ करते हुए वह कपडे बिना सिर्फ आग के सहारे नहीं रह सकते थे। वह कई तरह के कपडे पहनते थे, पर सबका विवरण नहीं मिलता।

१. वस्त्र

वास वस्त्र को कहते हैं। सुवास, दुर्वास, अर्जुनवास, शुक्रवास, अविवास जैसे शब्दो का व्यवहार बतलाता है, कि वस्त्रो की तरफ उनका बहुत ध्यान था। स्त्री या पुरुष के लिए सुवास होना आवश्यक समझा जाता था। विश्वामित्र ने[1] (३।८।४) कहा है—

"सु-वास, आच्छादित युवा आया, वह उत्पन्न हो श्रेयस्कर है।

धीर मन से सुन्दर सोचते देवो का उन्नयन करते हैं।"

यहाँ यज्ञ के यूप (स्तम्भ) का वर्णन करते, उसकी उपमा सुन्दर वस्त्र पहने तरुण से दी गयी है।

ऋषि कक्षीवान् ने सुवासा स्त्री का उल्लेख[2] (१।१२४।७) किया है—

"जैसे भ्रातृहीना (पति के) बिना स्त्री पुरुष के सामने धन की प्राप्ति के लिए घर आती है, जैसे सुवासा (पत्नी) अभिलाषा करती पति के पास आती है, वैसे ही हँसती हुई उषा प्रकाशित होती है।"

इसी भाव को वृहस्पति भी कहते हैं[3] (१०।७१।४)—

"कोई देखते भी वाणी को नहीं देखते, सुनते भी इसे नहीं सुनते। किसी को यह वाणी पति की कामिनी सुवासा जाया की तरह अपना शरीर अनावृत करती है।"

शुक्लवस्त्र के साथ, जान पडता है, आर्यों का अधिक प्रेम था। कुत्स आगिरस ने उषा का वर्णन करते कहा है[4] (१।११३।७)—

"यह द्यौ की पुत्री, युवती, शुक्लवस्त्रवाली (शुक्रवासा) अन्धकार दूर करती (उषा) दिखलाई पडी। यह सारे पृथिवी लोक के धन की स्वामिनी है। हे सुभगे उषा, आज यहाँ से अन्धकार दूर करो।"

उषा को अरुणवासा कहना चाहिये, लेकिन शुक्लवस्त्र के पक्षपात से यहाँ उसे शुक्रवासा कहा गया। विश्वामित्र ने भी उषा को श्वेत (अर्जुन) वस्त्रधारिणी बतलाया है[5] (३।३६।२)—

"द्युलोक मे उत्पन्न, यज्ञ मे प्रशसित, जागरूक, अर्जुन (सफेद) वस्त्रो को पहने भद्रा उषा पितरो के पास से हमारे यहाँ आती है।"

आर्यों के वस्त्र ऊनी होते थे। सब जगह पर अवि (भेड) और ऊर्णा का ही उल्लेख मिलता है, यहॉ तक कि सोम को छानने के लिए भी ऊनी कपडे का ही प्रयोग होता था। विमद ऋषि कहते हैं[६] (१०।२६।६)—

"आकाक्षिणी, शुचा और शुच (उषा-) पति भेडो के वस्त्र को बुनते हैं, वस्त्रो को धोते हैं।"

बुरे वस्त्रो वाला (दुर्वास) रहना आर्य पसन्द नहीं करते थे, इसीलिए वसिष्ठ ने अग्नि से[७] (७।१।१९) कामना की है—

"हे अग्नि, हमे अ-वीर न करना, दुर्वासा और मतिहीन न करना। हमे न क्षुधा देना, न राक्षस को देना। हमे न घर मे न वन मे मारना।"

स्त्रियो का वस्त्र से सु-आच्छादित रहना अच्छा समझा जाता था। विश्वमना आगिरस कहते[८] (८।२६।१३) हैं—

"हे अश्विद्वय, सेवा करने पर वस्त्र से आच्छादित वधू की तरह यज्ञ द्वारा सेवित हो तुम मगल करते हो।"

वस्त्रो का अधिक व्यवहार होने पर भी वह कितने प्रकार के थे, इसका पता कम लगता है। उनके परिधान थे—

१ **द्रापि**—वामदेव ने वस्त्र का उल्लेख[९] (४।५३।२) किया है—

"द्युलोक के धारक, भुवन के प्रजापति कवि (सविता) पिशग (पीली) द्रापि धारण करते हैं। वह प्रार्थित तर्पित हो विचक्षण सविता सुन्दर धन प्रदान करे।"

दीर्घतमा-सन्तान कक्षीवान् भी द्रापि का वर्णन करते हैं[१०] (१।११६।१०)—

"हे अश्विकुमारो द्रापि की तरह तुमने च्यवन के बुढापे को खोल फेका है। दर्शनीयो, तुमने उस परित्यक्त के जीवन को बढाया, और (उसे) कन्याओ का पति बनाया।"

अजीगर्त-पुत्र शुनशेप वरुण की प्रशसा करते हैं[११] (१।२५।१३)—

"सुनहली द्रापि को धारण करते वरुण (अपना) पुष्ट शरीर ढॉकते हैं। चारो ओर किरणे फेलती हैं।'

"इन ऋचाओ से मालूम होता है, कि पिशग, हिरण्य अर्थात् (पीली), सुनहली द्रापि पहनी जाती थी। शायद हिमालय के बहुत से स्थानो की स्त्रियो के दोडू (चादर) की तरह इसे पहिना जाता था।

२ **अत्क**— भरद्वाज ने इसका उल्लेख किया है[१२] (६।२९।३)—

"इन्द्र, श्री के लिए तेरे पेरो की हम सेवा करते हैं। वज्र-युक्त तुम शत्रुओ को बल से पराजित करते हमे दक्षिणा देते हो। हे नेता, दर्शनीय सुरभि अत्क को पहने तुम सूर्य की तरह भ्रमण करते हो।"

कल्पित वेन भार्गव ऋषि वेन नामक देवता का वर्णन करते कहते हैं [१३] (१०।१२३।७)—

"गन्धर्व स्वर्ग मे ऊॅचे स्थित सामने विचित्र आयुधधारी सुरभि अत्क पहने दर्शनीय (वेन) प्रिय सुख उत्पन्न करते हैं।"

३ **शिप्र**—यह शिरस्त्राण और उष्णीष (पगडी) दोनो का नाम था। वसिष्ठ ने इन्द्र के लिए कहा है[१४] (७।३५।३)—

"हे शिप्रवाले (इन्द्र) सुदास के लिए तेरी सेकडो रक्षाये सहस्रो अभिलाषाए और दान हो। इन सब मर्दो के हथियारो को नष्ट करो और (हमे) उज्ज्वल रत्न दो।"

वामदेव के कथन से[१५] (४।३७।४) मालूम होता है, कि शिप्र-शिरस्त्राण था—

"हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व मोटे हैं, रथ चमकते हैं, तुम ताम्र-शिप्र (अय शिप्रा), अन्नवान् और अच्छे निष्क (सुवर्ण) वाले हो। हे इन्द्र के पुत्रो, बल के नातियो, तुम्हारे आनन्द के लिए यह अग्रणी सेवन किया जा रहा है।"

शिप्र से यहॉ तॉबे के शिरस्त्राण का पता लगता है। पर, शिरस्त्राण भी उष्णीष (पगडी) का ही एक विकसित रूप है। इस प्रकार आर्यो की पोशाक मे उष्णीष भी थी। प्राय ईसवी सन् के आरम्भ तक भारत मे स्त्री-पुरुष दोनो उष्णीष (पगडी) बॉधते रहे। उस समय भारत से जो लोग बाहर के उपनिवेशो मे जाकर बसे, वहॉ भी नर-नारी दोनो के साथ उष्णीष गयी। बर्मा की सीमान्त पर चीन मे—जहॉ पुराने समय मे पूर्व-गन्धा उपनिवेश आबाद था—आज भी स्त्री-पुरुष पगडी बॉधते है। द्रापिका ही रूपान्तर पीछे का उत्तरासग (चादर) है। सुवास या अच्छे अन्तर्वासक ने पीछे धोती का रूप लिया। स्त्रियो मे उसी ने उत्तरीय या उत्तरा-सग से जुड कर साडी का रूप लिया, या घेरे को बढा देने पर लहगा बन गया। मोहनजोदडो और हडप्पा की पोशाक मे भी अन्तर्वास और उत्तरा-सग का पता लगता है। सुत्थन या पायजामा शको की पोशाक थी, जो उन्हीं के साथ ईसा-पूर्व और पश्चात् की प्रथम शताब्दियो मे भारत आया, और पीछे हमारे राजाओ ने उसे अपनी पोशाक मे दाखिल कर लिया, यह अपने सिक्को पर सुत्थन पहने गुप्त राजाओ को देखने से मालूम होता है।

२ भूषा

आभूषणो मे कुण्डल (कर्णशोभन) गले की ताबीज या हमेल, छाती का हार तथा हाथ मे ककण (खादि) का पता लगता है। यह जेवर सोने ओर मणि के होते थे। वैदिक काल मे चॉदी का यदि अभाव नहीं, तो प्रचार जरूर कम था। पुराने समय मे चॉदी की दुर्लभता के कारण चॉदी और सोने का भाव बराबर देखा जाता है, यह भी उसके प्रचार मे बाधक था। सोना हमारे यहॉ थोडा बहुत होता था, और उससे भी अधिक सोना अल्ताई की खाने ताम्रयुग के एसिया के भिन्न-भिन्न देशो को प्रदान करती थीं, जो बीच की जातियो से होता भारत पहुॅचता था।

१ **कर्ण-आभूषण**—कुरुसित ऋषि कर्णशोभन (कर्णाभरण) का उल्लेख करते है[१६] (८।६७।३)—

"हे शत्रुनाशक इन्द्र, तुम वसु, तुम प्रशसनीय सुने जाते हो। हमे बहुत से कर्णशोभन प्रदान करो।"

कक्षीवान्[१७] (१।१२२।१४) विश्वे (सारे) देवो से प्रार्थना करते है—

"हे विश्वेदेवो, हमे हिरण्यकर्ण (सुवर्ण-कुण्डली), मणिग्रीव (मणि-कण्ठावाला), रूपवान् पुत्र प्रदान करो। सद्य निकलती हमारी श्रेष्ठ वाणी और हव्य को पसद करो।"

२ **सोने का कण्ठा**—गले मे निष्क (सोने) पहनने का उल्लेख है। निष्क सोने की मुद्रा नहीं था। कुषाणो से पहले सोने की मुद्रा भारत मे किसी राजा ने नहीं ढाली न उसका नमूना कोई मिलता है। हो सकता है गले मे पहनने के लिए विशेष आकार के सोने के टुकडे बनते हो, जिन्हे निष्क कहा जाता था। अत्रि-गोत्रीय वव्र, ऋषि गले मे निष्क पहने हुए ऋत्वजो का उल्लेख करते हैं[१८] (५।१९।३)—

"स्तुतिकर्ता अन्नाकाक्षी निष्कग्रीव ऋत्विज इस अग्नि के बल को बढाते हैं।"

निष्कग्रीव ही के लिए वसिष्ठ ने सुनिष्क कहा है" (७।५६।११)—

"वे सुन्दर आयुधवाले गतिशील सुनिष्क मरुत् स्वय शरीर को सजाते।"

कक्षीवान् ने विश्वेदेवो को " (१।१२२।१४) मणिग्रीव बतलाया है, जिससे पता लगता है, कि आर्य पुरुष-स्त्री गले मे निष्क ही नहीं, मणियो की भी माला धारण करते थे।

३ **रुक्मवक्ष**—वसिष्ठ ने" (७।५६।१३) छाती पर रुक्म और कन्धे पर खादि के धारण करने का उल्लेख किया है—

"हे मरुतो तुम्हारे कन्धो पर खादि और वक्ष पर रुक्म (स्वर्णाभरण) पडा हुआ है। जैसे वृष्टि के समय बिजली चमकती है वैसे ही जल देते हुए तुम अपने आयुधो से शोभित होते हो।"

४ **खादि, ५ ऋष्टि, ६, शिप्र**—ऊपर की ऋचा से पता लगता है, कि खादि कन्धे पर पहनी जाती थी। श्यावाश्वकी ऋचा " (५।५४।११) मे भी उल्लेख है—

"मरुतो, तुम्हारे कन्धो पर ऋष्टि (हथियार), पैरो मे खादि, वक्ष पर रुक्म (स्वर्णाभरण) हैं। रथ पर तुम शोभायमान हो। किरणो (हाथो) मे आग की तरह चमकनेवाली बिजलियॉ और सिर पर फैले सुनहले शिप्र हैं।"

यहॉ कन्धे पर नहीं बल्कि पैरो मे खादि का वर्णन बतलाता है कि पैर के कडे को भी खादि कहा जाता था। खादि ककण को भी कहते थे, यह श्यावाश्व की एक ऋचा " (५।५८।२) से मालूम होता है—

"हे विप्रो शक्तिशाली हाथ मे खादि पहने, कॅपाने का व्रती मायावी, दाता इन मरुतो के गण की वदना करो, जो सुखदाता अमित महिमावाले बडे ऐश्वर्यशाली हैं।"

भरद्वाज " (६।१६।४०) भी शिशु के हाथ मे खादि (ककण) का उल्लेख करते हैं—

"सुन्दर यज्ञवाले विशो (जनता) की अग्नि को (वह) हाथ मे खादियुक्त उत्पन्न शिशु की तरह धारण करते हैं।"

मोहनजोदडो के लोगो और ऋग्वेदिक आर्यो के आभूषण मे कुछ समानता जरूर रही होगी क्योकि मोहनजोदडोवाले अधिक सस्कृत होने से भूषण और सज्जा मे आर्यो के पथ-प्रदर्शक हो सकते थे। मोहनजोदडो की खुदाई मे कितने ही प्रकार के जेवर मिले हैं। स्त्रियॉ कलाई से कन्धे के पास तक पच्चीसो ककण या चूडे पहनतीं थीं, जिन्हे अभी भी पुरानी सिन्धी और मारवाडी महिलाओ के हाथो मे देखा जा सकता है। यदि ऋग्वेदिक आर्याएँ सारे हाथ को सोने की खादि से नहीं ढॉकती होगी, तो एक दो तो जरूर पहनती होगी। ककण केवल स्त्रियो का भूषण नहीं था। गले मे पहनने के लिए एकलरी, चारलरी, छलरी हार भी मोहनजोदडो मे मिले हैं। इन्हीं सोने के हारो के पहनने वालो को ऋषियो ने रुक्मवक्षा कहा है।

७ **ओपश स्त्रियो का शिरोभूषण**—शायद सोहाग टीका जैसा था। (१०।८५।८)।

३ सज्जा

१ **कपर्द**—शरीर को सजाना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। इसके लिए सिर्फ स्त्रियॉ ही दोषी नहीं हैं पुरुष भी अपने को सजाने की कोशिश करते हैं। सभी आर्य दाढी-मूँछ-धारी नहीं होते थे। इन्द्र के मुँह पर पीली दाढीमूँछ (श्मश्रु) का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। आर्य पुरुष भी आर्य ललनाओ की तरह लम्बा केश रखते थे। यह परम्परा मुसलमानो के आने के समय तक चलती रही। बालो को इकट्ठा करके बनाये जूडा को कपर्द कहते थे। शकर का नाम कपर्दी इसीलिए पडा क्योकि उनके सिरपर जटाजूट है। भरद्वाज ने" (६।५५।२) पूषन् को कपर्दी कहते हुए ईशान भी कहा है। ईशान शासक या राजा का पर्याय था जिसे पीछे शकर

का पर्यायवाची बना दिया गया। भरद्वाज के इसी "कपर्दी ईशान" को लेकर शकर को जटाजूटधारी कहा जाने लगा। जो भी हो, पूषन् को भरद्वाज ने कपर्दी कहा है—

"श्रेष्ठ रथी कपर्दी (जूडाधारी) शासक मित्र पूषन् से हम धन की प्रार्थना करते हैं।"

उनके समकालीन वसिष्ठ भी अपने कुल के तरुणो को सिर के दाहिनी ओर कपर्द बनानेवाले (दक्षिणस्त कपर्दा) कहा है[२६] (७।३३।१)—

"मेरे गोरे, दक्षिणत कपर्द वाले (पुत्र) मुझे चारो ओर से प्रसन्न करते है। मैं यज्ञ से उठते कहता हूँ, मेरी वसिष्ठ-सन्तान मुझसे दूर न जाये।"

इस कथन से जान पडता है, कि भिन्न-भिन्न कुलो के सिर के कपर्द (जूडा) भिन्न-भिन्न ओर बॉधे जाते थे। वैरागी साधु अखाडे के अनुसार अपनी पगडी को दाहिने या बॉये बॉधने का ख्याल रखते हैं, यही बात राजपूतो के बारे मे भी कही जा सकती है। हिन्दू के कुर्ते और मिर्जई का गला दाहिनी ओर और मुसलमान का बाईं ओर खुलता है, यह भी हम जानते है। पुराने समय का कपर्द सिक्खो की तरह जूडामात्र नहीं था, बल्कि जूडे को पगडी से बाहर रखकर उसे फूल से सजाया जाता था। यह ईसा पूर्व दूसरी-तीसरी शताब्दियो की मूर्तियो को देखने से मालूम होता है। फूलो से बाल के सजाने का रिवाज ऋग्वेदिक काल मे भी रहा होगा।

कपर्द केवल जूडे को ही नहीं वेणी को भी कहते थे, जैसा कि विरूप-पुत्र सध्री के कथन से[३०] (१०।११४।३) मालूम पडता है—

"चार कपर्दोवाली सुवासा (उत्तम वस्त्र धारण किये) घृत जैसी युवती हे। उस पर कामनापूरक दो पक्षी बैठे हैं, जहॉ देवो ने अपने भाग्य को धारण किया।"

यहॉ यज्ञवेदी को चार कपर्दोंवाली युवती से उपमा दी गयी है। हो सकता है, कुमारिया चार वेणियॉ बनाती हों। दो वेणी और एक वेणी बनाने का रिवाज आज भी देखा जाता है।

२ क्षौर—दाढी-मूँछ या केवल दाढी मुँडाने का भी रिवाज था, यह एक ऋचा[३१] (१० १।४२।४) से मालूम होता है—

"जब तुम लूटनेवाली सेना की तरह ऊपर-नीचे मुडते अलग-अलग जाते हो, जब तुम्हारा वायु बहता, तेज बहता है, तो नाई (वपता) की तरह तुम मानो श्मश्रु (दाढी) मूँडते हो।"

ऋग्वेद मे आर्य नर-नारियो की वेष-भूषा के बारे मे जो बाते मिलती हैं। उनसे पता लगता है, कि उन्हे कपडा पहनने का शौक था, जो ऊनी और कुछ चमडे के भी होते थे। वह तरह-तरह के सोने और मणि के आभूषण पहनते थे। केशो का सिगार फूलो से करते थे। सभी आर्य पुरुष दाढी रखने के शौकीन नहीं थे, प्रौढो मे उसका अवश्य रिवाज था।

अध्याय १४
क्रीडा, विनोद
१ नृत्य

नृत्य-गीत, सोमपान, घुडसवारी, कुश्ती, जुआ सप्तसिन्धु के आर्यो के मनोरजन की चीजे थीं। इनका विशद वर्णन ऋग्वेद मे न होना स्वाभाविक है, क्योकि उसके सग्रह का यह उद्देश्य नहीं था। आगिरस सव्य ऋषि नृत्य[1] (१।५७।३) का उल्लेख करते है लेकिन, साकेतिक भाषा मे ही, वहॉ इन्द्र के वज्र नचाने की बात कही है।

२ सगीत

सगीत भी आर्यो के लिए मनोरजन का एक साधन था, ऋग्वेद का नवॉ मण्डल और प्राय सारा सामवेद सोम-सम्बन्धी गान के लिए ही है। गान-साधन (गायत्र) होने के कारण आठ अक्षरोवाले तीन पादो के छन्द को गायत्री कहा जाता था। घोर-पुत्र कण्व ऋषि ने इसीलिए कहा है[2] (१।३८।१४)—

"मुँह मे श्लोक बनाओ, पर्जन्य मेघ की तरह विस्तृत करो। उक्थ्य (गेय) गायत्र का गान करो।।१४।।"

हम बतला चुके हैं, कि आज भी किन्नर आदि पहाडी तथा मैदानी लोक-गीतो मे भी तीन पादवाले इस छन्द का बहुत रिवाज है। वैदिक गायत्र साम और लोक-गीतो के तीन पादवाले गानो के लय का तुलनात्मक अध्ययन शायद हमे सप्तसिन्धु के आर्यो के गान-विधि का परिचय दे सके।

३ पान

(१) सोम—मादक पानो मे सोम का आर्यो मे बहुत रिवाज था। एक तरह की सुरा भी वह पीते थे, पर उसे महत्त्व नहीं दिया जाता था। (१) कण्व-पुत्र कुसीदि इन्द्र के प्रिय सोमपान के लिए कहते हैं[3] (८।७१।७—८)—

"चमसो (प्यालो) और चमुओ (काष्ट-पात्रो) मे तुम्हारे लिए जो सोम छाना गया है। हे इन्द्र, इसे पियो, तुम इसके स्वामी हो।।७।।"

"जो सोम चमुओ मे, पानी मे चन्द्रमा की तरह दिखाई देता है इसे पियो तुम ईश्वर हो।।८।।"

सोमवाला नवॉ मडल विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा के सूक्त से शुरू होता है जिसकी प्रथम ऋचा[4] (६।१।१)—

"इन्द्र के पीने के लिए छाने गये हे सोम तुम स्वादिष्ट ओर मदिष्ट (मस्त करनेवाली) धारा के साथ प्रवाहित होओ।"

शुनशेप ऋषि ने कहा है[5] (६।३।१)—

"यह अमर देव द्रोणो (घडो) मे बैठने के लिए पक्षी के समान डाला जाता हे।"

सोम के सबसे अधिक सूक्तो के रचयिता काश्यप असित-देवल कहते हैं[4] (६।५।१)—

"सुप्रकाशित, सबके पति, पवित्र, कामवर्षक, प्रसन्नकर्ता, सोम शब्द करते विराजते हैं।"

"पवमान (छाने जाते, पवित्र) सुन्दर महान् सोम, रात्रि और दर्शनीया उषा की कामना करते हैं।।६।।

"पवमान सोम की भारती, सरस्वती, इळा तीनो महान् सुन्दरी देवियॉ हमारे इस यज्ञ मे आये ।।८।।"

असित फिर कहते हैं[6] (६।८।४, ६)—

"तुम्हे दसो अगुलियॉ मार्जित करती हैं, सात स्तुतियॉ प्रसन्न करती हैं, (तुम्हे पी) पीछे विप्र मस्त होते हैं।।४।।"

"कलशो मे छाने हुए पीले सोम के वस्त्रो के समान गव्य (गोरस) आच्छादित करता है।।६।।"

फिर कहते हैं[7] (६।११।१, ३, ६)—

"हे नरो, पवमान सोम के लिए गीत गाओ। यह देवो के लिए यजन करना चाहता है।।।१।।"

"देवताओ के लिए कामना से सोम देवता को अथर्वों (ऋषियो) ने मधु से मिश्रित किया। सो हे राजा सोम, तुम हमारे लिए बहो, हमारी गायो के कल्याण के लिए, जनो के कल्याण के लिए, घोडो के कल्याण के लिए, औषधियो के कल्याण के लिए बहो।।३।।"

"अरुण स्वशक्तिमान् द्यौ को छूनेवाले सोम के लिए गाथा गाओ।।४।।"

"नमस्कार के साथ पास जाओ, सोम को दही से मिश्रित करो, इन्द्र के लिए सोम प्रदान करो।।६।।"

यह ध्यान देने की बात है, कि सोम की स्तुतियाँ अधिकतर तीन पदवाले गायत्री छन्द मे हैं। लोक-गीतो मे आज भी उत्तरी-भारत के बहुत व्यापक क्षेत्र मे इस छन्द का प्रयोग होता है। अन्तिम तीसरे पद को गाते वक्त दोहरा दिया जाता है, जिससे वह चौपदा हो जाता था। यही ऋग्वेद-काल मे भी होता होगा। ऋग्वेदिक आर्यो का सबसे प्रिय पान सोम था, जो उनके देवताओ को भी मस्त करता था, इसीलिए असित देवल गद्‌गद् होकर सोम का गुणगान करते हैं[8] (६।१५।१, २ ४)—

"यह शूर सोम इन्द्र के बनाये स्थान मे सूक्ष्म स्तुतियो के साथ शीघ्रगामी रथो द्वारा जाता है।।१।।"

"यह (उस) बडे यज्ञ मे बहुत काम करना चाहता है, जहॉ पर अमर रहते हैं।।२।।"

"यह तृप्तिकर्त्ता ओज से धन धारण करता, यूथपति वृषभ सींगो को हिलाता, तेज करता है।।४।।"

फिर[9] (६।१७।४, ७)—

"सोम कलशो मे दौडता, पवित्र (-पात्र) मे सींचा जाता यज्ञो मे उक्थो (सामगान) द्वारा बधावा पाता है।।४।।"

'बाजी (अन्नवान्) (सोम), तुमको रक्षा-इच्छुक विप्र नर यज्ञ के लिए स्तुतियो द्वारा मार्जित करते है।।७।।"

फिर[10] (६।२२।१, २ ३७)—

"यह सोम, बनाकर छोडे जाने पर तेज रथो की तरह अन्नवान् हो जाते हैं।।१।।'

"विस्तृत वायु की तरह, पर्जन्य की वृष्टियो की तरह अग्नि की शिखा की तरह, यह सोम व्याप्त है।।२।।"

'दीर्घ-मिश्रित इस पवित्र सोम को विप्र स्तुतिया से व्याप्त करते हैं।।३।।"

"हे सोम तुम पणिया से गो-हितकारी धन को लेते हो विस्तृत यज्ञ मे शब्द करते हो।।७।।"

सोम का उस समय इतना अधिक उपयोग होता था कि वह दुर्लभ नहीं हो सकता था। सोम (नवम्)-मण्डल के ११४ सूक्तो मे सोम के गुणो की जितनी महिमा गाई गयी है उतना उसके उद्गम और दूसरी बातो के बारे मे नहीं कहा गया है। रहूगण-पुत्र गोतम के कहने" (१०।३२।२) से जान पडता है, कि सोम ऊचे पहाडो पर होता था—

"पहाड (वर्षिष्ठ सानु) पर बैठे भूरे (सोम) तुम्हारे लिए गाये, घी-दूध दुहाती हैं।।२।।"

रहूगण पुराने भरद्वाज से भी पुराने ऋषियो म थे उनके दिव्य-पान सोम की प्रशसा मे गाये जानेवाले लोक-गीत यदि पीढियो तक लोगो की जिह्वा पर रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। रहूगण कहते हैं" (९।३७।१)—

"राक्षसो को नाश करता देव-कामी तृप्तिकारक छना हुआ सोम पीने के लिए पवित्र (पान पात्र) मे जाता है।।१।।"

"वह भीगा हुआ सोम देवता कवि द्वारा प्रेपित इन्द्र के लिए द्रोण (घडो) मे दौडता है।।६।।"

अयास्य ने सोम के गुणगान मे तीन सूक्त (४४–४६) रचे हैं। वह एक जगह" (९।४६।१ २, ५) कहते है—

पर्वत मे बढे सोम क्षरण करते निपुण घोडोकी तरह यज्ञ के लिए तैयार किये जाते हैं।।१।।"

"पिता माता द्वारा सँवारी कन्या की तरह परिष्कृत इदु (सोम) वायु के पास जाते हैं।।२।।"

"हे धन जीतनेवाले मार्ग-ज्ञाता सोम (हमे) महाधन प्राप्त कराते रहो।।५।।"

अवत्सार ऋषि की कविता है" (९।५६।३)—

"हे सोम तुम्हे दसो अगुलिया उसी तरह बुलाती हैं जैसे जार को कन्या। प्रदान करने के लिए तुम शोधे जाते हो।।३।।"

सोम को सर्वविजेता कहा जाता था।" (९।५९।१)—

"हे गो विजेता अश्व विजेता विश्व विजेता रमणीय [illegible] सोम [illegible]। (हमारे लिए) सन्तान-सहित रत्न को ले आओ।।१।।"

यह भी" (९।६०।१)—

"हजार आँखो वाले सूक्ष्मदर्शी [illegible]"

[illegible] सोम के [illegible] [illegible] है" (९।[illegible] २ २०)—

"हे सोम [illegible] के लिए [illegible] [illegible]

"[illegible] इस प्रकार [illegible] [illegible]।।२।।"

"तुमने अमित्र वृत्र को मारा, दिन-प्रति-दिन अन्न दिया। तुम गोदाता और अश्वदाता हो।।२०।।"

निध्रुव काश्यप सोम की महिमा गाते हुए कहते हैं" (६।६३।३, ४, ५)—

"इन्द्र-विष्णु के लिए छाना (जो, सोम कलश मे) टपकता रहता है, वह वायु (देव) के लिए मधुमान् हो।।३।।"

"यह शीघ्रगामी भूरे सोम सत्य की धारा के साथ दुष्टो की ओर जाते हैं।।४।।"

"इन्द्र को बधावा देते जल मे जाते सबको आर्य बनाते यह सोम सूमडो को मारते हैं।।५।।"

आर्यसमाजी "कृण्वन्तो विश्वमार्य" (सबको आर्य बनाते) वाक्य को लेकर उड चलते हैं, और यह नहीं जानते, कि निध्रुव ऋषि ने सबको आर्य बनाने का श्रेय सोम (भग) पानी को दिया था। आगे ऋषि कहते है" (६।६३१२, १३)—

"तुम हमे गो और अश्व-युक्त सहस्र धन, और अन्न तथा यश भी दो।।१२।।"

"सोम सूर्य देवता की तरह पत्थरो से घोटा छाना जाकर कलश मे सरस प्रवाहित होता है।।१३।।"

यमदग्नि भृगु-पुत्र का गीत है" (६।६५।१।८,१५)—

"कुशल बहिने (अगुलिया) लुगाइयॉ क्षरण की इच्छा से महान् स्वामी सोम को प्रेरित करती हैं।।१।।"

"जिसका रग पीला (हरि), मधुरसप्रद है। उस सोम को इन्द्र के पान के लिए पत्थरो से (पीसकर) निचोडते हैं।।८।।"

"(सोम) जिस तेरे मदकारक तीव्र रस को पत्थरो से दूहते है, तो तुम पापनाशक होते बहो।।१५।।"

यमदग्नि अपनी सोमगाथा मे सोम के उद्गम का कुछ परिचय देते हैं" (६।६५।२८–२५)—

"जो सोम परे जो उरे और जो शर्यणावत मे निचोडे गये।।२२।।"

"जो आर्जीको (व्यास-तटवासियो), कृत्वो (याग कर्मकुशलो) मे, जो पस्त्यो के मध्य मे और जो पॉचो जनो मे (निचोडे गये)।।२३।।"

"वे निचोडे गये देव सोम आकाश से वृष्टि और सुवीर सन्तान लावे।४।"

"गाय के चमडे पर तैयार किया जाता यमदग्नि द्वारा प्रशसित पीला सोम बह रहा है।।२५।।"

आगिरस पवित्र ऋषि ने निम्न मन्त्र को सोम की महिमा मे गाया था, किन्तु रामानुजी उसी को लेकर सात-आठ शताब्दियो से करोडो आदमियो की भुजाओ को धातु के शख-चक्र से साड की तरह दाग रहे हैं। इस अन्धेरखाते का भी कोई ठिकाना है ? मन्त्र है" (६।८३।१)—

"हे ब्रह्म (मन्त्र) के पति, तुम्हारा पवित्र रूप फैला हुआ है। प्रभु होकर तुम गात्रो मे चारो ओर व्याप्त हो। जो तपे हुए तनवाला नहीं है, वह अपरिपक्व उसे नहीं प्राप्त करता। जो परिपक्व है, वही वहन करते उसे प्राप्त करते हैं।।१।।"

गृत्समद सोम के बारे मे कहते हैं' (६।८६।४७)—

"छाने जाते (समय) तुम्हारी धाराए भेड के सूक्ष्म रोमो को लाघ कर जाती हैं। हे सोम, दो चमुओ (पात्रो) मे जब तुम गोरस से मिलाये, छाने जाकर कलशो मे बैठते हो।४७।"

वसिष्ठ सोम की महिमा को जानते थे—युद्ध मे सोम पीकर मस्त योद्धा अद्भुत पराक्रम दिखलाते, और शान्ति के समय उसे पी कर लोग आनन्दविभोर होते हैं। प्राचीनता का भक्त होने पर भी आधुनिक आदमी को सोम के प्रति ऋषियो के भाव का पता नहीं लग सकता, क्योकि नशीले पान के खिलाफ आज के वायुमण्डल मे विद्रोह, घृणा भरी हुई है। विजया (भॉग) की प्रशसा की कवित्तो को यदि सुने, तो मालूम होगा, कि सप्तसिन्धु के आर्य क्यो सोम के इतने भक्त थे, और क्यो महर्षि वसिष्ठ कहते हैं[२४] (६।६०।३)—

"(हे सोम) शूर-समूहवाले सब वीरोवाले बलवान् जेता धनो के दाता तीक्ष्ण आयुध-युक्त, क्षिप्र धनुषवाले युद्धो मे अजेय, लडाइयो मे शत्रुओ को परास्त करनेवाले होकर तुम बहो।।३।।"

प्रतर्दन प्रतापी दिवोदास के पुत्र थे। अनेक युद्धो मे उन्होने भाग लिया था। शायद उन्हे वचित करके सुदास भरतो का राजा हुआ। कल्पना की जाती है, प्रतर्दन दिवोदास का जेठा लडका होने पर भी युद्ध और शासनकौशल मे अपने अनुज सुदास के समान नहीं था। खानदानी पुरोहित भरद्वाज ने प्रतर्दन का पक्ष लिया होगा, पर उससे कुछ नहीं बन सका। वसिष्ठ सुदास की पीठ पर हुए, और वह भरतो का प्रतापी राजा बन गया। प्रतर्दन सोम की प्रशसा मे २४ त्रिष्टुपो को गाते अपने को योग्य ऋषि साबित करते हैं। वह सोम के बारे मे ऐसी उपमाऍ देते हैं, जो एक सैनिक ही के मन मे आ सकती हैं[२५] (६।६६।१, ५, ६, ११, १२)

"सेनानी शूर सोम गौ (के लूटने) की इच्छा से रथो के आगे जाता है, उसकी सेना हर्षित होती है। इन्द्र के आह्वान को भला बनाते सोम मित्रो को बहुत से वस्त्र देते है।।१।।"

"बुद्धियो (कविताओ) का उत्पादक, द्यौलोक का उत्पादक, पृथिवी का उत्पादक, अग्नि का उत्पादक सूर्य का उत्पादक, इन्द्र का उत्पादक और विष्णु का उत्पादक सोम बह रहा है।।५।।"

"सोम देवो मे ब्रह्मा, कवियो की कविता, विप्रो मे ऋषि, मृगो मे महिष, गृध्रो मे बाज, वनो का कुठार (हो) शब्द करता पवित्र (-पात्र) से उफन कर बहता है।६।"

"हे पवमान सोम, तुम्हारे साथ हमारे पहले के पितरो ने कर्म किये। वीर, तुम बिना रुके अश्वो से शत्रुओ को मारते हो। तुम हमारे मघवा (इन्द्र) बनो।।११।।"

"धन-धारक शत्रुनाशक आयुधधारक हविमान् हो जैसे तुम मनु के लिए बहे। ऐसे ही धनधारक हो इद्र की सहायता के लिए बहो आयुधो को पैदा करो।।१२।।"

क्या अपने अनुज सुदास के साथ के सघर्ष मे प्रतर्दन ने सोम की महिमा गाते इन त्रिष्टुपो को रचा ?

कुत्स ऋषि ने ६० हजार धन सोम की कृपा से पाये थे[२६] (६।६७।५३)—"हमारे श्रुत (वाणी) तीर्थ मे उस पवित्रता से बहो, जिससे तुमने पक्व वृक्ष (-फल) की तरह आनन्द के लिए शत्रु को हराकर साठ हजार (गो) धन दिये।।५३।।"

काश्यप रेभ के कहने से मालूम होता है, कि सोम के छानने के समय पुराने काल की गाथाऍ गाई जाती थीं[२७] (६।६६।४)—

"पुने (छाने) जाते उस सोम की पुरानी गाथाओ से स्तुति करते है। और इधर-उधर घूमती ॲगुलियॉ देवो का नाम (हवि) लिए घूमती हैं।४।"

विश्वामित्र वाक्-पुत्र या प्रजापति ऋषि सोम के छानने मे ऊन के कपडे और गाय के चमडे के आवश्यक होने का उल्लेख करते हैं[२८] (६।१०१।१६)—

"भेड के बालो से गाय के चमडे पर सोम छाना जाता है। तृप्तिकर्त्ता हरित वर्ण वह (सोम) शब्द करता इन्द्र के स्थान मे जाता है।१६।"

कश्यप मरीचि-पुत्र सोमपान के स्थानो का निर्देश करते हैं[२९] (६।११३।१,२ ७ ६ ११)—

"वृत्रनाशक इन्द्र शरीर मे बल धारण कर पराक्रम करने की इच्छा से शर्यणावत् सोमपान करे। हे सोम, इन्द्र के लिए तुम क्षरित होओ।।१।।"

"दिशाओ के पति ऋत वचन, सत्य, श्रद्धा और तप से छाने गये हे सिचक सो आर्जीक (व्यासउपत्यका) से क्षरित होओ।।२।।"

"जहाँ निरन्तर ज्योति है, जिस लोक मे स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम उ ह्रासरहित अमर लोक मे मुझे ले चलो।।७।।"

"जिस तीन (प्रकार के) उत्तम स्वर्ग मे इच्छानुसार किरणो का विचरण होता है। जह ज्योतिवाले लोक हैं, वहाँ (ले चलकर) मुझे अमर बनाओ।।६।।"

जहाँ आनन्द और मोद और मुद, प्रमुद हैं, जहाँ (सारी) ही कामनाये प्राप्त होती हैं, वह मुझे अमर बनाओ। हे सोम, इन्द्र के लिए बहो।।११।।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि सोम सप्तसिन्धु के आर्यों के लिए आनन्ददायव और मददायक एक श्रेष्ठ पेय ही नहीं था, बल्कि देवताओ को प्रसन्न करने के लिए उनके पार यह एक बहुत जबर्दस्त साधन था। होम मे जो घृत, मास आदि की हवि देवताओ को प्रदा करते थे, उसमे से कितना ही आग मे जलकर उनके काम नहीं आती थी। गाय के चमडे प दो पत्थरो द्वारा पीसे घोटे गये ऊनी (बालके) छन्ने मे छाने, लकडी के चमुओ और धातु वे द्रोणो-कलशो मे सुसज्जित रक्खे सोम के पीने के लिए इन्द्र, अग्नि आदि देवताओ का आह्वा किया जाता था। आर्यभक्तो के विश्वास के अनुसार देवता आकर उन्हे पीते थे। पुराने ऋषियो की गोष्ठी मे इन्द्र और अग्नि ने, वरुण और मित्र ने साकार रूप से आकर सोमपान किया था, इसके बारे मे पीछे के ऋषि शपथ खाने के लिए तैयार थे। सोमरस देवपूजा का ऐसा साधन था, जिसकी एक बूँद भी नष्ट नहीं होती थी, और चमू तथा कलश मे भरा दधिमधु से मिश्रित सारा सोमरस भक्तो के काम आता था।

सोमपान आर्यो के लिए अतिसाधारण पेय होते भी दिव्यपान था। इसलिए देवताओ के पीछे ही वह उसे प्रसाद के तौर पर ग्रहण करते थे। आजकल भी वैरागी साधु स्वादिष्ट भोजन को सीधे अपने खाने की बात न कहकर उसके साथ "रामजी के पीछे" लगाते है अर्थात् सभी भोजन पहले रामजी को अर्पित होगा, उसके बाद हमारा और आपका "पावना" (खाना) होगा। इसी तरह वैदिक आर्य भी देवताओ के पीछे ही प्रसादरूप मे सोम को ग्रहण करते थे।

सोम पवित्र और परम ग्राह्य था, पर, सुरा (मद्य) नीची दृष्टि से देखी जाती थी। आज भी हिन्दुओ के वही भाव भाँग और शराब के बारे मे देखे जाते हैं। तिब्बत मे भाँग को 'सोमराजा' कहते हैं। वहाँ वह बहुत पैदा होती है। तिब्बती लोगो मे शायद ही कोई हो, जो नशा न करता हो। लेकिन, देखने से ऐसा मालूम होता है, कि मानो उनको मालूम ही नहीं है, कि उनका सोमराजा (हमारी भाँग) नशे की चीज है, और उसे दूध-चीनी मिर्च-इलायची मिलाकर अत्यन्त स्वादिष्ट बनाया जा सकता है। वह "सोमराजा" का अर्थ नहीं जानते। उनके यहाँ सोमराजा का वही उपयोग है, जो हमारे यहाँ सन और पटसन का। वह उसके छिलको की रस्सी बनाते है। हमारे यहाँ पुराने समय मे भाँग के रेशे का कपडा बनता था। अभी भी कुमाऊँ और गढवाल मे भगेडा बनता है, जिसे आज से सौ साल पहले लोग पहनते थे, अब वह थैले का काम देता है। कोरिया मे भी भाँग रेशे का कपडा बनता है। वहाँवाले भी तिब्बतियो की तरह उसका यही उपयोग समझते हैं। तिब्बती लोग "सोमराजा" के पास तक नहीं फटकते। उसकी जगह वह अपनी छड् (जौ की कच्ची शराब) पीते हैं। अरा (अरक, चुवाई शराब) अधिक पसन्द करते है, लेकिन वह महँगी चीज है। ऋग्वेदिक आर्यों से तिब्बतियो की चाल उलटी है। वह भाँग को नहीं पसन्द करते, सुरा को अच्छा समझते हैं।

(२) सुरा—सप्तसिन्धु के सोमभक्त आर्य सुरा से कोई वास्ता नहीं रखते थे, यह तो नहीं कह सकते, पर उसे हीन दृष्टि से देखते थे, यह मेधातिथि काण्व की निम्न ऋचा" (८।२) से मालूम होता है—

"जैसे सुरा पिये बदमस्त हो हृदय मे लडते, नगे गो-स्तनो की तरह रहते हैं।।१२।।"

वसिष्ठ भी सुरा को नापसन्द करते थे" (७।८६)—

"हे वरुण अपने बस नहीं बल्कि सुरा, क्रोध, जुआ, अज्ञान से वह दोष होता है। जेठा कनिष्ठ को और स्वप्न भी (उन्हे) पाप मे ले जाता है।।६।।"

पर सुरा के प्रेमी भी थे, तभी तो कहा गया" (१०।१०७।६)—भोज (दाता) सुरा को पाते हैं।

४ जुआ

जुए का रिवाज, जान पडता है, सप्तसिन्धु के आर्यों मे काफी था। महाभारत के युधिष्ठिर ने इसे अपने पूर्वजो से सीखा था। जुए के मारे लोग तबाह हो जाते थे, इसलिए आर्य ऋषि उससे बचने का उपदेश देते थे, जेसा कि कवष ऐलूष ने अपनी ऋचाओ" (१०।३४) मे किया है

जुआडी कहता है—"बडे पाशे (अक्ष) हिलते-डुलते इधर-उधर लुढकते मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। मुजवान् (पर्वत) मे उत्पन्न (जैसे) सोम पिया जाता है वैसे ही विभीदग (बहेरे) के जागरूक अक्ष मुझे खुश करते है।।१।।"

"यह मेरी पत्नी मुझसे न कभी उदास हुई न लज्जित हुई । मेरे लिए ओर मित्रो के लिए (यह) कल्याणी रही । केवल अक्ष (पाशे) का भक्त होने के कारण मैंने अनुव्रता भार्या को छोड दिया ।।२।।"

"सास द्वेष करती हे, जाया (स्त्री) छोड देती है । मॉगने पर वह (जुआडी किसी को) पसन्द करनेवाला नहीं पाता । जैसे बूढे घोडे को कोई नहीं खरीदता, वैसे ही जुआडी के भोग को मैं (कहीं) नही पाता ।।३।।"

"खेल मे आकर्षक पाशे ने जिसे पकडा, उसकी जाया को दूसरे बिगाडते हैं। पिता-माता और भाई उसके' लिए कहते हैं 'हम इसे नही जानते, इसे बॉध कर ले जाओ ।।४।।"

"शरीर से बूढा कहने पर 'मैं जीतूॅगा कहता जुआडी (द्यूत) सभा मे जाता है । पाशे (कभी) इसकी इच्छा पूरी करते है, ओर कभी प्रतिद्वद्वी के काम को सिद्ध करते है ।६।"

"जुआडी की जाया मन-मारे सतप्त होती है। (आवारा) घूमते पुत्र के बारे मे माता "कहॉ हे" पूछती है। ऋणी हो धन के तकाजे से डरता वह दूसरो के घर मे रात बिताता हे ।।१०।।"

"स्त्री को और दूसरो की जाया को, अच्छे बने घरो को देखकर जुआडी सतप्त होता है। पूर्वाह्ण मे उसने (शान से) लाल घोडों को जोडा था, और (दिन के) अन्त मे वृषल (अकिंचन) सर्दी के डर के मारे अग्नि के पास बैठता है ।।११।।"

"पाशो से मत खेलो, कृषि करो। उसी धन को बहुत मान कर रमण करो। हे जुआडी, वही गाये है वही जाया हे सो मुझे इस स्वामी सविता ने बतलाया है ।।१३।।"

जुए के इस वीभत्स रूप को देखकर भी जुआ खेलने से आर्य बाज आते होगे इसकी सम्भावना नही है । जुआ खेलने के लिए राजदण्ड होता था, इसका ऋग्वेद मे पता नही ।

अध्याय १५

देवता (धर्म)

आर्य अपने देवताओ के परमभक्त, पौरुष के पूजक तथा आशावादी थे। उनके देवता भी इन्ही गुणो के धनी थे। यद्यपि उनके देवताओ की सख्या ३३ और ३३३६ बतलाई गयी हे, पर उतने देवताओ के नाम ऋग्वेद मे नही मिलते। देवताओ के अतिरिक्त पितरो—मृतपूर्वजो—को भी वह पूजनीय समझते थे। देवताओ की अर्चना वह निष्काम भाव से नही करते थे। निष्काम उपासना बहुत पीछे की बात है। आर्यो का परलोक पर विश्वास था, वह स्वर्ग-नर्क मानते थे, पर पुनर्जन्म का ऋग्वेद मे कही पता नही है।

१ देवता

आजकल देव की जगह देवता शब्द अधिक इस्तेमाल किया जाता है, इसके दो कारण हैं। पुराने समय मे राजा को भी देव कहते थे, इसलिए एक अलग शब्द के गढने की जरूरत महसूस हुई । फारसी के सम्पर्क मे आने पर हमारे लोगो को मालूम हुआ, कि देव राक्षसो को भी कहते है, इसलिए अपनी पूज्य भावना का सम्मान करते हुए उन्होने सदिग्ध देव शब्द को छोडकर देवता कहना शुरू किया। विवस्वान्-पुत्र मनु के अनुसार[1] (८।३०।१) देवो मे नाबालिग कोई नही होता—

"हे देवो, तुम्हारे मे न कोई शिशु है और न कोई बच्चा। तुम सब महान् हो।"

१ देव-सख्या

ऋग्वेद मे देवो की गणना तरह-तरह से हुई है। भरद्वाज[1] (६।५०।१) और वसिष्ठ नें[2], (७।३५ और ७।४१।१) सख्या का उल्लेख किया है । भरद्वाज नें[3] (६।५०) अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, सविता, भग (१), रुद्र, वसुगण, मरुत् (४), रोदसी (द्यौ पृथिवी) (६) दोनो भिषग् (अश्विनौ), (७), नासत्य (अश्विनौ) (१०), सरस्वती, वायु ऋभुक्षा, पर्जन्य (१२) का उल्लेख किया है। उन्होने[4] (६।५१।५) द्यौ को पिता, पृथिवी को माता, अग्नि को भाई बतलाया है । आदित्य, आदिति का भी वही उल्लेख है । ऋषि लोग पृथिवी की सुन्दर और ऐश्वर्यशाली वस्तुओ को भी देवता मानते थे । इसीलिए भरद्वाज[5] (६।५२।४–६) ने उषा, पर्वतो, पितरो, सिन्धुओ (नदियो) के साथ सरस्वती (नदी), पर्जन्य (मेघ) से भी रक्षा की कामना की—

"उगती उषाये, मेरी रक्षा करे। फूलती नदियॉ मेरी रक्षा करे ।

अचल (ध्रुव) पर्वत मेरी रक्षा करे । देव-यज्ञ मे देवताओ के साथ बुलाये पितर मेरी रक्षा करे ।।४।।"

"हम सदा सुन्दर मनवाले होकर उगते सूर्य को देखे। देवो के पास हवि ले जानेवाले वसुओ के पति अग्नि (देव) शक्ति-युक्त होकर आवे ।।५।।"

"इन्द्र रक्षा के साथ हमारे पास आये। सिन्धुओ के साथ फूलती सरस्वती, ओषधियो के साथ हमारे पास पर्जन्य, पिता की तरह सुप्रशसनीय सु-आहूत सुखमय अग्नि हमारे पास आये ।।६।।"

वसिष्ठ ने एक सूक्त[6] (७।३५) मे निम्न देवो की गणना की है—

"इन्द्र-अग्नि, इन्द्र-वरुण, इन्द्र-सोम, इन्द्र-पूषा, भग, पुरन्धि, अर्यमा, धाता, रोदसी (द्यो-पृथिवी) अद्रि (पर्वत), अग्नि, मित्र-वरुण, अश्विद्वय, अन्तरिक्ष, इन्द्र, वसुगण, रुद्र, त्वष्टा, ग्नायी (देवियॉ), सोम, ब्रह्मा, ग्रावा, यज्ञ सूर्य, चार प्रदिशाये, पर्वत, सिन्धु (नदियॉ), आप, अदिति, मरुत्गण, विष्णु पूषन, वायु सविता उषा पर्जन्य, क्षेत्रपति, विश्वदेव (देवसमूह)।"

२ देवों के स्वरूप

१ **अग्नि**—दैनदिन कार्यों मे अग्नि की भूमिका महत्वपूर्ण थी और ऋषि लोग उसके बिना कोई यज्ञादि कार्य सम्पादित नहीं कर सकते थे। इसीलिए ऋषिगणो ने अग्नि को प्रमुख देवता के रूप मे मान्यता दी। अग्नि की स्तुति मे ऋषि ने कहा है—

"सहस-सूनु, युवा, अद्रोघवाच अतितरुण तुम्हे स्तुति द्वारा हम पुकारते हैं, जो कि तुम ज्ञानी अद्रोही सबसे प्रिय धनो को प्रदान करते हो।"

भरद्वाज अग्नि की महिमा मे कहते है" (६।८)—

"वह व्रत-पालक अग्नि परमव्योम मे उत्पन्न हो व्रतो की रक्षा करता है। वह सुकर्मा आकाश को नापता है । वैश्वानर (अग्नि) अपनी महिमा से नाक (स्वर्ग) को छूता है।२।"

"आकाश मे महिष (महान्) ने उसे ग्रहण किया विशो ने पूज्य राजा समझकर उपस्थान (सम्मान) किया, विवस्वान् (सूर्य) के दूत अग्नि वैश्वानर को वायु ने दूर से लाकर धारण किया।।४।।"

भरद्वाज अग्नि को युग-युग का अमर दूत कहते है "(६।१५)—

"हे अग्नि, देव और मनुष्य युग-युग के अमृत दूत, हव्यवाहक, रक्षक, पूज्य, जागृत विभु, विशो के स्वामी तुम्हे धारण करते और नमस्कार पूर्वक बैठाते हैं ।"

विश्वामित्र " (३।२६)—

"हम कुशिक लोग अग्नि को हवि-युक्त मन मे समझकर सत्य-युक्त स्वर्ग के जानकार, सुदानी रथी अणु देव अग्नि को धन की इच्छा से पुकारते हैं ।।१।।"

"माताओ जैसे कुशिक अश्व की तरह हिनहिनाते वैश्वानर को* युगयुग मे प्रज्वलित करते रहे। सो अमरो मे जागरूक अग्नि हमे सुवीर सुअश्ववाला बनाये ।।३।।"

"मैं अग्नि जन्म से ही सब जाननेवाला हूँ। घृत मेरी ऑख (है) और अमृत मेरे मुख मे है। मै त्रिविध तेजवाला, अन्तरिक्ष का विमान, अजस्र-ताप हवि नामवाला हूँ।।७।।"

वामदेव अग्नि की स्तुति मे कहते हैं " (४।३)—

"आओ लिये यज्ञ के राजा, रुद्र होता द्यौ और पृथिवी के सच्चे यजमान। सुनहले रूप वाले अग्नि को अचित्त बिजली से तुम्हारी रक्षा के लिए बनाओ।।१।।"

"हे अग्नि पति की कामना करती सुन्दर परिधान-युक्त स्त्री की तरह हम तुम्हारे लिए यह स्थान बनाते हैं । तेज से सम्मुख हो यहॉ बैठो ओर सामने स्वपाक बनो।।२।।"

सप्तसिन्धु के भरत-सन्तान देवश्रवा और देववात अग्नि की स्तुति करते है"(३।२३।४)—

"हे अग्नि हम अन्नस्थान वाली उत्तम पृथिवी मे सुदिन के लिए तुम्हे स्थापित करते हैं। तुम दृषद्वती (घग्गर), आपया (मरकण्डा) सरस्वती के तट पर धन-युक्त हो मनुष्यो मे दीप्तिमान होओ।"

---

*सभी नरो का पूज्य अग्नि

२ **अरण्य**—पूज्य, दाता और प्रकाशमान होने के कारण ऋषि लोग किसी वस्तु को भी देवता मानते थे। इसीलिए अरण्य (जगल) भी उनके लिए देवता थे। जब हम भारतमाता की प्रशसा मे बन्देमातरम् गान करते हैं, उस समय भी उसी तरह की कल्पना हमारे दिमाग मे घूमती है। सप्तसिन्धु के आर्यों के परम धन थे गाय-घोडे, भेड-बकरी। इनके लिए अरण्य भारी अवलम्ब थे। इसीलिए इरम्मद-पुत्र देवमुनि ने अरण्य की स्तुति बडे भक्तिभाव से की है[१९] (१० ।१४६)—

"यदि दूसरे (सिह आदि) न आवे, तो अरण्यानी हिसा नही करती। वहाँ स्वादु फल खाकर यथेच्छ रह सकते है ।।५।।"

"अजन-वर्ण (काली) सुगन्धि-युक्त, किसान के बिना बहुत भोजनवाली, मृगो की माता अरण्यानी की मैं स्तुति करता हूँ ।।६।।"

३ **आप**—आप जल और नदी दोनो को कहते है। दोनो ही आर्यो के पूज्य थे। उनके भाईबन्द पारसीक भी आप देवताओ के मानने मे उनके साथी थे। सिन्धुदीप-पुत्र अम्बरीष ने आप की स्तुति करते कहा है[२०] (१० ९)—

"आप देवी, सुखमय हो। वह हमे धन दे, भली-भाँति देखने (जानने) के लिए ज्ञान दे।।१।।"

"हे आपो, जो तुम्हारे पास अत्यन्त शिव (मगलमय) रस है, उसे लालसावाली माता की तरह हमे प्रदान करे।।२।।"

"देवी आप हमारे कल्याण के लिए, पान के लिए हो। हमारे चारो ओर कल्याण की वर्षा करे ।।४।।"

४ **इळा**—सरस्वती उषा, आप की तरह इळा भी आर्यों की देवी थी । इळा का अर्थ अन्न है। अन्न देवता से भी बढकर है ही। विश्वामित्र ने इळा के साथ भारती और सरस्वती की स्तुति[२१] (३ ।४) की है—

"भारतियो के साथ भारती, देवो और मनुष्यो के साथ इळा, अग्नि, सारस्वतो के साथ सरस्वती, तीनो देवियॉ (हमारे) सामने इस यज्ञ मे बैठे।"

भारती का अर्थ आज की सरस्वती लेना नही होगा। अनेक भारतियो के साथ भारती का रहना कुछ विशेष अर्थ रखता है। शायद बहुत-सा भारती से यहाँ भरत देश की पूज्य देवियाँ अभिप्रेत हो, और सारस्वत-समुदाय से सरस्वती-तट के निवासी देवी-देवता ।

५ **इन्द्र**—इन्द्र आर्यों के सबसे बडे और तेजस्वी देवता थे। यद्यपि ईरानी आर्यों ने जरथुस्त के मत के अनुसार देव शब्द का अर्थ राक्षस और देवो के राजा इन्द्र को राक्षसराज बना दिया है, पर यह समझना गलत होगा कि जरथुस्त से पहले भी इसका यही अर्थ था। हम जानते ही है, कि बिना अपवाद के सभी इन्डो-युरोपीय जातियो के पूर्वज दिव्य अर्थ ही मे देव शब्द का उपयोग करते थे। ऋषित्रय मे सबसे ज्येष्ठ भरद्वाज इन्द्र की महिमा मे कहते हैं[२२] (६ ।१७)—

"इन्द्र, रक्षा करो, जो कि तुम शत्रुओ से रक्षक, जो वृषभ (मनोकामना पूरक), जो शिप्रवान्, जो मतियो (अभिलाषाओ) का वर्षक वृषभ हो जो पर्वतो के विदारक वज्रधर, जो घोडो पर चलनेवाले, वह इन्द्र विचित्र अन्न-धन प्रदान करे ।।२।।"

भरद्वाज के पुत्र गर्ग ने इन्द्र को रक्षक कहते हुए प्रार्थना की है[२३] (६ ।४७)—

"त्राता इन्द्र, अविता (रक्षक) इन्द्र हर यज्ञ मे सुन्दर तौर से पुकारे गये इन्द्र, शूर इन्द्र शक्र पुरुहूत (बहुत पुकारे जानेवाले) इन्द्र को मैं पुकारता हूँ। मघवा (धनवान्) इन्द्र हमारी स्वस्ति करे।।११।।"

"जो इन्द्र रूप रूप मे भिन्न रूप हुआ सो उसके रूप को बतलाने के लिए है। इन्द्र (अपनी) मायाओ से बहुरूप होता है । इसके रथ मे हजार घोडे जुते हैं।"

वसिष्ठ" (७।२६) इन्द्र को सोम पीने के लिए बुलाते हैं—

"हे इन्द्र यह सोम तुम्हारे लिए छाना हुआ है। हे घोडेवाले, उसके पास जल्दी आओ। इस चारु (भली प्रकार) छने को पीयो, और हे मघवा आकर हमे मेघ (धन) दो ।१।"

सोम आर्यों और उनके देवताओ का अत्यन्त प्रिय पेय था। उसको पीकर वह प्रसन्न और मस्त होते थे। वसिष्ठ ने " (७।३२) कहा है—

"यह दही मिलाकर (दध्याशिर) सोम छाने गये है। हे वज्र-हस्त मस्त होने के लिए दोनो घोडो के साथ उनके लिए उनके पास के स्थान मे आओ।।४।।"

वसिष्ठ शतयातु (सौ जादूवाले) कहे जाते थे लेकिन वह जादू मे चतुर थे, इन्द्र के बल पर ही। इसीलिए वह इन्द्र से प्रार्थना करते है" (७।१०४)—

"हे इन्द्र माया (छल) से हिंसा करनेवाले यातुधान (जादूगर) पुरुष और स्त्री को नष्ट करो। बिना गर्दन के राक्षस नष्ट हो वे उगते सूर्य को न देख पाये ।२४।"

विश्वामित्र तीनो ऋषियो मे सबसे पीछे प्रभुता मे आये। उन्होंने सुदास को अश्वमेध-यज्ञ कराया। वह इन्द्र की स्तुति करते कहते हैं" (३।३२)—

"हे इन्द्र, गवाशिर (दूध सहित) मथे सफेद (शुक्र) सोम को पियो। तुम्हारे मद के लिए हम (इसे) देते हैं। ब्रह्मकृत् (मन्त्रकर्त्ता), मरुत्गणों और रुद्रो के साथ तृप्त होने तक (इसे) पियो।।२।।"

"इन्द्र जो तुम्हारी शक्ति और बल को बढाते है, वह मरुत तुम्हारे ओज को बढाये। हे वज्र हस्त सुमुकटधर (सुशिप्र), गण सहित रुद्रो के साथ मध्याह्न के सवन (सत्र) मे (सोम) पियो।।३।।"

"सारे देव इन्द्र के सुकृत को, बहुत से व्रतोवाले कर्म को नष्ट नही कर सकते। जिसने द्यौलोक और इस पृथिवी को धारण किया, सुदर्शना पूर्ण और उषा को पैदा किया।।८।।"

विश्वामित्र इन्द्र के घोडो को मोरपखी बतलाते हैं " (३।४५)—

"हे इन्द्र मोर के रोमवाले मस्त घोडो के साथ आओ। (जाल से) फँसानेवाले बहेलिये की तरह मरुभूमि की तरह कोई तुझे न रोके।।१।।"

वामदेव इन्द्र की प्रशसा मे कहते हैं" (४।१६)—

"इन्द्र सूर्य के समीप रूप धारण करता है। अमृत के शरीर-हस्तवाले मृग की तरह, तेज मे जलाते सिह की तरह भयकर होते आयुधो को धारण करता है ।।१४।।"

"हे शूर जनो के किसी युद्ध के भीतर तीक्ष्ण अशनि गिरे। हे स्वामी, जब घोर युद्ध हो, तो हम लोगो के शरीर की तुम रक्षा करना जानो।।१७।।"

"तुम वामदेव की स्तुतियो के रक्षक हो। (हमारे) अशत्रु हो युद्ध मे सखा बनो। हे महाबुद्धिमान् हम तुम्हारा अनुगमन करे। तुम सदा स्तुतिकर्त्ताओ के बहुप्रशसनीय होओ।।१८।।"

वामदेव फिर कहते हैं " (४।१७)—

"हे इन्द्र, तुम महान् हो। मही पृथिवी ने तुम्हारा अनुमोदन किया। द्यौने तुम्हे माना। तुमने अपने बल से वृत्र को मारा, अहि (वृत्र) द्वारा ग्रसी जाती सिन्धुओ (नदियो) को मुक्त किया ।।१।।"

"तुम्हारे प्रकाश के जन्मने पर द्यौलोक चमकने लगा। तुम्हारे कोप से भयभीत भूमि कँपी, सुन्दर होनेवाले मेघ बढे नदियाँ आर्द्र कर मरुभूमियो को नष्ट करती चलीं।।२।।"

वामदेव फिर गाते है "(४।२२)—

"कामनापूरक श्रेष्ठ नेता शची-वान् उग्र इन्द्र चार धारवाले वज्र को दोनो बाहुओ मे लिये ऊनवाली (भेडोवाली या ढॉकती) परुष्णी (रावी) का सेवन करते हैं, उसके स्थानो को मित्रता के लिए वयन करते हैं।।२।।"

"जो उत्पन्न देव, देवतम महान् अन्नो और महान् बलो से युक्त है । दोनो बाहुओ मे बल धारण किये उसने अभिलषित, द्यौ और भूमि को बहुत कँपाया।।३।।"

वामदेव इन्द्र के मुँह से उसकी महिमा कहलवाते है " (४।२६)—

"मैं मनु हूँ, मैं सूर्य और कक्षीवान् विप्र ऋषि हूँ। मैंने आर्जुनेय कुत्स को अलकृत किया, मुझे ही उष्णा कवि करके देखो।।१।।"

"मैंने आर्य के लिए भूमि दी, दाता मर्द को मैंने वृष्टि दी। मै शब्द करते जल लाया । देव मेरे सकल्प का अनुगमन करते हैं।।२।।"

"जब मैंने युद्ध मे अतिथिग्व (दिवोदास) की रक्षा की, मैंने मस्त हो शम्बर के नौ और नब्बे पुर (दुर्ग) ध्वस्त किये। तो सौवीं को (उसे) रहने के लिए दिया।।३।।"

गृत्समद भी ऋग्वेद के प्रसिद्ध ऋषियो मे हैं। वह इन्द्र की सर्वशक्तिमत्ता के बारे मे कहते है " (२।१२)—

"जिसकी आज्ञा मे अश्व हैं, जिसकी मे गाये, जिसकी मे ग्राम, जिसकी आज्ञा मे सारे रथ हैं। जिसने सूर्य और उषा को पैदा किया, जो नदियो का नेता है, हे लोगो वह इन्द्र है।।७।"

"जिसने पर्वतो मे रहनेवाले शम्बर को चालीसवीं शरद मे (मार) धरा। ओजस्वी हो जिसने सोये हुए अहि दानव को मारा। हे लोगो,' वह इन्द्र है।।११।।"

वसिष्ठ ने आर्यों की सारी विजयो का श्रेय इन्द्र को दिया है। इनके दो सूक्तो मे (७।१८।१०) ऋग्वेदिक आर्यों के सघर्षों के सम्बन्ध मे बहुमूल्य सूचनाएँ मिलती है, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके है। वह कहते है " (७।१८)—

"हे इन्द्र हमारे पितरो ने तुम्हारी स्तुति करते सारे बढिया धन प्राप्त किये। तुमसे ही सुन्दर दुधार गाये, तुमसे ही अश्व है। देवो के भक्त को तुम बहुत सा धन देते हो।।१।।"

"जैसे स्त्रियो के साथ राजा, वैसे ही विद्वान् और कवि तुम द्युतियोवाले होकर रहते हो। हे मघवन् स्तोताओ को गौवो और अश्वो के साथ रूप दो। धन के लिए हमे तुम सिखाओ।।२।।"

"देवभक्ति-सहित स्पर्धा-युक्त यह मेरी मधुर स्तुतियाँ तुम्हारे पास जा रही है। हे इन्द्र, तुम्हारा पथ्य धन हमारी ओर आवै। तुम्हारी सुमति से हम शर्म (सुख)-युक्त होवे।।३।।"

जैसे धेनु के लिए सुन्दर तृण, वैसे ही तुम्हें दुहने के लिए वसिष्ठ ने ब्रह्मो (मन्त्रो) को रचा। सब तुम्हे ही गो-पति कहते है। इन्द्र हमारी सुन्दर स्तुति के पास आये।।४।।"

आगिरस प्रियमेध कहते है " (८।५८)—

"जो पास मे प्राप्त है, उस वज्रधारी इन्द्र के लिए गाये मधुर आशिर (दूध) दुहाती है।।७।।"

"हे प्रियमेध-सन्तानो, अर्चना करो, खूब अर्चना करो, अर्चना करो। दुर्गध्वसक को जैसे वैसे ही हे पुत्रो अर्चना करो।।८।।"

"गर्गर (बाजा) आवाज कर रहा है, गोधा (गोह के चमडे वाला बाजा) ध्वनि कर रही है। पिगा (पीली प्रत्यचा) चिल्ला रही हैं। इन्द्र के लिए ब्रह्म (स्तुति) उद्यत हो।।६।।"

"शिशुकुमार की तरह नवीन रथ पर चढे पिता-माता (द्यौलोक और पृथिवि) के सामने वह (इन्द्र) महिष (महान्) मृग के समान और बहुत कर्मवाले हैं ।१५।"

"हे सुन्दर मुकुटवाले स्वामी सुनहले रथ पर चढो। सहस्रपाद, कोप-रहित निष्पाप, स्वस्थ से चलनेवाले सुनहले रथ पर चढो। तब हम दोनो मिलेगे ।१६।"

आर्यो मे कुछ लोग इन्द्र के अस्तित्व पर सन्देह करते थे, जैसा कि भृगुगोत्रीय नेम के वचन" (८।८६) से मालूम होता है—

"यदि सत्य है तो हे युद्धेच्छुको इन्द्र के लिए सच्चे स्तोम (स्तोत्र) को पढो। नेम ऋषि तो कहता है, इन्द्र नही है। किसने (इद्र को) देखा, फिर किसकी स्तुति करे।।३।।"

नेम के ऐसा सन्देह करने पर इन्द्र ने स्वय जवाब दिया—

"हे भगत यह हूँ मे, देख मुझे। यहॉ सारी सृष्टि को (अपनी) महिमा से मै वश मे करता हूँ। दिशाये मेरे सत्य का बधावा देती है। मै भुवनो का विदारक हूँ।।४।।"

ऋषि इन्द्र को शरीरधारी समझते थे। उसके मुकुट और दो भुजाओ का वर्णन ऊपर हो चुका है। विमद (प्रजापति-पुत्र) ने इन्द्र की मूँछ दाढी (श्मश्रु) का वर्णन किया है " (१०।२३)

"दाहिने हाथ मे वज्र-युक्त कार्य निपुण घोडो के रथवाले इन्द्र की हम पूजा करते है। सोम द्वारा प्रसन्न हो सेनाओ और अन्न के साथ अपनी श्मश्रु को हिलाते शत्रुओ के सहार के लिए वह प्रकट हुए।।१।।"

"जैसे वृष्टि पशुयूथो को भिगोती है वैसे ही हरित (पीले) सोम से इन्द्र अपने श्मश्रुओ को भिगोते है। फिर सुन्दर यज्ञ मे जा छने मधुर सोम को पीकर जेसे वायु वन को वैसे ही अपने श्मश्रुओ को हिलाते है।।४।।"

विमद ऋषि केवल सोम-पान से ही इन्द्र की तृप्ति नही समझते वह उनके भोजन के बारे मे कहते है " (१०।२३)—

"हे इन्द्र विमद-लोगो ने सुदाता तुम्हारे लिए अपूर्व विस्तृत स्तोम (स्तुति) रचा। इस (इन्द्र) राजा के भोजन को हम जानते है, इसलिए गोपालो की तरह (ग्रास) दिखाकर पास पशु को बुलाते है।।६।।"

वसुक्र इन्द्र की अद्वितीय प्रतिभा पर विश्वास रखते समझते है, कि इन्द्र असम्भव को सम्भव कर सकते ह" (१०।२८ ३)—

"हे मघवन् इन्द्र, अन्न के लिए पुकारते समय तुम्हारे लिए जल्दी-जल्दी पत्थर से मददायक सोम को (पीसकर हम) छानते है तुम उसको पीते हो। वे बैल पकाते है तुम उन्हे खाते हो।।३।।"

"हे स्तुत्य, मेरे लिए तुम ऐसा कर दो, कि नदियॉ उलटी दिशा मे बहे। घास खाने वाला मृग सिह को भगाये, सियार वराह को वन से हटा दे।।४।।"

"इन्द्र की कृपा होने पर शशक श्वापद का सामना कर सकता है। मैं समीप जा ढेले से पहाड को तोड सकता हूँ। (उसकी कृपा से) महान् भी क्षुद्र के वश मे आ सकता है, बछडा सॉड से लड सकता है।६।"

"पिजडे मे बॅधा सिह चारो ओर अपने पैर को जैसे रगडे वैसे ही गरुड (बाज) पक्षी अपना नख रगडने लगे। जो रुँधा प्यासा महिष है उसके लिए यह गोधा पानी लाये।।१०।।"

इन्द्र के रूप आदि के बारे मे आगिरस वरु कहते हैं" (१०।६६)—

"इसका वह वज्र हरित (पीला) है जो आयस (तॉबे या पत्थर का) अत्यन्त सुन्दर दोनो हाथो मे है। धनी, सुशिप्र (सुमुकट), सुन्दर क्रोधरूपी वाणवाले इन्द्र को हरित (सुनहले) सोम से अभिषिक्त किया।।३।।"

"जो हरित (पीले) मोछ-दाढी पीले केशवाले ताम्र से दृढ सोम पी कर शरीर (बल) को बढाते है जिसे हरित घोडे यज्ञ मे ले जाते हैं, वह दो घोडो पर चढे सारी दुर्गति को दूर करते है।।८।।"

इन्द्र मनुष्य की तरह साकार था, इस बात का उल्लेख यास्क भी करते हैं (निरुक्त उत्तरषट्क ७।२।२)—

"देवताओ के आकार का चिन्तन करते वह पुरुष से लगते हैं। चेतनावान (मनुष्य) की तरह सी स्तुतियॉ (ऋचाये) बतलाती हैं। पुरुष जैसे अगो के साथ उनकी स्तुति की जाती है।"

इन्द्र-सम्बन्धी ऋचाओ के देखने से भी यास्क की बात की सत्यता का पता लगता है। इन्द्र शिप्र (शिर ठुड्डी या मुकुट) वाले हैं। वह घोडे के रथ पर सवार होकर चलते हैं। वह सोम पीकर मस्त होते हैं। उनके दोनो हाथो मे चार धारोवाला वज्र है। उनके घोडे मोरपखी हैं। उनके मुँह पर पीली दाढी-मूँछ है। उनके खाने के लिए भक्तगण वृषभ पकाते है। शचि उनकी पत्नी है इत्यादि।

६ ऋभु—इन्द्र के पुत्र ऋभुओ की स्तुति वामदेव ने की है"[1] (४।३५)—

"यहॉ (यज्ञ मे) ऋभुओ का रत्न-धन मेरे पास आये। सुन्दर छने हुए सोम का पान हुआ। सुन्दर कृत्य और सुन्दर हाथ द्वारा (उन्होने) एक चमस (पात्र) को चार टुकडे किये।२।"

"कैसा था वह चमस, जिसे कौशल के साथ चार किया। फिर मद के लिए सवन करो (सोम को छानो)। ऋभुओ, मधुर सोम को पियो।४।"

"हे सुन्दर हाथवाले ऋभुओ, जो तुमने तृतीय सवन (यज्ञसत्र) को (अपने) सुकर्म से रत्न-सुक्त किया, सो जो यह छना सोम है, उसे प्रसन्न-इन्द्रियो से पियो।६।"

वामदेव जुडवॉ देव-वैद्य अश्विनीकुमारो को भी ऋभुओ का अनुगृहीत बतलाते हुए कहते हैं "[2] (४।३६)—

'हे ऋभुओ तुम्हारा वह महान् कर्म है, जो कि अश्विद्वय तुम्हारे दिये तीन चक्केवाले रथ से बिना लगाम के आकाश मे घूमते हैं, जो कि तुम द्यौलोक और पृथिवी का पोषण करते हो।।१।।"

७ क— प्रजापति या स्वतन्त्र देवता के तौर पर क ऋषियो के/ विशेष कर पीछे के ऋषियो के, श्रद्धाभाजन हुए इनकी ऐतिहासिकता मे भी सन्देह है। प्रजापति-पुत्र हिरण्यगर्भ ने एक पूरा सूक्त"[3] (१०।१२१) क की स्तुति मे गाया है—

"हिरण्यगर्भ पहले मौजूद था, वह उत्पन्न प्राणियो का अकेला पति था। उसने पृथिवी और इस द्योलोक को धारण किया। क देवता को हम हवि देते हैं।१।"

"जो शरीरप्रद है, बलप्रद है, जिसकी सभी उपासना करते हैं। देवता जिसकी आज्ञा मे हैं। जिसकी छाया अमृत है जिसकी ही (छाया) मृत्यु है, उस क देवता को हम हवि देते हैं।२।"

"जो सॉस लेते, ऑख चलाते जगत् का अपनी महिमा से अकेला राजा हुआ। जो इस दोपाये चार चौपाये (प्राणियो) पर शासन करता है, उस ०।३।"

"जिसकी महिमा से यह हिमवान् (पर्वत) है। पृथिवी-सहित समुद्र जिसका कहा गया है। यह दिशाये जिसकी भुजाये है, उसे ०।४।"

"जिसके द्वारा द्यौ ऊँची हुई और पृथिवी दृढ है, जिसने आकाश को जिसने नाक (स्वर्गलोक) को थामा, जो अन्तरिक्ष मे जल का निर्माता है, उस ०।५।"

क देवता की इस महिमा मे उपनिषद् के ऋषियो के ब्रह्म का आभास मिलता है।

प्रजापति उपनिषद्-काल मे सर्वोच्च देवता नहीं रह जाते, पर इस सूक्त के ऋषि को कसे सारी प्रजाओ का पति महान् देवता ही अभिप्रेत है, यह इस सूक्त की अन्तिम ऋचा (१०) मे पाते है, जिसमे तीसरे पाद का दोहराना छोड दिया गया है—

"हे प्रजापति, तुमसे भिन्न कोई इस सारी सृष्टि को काबू मे करनेवाला नहीं है। जिस कामना से हम तुम्हारे लिए हवन करते हैं, वह हमारे लिए हो, हम धन के पति होवे।१०।"

८ **पर्जन्य**—यह मेघ और वृष्टि का देवता है। इन्द्र भी मेघो के स्वामी माने जाते हैं। इन्द्र और पर्जन्य एक हैं या भिन्न-भिन्न ? भिन्न-भिन्न है तो उनका आपस मे क्या सम्बन्ध है, यह कहना मुश्किल है। वसिष्ठ पर्जन्य की स्तुतिगान करते कहते हैं[४] (७।१०२)—

"द्यौ के पुत्र सिचक पर्जन्य का गान करो। वह हमे अन्न दे।१।"

"जो पर्जन्य औषधियो, गायो, घोडियो और स्त्रियो मे गर्भ उत्पन्न करता है।२।"

"उस पर्जन्य के लिए, देवो के मुख के लिए यह अत्यन्त मधुर हवि हवन करो। वह हमारे लिए अन्न को प्रस्तुत करे।३।"

९ **पितरौ**—द्यौ और पृथिवी को ऋषि पिता-माता समझते थे, जिनके लिए द्विवचन शब्द पितरौ का प्रयोग करते थे। भरद्वाज ने कहा है[५] (६।७)—

"हे वैश्वानर अग्नि, तुम्हारे वह कार्य महान् हैं, जो कि तुमने निर्माण किया। जो कि दोनो माता-पिताओ (पितरौ) के पास उत्पन्न होकर तुमने दिन की ध्वजा (सूर्य) को अन्तरिक्ष मे स्थापित किया।५।"

पृथिवी और द्यौलोक की स्तुति माता-पिता के तौर पर ऋषियो ने की है।

१० **पुरुष**—पुरुष-सूक्त ऋग्वेद के पीछे के सूक्तो मे[६] (१०।९०) है। इसके ऋषि नारायण कल्पित मालूम होते हैं। सूक्त मे ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुष की कल्पना है—

"हजार सिरोवाला, हजार ऑखोवाला, हजार पैरोवाला पुरुष है। वह चारो ओर भूमि को ढॉक कर दस अगुल मे अवस्थित होता है।।१।।"

"यह जो कुछ भूत और भावी हे सब पुरुष ही है। वह अमृतत्व का स्वामी है जो कि अन्न से अतिरोहण (बर्धन) करता है।।२।।"

"पुरुषरूपी हवि से देवो ने जिस यज्ञ को पसारा। उस (यज्ञ) का घी बसन्त था, ईंधन ग्रीष्म, हवि शरद थी।।६।।"

"उससे अश्व और जो कुछ भी मुख मे दोनो ओर दॉतवाले (प्राणी) हैं, उत्पन्न हुए। गाये उससे उत्पन्न हुईं। उससे भेड-बकरियॉ उत्पन्न हुईं।।१०।।"

"इसका मुख ब्राह्मण हुआ, दोनो बाहे राजन्य (क्षत्रिय) बनीं। उसकी दोनो जॉघे वैश्य (हैं) दोनो पैरो से शूद्र उत्पन्न हुआ।।१२।।"

११ **पूषन्**—पुष्टिकारक देवता के लिए यह नाम दिया गया है। इसके गुण सूर्य पर अधिक घटते हैं। एक देवता के भी अनेक गुणो को लेकर ऋषि अनेक देवताओ की कल्पना कर लेते थे, जैसे एक ही सूर्य आदित्य, सविता, मित्र, सूर्य ओर पूषन् के नाम से अलग-अलग माना जाता था। ऋषित्रय में सबसे ज्येष्ठ भरद्वाज ने पूषन् की प्रशसा मे ६ सूक्त (६।५३–५८) रचे हैं जिससे इस देवता का महत्त्व मालूम होता है। भरद्वाज की ऋचाओ से पूषन् के व्यक्तित्व का भी पता लगता है[७] (६ ५३)—

"हे पथ के पति पूषन्, अन्न प्राप्ति के लिए रथ की तरह हम तुम्हे सन्मुख करते हैं।"

"प्रकाशमान पूषन् अ-दाता कृपण पणि को दान के लिए प्रेरित करो। (उस) के मन को मृदु बनाओ।।३।।"

दूसरे सूक्त[४८] (६।५४) मे भरद्वाज कहते हैं—

"हे पूषन्, तुम हमे ऐसे विद्वान् से मिलाओ, जो बतलावे 'यही है'।"

"हमारा गोधन नष्ट न हो, हमारा (पशुधन) कुए मे न गिरे। स्वस्तियुक्त गौवो के साथ तुम आओ।।७।।"

"पूषन् अपने दाहिने हाथ को चारो ओर रक्खे। हमारे नष्ट (लुप्त) गोधन को वह फिर लावे।।१०।।"

भरद्वाज की उपर्युक्त ऋचाओ से मालूम होता है कि, पूषन् भूलो को रास्ता बतलाने वाला, गौओ का रक्षक देवता था। उन्हीं के एक मन्त्र[४९] (६।५५।२) से मालूम होता है, कि पूषन् के सिर पर कपर्द (जूडा) था।

"महारथी, कपर्दी ईशान मित्र से हम धन की प्रार्थना करते हैं।"

भरद्वाज ने पूषन् को सत्तू (करम्भ)-प्रिय कहा है[५०] (६।५६)—

"जो (मनुष्य) इस पूषन् को करम्भ (-दान) से प्रार्थना करता, उसे दूसरे देव की प्रार्थना करनी नहीं पडती ।।१।।"

"महारथी, सच्चे स्वामी इन्द्र अपने सखा (पूषन्) के साथ शत्रुओ को मारते हैं।।२।।"

"महारथी सूर्य (पूषन्) सुनहले चक्के को चलाते हैं।।३।।"

यहाँ पूषन को सूर (सूर्य) कहा गया है। भरद्वाज के कथन[५१] (६।५७) से मालूम होता है कि जैसे इन्द्र सोमपान को पसन्द करते हैं, वैसे ही उनके मित्र पूषन् करम्भ (सत्तू) को—

"पात्र मे छाने सोम को पीने के लिए एक (इन्द्र) पास आते हैं, अन्य (पूषन्) करम्भ (सत्तू) चाहते हैं।।२।।"

"एक का वाहन बकरा है, और दूसरे को घोडे ले जानेवाले दो। हम दोनो के साथ (हो) वृत्रो (शत्रुओ) को मारते हैं।।३।।"

भरद्वाज फिर पूषन् की सूर्य की तरह स्तुति करते हैं[५२] (६।५८)—

"बकरी-घोडोवाला, पशुपालक, अन्नस्वामी स्तुति-प्रिय जो पूषन् सारे विश्व मे व्याप्त है। वह देव-भुवन को प्रकाश करते शिथिल आरा को उठाकर भ्रमण करता है।।२।।"

"हे पूषन्, तुम्हारी जो नावे समुद्र के भीतर और आकाश मे चलती हैं, स्तुति किये जाते सूर्य की कामना से (तुम) दूत बनते हो।।३।।"

"पूषन द्यौ और पृथिवी के सुन्दर बन्धु, अन्न-पति, धनवान् दर्शनीय रूपवान् हैं। स्वेच्छा से बल-युक्त, सुन्दर गतिवाले हैं, जिन्हे देवो ने सूर्य लोक के लिए दिया।।४।।"

इन ऋचाओ से मालूम होता है, कि पूषन् का सूर्य और पोषण (पशु पोसने) से विशेष सम्बन्ध था, और वह इन्द्र के सखा अन्न के देवता और स्वय सत्तू के प्रेमी थे—आज के तिब्बती लोगो की तरह सारे आर्य उस समय सत्तू प्रेमी (सातूखोर) थे।

१२ प्रजापति—परमेष्ठी प्रजापति ऋषि यह कल्पित नाम मालूम होता है। इस नाम से रचित सूक्त का सारे ऋग्वेद में एक विशेष महत्त्व है। यद्यपि वह दसवे मण्डलका सूक्त[५३]। (१०.१२६) में होने से पीछे की कृतियो में है, पर इसी में पहिले पहल उपनिषद् के रहस्यवाद और अज्ञेय ब्रह्म का वर्णन मिलता है—

"न असत् था न तब सत् था, न लोक थे न आकाश से परे जो है वह (था)। उस समय क्या आवरण, कोन किसका स्थान, (था) ? क्या गहन गम्भीर था।।१।।"

तब न मृत्यु थी न अमृत, न रात्रि, न दिन का ज्ञान था। वायु बिना वही एक अपने धारण से था। उससे दूसरा आर कोई नहीं था।।२।।"

"अन्धकार से छिपा अन्धकार आगे था। यह सब अज्ञात सलिल था। छूछे (शून्य) से जा

ढँका था, तपस्या के प्रभाव से वह एक उत्पन्न हुआ ।।३।।"

"उसके पहले काम (इच्छा) थी। मन मे पहला बीज जो था। कवियो ने बुद्धि द्वारा हृदय मे विचार करके असत् मे सत् के बन्धु को प्राप्त किया।।४।।"

"तिर्छा फैला हुआ था, इसकी रश्मि मानो अध थी, मानो ऊपर थी। बीज धारण करनेवाले थे, महिमाये थीं, स्वशक्ति स्वधा पूरी थी, प्रयति (प्रगति) परे थी ।।५।।"

"कौन जानता, कौन यहाँ बोलता है, (कि) कहाँ से यह सृष्टि उत्पन्न हुई। इस (सृष्टि) के होने के पीछे देव हुए, (अत) कौन जाने जहाँ से उत्पन्न।।६।।"

"यह सृष्टि जहाँ से हुई अथवा धारण हुई या न हुई। जो इसका अध्यक्ष परम आकाश मे है। सो भाई, जानता है या नहीं जानता।।७।।"

प्रजापति-पुत्र यज्ञ भी कल्पित नाम है। इनके रचित सूक्त मे भी प्रजापति का वर्णन मिलता है परन्तु वह उतना रहस्यमय नहीं है" (१०,१३०)—

"जो यज्ञ तन्तुओ से चारो ओर फैला हुआ एक सौ देव-कर्मों से विस्तृत है। जो पितर आये हैं यह बुन रहे हैं। 'लम्बा बुनो, चौडा बुनो' कहते विस्तृत फेले यज्ञ मे है।।१।।"

"तब यज्ञ की क्या प्रमा-प्रतिमा (सीमा-आकृति) थी, क्या निदान था क्या धी था, क्या परिधि (माप) थी। छन्द क्या था, उक्थ (साम गान) क्या था, जबकि सारे देवो ने यजन किया।।३।।"

"अग्नि के साथ गायत्री छन्द हुआ। उष्णिक् के साथ सविता हुआ। अनुष्टुप् द्वारा सोम, महान् तेजस्वी (सूर्य) उक्थो द्वारा (हुआ) बृहस्पति के वचन का आश्रय वृहती ने लिया।।४।।"

"विराट् (छन्द) ने मित्र और वरुण का आश्रय लिया। इन्द्र और दिन का भाग यहाँ त्रिष्टुप् हुआ। जगती ने सभी देवो का आश्रय लिया। उनसे ऋषियो, मनुष्यो ने यज्ञ किया।।५।।'

"सात दिव्य ऋषि स्तोमो (स्तुतियो) छन्दो से आवृत्त हो प्रमा-मुक्त हुए। पहले ऋषियो के पथ को देखकर धीरो ने जैसे घोडे को लगाम वैसे पथ को पाया।।७।।"

प्रजापति के इस पिछले सूक्त मे पहले के जैसा चमत्कार नहीं है। पहले को वस्तुत उपनिषद् का पूर्वरूप मानना चाहिये। उसी सूक्त के रूप मे सप्तसिन्धु के आर्यों ने दार्शनिक उडान भरनी शुरू की, इसमे सन्देह नहीं। दूसरे सूक्त मे छन्दो के नामो का एक जगह सग्रह कर दिया गया और स्तोम (स्तुति) और उक्थ (सामगान) का भी उल्लेख किया है।

१३ मन्यु—देव शब्द का व्यापक अर्थ हे। उसमे प्रकृति के भीतर की चमत्कारिक शक्तियाँ ही सम्मिलित नहीं है, बल्कि मनुष्य के भीतर की शक्तियाँ भी देव हे। सप्तसिन्धु के ऋषियो को अभी शान्ति ओर अहिसा का पाठ पढने मे बहुत देर थी। उन्हे अपने शत्रुओ पर प्रहार करने के लिए मन्यु (क्रोध) की आवश्यकता थी। इसीलिए तप के पुत्र मन्यु ने उसकी प्रशसा की" (१०।८३)—

"हे वज्र-वाण-तुल्य मन्यु जो तुम्हारा ओज सब मे पुष्ट होता है वैसे वलवान् तुम्हारे साथ हम दास और आर्य को पराजित करे।।१।।'

"मन्यु इन्द्र है मन्यु ही देव है मन्यु (है) क्रोध होता वरुण जातवेद (अग्नि) (है)। जो मानुषी प्रजाये हैं वह मन्यु की प्रशसा करती है। हे मन्यु तपस्या से युक्त हो हमारी रक्षा करो।।२।।'

"बल मे अतिबली मन्यु तप के साथ आओ शत्रुओ को मारो। अमित्रनाशक वृत्रनाशक और दस्युनाशक तुम हमारे पास सारे धन लाओ।।३।।"

उसी कल्पित नाम वाले ऋषि ने फिर कहा है" (१०।८४)—

"तुम्हारे साथ रथ पर चढकर हर्षित होते ढीठ, बेगवान्, तीक्ष्ण वाणोवाले आयुधो को तेज करते अग्नि रूप नर अभियान करै।।१।।"

"अग्नि की तरह प्रज्वलित यज्ञ मे पुकार जाते हे मन्यु, हमारे सेनानी (आगे) बढै। शत्रुओ को मारकर हमे धन दो, ओज देते दुश्मनो को भगाओ।।२।।"

१४ **मित्र**—मित्र, मिथ्र, मिहिर ईरानी आर्यों और वैदिक आर्यों का सम्मिलित देवता है। उसका नाम पीछे के देवताओ मे हमारे यहॉ नहीं मिलता, लेकिन मित्र की महिमा ईरान मे पीछे बहुत बढी। एक बार उसकी उपासना की ओर रोम के सामन्त भी बहुत झुके थे। उस समय ईसाइयत और मिथ्र-भक्ति मे होड थी। कुछ समय तक यह कहना मुश्किल था, कि वहॉ ईसा का धर्म विजयी होगा या मित्र का। मित्र की स्तुति मे हम विश्वामित्र की कुछ ऋचाये देते हैं [७] (३।५९)—

"पुकारने पर मित्र लोगो को प्रेरित करता है। मित्र पृथिवी और द्यौ को धारण करता है। मित्र मनुष्यो को कृपादृष्टि से देखता है। मित्र के लिए घृत-सहित हवि का हवन करो।।१।।"

"हे मित्र आदित्य, वह मनुष्य धनवान् हो, जो तुम्हारी व्रत से प्रार्थना करता है। तुम्हारे द्वारा रक्षित वह न हत होत, न पराजित (होता)। दूर या नजदीक से खाता पाप उसे नहीं प्राप्त होता।।२।।"

"महान् आदित्य नमस्कार से उपासना करने योग्य है। सुन्दर कर्मवाला जन जाकर उसकी स्तुति करता है। उस अतिप्रशसनीय मित्र के लिए इस प्रिय हविको अग्नि मे हवन करो।।५।।'

"शक्तिशाली मित्र के लिए पॉच जन पूजा करते हैं। वह सारे देवो का पालन करता है।।८।।"

१५ **यम**—देखो १५।७८, ७९

१६ **रुद्र**—रुद्र विशेषण के रूप मे रुलानेवाले को कहते हैं। वेद के रुद्र और पीछे के शकर का कोई सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि दोनो को एक मान के रुद्रपरक मन्त्रो को जमा कर "रुद्राष्टाध्यायी" (रुद्री) तैयार की गयी है। वसिष्ठ अपने यजमान भरतो को कहते हैं [८] (७।४६)—

"हे भरतो सुनो, यह हमारी वाणियॉ (कविताये) स्थिर-धनुष, क्षिप्रवाण चलानेवाले, अन्नवाले अजेय विजेता, वेधा, तीक्ष्ण आयुधवाले रुद्र के लिए हैं।।१।।"

"(हे रुद्र,) देवलोक से छोडी गयी जो तुम्हारी बिजली पृथिवी पर विचरण करती है, वह हमे बचावे। हे स्वय पीनेवाले, तुम्हारे पास हजारो औषध हैं। तुम हमारे पुत्र-पौत्रो की हिसा न करो।।३।।'

"हे रुद्र, हमे न मारना न त्यागना। क्रुद्ध हुए तुम्हारे बन्धन मे हम न पडे। जीवो के प्रशसनीय हमारे यज्ञ मे आकर भागी बनो। तुम सदा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो।।४।।"

आगिरस कुत्स के सूक्त [९] (१।११४) से रुद्र के रूप-गुण का कुछ और पता लगता है—

"शक्तिशाली, जूडाधारी, शत्रुवीरो के नाशक रुद्र के लिए यह स्तुतियॉ हम लाते हैं, जिसमे कि दोपायो और चौपायो का कल्याण हो। इस ग्राम मे सभी पुष्ट और अरोग रहे।।१।।"

"हम दीप्तिमान् यज्ञसाधक वकु कवि रुद्र को रक्षा के लिए आह्वान करते हैं। वह अपने दिव्य क्रोध को हमसे परे फेके। हम उसकी सुमति (प्रसन्नता) चाहते हैं।।४।।"

"उस दीप्तिमान् सुन्दर, जटावान् रूपधारी, द्यौलोक के वराह को नमस्कार से हम आह्वान करते है। वह हाथ मे अच्छे भेषज लिये हमारे वास्ते वर्म (रक्षा), सुख और घर प्रदान करे।।५।।"

१७ **वरुण**—वरुण पुराना देवता है। विद्वानो का कहना है, कि इमी को पारसियो ने

अहुरमज्द (असुरमेध) माना। ईरानी और भारतीय आर्य शतवश की शाखा के है। उसकी दूसरी शाखा वाले स्लावो (रूसियो, चेको आदि) मे ईसाई होने से पहले पेरुन (परुन) *देवता की बडी महिमा थी। पेरुन (परुन) यही वरुण हे, इसमे सन्देह नही। भारत मे इन्द्र ने वरुण के तेज को मलिन कर दिया, तो भी पुराने ऋषि वरुण की प्रार्थना गद्गद् होकर करते हैं। वसिष्ठ ने कई ऋचाये वरुण की स्तुति मे रची हे। यद्यपि वहॉ उसे विश्वे (सारे) देवो मे सम्मिलित करके वरुण को गौण बना दिया। वह कहते हे[१०] (७।३४)—

"सहस्र ऑखोवाले उग्र वरुण इन नदियो के जल को देखते है।।१०।।'

"वह राष्ट्रो के राजा नदियो के रूप हैं। वह अनुपम बल वाले और सर्वगामी है।।११।।"

इन ऋचाओ से जल और वरुण का सम्बन्ध स्पष्ट हे।

वसिष्ठ वरुण की स्त्री वरुणानी का भी उल्लेख करते है[११] (७।३४)— "द्यो-पृथिवी हमे अभिलषित धन दे वरुणानी हमारी स्तुति सुने। त्वष्टा उपद्रव-नाश से हमारे लिए सुन्दर गृहवाला हो। वह सुदानी हमे धन दे।।२२।।"

वसिष्ठ ने अपने सातवे मण्डल के ८२-८५ सूक्तो मे इन्द्र और वरुण की साथ-साथ और ८६-८९ सूक्तो मे केवल वरुण की स्तुति की है। ६०-६५ सूक्तो मे उन्होने मित्र और वरुण का वर्णन किया है। इन सूक्तो से वरुण पर प्रकाश पडता हैं[१२] (७।६०)—

"पुकारे गये उदय होते हे सूर्य, आज (हमे) निष्पाप करो मित्र और वरुण के लिए सत्य होओ। हे अदिति अर्यमा देवताओ के पास हम स्तुति करते तुम्हारे प्रिय हो।।१।।"

केवल वरुण की स्तुतिपरक वसिष्ठ की कुछ ऋचाये है[१३] (७।८६)—

"इस (वरुण) की महिमा से जन्म स्थिर हुए। जिसने विस्तृत द्यो-पृथिवी को स्थापित किया। दर्शनीय महान् आकाश और नक्षत्र को उसने दोहरा फैलाया।१।।

"हे वरुण देखने का इच्छुक उस पाप के बारे मे मै पूछता हूँ। जानने की इच्छा से मैं पूछने जाता हूँ। (सभी) कवियो ने एक सा मुझे कहा— यह वरुण तुझसे क्रुद्ध है।।३।।"

"हे तेजस्वी दुर्धर्ष बलशाली वरुण क्या पाप था कि तुम ज्येष्ठ-सखा (होते) अपने स्तुतिकर्त्ता को मारना चाहते हो, उसे मुझे बताओ जिसमे मे इस नमस्कार के साथ जल्दी तुम्हारे पास आऊँ।।४।।"

"हमारे पैतृक द्रोहो को छोड दो हमने शरीर से जो किया उसे भी (छोड दो)। हे राजन पशु खिलानेवाले चोर की तरह रस्से मे बॅधे बछडे की तरह वसिष्ठ को छोड दो।।५।।"

"पाप-रहित हो मैं दास की तरह इच्छापूरक पोषक (वरुण) देव की चाकरी करूँ उचित अर्य (स्वामी) देव चेतावै। वह भारी कवि धन के लिए प्रेरित करैं।।७।।"

भरद्वाज ने देव-समुदाय मे वरुण का नाम देकर वेगार सी टाली है। विश्वामित्र ने जरूर वरूण के प्रति कुछ उदारता दिखलायी है पर उतनी नहीं, जितनी कि वसिष्ठ ने। क्या इसीलिए तो वसिष्ठ को मैत्रावरुणि (मित्र ओर वरुण का पुत्र) नहीं कहा गया ? अपने मण्डल के अन्तिम सूक्त[१४] (३।६२) मे विश्वामित्र ने इन्द्र और मित्र के साथ वरुण की प्रशसा की है—

"हे इन्द्र-वरुण यह धन का इच्छुक महान् यजमान बराबर रक्षा के लिए तुम्हारा आह्वान करता है। मरुतो द्यो और पृथिवी के साथ तुम मेरी स्तुति सुनो।।२।।

"हे सुकर्मा मित्र और वरुण तुम दोनो हमारी गोशालाओ को घृत से पूर्ण करो। हमारे आवासो को मधु से पूरा कर दो सींच दो।।१६।।"

वसिष्ठ की हुई वरुणानी की स्तुति को हम बतला चुके हे[१५] (७।३४।२२)

१८ वायु—विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा वायु देवता की स्तुति करते हे[१६] (१।२)—

"हे दर्शनीय वायु आओ सोम सजे हैं। उन्हे पीयो और स्तुति सुनो।।१।।

---

*स्लाव्यान्ये व् द्रेवनोस्ति (न० स० देर्झाविन् मास्क्वा १९४५)

"हे वायु, सोम छानते समय जाननेवाले स्तुतिकर्त्ता उक्थो (सामगान) से अच्छी तरह तुम्हारी स्तुति करते हैं।"

१६ **वास्तोष्पति**—घरो का देवता इस नाम से पुकारा जाता था। वसिष्ठ ने कहा है[७७] (७।५५)—

"हे रोगनाशक वास्तोष्पति, सभी रूपो मे आवेश कर तुम हमारे सुखकर सखा बनो।।१।।"

"हे अर्जुन (गोरे) सरमा-पुत्र, पिशग (सुवर्ण वर्ण), जब खाते तुम दॉतो को दिखाते हो, तब ओठो के पास हथियार की तरह वे चमकते हैं। इस समय तुम सो जाओ।।२।।"

२० **विश्वकर्मा**—ऋगृवेदी विश्वकर्मा का पीछे के देवशिल्पी विश्वकर्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। विश्वकर्मा का वर्णन ऋग्वेद के सबसे पीछे के दसवे मण्डल मे आया है। वहॉ के वर्णन से वह विश्व (संसार) का बनानेवाला जान पडता है। भुवन-पुत्र विश्वकर्मा इस सूक्त[७८] (१०।८१) के ऋषि हैं, जो कल्पित मालूम होते हैं। भुवन नाम को सूक्त की पहली ऋचा से लिया गया है, और विश्वकर्मा को इस सूक्त मे चार बार दोहराया गया है।

"जिसने हमारा पिता हो इस सारे भुवन को हवन किया। वह आशीर्वाद से धन की कामना करता पहले ढॉक कर दूसरे मे प्रविष्ट हुआ।।१।।"

"क्या अधिष्ठान (आधार) है, आरम्भ कौन सा और कैसे (काम) हुआ था, जिससे सर्वदर्शी विश्वकर्मा ने भूमि को उत्पन्न किया, (अपनी) महिमा से द्यौ को बनाया।।२।।"

"चारो ओर चक्षु और चारो ओर मुँह, चारो ओर बाहु और चारो ओर पैर वाला वह एक देव, उत्पन्न करते दोनो बाहुओ-पैरो से द्यौ और पृथिवी को कपित करता है।।३।।"

"क्या वन था, क्या वह वृक्ष था, जिससे (विश्वकर्मा ने) द्यौ और पृथिवी को गढा। हे मनीषियो मन से यह पूछो, जो कि भुवनो को धारण करते, (वह) जिस पर अधिष्ठित हुआ।।४।।"

२१ **विष्णु**—यह ऋग्वेद के गौण देवताओ मे है। पीछे के विष्णु की कल्पना मे ऋग्वेद के इन मत्रो का सहारा उसी तरह लिया गया है, जिस तरह शिव की रचना मे ऋग्वेद के कपर्दी रुद्र का। पर, वैदिक आर्यों को पौराणिक या महाभारत के विष्णु और रुद्र से कोई मतलब नहीं था। वसिष्ठ ने एक सूक्त[७९] (७।१००) मे विष्णु की महिमा गाई है—

"दान-इच्छुक मर्द बहुतो द्वारा यशोगान किये गये विष्णु को हवि देता है। जो मन से विष्णु की सेवा करता है, वह इतना (शीघ्र ही) पाता है।।१।।"

"इस देव ने सौ किरणो-सहित इस पृथिवी को अपनी महिमा से तीन बार विक्रमण किया। वृद्ध से अतिवृद्ध शक्तिशालियो से अतिशक्तिशाली विष्णु दीप्तिमान् हो, इस वृद्ध का नाम हो।।३।।"

"मनुष्य के क्षेत्र के लिए देने की इच्छा से विष्णु ने इस पृथिवी को विक्रमण किया (लॉघा)। इसकी स्तुति करनेवाले जन स्थिर हैं। सुन्दर स्त्रियोवाली विस्तृत क्षिति को उस (विष्णु) ने बनाया।४।।"

२२ **सरस्वती**—सरस्वती वेद की एक प्रमुख देवी थीं। कुरुक्षेत्र के पास बहनेवाली सरस्वती भी पीछे की गगा की तरह ऋग्वेदिक आर्यों मे एक श्रेष्ठ देवी मानी जाती थी। सरस्वती का शब्दार्थ सर (जल) वाली है। गगा अपनी धारा से अलग नहीं है, पर सरस्वती धारा से अलग भी देवी मानी जाती थी। इसके रूप का कुछ पता वसिष्ठ और विश्वामित्र के मन्त्रो से मालूम होता है। वसिष्ठ ने कई सूक्तो[८०] (७।९५-९६) मे सरस्वती की स्तुति की है। वह पहले सूक्त मे[८१] (७।९५) कहते हैं—

"यह सरस्वती पाषाण मे दुर्ग की तरह पख और वेगवाले जल के साथ दौडती है। अपनी महिमा से अन्य सिन्धुओ (नदियो) को बाधित करती वह रथी की तरह जाती है।।१।।"

"नदियो मे शुचि, गिरियो से समुद्र तक जाती, अकेली यह सरस्वती मनुष्यो के लिए भुवन के भूरि धन को चेताती घी और दूध को दुहाती जाती है।।२।।"

"हे सुभगा सरस्वती, तुम्हारे लिए यह वसिष्ठ यज्ञ का द्वार खोलता है। हे शुभ्रवर्णा, बढो, स्तोता को अन्न दो। तुम सदा हमे स्वस्ति के साथ पालन करो।।६।।"

अगले सूक्त[७१] (७।६६) मे वसिष्ठ कहते हैं—

"हे वसिष्ठ, नदियो मे बलवती सरस्वती के लिए बडा गान करो। द्यौ और पृथिवी मे सरस्वती को ही सुन्दर स्तोमो (स्तुतियो) द्वारा पूजो।।१।।"

"हे शुभ्रवर्णा, तेरी महिमा से पुरु लोग (दिव्य और मानुष) दोनो प्रकार का अन्न प्राप्त करते है। वह मरुतो की सखी रक्षिका (सरस्वती) धनिको के धन को हमारे पास भेजे।।२।।"

विश्वामित्र को सरस्वती की महिमा विशेष तोर से गानी चाहिये थी, क्योकि उनके कुलवाले कुशिक लोग सरस्वती के तट पर रहते बतलाये जाते हैं। लेकिन, उन्होने ऐसा पक्षपात नहीं दिखलाया। एक जगह[७२] (३।४।८) इळा और भारती के साथ सरस्वती और सारस्वतो का उल्लेख उन्होने किया है, जिसे हम इळा के प्रकरण मे देख चुके हैं।

भरत जन के ऋषि देवश्रवा, देववात एक ही जगह सरस्वती के साथ उसकी दो सहायक नदियो का वर्णन करते हैं[७३] (३।२३।४)—

"हे अग्नि, हम अन्नस्थान उत्तम पृथिवी मे सदा सुदिन के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं। दृषद्वती, आपया, सरस्वती के तट के मनुष्यो के लिए धनयुक्त हो तुम दीप्तिमान बनो।।४।।"

इस ऋचा मे आई दृषद्वती, आपया, सरस्वती हरियाणा मे बहनेवाली घग्गर, मरकण्डा और सरस्वती नदियॉ हैं, यह हम पहले कह चुके हैं।

भरद्वाज के कथनानुसार[७४] (६।६१) यह भी मालूम होता है, कि सरस्वती ने ही दिवोदास को प्रदान किया था—

"इस सरस्वती ने दानी वध्र्यश्व को ऋणरहित अपराजित दिवोदास प्रदान किया। हे सरस्वती, जिसने लोभी, कजूस पणि का भक्षण किया, उस तेरा दान बलयुक्त है।।१।।"

"यह सरस्वती भिस खोदनेवाले की तरह अपनी बल-शक्ति-लहरो से गिरियो की सानु को तोडती है। हम तटो के तोडनेवाली सरस्वती की भक्ति सुन्दर स्तुतियो द्वारा करते हैं।।२।।'

"प्रियो मे प्रिया सुसेविता सात बहनोवाली सरस्वती हमारे लिए स्तुतियोग्य हो।।१०।।'

"हे सरस्वती, हमे उत्तम धन मे ले जाओ, हमे हानि न पहुँचाओ। जल से हमारा ध्वस न करो। हमारी मित्रता और पडोस को स्वीकार करो। तुम्हारे क्षेत्र मे हम अरण्य मे न भटके।।१४।।"

२३ **सविता**—गायत्री छन्द मे विश्वामित्र द्वारा रचित सविता की स्तुति मशहूर है। यद्यपि गायत्री आठ अक्षरोवाले तीन पादो के किसी भी गीति छन्द को कह सकते हैं, लेकिन सविता की महिमा गाने के कारण इस ऋचा का सावित्री, या गायत्री नाम हो गया।[७५] (३।६२)—

"सविता देवता के उस श्रेष्ठ तेज को हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियो को प्रेरित करै।।१०।।'

"भग सविता देवता से हम अन्न मॉगते हैं।।११।।'

वह सुकृती सविता देवता (अपनी) सुनहली बाहुओ को सवन देने के लिए ऊपर उठाते हैं। युवा सुदक्ष महान् सविता लोक के रक्षण के लिए दोनो हाथो को घृत (जल) से प्रेरित करते हैं।।११।।[७६] (६।७१)

"सुनहली जीभवाले हे सविता, सुखद अहिसक तेजो से आज हमारे घर की रक्षा करो। नये सुख के लिए रक्षा करो। अहित करनेवाला हम पर शासन न करे।।३।।

वह सुवर्णपाणि लोह-हनु, मधुर-जिह्व, यशस्वी सविता देवता प्रदोष काल मे उगें। वह दाता के लिए बहुत अन्न प्रेरित करैं।।४।।

हे सविता आज धन कल धन हमारे लिए दिन-प्रतिदिन धन प्रदान करो। हे देव इस

स्तुति द्वारा बहुत निवास के हम धनभागी होवें।।६।।

२४ सोम—ऋग्वेद का नवम मडल सोम का मडल है। भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तीनो ऋषियो ने सोम की प्रशसा मे सूक्त रचे है। सोम भॉग की जाति का एक नशीला पौधा था, जिसमे ऋषियो ने दिव्यता की कल्पना की। पेय सोम और उसमे वास करने वाले सोम-देवता के भी गुणो का वह वर्णन करते हैं। इन्द्र, अग्नि और दूसरे देवता सोम के बहुत प्रेमी थे। भरद्वाज ने उन्हीं के प्रकरण मे सोम की महिमा गाई है। उनके पुत्र गर्ग ने एक सूक्त ही" (६।४७) सोम के सम्बन्ध मे रचा है, जिसमे पेय सोम के गुणो का भी वर्णन मिलता है—

"यह निश्चय स्वादु है, और यह तीव्र मधुमान (मीठा) है, और यह रसवान् है। इसके पीनेवाले इन्द्र को युद्ध मे कोई परास्त नहीं कर सकता।१।।"

"यह स्वादु है, यह अति मद-दायक है, जिससे कि इन्द्र वृत्रयुद्ध मे मस्त हुआ, जिसने शम्बर की निन्नानवे पुरियो को नष्ट किया।।२।।"

"जिसने पृथिवी के विस्तार, द्यौ के शरीर को बनाया, वह यह (सोम) है। सोम तीन चीजो (औषध, जल, गाय) मे पीयूष (अमृत) देता है, विस्तृत आकाश को धारण करता है।।४।।"

वसिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेव ने सोम की प्रशसा देवताओ के दिव्य पान की तरह की है।

असित, देवल ऋषियो के दो होने का सन्देह वैदिक-परम्परा मे मिलता है। पर, जान पडता है, ऋषि का असली नाम देवल था, अधिक गोरा होने के कारण उन्हे अ-सित कहा जाता था। असित बौद्ध त्रिपिटक मे मिलते हैं। मज्झिम निकाय के अस्सलायण सुत्त (२।५।३) मे बुद्ध ने असित-देवल को एक महान् ऋषि के तौर पर याद किया है। देवल ने सात ब्राह्मण ऋषियो का मान-मर्दन किया था। देवल से रुष्ट होकर सातो ऋषियो ने शाप दिया, पर देवल पर उसका कोई प्रभाव नहीं पडा। ऋषियो ने पूछा—"आप कौन हैं ?"

जवाब मिला—"आप लोगो ने असित देवल ऋषि को सुना है ?"

"हॉ, भो।"

"वही मैं हूँ।"

वह गोत्र से काश्यप और सोम के खास तौर से ऋषि थे। उन्होने नवे मण्डल मे सोम की स्तुति मे १६ सूक्त (६-२४) रचे हैं।

नवॉ मण्डल सारा ही सोम की स्तुतिवाले सूक्तो का सग्रह है, जिसके ऋषि हैं—
१ मधुच्छन्दा (विश्वामित्र-पुत्र), २ मेधातिथि, ३ कण्व आगिरस, ४ शुनःशेप अजीगर्त-पुत्र ५ हिरण्यस्तूप आगिरस, ६ असित-देवल, ७ दृढच्युत, ८ इध्मबाह दृढच्युत-पुत्र, ९ नृमेघ आगिरस, १० प्रियमेध काण्व, ११ बिन्दु आगिरस, १२ रहूगण गोतमपिता, १३ श्यावाश्च ऐतरेय, १४ तृत आप्त्य, १५ प्रभूवसु आगिरस, १६ बृहन्मति आगिरस, १७ मेध्यातिथि काण्व, १८ अयास्य आगिरस, १९ कवि भृगु-पुत्र, २० उचथ्य आगिरस २१ अवत्सार काश्यप, २२ अमहीयु आगिरस, २३ यमदग्नि भार्गव, २४ निध्रुवि काश्यप, २५ कश्यप मरीचि-पुत्र २६ भृगु वरुण-पुत्र, २७ वैखानस, २८ भरद्वाज बृहस्पति-पुत्र, २९ भौम आत्रेय, ३० विश्वामित्र गाधि-पुत्र, ३१ वसिष्ठ मित्रावरुण-पुत्र (१९-२१), ३२ पवित्र आगिरस, ३३ वत्सप्री भलदन-पुत्र, ३४ रेणु विश्वामित्र-पुत्र, ३५ ऋषभ विश्वामित्र-पुत्र, ३६ हरिमन्त आगिरस, ३७ कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, ३८ वसु भरद्वाज, ३९ प्रजापति वाक्-पुत्र, ४० वेन भार्गव, ४१ आकृष्टमाष आत्रेय, ४२ सिकता आत्रेयी, ४३ अज आत्रेय, ४४ गृत्समद, ४५ उशना काव्य, ४६ नोधा गोतम-पुत्र, ४७ प्रस्कण्व कण्व-पुत्र, ४८ प्रतर्दन दिवोदास-पुत्र, ४९ इन्द्रप्रमति, ५० वृषगण, ५१ मन्यु, ५२ उपमन्यु ५३ व्याघ्रपाद वासिष्ठ, ५४ शक्ति वसिष्ठ-पुत्र, ५५ कर्णश्रुत्, ५६ मृलीक, ५७ वसुक्र ५८ पराशर शक्ति-पुत्र, ५९ वत्स आगिरस, ६० अम्बरीष वृषागिर-पुत्र, ६१ ऋजिश्वा भरद्वाज-पुत्र, ६२ रेभ काश्यप, ६३ अधिगु श्यावाश्व-पुत्र, ६४ ययाति नहुष-पुत्र, ६५ नहुष मुन-पुत्र, ६६ मनु सवरण-पुत्र ६७ विश्वामित्र

वाक्-पुत्र ६८ प्रजापति वाक्-पुत्र ६६ तृत आप्य, ७० पर्वत काण्व, ७१ नारद काण्व, ७२ शिखडिनी काश्यपी ७३ अग्नि चक्षु-पुत्र, ७४ चक्षु मनु-पुत्र ७५ मनु आप-पुत्र, ७६ गौरिवीति शक्ति-पुत्र ७७ उरु आगिरस ७८ ऊर्ध्वसद्मा आगिरस ७६ कृतयशा आगिरस ८० ऋणचय, ८१ धिष्ण्य ईश्वर-पुत्र, ८२ त्र्यरुण, ८३ त्रसदस्यु, ८४ अनानत परुच्छेप-पुत्र, ८५ शिशु आगिरस। इन ८५ ऋषियो द्वारा रचित सोन-स्तुतियॉ नवे मण्डल के रूप मे एकत्रित कर दी गयी हैं। इनमे एक ओर भरद्वाज से पहले के भी कश्यप आदि ऋषि हैं, और दूसरी तरफ वसिष्ठ के पुत्र शक्ति तथा उनके पुत्र पराशर और गोरिवीति की ऋचाये भी मौजूद हैं। मण्डल का आरम्भ विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा की ऋचा से हुआ है।

३. पितर आदि

इन्द्र आदि देवताओ के अतिरिक्त आर्य अपने पहले के पूर्वजो पितरो को भी पूजते थे, और मानते थे कि वह देवताअ के लोक म विराजगान हैं। यम-पुत्र शख यह सदिग्ध सा नाम है उसी तरह विवस्वत् के पुत्र यम भी कल्पित हैं। इन दोनो पिता-पुत्रो ने पितरो का काफी गुणगान किया है" (१० ।१४)—

"यम ने हमारे गमन को सबसे पहले जाना। उनका यह मार्ग नष्ट नहीं किया जा सकता। जहाँ हमारे पुराने पितर गये उसी अपने रास्ते (सारे) जन्तु जायेगे।।२।।"

"कव्य (पितरो के लिए पूजा-द्रव्य) से मातली, अगिरो (पुराहितो) से यम, ऋक्वो (ऋचाओ) से वृहस्पति वढे। जिनको देवताओ ने वढाया आर जिन्होने देवो को, उनके लिए स्वाहा (है) दूसरे (पितर) स्वधा से प्रसन्न होते हैं।।३।।

"हे यम अगिरो-पितरा के साथ इस प्रस्तर (यज्ञ) मे आकर वैठो। तुम्हे कवियो के गाये मन्त्र (यहाँ) लावे। हे राजन् इस हवि से तुम प्रसन्न हो, यजमान को प्रसन्न करो।।४।।"

"जाओ प्राचीन मार्गो से (वहाँ) जाओ, जहॉ कि हमारे पुराने पितर गये हैं। यम और वरुणदेव को देखो। दोनो राजा स्वधा से प्रसन्न हैं।।७।।"

"चार ऑखोवाले सरमा-पुत्र दोनो काले कुत्तो को अच्छे मार्ग से हटाओ। और यम के साथ आनन्द से रहते विज्ञ पितरो के ओर यम के साथ आओ।।१०।।"

"हे यम मनुष्यो के द्वारा प्रशसनीय पथपाल, सरक्षक तुम्हारे वह जो चार ऑखोवाले दोनो श्वान हैं उनके द्वारा हे राजन् इसकी रक्षा करो और इसे स्वस्ति से निरोग रक्खो।।११।।"

"वडी नाकोवाले प्राणभक्षक अतिवलवान् यम के दोनो दूत लोगो के पीछे-पीछे चलते हैं। वह दोनो (हमे) सूर्य को देखने के लिए पुन यहाँ अच्छा प्राण प्रदान करे।।१२।।'

"यम के लिए सोम छानो यम के लिए हवि का हवन करो। अग्निदूत अलकृत यम के पास जाता है।।१३।।"

"यम राजा के लिए मधुमत्तम (अतिमधुर) हवि का हवन करो। पुराने पथकर्त्ता पूर्वज ऋषियो के लिए यह (मेरा) नमस्कार है।।१५।।"

यम नाम के कल्पित ऋषि ने अपने सूक्त मे यम की महिमा गाई है। उनके कल्पित पुत्र शख ने पितरो के वारे मे कहा है" (१० ।१५)—

"उत्तम, मध्यम ओर साधारण सोमपायी पितर अनुग्रह करे। अमित्र होकर जो धर्मज्ञ हमारे प्राणरक्षा के लिए यज्ञ मे आये हैं, वे हमारे पितर हमारी रक्षा करे।।१।।"

"जो कि पूर्व के हैं जो कि ऊपर गये हैं। जो पार्थिव लोक मे वैठे हैं, या जो निश्चय सम्पन्न लोगो में हैं आज पितरा के लिए यह नमस्कार (है) ।।२।।'

"पितरो लाल ज्वालाओ के पास वैठे दाता मनुष्य के लिए धन दो। उसको पुत्र दो, उसे यहाँ उत्साहित करो।।७।।

"जो हमारे पूर्व के पितर वसिष्ठो ने सोमपान की कामना की थी, उनके साथ हवि को प्राप्त कर यम सुखी हो तृप्त हो।।८।।'

"जो अग्नि से दग्ध, जो अग्नि से अदग्ध (न जलाये गये) द्योलोक के मध्य मे स्वधा से सतुष्ट (पितर) हैं। हे स्वराज, उनके साथ एक हो इस सुनीति शरीर को यथाशक्ति बनाओ।।१४।।"

पितर-सम्बन्धी इन ऋचाओ से आर्यों का अपने मृत पितरो के सबध मे क्या विश्वास था, इसका पता लगता है। वह समझते थे, कि पितर यम देवता के साथ विशेष सम्बन्ध रखते हैं, वह उनके कृपापात्र हैं। अपनी सन्तानो के पास उनकी पूजा-भक्ति स्वीकार करने के लिए वह आते है। यम के चार-चार ऑखवाले दो काले कुत्ते परलोक के यात्रियो के लिए बडे भयकर जन्तु हैं। लबी नाकोवाले दो प्राण खानेवाले यमदूत भी कम भयकर नहीं हैं। देवताओ के लिए स्वाहारूपी अन्न आधार है, और पितरो के लिए स्वधा।

४ सकाम कर्म

ऋग्वेद के ऋषियो और उनके प्राचीन वशजो को निष्काम कर्म से कोई वास्ता नहीं था। वह गोसाईं जी के इस वाक्य के माननेवाले थे—"सुर नर मुनि की ये ही रीती। स्वारथ लागि करहि सब प्रीती।" वह देवताओ के लिए यज्ञ, हवन या सोमपान करते-कराते उनके सामने बराबर अपनी अभिलाषाऍ रखते थे। उनका मोटो था—"देहि मे ददानि ते" (मुझे दो फिर मैं तुम्हे दूँगा)। वृहस्पति-पुत्र भरद्वाज की अग्नि से यह प्रार्थना उनके भाव को बतलाती है[८०](६।१)—

"जो तुमने द्यौ और पृथिवी को विस्तृत किया, (वह तुम) प्रशसा से प्रशसनीय और प्रभा से रक्षक हो। हे अग्नि, बहुत अन्न और विशेष धन द्वारा हम लोगो को धनवान् बनाओ, दीप्त करो।।११।।"

"हे वसु हमे मनुष्यो-सहित धन दो, हमारे पुत्रो-पौत्रो को बहुत पशु दो। पहले (जिसकी) कामना की गयी, (वह) बडा धन, भद्र यश हमे प्राप्त हो।।१२।।"

"हे राजा अग्नि, तुमसे हम बहुत प्रकार के धन और धान्य पाये। हे बहुत श्रेष्ठ राजा अग्नि, तुम्हारे पास बहुतायत है तुम्हारे पास बहुत से धन हैं।।१३।।"

भरद्वाज अग्नि से सौ वर्ष जीने की कामना करते हैं[८१] (६।४)—

"हे अग्नि, शत्रुओ से रहित रास्ते से हमे शीघ्र स्वस्ति के पास पहुॅचाओ। पाप दूर करो, स्तुति करनेवाले सूरियो को जो देते हो, उस सुख के साथ हम सुन्दर वीर सन्तानो-सहित सौ वर्ष जीये।।८।।"

उनकी अग्नि से दूसरी याचना है[८२] (६।५)—

"हे अग्नि, तुम्हारी रक्षा से उस कामना को हम पाये। धन-युक्त, वीर-सन्तान-सहित धन प्राप्त करे। अन्न की कामना करते अन्न को पाये। तुम्हारे अजरामर यश को प्राप्त करे।।७।।"

और भी[८३] (६।२४)—

"हे इन्द्र, भक्त को तुम रक्षा के लिए सेवन करो। यहाँ के शत्रुओ से (उसकी) रक्षा करो। वन और घर मे शत्रुओ से इसकी रक्षा करो, हम सौ हिम (वर्ष) सुवीर्य सन्तानो-सहित आनद से रहे।।१०।।"

वसिष्ठ भी आदित्य देवता से सौ शरद (वर्ष) जीने की कामना करते हैं[८४] (७।६६)—

"वह देवहितैषी श्वेत-चक्षु उग रहा है।"

कल्याण के लिए सात बहिने (किरणे) सुनहले रथ मे सूर्य को वहन करती हैं।।१५।।

"वह देवहितैषी शुक्लनेत्र उग रहा है। हम सौ शरद (वर्ष) देखे, सौ शरद जीये।।१६।।"

वसिष्ठ मरुत् देवताओ से कामना करते हैं[५] (७।५६)—

"सुगन्धी पुष्टिवर्धक त्रयम्बक की हम उपासना करते हैं। वह बधन से बेर की तरह मुझे मुक्त करे अमृत से नहीं।।१२।।"

फिर वरुण से वसिष्ठ कहते हैं[६] (७।८८)—

"इन ध्रुव भूमियो मे रहते अदिति के पास (हम) रक्षा की इच्छा करते हैं, वरुण, हमे बधन्न से मुक्त करे। तुम सदा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो।।७।।"

विश्वामित्र की एक से अधिक बार प्रार्थना है[७] (३।३०।२२, ३।३१।२२)

"हम शीघ्रगामी, मघवा (धनवान्) श्रेष्ठ नेता, श्रोता, उग्र शत्रुओ के घातक धनवान् इन्द्र को इस आये युद्ध मे रक्षा के लिए यज्ञ मे पुकारते हैं।।१०।।"

वामदेव इन्द्र से प्रार्थना करते हैं[८] (४।३०)—

"हे वृत्रहन्ता, तुमने अन्धो और पगुओ दोनो को मुक्त किया। तुम्हारा वह सुख हटाया नहीं जा सकता।।१९।।"

दिवोदास-पुत्र परुच्छे पने पिशाचो से बचने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की[९] (१।१३३) –

"हे इन्द्र, चिल्लानेवाले पिशग (पीले) रगवाले पिशाच का नाश करो, सारे राक्षसो को खतम करो।।५।।"

सूर्या के रूप मे कोई स्त्री या पुरुष ऋषि, पत्नी की कामना करता है[१०] (१०।८५)—

"तुम दोनो यहीं रहो, बिछडो नहीं, पुत्रो और नातियो के साथ खेलते अपने गृह मे मुदित रहते सारी आयु को प्राप्त करो।।४२।।"

५. अर्चना की सामग्री

यह बतला चुके हैं, कि देवताओ को प्रसन्न करने के लिए सप्तसिन्धु के आर्यों के पास दो क्रियाये थीं—अग्नि मे हवन करना और सोम तैयार करके चमुओ और कलशो मे रखकर देवताओ को अर्पित करना। हवन की सामग्री नाना प्रकार की होती थी, जिनमे से कितनो ही का पता विश्वामित्र की ऋचाओ से मालूम होता है[११] (३।२८)—

"हे जातवेद, स्तुतिरूपी धनवाले अग्नि, प्रात सवन मे हमारे पुरोडाश हवि का सेवन करो।।१।।"

"हे अति तरुण अग्नि, तुम्हारे लिए परिष्कृत पुरोडाश पकाया गया है, उसका तुम सेवन करो।।२।।"

"हे अग्नि, पुकारे गये तुम दिन के अन्त मे पुरोडाश को लाओ, तुम साहस के पुत्र और यज्ञ मे अवस्थित हो।।३।।"

"हे जातवेद कवि, यहाँ मध्याह्नवाले सवन मे पुरोडाश का सेवन करो। हे अग्नि, यज्ञ मे धीर लोग महान् तुम्हारे भाग को नष्ट नहीं करते।।४।।"

"हे साहस के पुत्र अग्नि, तृतीय सवन मे हवन किये गये पुरोडाश की कामना करो। और स्तुति के साथ अमर देवताओ मे अविनाशी जागरूक रत्नवान् सोम को (ले जाकर) स्थापित करो।।५।।"

"हे जातवेदा अग्नि, आहुति को बढाते दिन के अन्त मे पुरोडाश सेवन करो।।६।।"

देवताओ के लिए हवन या सोमपान की क्रियाएँ तीन समय हुआ करती थीं, जिनको तीन सवन कहते थे। सबेरे होनेवाली को प्रात सवन, मध्याह्न मे होनेवाली को माध्यन्दिन सवन और शामवाली को तृतीयसवन या सायसवन कहते थे। विश्वामित्र ने अपने इस सूक्त मे तीनो

सवनो का उल्लेख किया है। पुरोडाश पीछे दूध मे पके चावलवाली खीर को कहा जाने लगा, लेकिन सप्तसिन्धु के आर्य चावल का कहीं जिक्र नहीं करते। उसकी जगह जौ को डालकर वह पुरोडाश बनाते थे। इसका यह अर्थ नहीं, कि सप्तसिन्धु मे चावल नहीं होता था। मोहनजोदडो और हडप्पा के लोग चावल खाते थे, यह हमे वहॉ की खुदाई से पता लगा है। पर, जान पडता है, आजकल के पजाबियो की तरह तीन हजार वर्ष पहले के आर्य भी चावल को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे।

जौ और दूध मिलाकर जो हवि तैयार की जाती थी, उसका विश्वामित्र ने उल्लेख किया है[१२] (३।४२)—

"हे कामनापूरक इन्द्र, आकर इस **गवाशिर** और **यवाशिर** को पीयो।।७।।"

"हे इन्द्र, अपने घर मे **सोम** पीने के लिए तुम्हे मैं प्रेरित करता हूँ। यह तुम्हारे हृदय को प्रसन्न करे।।८।।"

"हे इन्द्र, रक्षा के इच्छुक हम कुशिक लोग छाने **सोम** को पीने के लिए तुम पुरातन को बुलाते हैं।।६।।"

आशिर दूध के पाक को कहते थे। जौ की खीर को यवाशिर कहा जाता था और गवाशिर केवल गाय के दूध को पकाकर बनाया जाता था। यह पुरोडाश के भेदो मे से था।

विश्वामित्र और भी हवियो का उल्लेख करते हैं[१३] (३।५२)—

"हे इन्द्र, हमारे उक्थ (स्तोत्र) युक्त दानावाले **करम्भ** (सत्तू) वाले **अपूप** (रोटी) वाले हवि को सवेरे सेवन करो।।१।।"

"हे इन्द्र, पके **पुरोडाश** को तुम सेवन करो और भोजन करो। हव्य तुम्हारे लिए गमन करती है।।२।।"

"हमारे **पुरोडाश** को भक्षण करो और हमारी वाणी को वैसे ही पसन्द करो, जैसे कामी (पुरुष) स्त्री को।।३।।"

"हे सदा से प्रसिद्ध इन्द्र प्रातसवन मे हमारे **पुरोडाश** को सेवन करो। तुम्हारा कर्म महान् है।।४।।"

"यहॉ माध्यन्दिन सवन के (भूने) दानो और सुन्दर पुरोडाश को हे इन्द्र, स्वीकार करो' जो कि शीघ्रता करनेवाला वृषभ बना प्रशसा करनेवाला स्तोता वाणियो द्वारा (तुम्हारी) प्रार्थन करता है।।५।।"

"तृतीयसवन मे हे बहुप्रशसित, हमारे दानो और हवन किये पुरोडाश को भोजन करो। हे कवि, हम तत्पर हो स्तुतियो द्वारा तुम्हारी सेवा करते प्रार्थना करते हैं।।६।।"

"हरे अश्वोवाले पूषन्, तुम्हारे लिये **करम्भ** (सत्तू) और **दाना** हम लाते हैं। हे शूर विद्वान वृत्रहन्ता (इन्द्र), मरुतो के साथ गण-सहित **अपूप** (रोटी) खाओ, सोम पीयो।।७।।"

यहॉ जौ के भुने दाने, भुने जौ के पिस कर बने सत्तू, जौ की रोटी और सोमरस को देवताओ की पूजा की सामग्री (हवि) बतलाया गया है।

इन्द्र को सोम पीने की प्रार्थना करते विश्वामित्र फिर कहते हैं[१४] (३।५३)।

"हे इन्द्र, उस **सोम** को तुम पीयो, फिर जाओ। तुम्हारी कल्याणी जाया रमणीय घर में है। जहॉ रथ की बडी निधि है, वह दक्षिणा-युक्त अश्व का छोडने का स्थान है।।६।।"

वामदेव गौतम इन्द्र की पूजा के बारे मे कहते हैं[१५] (४।३२)—

"हम इन्द्र से रथ मे जुडनेवाले हजार घोडे सौ **सोम** को खारिया मॉगते हैं।।१७।।"

खारी पिछले काल मे कई मन भारी तौल को कहते थे। पालि मे माप के तौल के अतिरिक्त झोली को भी खारी कहते थे। हो सकता है, यहाँ वामदेव ने सौ झोलियो या सौ गट्ठर सोम के माँगे हो।

सुतम्भर ऋषि के कथन[९६] (५।१४) से यह भी मालूम होता है, कि श्रुवा मे घी लेकर उसे अग्नि मे डाला जाता था—

"घृत चूते श्रुवा से हवि ले जाने के लिए उस अग्नि की बहुतेरे स्तुति करते हैं।।३।।"

२ पशु-बलि— अन्न और सोम के अतिरिक्त पशुओ को भी देवताओ के लिए हवन किया जाता था। वोतहव्य-पुत्र अरुण के कथन[९७] (१०।९१) से यज्ञ के पशुओ के कुछ नाम इस प्रकार हैं—

"जिसमे घोडे, वृषभ (साँड) बैल, बहिला (गाये), मेष हवन किये जाते हैं। जल पीने वाले सोम की पीठ पर रहने वाले विधाता अग्नि के लिए मैं हृदय से सुन्दर स्तुति बनाता हूँ।।१४।।"

"जैसे श्रुवा मे घी, चमू मे सोम वैसे ही हे अग्नि, हम तुम्हारे मुँह मे हवि रखते हैं। हमे तू अन्न धन प्रशस्त सुवीर्य सन्तान और बडे यश को प्रदान करो।।१५।।"

वसुक्र ऐन्द्र ऋषि इन्द्र के लिए वृषभ (साँड) और मोटे मेष के पकाने की बात करते हैं[९८] (१०।२७)—

इन्द्र कहते हैं— "हे भक्त, मेरा स्वभाव है, कि सोम सवन करने वाले यजमान को (धन) देता हूँ। जो अ-हव्यवस्तु देता है सत्य को नष्ट करता है, पापी और चोर है, उसका मैं नष्ट करनेवाला हूँ।।१।।"

ऋषि कहते हैं— "न-देवभक्तो (अपना) शरीर भरने वालो को जब मैं युद्ध के लिए ले जाता हूँ। तब तुम्हारे लिए मोटे वृषभ को पकाता हूँ, और पद्रहवीं (अमावस्या) को तीव्र छाने हुए सोम का सेवन करता हूँ।।२।।"

वही ऋषि फिर[९९] (१०।२७।) कहते हैं —

"मोटे मेष को वीरो ने पकाया था, जुए के स्थान मे पासे फेके हुए थे। दो बडे धनुषो को लेकर (वह) पवित्र-युक्त शोधन करते जल के भीतर विचरण करते हैं।।१७।।"

दीर्घतमा ऋषि सोधे घोडे को पकते बतलाते हैं[१००] (१।१६२)—

"जो पक्व घोडे को देखते हैं। जो कहते हैं 'सोधा है, देवताओ को प्रदान करो'। जो घोडे के माँस-भोजन का सेवन करते हैं, उनकी कामना हमे प्राप्त हो।।१२।।"

"जो (यह) माँस पकाने की उखा (हँडिया) मे (उसे पकाते) देखते, जो पात्रो मे जूस को डालते हैं। चरुओ के मुँह को ढाँक गरम रखते, सूना (काटने के पीढे) पर अश्व को सजाते हैं।।१३।।"

गाय घोडे, मेष के अतिरिक्त अजा (बकरी) माँस को भी देवताओ को अर्पित किया जाता था, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं।

६ मन्त्र-तन्त्र

देवताओ को हवि और सोम से प्रसन्न करके ऋषि प्रिय वस्तुओ को माँगते और अप्रिय को हटाना चाहते थे। इनके अतिरिक्त मन्त्र-तन्त्र द्वारा भी वह अनिष्ट-निवारण की कोशिश करते थे यद्यपि उतना नहीं, जितना कि पीछे उसे देखा जाता है। आर्य-स्त्रियो को जादू-टोने पर

ज्यादा विश्वास था, वह इसके लिए जडी-बूटियो का भी इस्तेमाल करती थीं। इन्द्राणी के नाम से किसी कल्पित ऋषि-स्त्री ने सौत से त्राण पाने के लिए कहा है।[१०१] (१० ।१४५)—

"इस अतिबलवान् वनस्पति औषधि को खोदती हूँ, जिसके द्वारा सौत को बाधा दी जाती, जिसके द्वारा पति को अच्छी तरह प्राप्त किया जाता है।।१।।

"हे उतान-पर्णवाली बलवाली, देवो को पसन्द सुभगे (औषधि), सौत को मुझसे दूर भगा और पति को केवल मेरा बना।।२।।"

"मैं उत्तम हूँ, हे उत्तमे, मैं उत्तम से उत्तम बनूँ, और जो सौत है, वह मुझसे नीचे से और नीचे हो।।३।।"

"उस (सौत) का नाम नहीं लेती, उस जन मे मन नहीं, प्रसन्न होता मैं सौत को दूर से दूर ही भेजती हूँ।।४।।"

"मैं शक्तिमती हूँ, और (हे औषधि,) तुम अत्यन्त शक्तिमती हो। हम दोनो शक्ति-युक्त हो मेरी सौत को परास्त करे।।५।।"

"यह टोटका-टोना ऋग्वेद के दसवे मण्डल मे आया है, जो उसके बहुत पीछे रचे गये भागो मे से हैं । टोटके-टोने और मन्त्रो का अधिक प्रयोग अथर्ववेद मे मिलता है ।

७ परलोक

ऋग्वेद मे कहीं ऐसा वर्णन नहीं मिलता है जिससे मालूम हो, कि सप्तसिन्धु के आर्य पुनर्जन्म को मानते थे। मरने के बाद अपने कर्मो के अनुसार दूसरे लोको मे जाना उन्हे मान्य था। यमलोक और स्वर्ग दो परलोको का पता लगता है।

१ यमलोक

यह यम का लोक था, जिसका वर्णन हम यम देवता के साथ कर चुके[१] हैं। इसके बारे मे आर्य कहते थे[१०२] (१० ।१४ ।१२)—

"जहाँ हमारे पूर्व के पितर गये।"

यमलोक तक पहुँचने के रास्ते मे चार आँखोवाले भयकर काले कुत्तो का वर्णन भी हम कर चुके हैं।

२ स्वर्ग

कक्षीवान् ऋषि देवभक्तो को देवो के पास जानेकी बात कहते हैं[१०३] (१ ।१२५)—

"जो देवो को तृप्त करता है, वह देवो के पासवाले स्थान मे जाता है, नाक (स्वर्ग) पीठ पर आश्रित हो अधिष्ठित होता है। उसके लिए आप (जलदेवता) घृत प्रदान करते हैं । सिन्धु, यह दक्षिणा उसको सदा मनस्तृप्ति करती।।५।।"

कश्यप मारीच ऋषि स्वर्ग को सदा ज्योतिमान्, सुख-युक्त अमृत लोक[१०४] (६ ।११३ ।७-११) कहते है, और वहाँ आनन्द, मोद, प्रमोद का होना बतलाते हैं (११)।

ऋग्वेदमे धर्म-कर्म, देवताओ, पूजा-सामग्री और स्वर्ग-परलोक के बारे मे जो बाते आई हैं, वह सक्षेप मे यही हैं।

---

[१]देखो पृष्ठ ५६

अध्याय १६
ज्ञान-विज्ञान

ऋग्वेदिक आर्य ताम्र-युग के अन्त मे थे, कृषि भी उनकी जीविकाका साधन थी, पर उसमे पशुपालन की प्रधानता थी। उस समय के कपडा बुनना आदि शिल्पो के बारे मे हम कह चुके हैं* । इसका ज्ञान उनको अवश्य था।

१ कृषि

१ हल, फाल

कृषि के बारे मे हम पहिले कुछ कह आये है। हल का उपयोग वह करते थे, और सीरा (नदी, हल) का भी उल्लेख मिलता है[1] (४।१६)। वामदेव कहते हैं—

"इन्द्र ने वृत्र को मारकर पहले की उषाओ, शरदो और रुधी सिन्धुओ को मुक्त किया। चारो तरफ मौजूद बाँधी गयी सीरा को पृथिवी के ऊपर बहने के लिए मुक्त किया।।८।।"

सीरा यहाँ नदी को कहा गया है। नदी और हराई दोनो के लिए सीरा कहना उनकी आकार की समानता के कारण था।

बुध सौम्य भी सीरा (हल की हराई) के बारे मे कहते हैं (१०।१०१)—

"सीरा को जोडो, जूये को फैलाओ। यहाँ (इस) स्थान मे बीज बोओ। और स्तुति से हमारे लिए भरपूर अन्न हो। पास पकी फसल मे हसुए पहुँचे।।३।।"

"कवि सीरा को जोडते हैं, जूये को पृथक् करते हैं। देवो के लिए सुन्दर स्तोत्र के साथ धीर हैं।।४।।"

"पशु-प्याव बनाओ, रस्सी (बरहा) जोडो। पानी वाले गडहे से हम सुसेचन करते (उसे) निरन्तर सींचे।।५।।"

"पशुओ का प्याव तैयार है, सुसेचन (के लिए) जल वाले अक्षय कुये (अवत) मे सुवरत्र (बरहा, रस्सा) है।।६।।"

"घोडो को तृप्त करो, हित (वस्तु) पाओ, स्वस्ति के साथ वहन करने वाले रथ को तैयार करो। द्रोण भर के पत्थर के चक्केवाले असत्रकोश (मान बँधे) युक्त कुण्ड को मनुष्य के पीने के लिए भरो।।७।।"

२. कुआँ

पजाब जैसी जगह मे उस समय भी खेती के लिए और आदमियो-पशुओ के पीने के लिए भी आज की तरह ही कुओ की बडी आवश्यकता थी। पानी स्वाभाविक स्वयज और खनित्रिय (खोदकर निकाले) दो प्रकार के होते थे। यह वासिष्ठ के कथन से मालूम होता है[1] (७।४६)—

---

*देखो पृष्ठ ३७

"जो जल दिव्य या खनित्रिय अथवा जो अपने उत्पन्न बहते है। जो समुद्रार्थ शुचि पवित्र जलदेवियाँ है, वह मेरी रक्षा करे।।२।।"

भरद्वाज भी कुएँ (केवट) का उल्लेख करते हैं (६।५४)—

"हमारी गौवे नष्ट न होवे, हमारी (गौवे) मारी न जाये (वह) कुए मे न गिरें। बिना हानि के (गोष्ठ मे) आवे।।७।।"

गृत्समद भी कुए (उत्स) का उल्लेख करते हैं (२।१६)— "तुम शत्रुनाशक हो, युद्ध मे नाव की तरह हम तुम्हारे पास जाते है, सवन मे ब्रह्मा मे स्तोत्र-वचन के साथ जाते है। हमारे इस वचन को अच्छी तरह जानो। हम कुएँ की तरह इन्द्र को धन से सींचेगे।।७।।"

३ कुल्या

पीछे ओर आज भी कुल्या या (कूल) छोटी-बडी नहरो को कहते हैं, लेकिन उस समय कुल्या का अर्थ कूल या तटवाली था, जो नदी या नहर दोनो का नाम था। कृष्ण ऑगिरस कहते हैं (१०।४३)—

"जैसे जल सिन्धु की और बहते है, कुल्या ह्रद की ओर बहती है, वैसे (ही) सोम इन्द्र की ओर (बहै)। इसके तेज को यज्ञशाला मे ब्राह्मण उसी तरह बढाते है, जैसे दिव्य दाता द्वारा (भेजी) वृष्टि जौ को बढाती है।।७।।"

भौम आत्रेय भी कुल्या का उल्लेख करते (५।७३) हैं—

'हे पर्जन्य महान कोश मेघ को उठाकर सींचो। रुकी हुई कुल्या पूर्व की ओर बहैं। घी (जल) से द्यौ और पृथिवी को भिगो दो धेनुओ के लिए सुन्दर प्याव हो (जाये)।।८।।"

२ वास्तु

आर्य यद्यपि नगरो के निवासी नही थे न सप्तसिन्धु के नगरो का उल्लेख मिलता है, पर, हमे मालूम है कि सिन्धु-उपत्यका के निवासी मोहनजोदडो और हडप्पा जैसे अच्छी तरह बने-बसे शहरो मे रहा करते थे*। वैदिक आर्य केवल घुमन्तू पशुपाल नहीं थे। वह कृषक भी थे, और अपने पशुओ की अनुकूलता देखकर गॉवो मे रहते थे। उनके ग्रामो मे दम, शाला, कुटी ही नहीं बल्कि हजार खम्भेवाली और हर्म्य जैसी इमारते भी थीं। हर्म्य यद्यपि पीछे राजप्रासाद को कहा जाता था, पर वसिष्ठ के कथन (७।५६) से ऐसा नहीं मालूम होता—

"मरुतगण घोडे की तरह सुन्दर गतिवाले है उत्सवदर्शी मनुष्यो की तरह शोभन हैं। वे हर्म्य मे स्थित शिशुओ की तरह शुभ्र और क्रीडा प्रिय बछडो की तरह जलधारक हैं।।१६।।"

सहस्रस्थूण हजार खम्भोवाले हाल का उल्लेख श्रुतिविध आत्रेय की ऋचा मे है (५।६२)—

"हे मित्र-वरुण, सुकृत (यज्ञ) मे दानशील हो यजमान के अन्न की रक्षा करो। क्रोध-रहित तुम दोनो राजा, हजार खम्भो वाले गृह को धारण करो।।६।।"

३. काल

ऋग्वेद मे सातो दिनो का उल्लेख नही है। बारह राशियॉ तो ग्रीक लोगो के सपर्क मे आने के बाद हमारे यहॉ ली गयी। आज भी किसान सौर वर्ष की आवश्यकता अच्छी तरह अनुभव करते हैं, पर, वर्षाकाल को बहुत पुराने समय की तरह ही नक्षत्रो से गिनते हैं। आर्द्रा से हस्त तक के काल को वह वृष्टि का समय मानते हैं और उसी के अनुसार फसलो को बोते भी हैं। आर्य मासो को जानते थे।

---

*देखो पृष्ठ ८

१ **मास**—शुनशेप वैश्वामित्र (अजीगर्त-पुत्र)। बारह महीनो का उल्लेख करते हैं[10] (१।२५)—

"व्रतधारी वरुण प्रजावाले बारह महीनो को जानते हैं और जो अधिक मास होता है, उसे (भी) जानते हैं।।८।।"

२ **ऋतु**—कुछ ऋतुएँ भी उस वक्त मानी जाती थीं यह काण्व-पुत्र प्रगाथ की ऋचा[11] (८।५२) से मालूम होता है—

"हे इन्द्र (तुम) यज्ञ ऋतुवाले प्रकाशमान (हो) हे शूर, ऋचाओ से हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारे साथ हम विजयी होगे ।।१।।"

भरद्वाज शरद ओर हिम (हेमन्त) ऋतुओ का उल्लेख करते हैं [12] (६।२४)—

"शरदो और महीनो की तरह जिसे (वह) जरा-युक्त नहीं बनाते, दिन इन्द्र को कृश नहीं करते। स्तोमो और उक्थो से प्रशसा किये जाते इस वृद्ध इन्द्र का शरीर बढे।।७।।"[13] (६।२४)—

'हे इन्द्र, युद्ध मे स्तोता की रक्षा के लिए यत्नवान् हो। नजदीक या दूरवाले भय से उसकी रक्षा करो। घर मे अरण्य मे शत्रुओ से (उसकी) रक्षा करो। हम सुन्दर वीर पुत्रोवाले हो, सौ हिमो (तक) आनन्द करे।।१०।।"

अपने साथ ही वसन्त का ज्ञान आर्य सप्तसिन्धु मे लाये थे। उनके बाहरी जाति-भाई रूसी वसन्त को व्यस्ना, शरद को खलद और हिम को जिम कहते हैं। यहाँ केवल उच्चारण का अन्तर है। इस प्रकार इन तीनो ऋतुओ को सप्तसिधु मे पहिले की तरह ही माना जाता था। नारायण ऋषि वसन्त, ग्रीष्म और शरद का उल्लेख करते हैं [14] (१०।६०)—

"जब देवो ने पुरुषरूपी हवि से यज्ञ किया, तो उसका घी वसन्त हुआ, ईधन ग्रीष्म और हवि शरद।।६।।'

कल्पित ऋषि यक्ष्मनाशन प्रजापति भी ऋतुओ के बारे मे कहते हैं [15] (१०।१६१)—

"बढते हुए सौ शरद सौ हेमन्त और सौ वसन्त तुम जीओ, इन्द्र-अग्नि-सविता-वृहस्पति शतायुरूपी हवि से इसे फिर प्रदान करे ।।४।।"

सवत्सर ही पहले वर्ष का नाम था वर्ष तो बहुत पीछे वर्षा से बनाया गया। दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र कहते हैं [16] (१।१४०)—

"द्विजन्मा अग्नि तीन प्रकार के अन्न को खाते हैं, यह खाया हुआ (अन्न) फिर सवत्सर मे बढता है। अभीष्टप्रद अग्नि एक जिह्वा से बढते हैं दूसरी से दूसरो को हटाकर वनो को नष्ट करते हैं।।२।।

३ **नक्षत्र**—नक्षत्रो का आर्यो को ज्ञान था जैसे (फाल्गुणी) [17] (१०।८५।१३) मघा (पूर्वा), अर्जुनी (उत्तरा) अर्जुनी।

४ तौल, माप

१ **तौल**— तौल के लिए तुला नहीं, खास आकार के बर्तनो का इस्तेमाल होता था, जैसा कि आज भी हिमालय मे और तामिलनाड मे सेई, माना पाथी आदि के रूप मे इस्तेमाल होता है। खारी और द्रेण बहुत पुराने नाप थे। बामदेव इसका उल्लेख करते है [18] (४।३२)—

"हम इन्द्र से जोडने वाले हजार (रथ) घोडे और सौ सोम की खरियाँ माँगते हैं।।१७।।'

द्रोण के बारे मे बुध सौम्य की ऋचा [19] (१०।१०१।७) को अभी* हम उद्धृत कर चुके हैं। यह दोनो ही भार-माप बडे हैं इनसे छोटे पसर या दूसरे माप भी रहे होगे।

*देखो पृष्ठ ११७-१८

माप मे अगुल का उल्लेख नारायण ने किया है [२०] (१० |६०)—

"वह सहस्र-शिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-चरण पुरुष भूमि का चारो तरफ घेर कर दस अगुल से अधिक होकर खडा हुआ ।।१।।"

अगुल और योजन के बीच मे हस्त और धनुष के माप आते हैं, जो उस समय रहे होगे, क्योकि योजना का उल्लेख कक्षीवान् ने [२१](१ |१२३) किया है—

उषा जैसी आज, वैसी ही कल वरुण के दीर्घ धाम का सेवन करती है। निर्दोष एक-एक उषा तुरन्त तीस योजन (तक जा) कार्य करती है।।८।" [२२](१० |८६ |२०) ऋचा मे भी योजना है।

५ सख्या

ऋग्वेद मे सख्या का अन्त अयुत (दस हजार) से किया गया है। उसके बाद उसी को दस, शत या सहस्र लगा कर बढाया जाता होगा। सख्या का उल्लेख ऋचाओ मे निम्न प्रकार हुआ है—

एक दो उभ (६ |३०)—

पराक्रम के लिए फिर से[२३] बढे अकेले जरा-रहित इन्द्र धन देते हैं।।१।।

"इन्द्र द्यौ और पृथिवी का अतिक्रमण करते हैं। उनका आधा ही उभै (दोनो) द्यौ और पृथिवी के बराबर है ।।१।।"

[२४](६ |२७)—

पार्थवो का सम्राट् अभ्यावर्ती चायमान धनवान् है। हे अग्नि, बधू-सहित रथ और बीस गाये यह दोनो मुझे प्रदान करे ।।८।।"

एक और दो—भरद्वाज[२५] (६ |४५)

"हे वृत्रहन्ता, तुम हम जैसो के एक और दो के रक्षक हो।।५।।"

प्रथम—वसिष्ठ [२६] (७ |४४)—

"तेज घोडो मे दीधिक्र (है, वह) प्रथम रथो के आगे होता है ।।१४।।"

तीन, चार सात, नौ, दस—गृत्समद [२७](२ |१८)

"तब नया प्रात हुआ चार जूआ (पत्थर) तीन कषा (स्वर) सात रश्मि (छन्द) वाले नवीन रथ (यज्ञ) को जोडा। दस पात्र (वाले) मनुष्य के लिए स्वर्गप्रद वह स्त्रियो और स्तुतियो द्वारा प्रसिद्ध हुआ।।१।।"

प्रथम, द्वितीय, तृतीय—गृत्समद [२८](२ |१८)

"वह यज्ञ इस इन्द्र के लिए प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवन मे पर्याप्त हुआ। वह मनुष्य के लिये लाने वाला है।।२।।"

चार—प्रतिरथ[२९] (५|४७)

चार (ऋत्विज) कल्याण-कामना से (हवि) धारण करते हैं, दस (दिशाये) गर्भस्थ सूर्य को प्रेरित करती है। तीन प्रकार की इसकी श्रेस्ठ किरणे सद्य द्यौ के अन्त तक विचरण करती है।।४।।"

पॉच—वसिष्ठ[३०] (७ |१५)

"जो युवा कवि गृहपति घर-घर मे पचजनो के सामने बैठता है।।२।।"

विश्वामित्र [३१] (३ |२७)

"हे शतक्रतु इन्द्र, पॉचो जनो मे जो तेरा इन्द्रत्व है, (इसलिए) उन्हे हम तुम्हारा समझते हैं ।।१६।।"

साठ, हजार,—वसिष्ठ [३२] (७ |१८)

गौ चाहनेवाले अनु और द्रुह्यु के साठ सौ छ हजार साठ और छ वीर सो गये । यह सब इन्द्र के वीर्य के काम है ।।१४।।'

सात—भरद्वाज[11] (६।७४)

'हे सोम-रुद्र असुर सम्बन्धी बल हने दो। यज्ञ तुम्हें प्राप्त हो। घर-घर मे सात रत्न धारण करते हमारे दोपायो और चौपायो के कल्याणकारी होओ ।।१।।'

आठ—हिरण्यस्तूप[11] (१।३५)

'पृथिवी की आठो (दिशाये) तीनो (धन्वों) सप्त सिन्धुओ को प्रकाशित किया। सुनहली आँखोंवाले सविता देव यजमान को श्रेष्ठ रत्न देने आये ।।८।।

नौ, नब्बे—वसिष्ठ[1] (७।१९)

'हे वज्रहस्त, तुम्हारे (पास) वह बल है कि तुमने तुरन्त नब्बे और नौ पुरो को नष्ट किया। रहने के लिए सौवीं को रक्खा वृत्र नमुचि को मारा ।।५।।

दस—गृत्समद[11] (२।१८) 'दश अरित्रवाली नाव' ।।१।।

ग्यारह—सूर्या[1] (१०।८५)

'हे वर्षक इन्द्र, इसे तुम सुपुत्रा सुभगा करो। इसमे दस पुत्र धारो और पति को ग्यारहवा करो ।।४५।।'

बारह—वामदेव[1] (१०।३३)

'बारह नक्षत्रों मे अगोपनीय सूर्य के आतिथ्य मे ऋभु प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं । सुखक्षेत्र करते, सिन्धुओ (नदियो) को बहाते मरुभूमि मे वनस्पतियो और नीचे की ओर जल को ले जाते है ।।७।।'

चौदह—सधि वैरूप[11] (१०।११४)

"इसकी चौदह दूसरी महिमाये हैं सात धीर उसे वाणी से सम्पादित करते हैं । (सर्वत्र) व्याप्त उस मार्ग को कौन कहे, जिससे कि छाने हुए सोम को पीते हैं ।।७।।

पन्द्रह—१५ सधि वैरूप[1] (१०।११४)

"हजार प्रकार के पन्द्रह हजार उक्थ हैं, जितनी द्यौ और पृथिवी (हैं) उतने ही वह भी (हैं)। हजार बार हजार (उसकी) महिमा है जितना ब्रह्म व्याप्त है उतनी ही वाणी ।।८।।"

अठारह—गृत्समद[1] (२।१८)—

'हे इन्द्र, बुलाये गये तुम दो, चार, छ, आठ, दस घोडो के साथ सोम पीने के लिए आओ। हे सुयज्ञ, यह सोम छना हुआ है। इसे खराब न करो ।।४।।'

२० ३० ४० ५०, ६०, ७० ८०, ९०—गृत्समद[1] (२।१८)

'हे इन्द्र सुन्दर रथवाले उत्तम गतिवाले बीस तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर घोडो जुते (रथ से) सोमपान के लिए आओ ।।५।।'

"अस्सी, नब्बे, सौ घोड़ों से वहन किये जाते आओ। हे इन्द्र, यह मस्ती के लिए सोम तुम्हारे वास्ते पात्रों मे रक्खा हुआ है ।।६।।

१०००, १००००—सोभरि[1] (८।२१)

'राजा (चित्र) अन्य राजाओं का सरस्वती के तीर पर मेघ जैसे वृष्टि द्वारा वैसे हजार और दस हजार (गौवे) देता है ।।१८।।"

उपर्युक्त गणनाओ के देखने से मालूम होता है, कि उसमे दशोत्तर—एकादश, द्वादश आदि—क्रम का अनुसरण किया गया था, दशिक सख्या सप्तसिन्धु के आर्यों को मालूम थी , लेकिन नाप-तौल मे उन्होने अपने से पहले वाले सिन्धु-उपत्यकावासी नागरिको का अनुसरण किया, जिसके कारण ही नाप-तौल को चार, सोलह आदि के क्रम से पीछे माना गया।

अध्याय १७
आर्य-नारी

ऋग्वेद से यह नहीं मालूम होता, कि सप्तसिन्धु की आर्य-स्त्रियो की स्थिति उतनी हीन थी, जितनी पीछे देखी गयी। यह ठीक है, अब वह सामन्तवादी व्यवस्था के अधीन थीं, जिसमें जन (पितृसत्ता के) अवस्था के अधिकार सुलभ नहीं थे। शुद्ध जन-व्यवस्था मे स्त्रियॉ हथियार लेकर लड सकती हैं। ईसा-पूर्व छठी शताब्दी मे मध्य-एशिया के शको मे ऐसा ही देखा जाता था, जहॉ घुमन्तू स्त्रियो ने कितनी ही बार हथियार उठाये। लेकिन, स्त्रियो का युद्ध मे जाना आर्य बुरा समझते थे। शम्बर के पहाडी लोग जन-अवस्था मे थे, उनके लिए स्वाभाविक था, कि दिवोदास के साथ उनका जो जीवन-मरण का सघर्ष चल रहा था, उसमे पुरुषो की तरह स्त्रियॉ भी शामिल हो। पर आर्य ऋषियो ने "अबला क्या करेगी" कह कर इसका उपहास किया था,* यह हम बतला आये है। इस प्रकार आर्य-स्त्रियो के सग्राम मे खुलकर भाग लेने की सम्भावना सप्तसिन्धु मे नही थी। वैसे अपवाद के तौर पर स्त्रियो ने कभी अपने हाथ दिखाये हो, तो दूसरी बात है।

युद्ध के बाद सबसे महत्त्व था ऋचाओ (पदो) की रचना का, जिसके कारण उन्हे ऋषि, ऋषिका कहा जाता। ऋषिकाओ की सख्या ऋग्वेद मे दो दर्जन से कम नहीं हैं। पर विश्लेषण करने पर उनमे से अधिकॉश को मानुषी नहीं कल्पित ही देखा जाता है। केवल घोषा और विश्ववारा को ही ऐतिहासिक ऋषि माना जा सकता है। ऋषिकाओ के नाम से जो ऋचाये ऋग्वेद मे सगृहित हैं, उनकी रचयित्रियॉ स्त्रियॉ ही रही होगी, यह कहना मुश्किल है। हॉ, इन ऋचाओ से ऋग्वेदिक आर्य-स्त्रियो के जीवन के बारे मे कितनी ही बातो का पता जरूर लगता है। इन कल्पित-अकल्पित ऋषिकाओ की कुछ सूक्तियॉ निम्न प्रकार है

१ **अदिति**—ऋग्वेद के दसवे मण्डल का ७२वॉ सूक्त वृहस्पति अथवा अदिति का बनाया बतलाया जाता है। इसमे अदिति का नाम* (१०।७२) आया है, शायद इसीलिए इसे अदिति का बनाया सूक्त कह दिया गया। अदिति (द्यौ) दक्ष की पुत्री कही गयी है, और दक्ष (सूर्य) को भी अदिति का पुत्र बतलाया गया है—

"उत्तानपद (वृक्ष) से भूमि उत्पन्न हुई, भूमि से दिशाये उत्पन्न हुई। अदिति से दक्ष, दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई ।।४।।"

"हे दक्ष, जो तेरी दुहिता अदिति है, उसने देवो को जन्म दिया। उसके पीछे महान् अमृतबन्धु (अमर) देव उत्पन्न हुए ।।५।।"

"शरीर से अदिति के जो आठ पुत्र उत्पन्न हुए। (उनमे से) सात के साथ वह देवताओ के पास गयी। (पर) मार्तण्ड को परे स्थापित कर दिया ।८।"

इसमे दिव्य अदिति (द्यौ) का वर्णन हैं वह सप्तसिन्धु की ऋषिका नहीं थी।

---

*पृष्ठ ५१

*मित्र, वरुण, धाता अर्यमा, अंश भग विवस्वान्, आदित्य

२ इन्द्र-मातायें—इन्द्र माताओ का सूक्त[1] (१०।१५३) भी इसी तरह कल्पित नाम से है। इस सूक्त मे इन्द्र के जन्म तथा वीरता का वर्णन है। असली ऋषिका नाम मालूम न होने पर इन्द्र को जन्म देनेवाली इन्द्र-माताओ को इसका रचयिता मान लिया गया। इसकी कुछ ऋचाये हैं—

'उत्पन्न इन्द्र के पास कार्य-तत्पर, सुन्दर-वीर्य अभिलाषिणी उपासना करती हैं ।१।"

"हे इन्द्र तुम सहस के बल से ओज से पैदा हुए। तुम कामनापूरक (वृष) हो ।२।"

'हे इन्द्र, ओज के साथ वज्र को तेज करते तुम (अपने) साथी अर्क (सूर्य) को दोनो बाँहो मे धारण करते हो।४।'

३ इन्द्राणी—यह भी कल्पित नाम है। इसकी ऋचाओ (१०।१४५) मे कहीं इन्द्राणी का नाम नहीं आया है। स्त्री को सौत से भय होना स्वाभाविक है। सपत्नी-बाधन के लिए यहाँ जडी-बूटियो के प्रयोग का उल्लेख है, जिसे हम मन्त्र-तन्त्र के प्रकरण मे* (अध्याय १५) बतला आये हैं। इन्द्राणी का एक और सूक्त[1] (१०।८६) मिलता है जिसमे इन्द्राणी के तेज का पता जरूर लगता है। घर मे वृषाकपि (अग्नि) के अधिक सम्मान को इन्द्राणी सह नहीं सकी इसलिए वह इन्द्र के सामने उसके प्रति रोष प्रकट करती है। इन्द्र ने ही आग मे घी डालते हुए आरभ किया—

"सोम छानने के लिए कहा था पर स्तोताओ ने देवेन्द्र की उस यज्ञ मे स्तुति नहीं की, जहाँ यज्ञ मे पुष्ट मेरा सखा आर्य (स्वामी) वृषाकपि (अग्नि) सतुष्ट हुआ। इन्द्र सबसे उत्तम है।।१।'

इन्द्राणी कहती हैं—'हे इन्द्र, तुम विचलित होकर वृषाकपि के पास दौडे जाते हो, अन्यत्र सोमपान के लिए नहीं जाते ।०।२।'

"क्या है जो तुम्हे इस पीले (हरे) मृग वृषाकपि ने (ऐसा) बना दिया, कि उसके लिए पुष्टिकारक धन तुम अर्य (स्वामी) देते हो ।०।३।

"हे इन्द्र जिस इस प्रिय वृषाकपि के तुम रक्षक हो। उसके कान मे वराह (को काटने) की चाहवाला कुत्ता काटे ०।४।"

मेरे लिए साफ की हुई तैयार प्रिय वस्तु को कपि ने दूषित कर दिया । इसके सिर को काट लो। इस दुष्कर्मा को सुख न होवे ।५।'

इन्द्र—"सुबाहु सुअगुलीवाली बडे बालो, मोटी जाँघोवाली हे शूर-पत्नी (इन्द्राणी,) तुम क्यो हमारे वृषाकपिपर क्रुद्ध हो ।८।'

इन्द्राणी—यह दुष्ट वृषाकपि मुझे अवीरपुत्रोवाली समझता हे। परन्तु मैं वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नी हूँ। मेरे सखा मरुत् हैं ।१।"

'हवन या युद्ध के समय नारी वहां पहले आती है। सत्य की विधाता वीरपुत्रा "इन्द्र-पत्नी की पूजा होती है।०।१०।"

इन्द्र—इन नारियो मे इन्द्राणी को मैंने सौभाग्यवती सुना है। दूसरो की तरह इसका पति बुढापे से नहीं मरता ।।११।।

"हे इन्द्राणी (अपने) मित्र (उस) वृषाकपि के बिना मैं नहीं खुश रह सकता जिसके द्वारा प्राप्त यह प्रिय हवि देवताओ के पास जाती है ।१२।"

"हे धनवती सुपुत्रा सुवधु का वृषाकपि-पत्नी इन्द्र तेरे बैलो को खा जाये, प्रिय हवि को भख जाये ०।१३।'

---

*देखो पृष्ठ ११५

"(भक्त) मेरे लिए पन्द्रह के साथ बीस (३५) बैलो को पकाते हैं, और मैं खाकर मोटा हूँ। मेरी दोनो कुक्षियो को (भक्तजन) पूर्ण करते हैं ०।१४।"

"हे वृषाकपि, मरुभूमि और काटने लायक जो वन हैं, कितने योजन हैं। आओ पासवाले उन गृहो मे ०।२०।"

वृषाकपि अग्नि है। अग्नि के मुख से ही इन्द्र हवि ग्रहण करता हैं, इसलिए वृषाकपि को वह अपना परममित्र माने, तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी कारण इन्द्राणी का वृषाकपि के ऊपर कोप था। देवताओ मे भी पारिवारिक कलह कितना था ?

४ **उर्वशी**—उर्वशी अप्सरा थी, जिससे पुरुरवा ने प्रेम किया। जैसे आज पजाब में हीर-रॉझा, सोहनी-महीवाल की प्रेम-कथाये प्रचलित हैं, उसी तरह उर्वशी और पुरुरवा की प्रेम-कथा सप्तसिधु मे उस समय प्रचलित थी। सम्भव है, वह मानुष प्रेमी और प्रेमिका रहे हो, जिन्हे मानव-देवी बना दिया गया। ऋग्वेद के इस प्रेम कथानकवाले सूक्त (१०।६५) को उर्वशी और पुरूरवा की रचना बतलाया गया है, जिससे यही मालूम होता है, कि असली रचयिता (लोककवि) का नाम विस्मृत हो गया था। उस को छोडकर जाती उर्वशी से प्रेमी पुरूरवा बहुत अनुनय-विनय करता है, उसे घोरा (चण्डी) कहता है, लेकिन, उर्वशी कुछ सुनने के लिए तैयार नहीं होती। वह यहॉ तक कह देती है, कि स्त्रियो मे प्रेम नही होता, उनके हृदय भेडियो के से हैं।[४] (१०।६५) १७वीं ऋचा मे वसिष्ठ का नाम आया है, जिससे सन्देह होता है, कि शायद वसिष्ठ ही इन ऋचाओ के कर्त्ता रहे हो[५] (१०६५)—

"अन्तरिक्ष को भरनेवाली लोको को नापनेवाली उर्वशी से मैं वसिष्ठ प्रार्थना करता हूँ। सुकृत-दाता (पुरूरवा) तुम्हारे पास रहे, लौटो, मेरा हृदय तप रहा है।।१७।"

यह सूक्त ऋग्वेद के उन सूक्तो मे है, जिन्हे उत्तम काव्य कहा जा सकता है। इसे हम पहले दे आये हैं।*

५ **घोषा कक्षीवान्-पुत्री**— दोनो अश्विनीकुमारो की प्रशसा मे घोषा ने दो सूक्त (१०।३९।४०) रचे हैं। पहले सूक्त मे उसने भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के ऊपर अश्विनी-कुमारो के किये गये उपकारो का उल्लेख किया है। ये व्यक्ति थे—तुग्र-सन्तान च्यवान[६] (१०।३९।५) विमद, शुन्ध्यु, पुरु-मित्र, बध्रीमती (७), पेदु (१०), शयु (१३), भृगु (१४)। घोषा अपनी सुन्दर रचना मे किसी भी ऋषि का मुकाबिला कर सकती है। वह कहती है[७] (१०।३९)—

"हे अश्विनी, सारी पृथिवी पर जानेवाला तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले यजमान प्रतिदिन प्रतिरात्रि और प्रतिउषा पुकारते है। तुम्हारे पिता के सुन्दर पुकारे जानेवाले नाम की तरह तुम्हारे (नाम का) हम सदा आह्वान करते हैं ।१।"

"हे अश्विनी, जैसे भृगु लोग रथ को गढते हैं, वैसे इस स्तोम (स्तुति) को तुम्हारे लिए मैंने बनायॉ पति के लिए जैसे बधू को अलकृत करते हैं वैसे ही मैंने मानो नित्य पुत्र और पौत्र को धारण करती इसे अलकृत किया ।१४।"

दूसरे[८] (१०।४०) सूक्त मे घोषा (५) कुत्स (६), भुज्यु-वशज सिजार-उशना (७), कृश सजु (८) का उल्लेख किया है। घोषा राजा की दुहिता थी, यह उसकी निम्न ऋचा[९] (१०।४०) से पता लगता है—

*देखो पृष्ठ ४७

हे अश्विनो, राजा की दुहिता घुमक्कड घोषा तुमसे बात करती है, हे नेताओ, (वह) तुमसे आज्ञा माँगती है। दिन हो या रात इस समय अश्व वाले रथी अर्बन् को तुम दमन करते हो ।४।"

अश्विद्वय से अपनी कामना प्रकट करती हुई घोषा वर माँगती है—

"मै उस बात को नहीं जानती, उसे तुम बतला दो, जिसे कि युवा और युवती घरो मे रहकर अनुभव करते हैं। मैं स्त्री-प्रिय सुपुष्ट वीर्यवान् तरुण के गृह मे जाऊँ, हे अश्विनो, (मेरी) यह (कामना) पूरी करो ।११।"

सप्तसिन्धु की आर्य कुमारियाँ क्या कामना करती थीं, यह घोषा के इस वचन से मालूम होता है। स्वस्थ प्रिय पति पाना उनके जीवन का लक्ष्य था। घोषा के पुत्र कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र एक बडे ऋषि थे, जिनकी ऋचाये ऋग्वेद के पहले मण्डल के दस सूक्तो मे मिलती हैं। कक्षीवान् के राजा होने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। घोषा का व्याह जिससे हुआ, उसका भी नाम नहीं पाया जाता। उसके पुत्र सुहस्त को माता के नाम से ही याद किया गया है। पुत्र ने भी माँ की तरह दोनो अश्विनी-कुमारो की प्रार्थना की है[१०] (१० ।४१ ।१-३)। घोषा चिरतक पिता के घर मे क्वाँरी बैठी रही[११] (१ ।११७ ।७)।

६ जुहू— यह भी कोई कल्पित नाम मालूम होता है। दसवे मण्डल मे जुहू का एक सूक्त (१० ।१०६) मिलता है। यद्यपि पीछे के लोगो ने जुहू को ब्रह्मवादिनी बतलाया है, पर यहाँ उसने ब्रह्म की कोई बात नहीं कही, और सिर्फ विश्वदेवो की स्तुति की। हाँ, उसने ब्रह्मचारी का उल्लेख जरूर किया है। इस सूक्त के बारे मे बतलाया जाता है, कि जुहू के पति बृहस्पति ने किसी कारण उसे त्याग दिया था, जिसके लिए समझा-बुझाकर, देवो ने उनको सीधे रास्ते मे लाने मे सफलता पाई। इसकी कुछ ऋचाओ से सप्तसिन्धु के दाम्पत्य-जीवन पर प्रकाश पडता है।[१२] (१० ।१०६)—

"उन प्रथमो ने कहा (ऐसा करने से) ब्रह्म-पाप लगा। फिर प्रथमजो (पूर्वजो)—सूर्य, वायु जल, उग्र सुखकर सोम और आप देवियो—ने सत्य के साथ प्रायश्चित कराया ।१।"

प्रथम सोमराज ने आकृष्ट हो ब्रह्म पत्नी को फिर से बृहस्पति को प्रदान किया। मित्र और वरुण ने उनका अनुगमन किया। होता अग्नि हाथ पकडकर उसे ले आया ।२।"

"इसका शरीर हाथ से ही पकडना चाहिए, यह ब्रह्मजाया है—(यह) उन्होने कहा। भेजे गये दूत के साथ इसने उसी तरह सम्पर्क नहीं किया, जैसे क्षत्रिय का रक्षित राष्ट्र ।३।"

'पुराने देवो और तपस्या मे बैठे उन सात ऋषियो ने कहा—भीमा पत्नी को ब्राह्मण के पास ले आये निकृष्ट (पत्नी) भी परमस्थान पर स्थापित होती है ।४।"

'बिना पत्नी के ब्रह्मचारी रह विचरता, वह (बृहस्पति) देवताओ का एक अग हो गया। सोम द्वारा लाई गयी पत्नी जुहू को जैसे देवो ने वैसे ही बृहस्पति ने प्राप्त किया ।५।"

"देवो ने फिर (उसे) प्रदान किया, ओर फिर मनुष्यो ने प्रदान किया। राजाओ ने (बात) सच्ची करते ब्रह्मपत्नी को प्रदान किया ।६।"

जहाँ तक ऋचाओ का सम्बन्ध है, इसमे जुहू अग्नि देवता की पत्नी मालूम होती है। सप्तसिन्धु के आर्यपुरुष अपनी पत्नी से अनबन कर बैठते होगे, फिर उनका पुनर्-मिलन कुछ इसी तरह होता होगा।

७ **दक्षिणा**— यह भी कल्पित नाम है। दक्षिणा को प्रजापति की पुत्री कहा जाता है। इसके सूक्त [१३] (१० ।१०७) मे दान-दक्षिणा की महिमा गायी गयी है—

माधवा (धनवान्) सूर्य का महान् तेज आविर्भूत हुआ, (उसने) इनको और सारे जीवो को अन्धकार से निर्मुक्त किया। पितरो द्वारा दी गयी बडी ज्योति आई। दक्षिणा का विस्तृत पख दिखाई पडा ।१।"

"दक्षिणावाले (दानी) ऊँचे द्योलोक मे स्थान पाते हैं, जो अश्व-दायक (हैं) वह सूर्य के साथ होते हैं। सोना-दायक अमरता को पाते हैं, वस्त्र-दायक सोम के पास जा आयु को प्राप्त होते हैं ।२।"

"देवो की पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। वे (देव) कजूसो को तृप्त नहीं करते। और दोष से डरनेवाले बहुतेरे जो नर दक्षिणा मे तत्पर हैं, (वह) तृप्ति को प्राप्त होते हैं ।३।"

"दक्षिणावान् (दानी) पहले बुलाया जाता है। दक्षिणावान् श्रेष्ठ ग्रामणी होता है। जो पहले दक्षिणा देता है, उसी को मैं जनो का नृपति मानता हूँ ।५।"

"यज्ञकर्त्ता सामगायक, उक्थ (स्तुति) बोलनेवाले उसी को ऋषि उसी को ब्रह्मा कहते हैं। जिसने पहले दक्षिणा से आराधना की, वह शुक्र (अग्नि) के तीनो शरीरो को जानता है, ।६।"

"दक्षिणा अश्व को, दक्षिणा गाय को देती है। दक्षिणा चन्द्र (चाँदी) और जो सोना है, उसे देती है। दक्षिणा अन्न को देती है, जो कि हमारा आत्मा है। आदमी जानते हुए दक्षिणा को कवच बनाता है ।७।"

"भोज (भोजन-दाता) न मरते, न दरिद्र होते, न क्लेश पाते हैं, न भोज व्यथित होते हैं। यह जो सारा भुवन और यह स्वर्ग है, सबको दक्षिणा उन्हे प्रदान करती है ।८।"

"भोज पहले ही सुरभि-मूल पाते हैं। भोज सुन्दर वस्त्रवाली बहू पाते हैं। भोज आन्तरिक पेय सुरा को पाते हैं। जो बिना बुलाये आते हैं, उन्हे भोज जीत लेते हैं ।९।"

"भोज के लिए (लोग) शीघ्रगामी अश्व सजाते हैं। भोज के लिए वह सुन्दरी कन्या है। भोज का यह घर पुष्कारिणी सा देव-विमान सा अद्भुत परिष्कृत है ।१०।"

दान की महिमा आर्यो मे बहुत थी। अतिथियो को अन्न-भोजन देने मे वह बडे उदार थे। हरेक सम्पत्तिशाली आर्य अपने घर को देव-विमान और पुष्करिणी सा देखना चाहता था ।

८. **निबावरी या सिकता**—इन्हे अत्रि-गोत्री ऋषिकाये बतलाया गया है, पर यह भी कल्पित नाम है, मूल रचयिता का नाम मालूम नहीं है। निवावरी ने अपनी ऋचाओं [१४] (९ ।८६) मे सोम की महिमा गाई है—

"विचक्षण सौ धारोवाला द्यौ का पति सोम शब्द करता कलश मे आता है। (वह) पीले वर्णवाला (हरि) कामवर्षक सिन्धु के मेषों के लोमो से छाना जाता मित्र के घरो में बैठता है।।११।"

'मेषलोम मे यह स्तुति-सहित छाना जाता तरगित (सोम) पक्षी जैसा चलता है। हे कवि इन्द्र, तुम्हारे कर्म से द्यौ और पृथिवी के बीच शुचि सोम स्तुति द्वारा पूत होता है ।१३।"

"द्यौ-चुम्बी अन्तरिक्ष-पूरक भूवनो में अर्पित यजनीय द्रापि पहने, स्वर्ग में उत्पन्न (सोम) आकाश से चलता , इसके पुराने पितर (इन्द्र) की सेवा करता है ।१४।"

सूक्त मे कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे कहा जा सके, कि इसकी कवयित्री कोई स्त्री थी।

६ यमी वैवस्वती—यह भी कल्पित नाम है। विवस्वान् की पुत्री कोई यमी थी। उसने अपने भाई यम से प्यार करना चाहा। इसी बात को यम और यमी के सवाद के रूप मे यहॉं" (१० ।१०) बतलाया गया है।

यमी कहती है—"विस्तृत समुद्र मे पहुँची इस स्थान मे मैं सखी हो तुम्हे सखा चाहती हूँ। विधाता ने ध्यान करते पृथिवी पर पिता के श्रेष्ठ नाती को बनाये रक्खा ।१।"

यम ने उत्तर दिया—"(मैं) तेरा सखा इस सख्य (प्रेम) को नहीं चाहता क्योकि तू सहोदरा होने से इसके अयोग्य है। विस्तृत द्यो के धारण करनेवाले असुर (परमदेव) के वीर महापुत्र चारो ओर (हमे) देख रहे हैं ।२।

यमी—'वे अमर लोग इसे चाहते हैं चाहे यह एक मर्त्य के लिए उचित न (भी) हो। मेरे विषय मे तू मन धारण कर हमारे होनेवाले (पुत्र को) उत्पन्न करने के लिए मेरे शरीर मे प्रवेश कर ।३।

यम—'जिसे हमने पहले कभी नहीं किया (उसे) सत्यवादी होते उत्पादक केसे हम झूठा करेगे। पानी के गधर्व जलवाली वह योषा हमारी नाभि, परम है। सो हम दोनो सहोदर हैं।४।"

यमी—"यम के प्रति मुझ यमी की कामना है, एक स्थान पर साथ सोने के लिए (हो) आई मैं पति के लिये जाया की तरह शरीर खोलती हूँ। रथ के बडे चक्र की तरह हम (दोनो) प्यार करे ।७।

यम—'आगे वह युग आयेगे (जब) भगिनियॉं अ-भगिनी का काम करेगी । (किसी) दूसरे वृषभ (सड-मुसड) की बाहु का आलिगन करो। हे सुभगे, मुझसे अन्य को (अपना) पति बनाओ।१०।'

यमी—"भाई के होते यदि बहिन अनाथ होवे तो वह भाई ही क्या ? वह बहिन क्या, जो दु ख पाये। कामवश हो मैं बहुत कह रही हूँ, (अपने) शरीर से मेरे शरीर को तृप्त करो।११।'

यम—"मैं शरीर से तेरे शरीर को नहीं स्पर्श करता बहिन के (साथ) अभिगमन को पाप कहते हैं। मुझसे भिन्न से तू प्रमोद प्राप्त कर। हे सुभगे, तेरा भाई यह नहीं (करना) चाहता।१२।"

यमी—"तुझे यम, अफसोस है मैं तेरे मन और हृदय को नहीं समझ सकती । वृक्ष को लता की तरह (या) रस्सी की तरह मिलकर दूसरी स्त्री (या) तेरा आलिगन करती है ।१३।"

यम—'हे यमी दूसरे की कामना करो, दूसरा (कोई) तुझे वृक्ष को लता की तरह आलिगन करे। उसके मन को तू चाहे या वह तुझे, मगलमय सयोग तुझ से करे ।१४।'

यम-यमी की इन उक्तियो से दो तरुण हृदयो के प्रेमालाप का दिग्दर्शन होता है, और साथ ही यह भी कि आर्यो मे भाई-बहन का व्याह निषिद्ध माना जाता था। बुद्ध-वचनो मे इक्ष्वाकु के जैसे सम्भ्रात उच्च वश मे, कम से कम आपत्काल मे भाई-बहिन के व्याह का उल्लेख आता है। इक्ष्वाकु के चार पुत्रो ने बहिनों से शादी करके अपने कुल को चलाया, जो शाक्य-कुल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इक्ष्वाकु के ही दासीपुत्र, किन्तु पीछे महान् ऋषि कृष्ण ने भी अपनी सौतेली बहिन से व्याह किया।[1] जातको मे राम और सीता के व्याह को भी बहिन-भाई का व्याह बतलाया गया है।[2] इनसे यह मालूम होता है, कि चाहे अतिप्राचीन काल मे बहिन भाइयो का व्याह होता था। थाई भूमि के राज-वश मे अब भी यह होता है। ईरान के सासानी राजवश मे भी इसे देखा जाता था और मिस्र के फरवा भी रक्त को शुद्ध रखने के लिए ऐसा करते थे। यम-यमी के इस सवाद से यह जरूर मालूम होता है, कि इसे सप्तसिन्धु के आर्य ठीक नहीं मानते थे।

---

[1]दीघनिकाय अस्सलायण सुत [2]दसरथ जातक

यमी वैवस्वती का एक और सूक्त[६] (१० ।१५४) मिलता है, जिसकी भाषा बहुत नवीन मालूम होती है। इसमे प्रेत के बारे मे कहा गया है—

"किन्हीं (पितरो) के लिए सोम छाना जाता है, कोई घृत का सेवन करते हैं । हे देवापि (प्रेत), उनके पस तुम जाओ जिनके लिए मधु बहता है, ।१।"

"तपस्या के कारण जो दुर्घर्ष हैं, तपस्या से जो स्वर्ग गये जिन्होने महान् तपस्या की, हे देवापि (प्रेत), तुम उनके पास जाओ ।२।"

"जो युद्ध मे लडते हैं, जो शूर वहॉ शरीर छोडते हैं, और जो सहस्रो दक्षिणा देते हैं, हे देवापि, तुम उनके पास जाओ ।३।"

वैदिक आर्य यम को मृत्यु का देवता समझते यह मानते थे, कि पितर उनके पास जाते हैं। उसी यम और मृत्यु की बातो को यमी के इस सूक्त मे बतलाया गया है।

१० **रात्रि**—भारद्वाजी रात्रि भी कल्पित ऋषिका है। रात्रि का वर्णन इस सूक्त[७] (१० ।१२७) मे आया है। दूसरी परम्परा के अनुसार सोभरि-पुत्र कुशिक (विश्वामित्र के वश-स्थापक) इसके ऋषि माने गये है। गायत्री छद होने से यह गाने की ऋचाये हैं ?

"देव रात्रि चारो ओर आकर प्रकट हुई उसने नक्षत्रो द्वारा सारी शोभा को धारण किया।।१।।"

"देवी ने आते समय अपनी बहिन उषा को ग्रहण किया। उसने तम को हटाया ।।३।।"

'ग्राम चुप हैं बटोही चुप हैं, पक्षी चुप हैं, इच्छावाले बाज चुप हैं ।।५।।"

"हमे (चारो ओर) काला अन्धकार दिखाई दे रहा है, वह स्पष्ट मौजूद है। हे उषा, ऋण की तरह तुम उसे हटाओ ।।७।।"

११ **लोपामुद्रा**—यह वसिष्ठ के भाई अगस्त्य की पत्नी थीं। पति-वियोग सहन करने मे असमर्थ लोपामुद्रा का अगस्त्य के साथ का सवाद निम्न प्रकार[८] (१ ।१७६) है—

(लोपामुद्रा)—पहिले (बीते) वर्षो बुढापा लानेवाली उषाओ को दिन-रात सहती रही। बुढापा शरीर शोभा को नष्ट करता है। फिर ऐसी पत्नी के पास पति क्यो जाये? ।।१।।

'जो पुराने सत्यपालक थे, देवो के साथ सच्ची बाते करते थे। वह अन्त न पा पडे रहे। फिर" ।।२।।

(अगस्त्य)— 'हम व्यर्थ नहीं थके, देव लोग हमारी रक्षा करते हैं। हम सारे भोगो को पा सकते हैं यदि ठीक से दोनो चाहे, तो यहॉ सैकडो ले सकते ।।३।।"

काम को मैने रोका है, पर यहॉ-वहॉ-कहीं से वह आ जाता है। अधीरा कामिनी लोपामुद्रा धीर उसास लेते पति का सगम करती है ।।४।।"

१२ **वसुक्र-पत्नी**—इन्द्र के पुत्र वसुक्र की पत्नी के नाम से एक सूक्त[९] (१० ।२८) मिलता है, जिसके वसुक्र-पत्नी तथा इन्द्र की बाते आती हैं। वसुक्र-पत्नी कहती है—

"दूसरे सारे देवता आये, मेरे ससुर यहॉ नहीं आये। यदि आते तो वह भुना दाना खाते, और सोम पीते। अच्छी तरह खाकर पुन अपने घर जाते।।१।।"

इस सूक्त का ऋषि वसुक्र भी बतलाया गया है। इन्द्र ही नहीं सप्तसिन्धु के आर्य भी भुने जौ का खाना और सोम का पीना बहुत पसन्द करते थे। "यदन्न पुरुषो ह्यत्ति तदन्न तस्य देवता" (जो भोजन आदमी खाता है, वही उसका देवता भी)।

१३ **वाक्**—अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् भी कल्पित नाम है। यहॉ वाक् (वाणी) देवी की महिमा वर्णन की गयी है[१०] (१० ।१२५)—

'रुद्रो, वसुओ के साथ आदित्यो और सारे देवो के साथ मैं विचरण करती हूँ, मैं मित्र और वरुण दोनो को धारण करती हूँ। मैं इन्द्र-अग्नि और दोनो अश्विनो को धारण करती हू ।।१।'

"देवताओ ओर मनुष्यो से सेवित इस बात को मैं स्वय ही कहती हूँ—जिसे मैं चाहती हूँ, उसे उग्र बनाती हूँ, उसे ब्रह्मा उसे ऋषि, उसे सुमेध बनाती हूँ ।।५।।"

१४ विवृहा—कश्यप-गोत्री यह ऋषिका भी कल्पित है। इसने यक्ष्मा के विनाश के बारे मे टोटका-टोने की बात कही है, जिसे हम रोग के प्रकरण मे उद्धृत कर चुके हैं[1]।"(१।१६३।१०२)

१५ विश्पला—यह ऋषिका नहीं है, पर इसके ऊपर अश्विनो के उपकार करने का उल्लेख मिलता है" (१।१८२)—

'हे मनीषियो यह मन मे होता है अश्विनो का तृप्तिकारक सुखद रथ आया है, वह सुकर्मा शुचिव्रत द्यो के नाती हैं। उन्होने विश्पला का भला किया ।।१।।

१६ विश्ववारा— घोषा की तरह यही एक और महिला है, जिसे ऐतिहासिक कहा जा सकता है। विश्वसारा अत्रि-गोत्र मे उत्पन्न हुई। इसने अपने सूक्त" (५।२८) मे त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और गायत्री छन्दो मे अग्नि की महिमा गाते अपना नाम भी दिया है—

'प्रज्वलित अग्नि द्यौलोक मे किरणो को फैलाता है, उषा के सामने विस्तृत होकर शोभा देता है। हवि-सहित श्रुवा को लेकर नमस्कार के साथ देवो को पूजती विश्ववारा पूर्व की दिशा की ओर जाती है ।।१।।'

'हे अग्नि महान् सौभाग्य के लिए तुम्हारे प्रकाश उत्तम हो, (तुम) शत्रुओ को नाश करो। दाम्पत्य (सवध) को तुम सुनियमित करो, शत्रुता करनेवालो के तेज को नष्ट करो।।३।।

१७ शची—पौलोमी शची भी कल्पित नाम है। पुराणो से हमे मालूम है कि इन्द्र—पत्नी का नाम शची था, जो असुर पुलोमा की पुत्री थी। इस सूक्त" (१०।१५६) मे एक सतुष्ट शक्तिशाली महिला अभिमान के साथ अपनी स्थिति का वर्णन करती है—

'वह सूर्य उगा, मानो यह मेरा भाग्य उगाँ मैंने सौतो को परास्त किया, पति को अपने बस मे कर लिया ।।१।।'

'मैं केतु (ध्वज) हूँ, मैं मस्तक हूँ। मैं उग्र, सुन्दर बोलनेवाली हूँ। पति मेरे मत के अनुसार चलता है।।२।।'

"मेरे पुत्र शत्रुहन्ता है, और मेरी दुहिता शोभायमाना हे। मैं खूब जीतने वाली हूँ, पति के पास मेरी उत्तम प्रशसा होती है।।३।।"

१८ शश्वती—अगिरा-गोत्री यह ऋषिका भी कल्पित मालूम होती है । इसके नाम का एक मन्त्र" (८।१।३४) मिलता है जिसमे अश्लील रति की बाते कही गयी हैं।

१६ सिखडिनी काश्यपीं—यह भी कल्पित नाम है। इसके सूक्त"(६।१०४) को कश्यप-पुत्र पर्वत और नारद की भी कृति बतलाया जाता हे। इस सूक्त मे सोम (भाँग) की महिमा गाई गयी है, जिसम कोई विशेषता नहीं है।

२० श्रद्धा कमायनी—यह भी कल्पित नाम है। इसके सूक्त" (१०।१५१) मे श्रद्धा की महिमा गाई गई है—

'श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित होती है, श्रद्धा से हवि होम की जाती है। ऐश्वर्य के सिरपर रहनेवाली श्रद्धाको मैं वाणी से बतलाती हूँ।।१।।'

'हे श्रद्धे दाता का प्रिय करो। हे श्रद्धे देने की इच्छावाले का प्रिय करो। भोज देने वाले (भोजो) मे प्रिय करो। यज्ञ करनेवालो के प्रति इस मेरे कथन को करो।।२।।'

---

[1] देखो पृष्ठ ८२-३

"जैसे देवताओ मे उग्र असुरो ने श्रद्धा की, ऐसे ही भोजो और यज्ञकर्त्ताओ मे हमारे कहे को करो ।।३।।"

२१ **सरमा**—सरमा देवो की कुतिया मानी जाती है। सप्तसिन्धु के आर्यो की निर्लज्ज लूट की कामना को सरमा ने किस तरह पणिया के सामने व्यक्त किया, इसे हम बतला चुके हैं* (ऋग् १० ।१०८),

२२ **सार्पराज्ञी**—यह भी कल्पित नाम है। इसके सूक्त[३८] (१० ।१६६) को कक्षीवान् के पुत्र शबर ऋषिका भी बतलाया जाता है। इस सूक्त मे गाय का वर्णन है—

"सुखमय वायु गायो के पास बहे। वह बलदायक वनस्पतियो को खाये। बलदायक बहुत सा जल पीये। हे रुद्र, रक्षावाली पैरोवाली गायो को सुखी रक्खो।।१।।"

"जो गाये अपने शरीर को देवो के लिए देती हैं, जिनके सारे रूपो को सोम जानता है। सन्तानवाली हमे दूध से परिपूर्ण करती उन गायो की गोष्ठ मे लाओ।।३।।"

२३ **सिकता**—यह भी कल्पित नाम है। निवावरी के साथ इसकी बनाई ऋचाये (६ ।८६ ।११–२०)[Φ] मिलती हैं, जिनमे सोम का वर्णन किया गया है। निवावरी के प्रकरण मे ऋचाये आ गई हैं ।

२४ **सुदेवी**—सुदास की पटरानी का उल्लेख एक ऋचा[२९] (१ ।११२ ।१९) मे मिलता है।

२५ **सूर्या**—यह भी कल्पित नाम है। सूर्या को सविता (सूर्य) की पुत्री या पत्नी कहा गया है। चाहे कल्पित नाम से ही यह सूक्त[३०](१० ।८५) सग्रह किया गया हो, पर इसमे आर्य-पत्नी के सम्बन्ध मे बहुत सी बाते आई है। इस सूक्त मे मत्रो को आज भी विवाह के समय पढा जाता है। सूर्या ने अपनी ऋचाओ मे कहा है—

"सत्य द्वारा भूमि थामी गयी है। सूर्य द्वारा द्यौ थामा गया है। सत्य द्वारा देव आदित्य द्यौ मे सोम स्थित है।।१।।"

"सोम से आदित्य बली हैं, सोम से पृथिवी महान् है । इन नक्षत्रो के पास सोम रक्खा गया है ।।२।।"

इसके बाद सूर्या कहती है—

"रैमी (ऋचाये) (बधू के साथ) अनुदान की जानेवाली सखी थी, नाराशशी (ऋचाये) बहू की दासी थीं। सूर्या का बढिया वस्त्र गाथा से परिष्कृत था ।।६।।"

'जब सूर्या पति के पास गयी, तो चिन्तन चादर (उपबर्हण) था, चक्षु अजन था, द्यौलोक और भूमि (उसका) खजाना था ।।७।।"

"स्तोम (स्तुति के मन्त्र) धुर थे, कुरीर छन्द उसका ओपश (शिरोभूषण) था । सूर्या के वर अश्विद्वय थे, अग्नि आगे जानेवाला दूत (घटक) था ।।८।।"

"सोम व्याह-इच्छुक था, अश्विद्वय वर थे। पति की कामना करनेवाली सूर्या को सविता ने (अपने) मन से अश्विनो को दिया ।।९।।"

"जब सूर्या घर को चली, तो मन इसका शकट था, और द्यौ छत (ओहार) थी, दोनो शुक्र दो बैल थे ।।१०।।"

"जाते समय धुरे मे फैले चक्के शुचि थे। पति के पास जाती सूर्या मनोमय रथपर चढी।।१२।।"

*देखो पृष्ठ ४१–४२

Φदेखो पृष्ठ १२६

'जिस उपवर्हण (चादर) को सविता ने प्रदान किया था, वह सूर्या के आगे-आगे चला। मघा नक्षत्रो मे बैलो को हॉका गया, अर्जनी (पूर्वा-उत्तरा फाल्गुनी) मे (सूर्या) ले जाई गयी।।१३।।'

"हे सूर्ये नाना रूप सुनहले सुआच्छादित सुरग सेमल के सुन्दर चक्रवाले रथ पर चढ। जाकर पति के लिए सुखमय अमृत लोक बना।।२०।।"

"विश्वावसु (सारे वसुओ) को नमस्कारपूर्वक वाणी से मैं प्रार्थना करता हूँ, तुम यहॉ से उठो, यह पतिवती है। तुम पिता के घर मे बैठी दूसरी प्रसिद्ध कन्या की कामना करो, (जो) वह तुम्हारे भाग्य से जनी है उसे ढूँढो।।२१।।"

'पूषन्, तुझे हाथ मे पकड कर यहॉ से ले जाये। दोनो अश्विन रथद्वारा तुझे ले जाये। घरो मे जा वशवाली गृहपत्नी हो घर की व्यवस्था कर।।२६।।"

यह सुमगली बधू है, आकर इसे तुम देख लो । इसको सौभाग्य प्रदान कर (देवगण) अपने-अपने घरो को जाये ।।३३।।"

'सौभाग्य के लिए तेरे हाथ को मैं ग्रहण करता हूँ। तू मुझ पति के साथ जरा अवस्था तक बनी रह भग अर्यमा, सविता, पुरन्धि देवो ने तुझे गृहपति धर्म के लिए मुझे प्रदान किया।३६।।

'दोनो (पति-पत्नी) यहीं रहे, न बिछुड, सारी आयु को प्राप्त करे। पुत्र और नातियो के साथ खेलते अपने घर मे प्रमुदित रहे ।।४२।।"

"हे इन्द्र, सिचन समर्थ हो इस (बधू) को सुपुत्रा सुभगा बनाओ। इसमे दस पुत्रो को धारण करो, (और) पति को ग्यारहवॉ बनाओ ।।४५।।"

"हे बधू, तू ससुर पर सम्राज्ञी हो, सास पर सम्राज्ञी हो। ननद पर सम्राज्ञी हो, देवरो पर सम्राज्ञी हो।।४६।।"

यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेद की ऋषिकाओ की सख्या चाहे दो दर्जन हो, पर उनमे ऐतिहासिक घोषा और विश्ववारा ही हैं। स्त्री का स्थान उस काल मे काफी ऊँचा था, पर पुरुष के समान नहीं था, यह इन ऋचाओ से मालूम होता है। सास-ससुर, ननद-देवर पर शासन करने की कामना नारी को होती थी और सौत उसके सिरदर्द का सबसे बडा कारण थी।

अध्याय १८
भाषा और काव्य
१ भाषा

शौनक की अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद मे १०४१४ मन्त्र, १,५३८,२६ शब्द, ४,३२,००० अक्षर हैं। ऋचाओ की सख्या गिनने पर उन्हे १०४६७ पाया गया। ऋग्वेद का दो प्रकार से विभाजन है, एक मे मण्डल, सूक्त और ऋचा के क्रम को रक्खा गया है। ऋग्वेद मे १० मण्डल, १०१४७ सूक्त और १०४१४ मन्त्र हैं। अष्टक, अध्याय और सूक्त के अनुसार दूसरी गणना होती है, जिसके अनुसार ऋग्वेद मे ८ अष्टक, ६४ अध्याय और १०१७ सूक्त हैं। मण्डल, अनुवाक और वर्ग के अनुसार गणना करने पर ऋग्वेद मे १० मण्डल, ८५ अनुवाक और २००८ वर्ग (बालखिल्य के १६ सूक्तो को छोडकर) पाये जाते हैं। आजकल सबसे अधिक प्रचलित गाना मण्डल, सूक्त और ऋचा के क्रम से है।

भिन्न-भिन्न मण्डलो की भाषा देखने से पता लगता है, कि सभी की भाषा एक समान नहीं है। यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदिक आर्य हिन्दू-यूरोपीय वश की उस शाखा के अतर्गत हैं, जिसमे ईरानी और शक-स्लाव आते हैं, और जिसे शतम्-शाखा कहा जाता है। शतम्-शाखा की कोई जाति टवर्ग नहीं बोल सकती। इसलिए सप्तसिन्धु मे आनेवाले आर्य टवर्ग (मूर्धन्यवर्ण) नहीं बोल सकते थे, यह निश्चित है। ऋग्वेद मे यद्यपि आदि मे टवर्गीय अक्षर रखनेवाला कोई शब्द नहीं मिलता, पर मूर्धन्य वर्ण का प्रयोग जरूर मिलता है। यह टवर्ग कब से आर्यो मे प्रचलित हुआ? निश्चय ही सप्तसिन्धु की प्राचीन जाति के घनिष्ट सम्पर्क से ही उच्चारण मे यह परिवर्तन आया। आज भी द्रविड भाषाओ मे ट वर्ग की प्रचुरता उत्तरी भारत के कानो को खटकती है। सप्तसिन्धु मे आने के तीन सौ वर्ष बाद ऋग्वेद के महान् ऋषि हुए। वह टवर्ग बोलते थे, यह कहना आसान नहीं है, क्योकि शताब्दियो तक ऋचाये लिपिबद्ध नहीं हो कठस्थ रक्खी गयी थीं। मूल पालि त्रिपिटक (बुद्ध सूक्त) मागधी-कोसली भाषा मे रहे, जिसमे ल और श अक्षरो का प्राचुर्य एव र तथा स अक्षरो का बहुत कुछ अभाव सा था। पर वर्तमान पालि त्रिपिटक मे मागधी के इन विशेष अक्षरो का बायकाट सा देखा जाता है—श का तो बिल्कुल ही प्रयोग नहीं होता। इस परिवर्तन का कारण यही था, कि शताब्दियो तक बुद्ध के सूक्त मागधीभाषियो के नहीं, बल्कि पश्चिमी भाषाभाषियो—विशेषकर लाट-गुजरात से गये उपनिवेशिको—के मुख मे रहे, जिनके कारण यह परिवर्तन हुआ। इसे देख हम नहीं कह सकते, कि ऋचाओ के रचने और उनके लिपिबद्ध होने के समय के बीच मे अक्षरो का परिवर्तन नहीं हुआ होगा। वैदिक भाषा के प्रकाण्ड विद्वान डॉ० बटेकृष्ण घोष ने ऋग्वेद के अक्षरो और उनके उच्चारण पर सूक्ष्म विवेचन किया है। मूर्धन्य वर्णो का प्रचार आर्यो की भाषा मे भारत मे आने पर हुआ। डॉ० घोष र की अपेक्षा ल की प्रचुरता को आर्यो के भारत मे पूर्व की ओर बढने का प्रभाव बतलाते हैं। पर, र की जगह ल के

प्रयोग स्लाव भाषाओ मे भी बहुत आते हैं। इसलिए हमे मानना पडेगा, कि जहॉ तक र और ल के प्राचुर्य का सवाल है, वह शतम्-वश की दूसरी शाखाओ मे भी देखा जाता है।

डॉ० घोष इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं,* कि जहॉ तक भाषा का सवाल है, ऋग्वेद के पहले नौ मण्डलो की भाषा एक सी है। दसवे मण्डल की भाषा मे जरूर परिवर्त्तन है। दसवे मण्डल मे भी कितनी ही ऋचाओ और सूक्तो की भाषा पुरानी दीख पडती है, साथ ही बाकी मण्डलो मे कितनो ही की भाषा मे नवीनता पाई जाती है। तो भी यह मानने मे आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि पहले नौ मण्डलो की भाषा प्राय पुरानी है। इन नौ मण्डलो मे भी यदि ऋषियो के काल-क्रम को देखे, तो पहले भरद्वाज का मण्डल (छठॉ), फिर वसिष्ठ का (सातवॉ), फिर विश्वामित्र का (तीसरा), फिर वामदेव का (चौथा) आता है। यह भाषा-भेद भरद्वाज[1] (६।१।१२) और रक्षोहा की ऋचाओ[2] (१०।१६२।१-२) की तुलना से मालूम हो सकता है।

वेद की भाषा अपेक्षाकृत बहुत पुरानी ताम्र-युग के समाज की भाषा है, विकास मे वहॉ नहीं पहुँची थी, जहॉ कि पालि प्राकृत, अपभ्रश और हमारी भाषाये आधुनिक काल मे पहुँची। इस प्रकार उसे अपरिचित और दुरूह शब्दोंवाली भाषा कहा जा सकता है, लेकिन जहॉ तक भाषा की प्रकृति का सम्बन्ध है, उसे सरल होना चाहिये। किन्हीं-किन्हीं बातो मे वह सरल है भी। उसे हम पाणिनीय सस्कृत की पृष्ठभूमि मे रखकर पढना चाहते हैं, इसलिये हरेक पाणिनीय नियम के अपवादो की सख्या देखकर हम समझते हैं, कि वैदिक भाषा की प्रकृति अधिक क्लिष्ट है। यदि वेद की भाषा को वैदिक उदाहरणो अर्थात् वैदिक पाठमालाओ के सहारे पढा जाये, तो वह जरूर सरल मालूम होगी। भाषा के ज्यादा सरल होने का मतलब सदिग्ध होना भी है। चीनी भाषा दुनिया की अत्यन्त सरल भाषा है—यहॉ उसकी लिपि से हमे कोई मतलब नहीं, जो निश्चय ही बहुत कठिन है। चीनी भाषा के पूर्ण व्याकरण के लिखने के लिए शायद पॉच-छ पृष्ठो की भी आवश्यकता नहीं होगी, पर इसके सन्देह होने की भी गुजाइश है। क्रियाओ मे वचन और काल पुरुष का कोई पता नहीं। बोलते वक्त स्वरो के आरोहावरोह से सदिग्ध को असदिग्ध बनाने की कोशिश की जाती है। वैदिक भाषा मे एक ही क्रिया के काल को न निश्चित करके पाठक को मजबूर किया जाता है, कि वह प्रकरण से उसका अर्थ निकाले। भवाति का अर्थ है और होवे दोनो हो सकता है। वैदिक भाषा के ऐसे अनिश्चित और अपवादपूर्ण क्रियापदो को लोट लकार मे जमा कर दिया गया है। इस प्रकार वेदिक भाषा की कठिनाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। पर, यदि सस्कृत के द्वारा नहीं, बल्कि ऋचाओ मे आये व्याकरण और उसके प्रयोगो द्वारा सिखलाया जाये, तो यह भाषा उतनी कठिन नहीं मालूम होगी।

जहॉ तक शब्दो का सबध है ऋग्वेद मे कितने ही शब्द दूसरे अर्थो मे प्रयुक्त होते हैं। कारु काम करने वाले को कहना चाहिये, लेकिन ऋग्वेद मे कारु कवि को कहते हैं, जो ऋचाये बनाता है। इसी तरह के दूसरे भी शव्द वहॉ मिलते हैं।

सन्धियो के नियमो को भी वेद मे उतना पालन नहीं किया गया, स्वर के बाद स्वर आने पर उसे ज्यो का त्यो रहने दिया जाता है।

२ छन्द

ऋक् का अर्थ ही है पद्य। सारा ऋग्वेद पद्य-बद्ध है। सात छन्द प्रसिद्ध माने जाते हैं, पर छन्दो की सख्या और अधिक है। यज्ञ ऋषि की ऋचाओ[3] (१०।१३०।३-५) मे गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप बृहती, विराट् त्रिष्टुप्, जगती इन सात छन्दों का उल्लेख है। यही मूल छन्द भी है। यह हम बतला चुके है कि गाने के लिए गायत्री छन्द सबसे अधिक प्रचलित था।

*The Vedic Age, pp 33-40

सोमपान के समय हरेक पीनेवाले का कण्ठ खुल जाता था, जैसे आज भी मद्य पीते समय देखा जाता है। ऋग्वेद का नवॉ मण्डल सोम मण्डल है, जिसमे सौ से ऊपर ऋषियो ने सोम के गुणो का गान किया है। इस मण्डल की बहुत अधिक ऋचाये गायत्री छन्द मे हैं। गायत्री छन्द के गाने को गायत्र साम कहा जाता है।

ऋग्वेद के १०४१४ मन्त्रो मे छन्द हैं—

१ गायत्री	२४६७	११ अष्टि	६
२ उष्णिक्	३४१	१२ अत्यष्टि	८४
३ अनुष्टुप्	८५५	१३ धृति	२
४ वृहती	१८१	१४ अतिधृति	१
५ त्रिष्टुप	४२५३	१५ एकपाद वाले	६
६ पक्ति	३१२	१६ दोपाद वाले	१७
७ जगती	१३४८	१७ प्रगाथ बार्हत	१६४
८ अतिजगती	१७	१८ ककुभ	५५
६ शाक्वरी	१६	१६ महाबार्हत	२५७
१० अतिशाक्वरी	६		

इनके देखने से मालूम होता है, कि ३०० से अधिक बार आनेवाले छन्द गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पक्ति, त्रिष्टुप् और जगती हैं। इनमे भी सबसे अधिक उपयुक्त होनेवाला छन्द त्रिष्टुप् है, जिसके बाद दूसरा नम्बर गायत्री का तीसरा जगती का और चौथा अनुष्टुप् का। पीछे अनुष्टुप् सस्कृत मे बहुत प्रयुक्त हुआ है। गायत्री मे गान के लिए अन्तिम पाद को दोहराना आवश्यक था, इस प्रकार वह भी अनुष्टुप् बन जाता था। दोनो को एक कर देने पर अनुष्टुपो की सख्या ३३२२ हो जाती है।

३ रचना

१ **वाणी**—पद्यबद्ध रचना को कहते थे, जैसा कि वसिष्ठ[४] (७।३१) ने कहा है—

"सबके राजा निष्क्रोध इन्द्र की वाणियॉ शत्रुओ को निरस्त्र करने के लिए हैं।।१२।।"

२ **सूक्त**—वसिष्ठ सूक्त का भी उल्लेख किया है[५] (७।२६)—

"हे मधवन् इन्द्र, जो सूक्तो द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, सो तुम्हारा अलकार है।।३।।"

[६](७।५८।६)—"मरुत् इस सूक्त का सेवन करे।"

३ **श्लोक**—श्लोक का भी उल्लेख ऋग्वेद मे मिलता है, लेकिन इसका अर्थ वही है, जो पुण्यश्लोक मे आता है, अर्थात् श्लोक का अर्थ प्रशसा या कीर्ति है। कण्व ने कहा है[७](१।३८।१४)—

"मुख मे श्लोक बनाओ, मेघ की तरह फैलाओ, उक्थ्य गायत्र को गाओ।"

४ **साम**—साम गीति को कहते थे। ऋग्वेद की ही बहुत सी ऋचाओ का गान के साथ जो सग्रह है, उसी को सामवेद कहते हैं। सारे सामवेद मे सौ से कम ही ऐसे मन्त्र हैं, जो ऋग्वेद मे नहीं आये हैं। कुत्स ऋषि साम मे विश्वेदेवो की स्तुति का उल्लेख करते कहते है[८](१।१०७)—

"सामो द्वारा स्तुति किये जाते देव (अपनी) रक्षा के साथ हमारे पास आये।।२।।"

गृत्समद ऋषि त्रिष्टुप् और गायत्री के साम की बात करते हैं[1] (२।४३)—

"और त्रैष्टुप् को जैसे सामगायक, वैसे ही दोनो वाणियो को बोलते वह अनुरजन करता है।।१।।"

कण्व-गोत्री कुसीदि ऋषि कहते हैं[2] (८।७०)—

"इन्द्र, गीयमान साम को सुनै, उसका स्तुतिगान करै, वह अन्न से हमारे ऊपर कृपा करै।।५।।"

५ स्तोम—स्तुति या स्तोत्र को उस समय स्तोम कहते थे। कुत्स आगिरस इन्द्र-अग्नि के लिए कहते हैं[3] (१।१०६)—

"हे इन्द्रअग्नि, सुना है, तुम दामाद और साले से भी ज्यादा देने वाले हो। इसलिये सोम के प्रदान के समय तुम्हारे लिये मैं नवीन स्तोम बनाता हूँ।।२।।"

४ काव्य

नदी-सूक्त—'(३।३३।१-१३) पुरूरवा-उर्वशी सूक्त' (१०।९५) को देखने से मालूम होता है, कि कविता की मनोहारिनी शैली ऋग्वेदिक आर्यो मे मौजूद थी। लेकिन ऋषियो की ऋचाओ को कविता की दृष्टि से नहीं सुरक्षित किया गया। उनका प्रयोजन देवताओ को प्रसन्न करना था। बिल्कुल सम्भव है,उस समय मधुर लोकगीत और पवाडे प्रचलित थे, जिनकी उस समय काफी कदर थी।

उपमा—कविता को सजाने मे अलकारो का उपयोग भी ऋषि करते हैं। अलकारो मे सबसे अधिक उपमा का इस्तेमाल देखा जाता है, जिसके लिए इव या उसी के अर्थ मे न का प्रयोग बहुत हुआ है। गृत्समद ने एक सूक्त "(२।३६।१, ८) की हरेक पक्ति मे इसका प्रयोग और एक से अधिक बार किया है—

"अश्विद्वय पत्थर की तरह शत्रु को बाधा दो, गिद्ध की तरह निधियुक्त वृक्ष को प्राप्त करो। ब्रह्मा की तरह यज्ञ मे उक्थ (गीत) गानेवाले हो, दूत की तरह बहुतों के लिए पुकारने लायक हो।।१।।"

इस सूक्त मे और उपमाये दी गयी हैं—रथी, अजा (बकरी), स्त्री, दम्पती, सींग, शफ (खुर), चक्रवाक, नाव, युग (धुरा), नाभि, उपधि, प्रदि, श्वान, खल, वर्म, नदी, हाथ, पाद, ओष्ठ, स्तन, नासा, कर्ण, पृथिवी, शान, तलवार। सात त्रिष्टुप् ऋचाओ के भीतर इतनी उपमाये दी गयी हैं, और सबके साथ इव का प्रयोग है। अन्त मे ऋषि कहते हैं (२।३६।८)—

"हे अश्विद्वय, गृत्समदों ने तुम्हारे बधावे मे मन्त्र और स्तोम बनाये। हे नरो, उनका सेवन करते (हमारे) पास आओ। यज्ञ मे सुन्दर वीर्यवाले हो हम बहुत कहैं।।८।।

वाजम्भर-पुत्र सप्ति ने क्रिया की उपमा इव के साथ दी है" (१०।७९)—"हे सुनहले अग्नि, क्या देवो के ऊपर तुमने क्रोध किया, अनजान होने से मैं तुमसे पूछता हूँ। खेलते न खेलते तुम वैसे ही छिन्न-भिन्न कर डालते हो, जैसे गाय को तलवार पोर-पोर करके काटती है।।६।।"

विश्वामित्र ने अपने सुन्दर काव्य नदी-सूक्त' (३।३५) मे व्यास और सतलुज की उपमाये इव के साथ निम्न वस्तुओ से दी हैं—अश्व, गौ, रथी, वत्स, योषा (माँ), मर्य (पति)।

---

१ देखो अध्याय (७।७) पृष्ठ ३४ - ३५
२ देखो अध्याय (५।२८) पृष्ठ ४६
३ देखो पृष्ठ ३४ - ३५

न के साथ उपमा भी ऋग्वेद मे आती है, जिसका प्रयोग पीछे नहीं होता। न नहीं के अर्थ मे भी आता है, इसीलिए सदिग्ध होने के कारण उपमार्थ न के प्रयोग को छोड दिया गया। भरद्वाज कहते हैं[१४] (६।२)—

"हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो, तुम्हारा उज्ज्वल धूम विस्तृत द्यौलोक मे फैला है। हे पावक, कृपालु हो अपनी द्युति से सूर्य की तरह (सूरो न) प्रकाशमान होते हो।।६।।"

"प्रजाओ मे तुम पूज्य हमारे प्रिय अतिथि हो, पुर मे हित की तरह आश्रय लेने लायक, सूनु की तरह (सूनुर्न) पालनीय हो।।७।।"

"हे अग्नि, तुम घर्षण करके द्रोण मे प्रकाशित होते हो, अश्व की तरह बाजी न कार्यकारी हो। सर्वत्रगामी वायु की तरह स्वय जानेवाले हो, घोडे की तरह (अत्यो न) कुटिलगामी शिशु हो।।८।।"

अगले सूक्त[१५] (६।३।४-८) मे भरद्वाज ने न-वाली उपमा अश्व, द्रवि (दर्वी), परशु, अयस्, पक्षी, रेभ (शब्दकारक) द्यौ, घृणा, विद्युत् और ऋभु से दी है।

५ कवि

१ **वशिष्ठ** के ऋग्वेद के कुछ काव्यमय सूक्तो का परिचय हम दे चुके हैं। वसिष्ठ ने एक सूक्त[१६] (७।७५) मे उषा का बडा सुन्दर वर्णन किया है—

"दिविजा उषा ने प्रकाश किया। (वह) सत्य से अपनी महिमा का आविष्कार करती आई। उसने तम को दूर किया, प्राणियो के श्रेष्ठतम पथ को आलोकित किया।।१।।"

"उषा की यह दर्शनीय विचित्र अमृत किरणे आयी। (वह) दिव्य व्रतो को उत्पन्न करती अन्तरिक्ष को भरती अवस्थित हुई।।३।।

"यह वह उषा द्यौ की दुहिता, भुवन की रक्षिका, जनो के ज्ञान को अवलोकन करती तुरन्त पॉचो जनो के चारो ओर पहुँचती है।।४।।"

"अन्नवाली विचित्र धन-युक्त सूर्य की पत्नी (उषा) धन के लिए वसुओ के धन पर शासन करती है। जीर्ण करती ऋषियो से प्रशसित धनिक यजमानो द्वारा स्तुति की जाती उषा प्रकाशित होती है।।५।।"

"प्रकाशमान उषा को वहन करते विचित्र अश्व दिखाई दे रहे हैं। शुभ्र नाना रूपोवाली वह रथ से जाती है, सेवक जनो को रत्न देती है।।६।।"

"वह सत्या सत्यो के साथ, महती महान् देवो के साथ, यजनीया यजनकर्त्ता के साथ दृढ अन्धकार को भेदन करती, गौओ को चरा देती है। गाये उषा की कामना करती हैं।।७।।"

"हे उषा, हमे तुम गो-युक्त, वीरो-युक्त रत्न-अश्व-युक्त बहुत भोज दो। पुरुषो के सामने हमारे यज्ञ की निन्दा न करो। तुम सदा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो।।८।।"

२ **विश्वामित्र**—विश्वामित्र ने भी कई सूक्त उषा की प्रशसा मे रचे हैं, जिनमे एक[१७] (३।६१) की कुछ ऋचाये निम्न प्रकार हैं—

"अन्न से अन्नवाली, ज्ञानवाली मघोनी हे उषा, स्तुति-कर्त्ता के स्तोत्र (स्तुति) को ग्रहण करो। वह स्तोत्रवाली सबके लिए वरणीय हे प्राचीन युवती देवि, व्रत के लिए अनुगमन करो।।१।।"

"हे उषा देवि, सुनहले रथ-युक्त मिठबोली मधुर भाषण करती प्रकाशित हो, सुवर्णवर्णा तुम्हे वे बहुत बलशाली सुशिक्षित अश्व ले जाये।।२।।"

"हे उषा तुम अमृत की ध्वजा हो, भुवनो के ऊपर सन्मुख सारे अवस्थित हो। हे नवीना, एक से रथ पर विचरण करती चक्र की तरह तुम पुन-पुन घूमो।।३।।"

३ वामदेव—सभी प्रधान ऋषियो ने उषा की महिमा गाई है। फिर वामदेव कैसे पीछे रह सकते हैं ? वह कहते हैं[१८] (४।५१)—

"अन्धकार के बीच से यह वह अतिविशाल ज्योति सामने उठी। जनो के लिए निश्चय गमन क्रिया करती द्यौको दुहिताये उषाये प्रकाशित हो रही हैं।।१।।"

"यज्ञो मे यूपो की तरह पूर्व मे विचित्र उषाये उठकर अवस्थित हुई। बाधक अधकार के द्वार को खोलती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती हैं।।२।।"

"मघोनी (धनवती), तमनाशिका उषाये भोजनदान के लिए अन्नदान के लिए भोजो को चेताती हैं। पणि लोग अधकार के मध्य मे न जाग बेहोश हो सोय।।३।।"

"हे देवियो, सत्य मे जुडे अश्वो के साथ तुम तुरन्त भुवनो मे चारो ओर जाती हो। उषाये जीवन विचरण के लिए सोये दोपायो-चौपायो को जगाती तुरन्त भुवना के चारो ओर जाती हैं।।५।।"

"जिसके लिए ऋभुओ ने विधान बनाये, वह उषा कहाँ कितनी पुरानी हैं ? जब शुभ्र उषायें शुभ विचरण करती हैं, तो (वह कभी) न पुरानी होनेवाली एक सी पहचानी नहीं जातीं।।६।।"

फिर दूसरे सूक्त[१९] (५।५२) मे वामदेव सर्वप्रिय गायत्री छन्द मे उषा का गान करते हैं—

"अन्धकारनाशिनी बहिन (रात्रि) को हटानेवाली वह प्रशसित सुनायिका रमणी द्यौ की दुहिता दिखाई पडी।।१।।"

"अश्व की तरह विचित्र चमकीली, गायो की माता, यज्ञवाली उषा अश्विद्वय की सखी हुई।।२।।"

"चाहे अश्विद्वय की तू सखी है, चाहे गायो (किरणो) की माता है उषा तुम धन की ईश्वरी हो।।३।।"

"मधुरभाषिणी (तुम) शत्रुओ को हटाओ, ज्ञान दो। हम स्तोमो (स्तुतियो) द्वारा तुम्हे प्रबोधित करते हैं।।४।।"

"वर्षा की धारा की तरह उसकी भद्र किरणे दिखाई पडीं। उषा ने अपने विस्तृत तेज से (विश्व को) भर दिया।।५।।"

"हे पूरयित्री विभावरि प्रकाशवती, अपनी ज्योति से तम को दूर करो। हे उषा, अन्न की रक्षा करो।।६।।"

"हे उषा, (तुम) अपनी किरणो से द्यौ को, विशाल प्रिय अन्तरिक्ष को व्याप्त करती हो, अपनी शुक्र (उज्ज्वल) किरणो से व्याप्त करती हो।।७।।"

उर्वशी-पुरूरवा का लघु सुन्दर खण्डकाव्य ऋग्वेद[२०] (१०।६५) का एक सूक्त है। उसको हम पीछे उद्धृत कर चुके हैं।

ऋषि अपनी कृतियो को काव्य कहते थे, यह वामदेव के एक सूक्त[२१] (१०।५५) से मालूम होता है। सूक्त का ऋषि यद्यपि वामदेव-पुत्र वृहदुक्थ बतलाया गया है, पर सम्भव है यह वृहद् उक्थ (महान् गान) वामदेव की मानस सन्तान हो। वह इन्द्र की प्रशसा करते कहते हैं—

"बहुतो के युद्ध मे शत्रु युवा होने पर भी जिसके भय से भागते हैं, वह श्वेतकेश हो गया। देव के महत्वपूर्ण काव्य को देखो, जो कल जीवित था, वह आज मर गया।।५।।"

४ भौम—अत्रि की सन्तान भौम पर्जन्य (मेघ) की स्तुति[२२](५।८३) भी बहुत सुन्दर है—

"हे इन वाणियो से पर्जन्य के बल की प्रशसा करो, नमस्कार करते पर्जन्य की स्तुति करो। जलवर्षक दानशील गरजता पर्जन्य औषधियो मे वीर्य धारण करता है।।१।।"

"वह वृक्षो को नष्ट करता है, राक्षसो को नष्ट करता है, महाबध से सारे भुवन को डराता है। उस वृष्टिवाले से निरपराध भी भागते हैं, क्योकि पर्जन्य शब्द करते दुष्टो को मारते हैं।।२।।"

"रथी की तरह चाबुक से घोडो को हॉकते, दूतो भटो को प्रकट करते से वर्षा को वह प्रेरित करता है। जब पर्जन्य नभ को वर्षा-युक्त करता है, तो दूर से सिह के गर्जन की तरह गरजता है।।३।।"

"वायु जोर से बहते हैं, बिजलियॉ गिरती हैं, औषधियॉ बढती हैं, आकाश भर जाता है। सारे भुवन के लिए पृथिवी समर्थ होती है, जबकि पर्जन्य पृथिवी को वीर्य से रक्षा करते हैं।।४।।"

"जिसके व्रत (कर्म से) पृथिवी नम्र होती है, जिसके व्रत से खुरोवाले (पशु) पोसे जाते हैं, जिसके व्रत से औषधियॉ नाना रूप की होती हैं, वह पर्जन्य हमे महासुख प्रदान करै।।५।।"

"हे मरुतो, द्यौ से हमे वृष्टि प्रदान करो। वर्षा करनेवाले अश्वमेध की धाराओ वर्षाओ को बरसाओ। इस कडक के साथ हे पर्जन्य, आओ हमारे पिता असुर (तुम) हमारा सेवन करो।।६।।"

"आवाज करो, चिल्लाओ, जलवाले रथ से गर्भ धारण करो, परिभ्रमण करो। चमडे को खींचो, बॅधे को मुक्त करो, (तुम्हारे द्वारा) ऊभड-खाभड प्रदेश समतल होवे।।७।।"

"महाकोश मेघ को ऊपर से नीचे सींचो, बन्धन-मुक्त कुल्याये (नदियॉ) पूर्व की ओर बहे। जल से द्यौ और पृथिवी को भिगो दो। धेनु गौओ के लिए सुन्दर प्याउ हो।।८।।"

ऋग्वेद मे जहॉ-तहाँ सुन्दर काव्य की जो छटा मिलती है, उससे पता लगता है, कि ऋग्वेदिक आर्य कविता के प्रेमी थे। उनके मनोरजन के लिए सुन्दर कविताये रची जाती थीं। उनके गाने का ढग क्या था, यह सामगान से पता लग सकता है। उससे भी अधिक वास्तविकता के समीप हम तब पहुँचेगे, यदि हमारे लोकगीतो के तुलनात्मक अध्ययन (विशेषकर हिमालय की कितनी ही पिछडी जातियो के लोकगीतो के तुलनात्मक अध्ययन) से किसी निष्कर्ष पर पहुँचे। लोकगीतो के वाक्य-विन्यास चाहे चिरजीवी नही होते, पर उनके लय या गाने के ढग शताब्दियो और सहस्राब्दियो तक बने रहते हैं, इसलिए यदि हमारे देश और कितने ही पश्चिमी देशो के वर्तमान लोकगीतो के साथ सामगान की तुलना की जाये, तो सप्तसिन्धु के आर्यों के गाने के ढग को जाना जा सकता है।

परिशिष्ट १

अध्याय १

सप्तसिन्धु

१ अष्टौ व्यख्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री धव योजना सप्त सिन्धून।

हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्धद्रत्ना दाशुषे वार्याणि।।८।।

—१।३५ (त्रिष्टुब्)

१ उसने पृथिवी की आठो दिशाये तीन मरुस्थल और सातो नदिया प्रकाशित की। सुनहली ओखोवाला सविता देव (यजमान) दानियो के लिए उत्तम रत्न लिए आये।।८।।

—हिरण्यस्तूप आगिरस १।३५

२ ऋग्वेद मण्डल ६ ७, ३ और ४ क्रमश भरद्वाज वसिष्ठ विश्वामित्र और वामदेव के मण्डल कहे जाते है।

२ ऋग्वेद के ६ ७ ३ और ४ मण्डल भरद्वाज वसिष्ठ विश्वामित्र और वामदेव के है।

३ अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विज। होतार रत्नधातम।।१।।

—१।१ (गायत्री)

३ यज्ञ के देव होता ऋत्विज पुरोहित अति रत्नधारक अग्नि की मै स्तुति करता हूँ।।१।।

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र–पुत्र १।१

४ वृषा वृषधि चतुरश्रिनस्यनुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।

श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये।।२।।

—४।२२ (त्रिष्टुब्)

४ वृष्टि-धारक कामवर्षी, दोनो बाहो से चार कोरवाले वज्र का फकनेवाले, उग्र महात्तम नेता शची-युक्त वृषभ (इन्द्र) ने ऊन की तरह परुष्णी (रावी) को, श्री के लिए सेवन करते उसके पारो को मैत्री के लिए ढाँक दिया।।२।।

—वामदेव गौतम-पुत्र ४।२२

५ यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यष्वनुषु पूरुषु स्थ।

अत परि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिबत सुतस्य।।८।।

—१।१०८ (त्रिष्टुब्)

५ हे इन्द्र-अग्नि, जब तुम यदुओ, तुर्वशों मे, जब द्रुह्यओ, अनुओ पुरुओ मे रहो, तो भी हे कामनावर्षको, तुम आओ, और सुत (छाने) सोम को पियो।।८।।

—कुत्स आगिरस, १।१०८

६ वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।
श्रिये **परुष्णी**मुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये।।२।।

—४।२२

६ देखो १।४

७ अतारिषु**र्भरता** गव्यव सममक्त विप्र सुमति नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभ।।१२।।

—३।३३ (त्रिष्टुब्)

७ गो-कामी **भरत** पार हो गये, विप्र ने नदियों की सुमति प्राप्त की। (हे व्यास-सतलुज,) अन्नकारिणी, सुन्दर धनयुक्त, फूली तटो को पूरा करती, तुम शीघ्र जाओ।।१२।।

—विश्वामित्र कौशिक, ३।३३

८ उत न प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा। **सरस्वती** स्तोम्या भूत्।१०।

—६।६१ (गायत्री)

८ और प्रियाओ मे प्रिया सात बहिनोवाली सुप्रसन्ना **सरस्वती** हमारी स्तुति योग्य हो।।१०।।

—भरद्वाज, ६।६१

९ नि त्वा दधे वर आपृथिव्या **इळायास्पदे** सुदिनत्वे अह्ना।
दृषद्वत्या मानुष **आपयाया सरस्वत्या** रेवदग्ने दिदीहि।।४।।

—४।२३

९ हे अग्नि, दिनो के सुदिन के लिए पृथिवी के उत्तम अन्न-स्थान मे मैं तुम्हे स्थापित करता हूँ। तुम **दृषद्वती** (घग्घर) **आपया** (मरकण्डा), **सरस्वती** पर आदमियो के लिए धन-युक्त दीप्तिमान् होओ।।१५।।

—देवश्रवा, देववात, भारत, ३।२३

१० इम मे **गगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि** स्तोम सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या **सुषोमया** ।।५।।

१० हे **गगा, यमुना, सरस्वती, परुष्णी** (रावी) सहित **शुतुद्रि**, मेरे इस स्तोमको स्वीकार करो। हे **असिक्नी** (झेलम)-सहित **मरुद्वृधा, वितस्ता सुषोमा-सहित *आर्जीकीया***, सुनो।।५।।

तृष्टामया प्रथम यातवे सजू सुसर्त्वा **रसया श्वत्या** त्या।
त्व **सिन्धो कुभया गोमती** क्रुमु **मेहत्न्वा** सरथ याभिरीयसे।।६।।

—१०।७५

त्रिष्टामा, सुसर्तु, रसा, उस श्वेत्या के साथ पहले जाती, हे सिन्धु कुभा (काबुल नदी)-सहित गोमती, मेहत्नू को लिए क्रुमु, तुम बहती हो।।६।।

—सिन्धुक्षित् प्रियमेध-पुत्र १०।७५

११ सप्तापो देवी सुरणा अमृक्ता याभि **सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित्**।

११ सुरम्य अमित गतिवाली दिव्य सातो नदियाँ (हैं), जिनके साथ, हे गढो को तोडनेवाले इन्द्र, तुम सिन्धु पार हुए। देवो और मनुष्यो के उपकार के लिए तुमने निन्नानवे

नवति स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातु मनुषे च विन्द ।।८।।

—१० ।१०४

बहती नदियो को प्राप्त किया।।८।।

—अष्ट विश्वामित्र–पुत्र १० ।१०४

१२ सरस्वती सरयू सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणी ।
देवीरापो मातर सूदयित्न्वो घृतवत् पयो मधुमन्नो अर्चत।।६।।

—१० ।६४

१२ सरस्वती, सरयू, सिन्धु (अपने) तरगो से महती, महान् रक्षा के लिए बहती आवे। प्रेरिका दिव्य जलमाताएँ घृत, दुग्ध, मधु-सहित हमे तृप्त करे।।६।।

—गयप्लात, १० ।६४

१३ मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा व सिन्धुर्नि रीरमत्।
मा व परिष्ठात् सरयू पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु व ।।६।।

—५ ।५३

१३ (हे मरुतो) तुम्हे रसा, अनितभा, कुभा (काबुल), क्रुमु (कुर्रम) न (रोके), न तुम्हे सिन्धु रोके। जलवती, सरयू तुम्हे न बाधा डाले, और तुम्हारा दिया सुख हमारे लिए हो।।६।।

—श्यावाश्व आत्रेय, ५ ।५३

१४ यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहु ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।४।।

—१० ।१२१

१४ जिसकी महिमा से यह हिमवन्त (है) और रसा–सहित समुद्र (जिसका) कहा गया, जिसकी (भुजाएँ) यह दिशाएँ हैं, उस क देव के लिए हम हवि से पूजा करे।।४।।

—हिरण्यगर्भ प्राजापत्य, १० ।१२१

१५ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळव ।
यदित्ससि स्तुवते मावते, वसु नकिष्टदा मिनाति ते ।।३।।

—८ ।।७७

१५ हे इन्द्र, बृहत् और दृढ पर्वत भी तुम्हे नहीं रोक सकते। मेरे जैसे स्तुतिकर्ता को जब तुम धन देना चाहते हो, तो तुम्हे कोई नहीं रोक सकता।।३।।

—नोधा गौतम–पुत्र, ८ ।७७

१६ त्व शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्था प्रतीनि दस्यो ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्र, भरद्वाजाय गृणते बसूनि।।४।।

—६ ।३१

१६ (हे इन्द्र,) तुमने दस्यु शम्बर के सौ अजेय पुरो को नष्ट किया। हे शचीवान् (प्राज्ञ), तुमने सोम–सेवन–कर्ता, सोमक्रेता दिवोदास को प्रज्ञा–सहित धन दिया, स्तुति करनेवाले भरद्वाज को वसु प्रदान किया।।४।।

—सुहोत्र भारद्वाज, ६ ।३१

१७ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि।

१७ उस पुरनाशक वृत्रहन्ता इन्द्र ने जन्म से काले दासो को नष्ट किया। उसने मनुष्य के लिए पृथिवी और जल को बनाया।

अजनयन्मनवे क्षामपच सत्रा शस यजमानस्य तूतोत्।।७।।

—२।२०

वह यजमान की आकाक्षा पूरी करता है।।७।।

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२०

१८ इन्द्र समत्सु यजमानमार्य प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीहळेष्वाजिषु।
मनवे शासदव्रतान् त्वच कृष्णामरन्धयत्।
दक्षन्नविश्व ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति।।८।।

—१।१३०

१८ इन्द्र ने सारे युद्धो मे आर्य यजमान की रक्षा की। वह मेरे युद्धो मे सैकडो रक्षावाला सुखकारी है। उसने मनु के लिए अधर्मियो को दण्ड दिया काले चमडे (वालो) को नष्ट किया। (वह) सबको जलाता, हिसको को, निष्ठुरो को जलाता है।।८।।

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

१९ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्र वातेजा इरिणे वर्वृताना।
सोमस्येव **मौजवतस्य** भक्षो **विभीदको** जागृविर्मह्यमच्छान्।।१।।

—१०।३४

१९ पट्ट पर घूमते, चलते, काँपते पासे मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। जैसे **मौंजवान्** पर्वत के सोम का भक्ष, वैसे **बहेरे** के काठवाले पासे मेरे लिए उत्साह देते हैं।।१।।

—कवष ऐलूष, १०।३४

२० दिवस्पृथिव्योरव आवृणीमहे मातृन्त्सिन्धून् पर्वता**न्छर्यणावत**।
अनागास्त्व सूर्यमुषासमीमहे भद्र सोम सुवानो अद्या कृणोतु न।।२।।

—१०।३५

२० हम द्यौ और पृथिवी से, नदी माताओ से, **शर्यणावान्** पर्वतो से रक्षा की प्रार्थना करते हैं, सूर्य और उषा से निष्पाप होने की कामना करते हैं। सेवन किया जाता (यह) सोम आज हमारा मगल करे।।२।।

—लूश धानाक, १०।३५

२१ अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधि **पणीना** परम गुहाहितं।
ते विद्वास प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशन्।।६।।

—२।२४

२१ चारो ओर खोजते (जिन्होने) गुहा मे छिपाई **पणियो की** परमनिधि को प्राप्त कर लिया, वे विद्वान झूठ को देखकर जहाँ से आये थे वहीं चले गये।।६।।

—गृत्समद शुनहोत्र–पुत्र, २।२४

२२ यास्ते **पूषन्नावो** अन्त **समुद्रे** हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छमान।।३।।

—६।५८

२२ हे पूषन्, जो तुम्हारी सुनहली नावे समुद्र के भीतर और आकाश मे चलती हैं, उनके द्वारा तुम सूर्य के दूत-कार्य के लिए, कामना से चाहते हुए जाते हो।।३।।

—भरद्वाज, ६।५८

अध्याय २

आर्यजन

१ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भ ।
अभि य पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि शुशोच ।।४।।

—७।८

१ जब सूर्य सा बृहद्-ज्योति यह अग्नि प्रकाशित होता है, तो भरत की सुनता है। जिसने युद्धो मे पुरु का दमन किया, वह दिव्य अतिथि द्योतित हो प्रज्वलित हुआ।।४।।

—वसिष्ठ, ७।८

२ वि सद्यो विश्वा दृहितान्येषामिन्द्र पुर सहसा सप्त दर्द ।
व्यानवस्य तृत्सवे गय भाग्जेष्म पूरु विदथे मृध्रव,च।।१३।।

—७।१८

२ इन्द्र ने इन दस्युओ की सारी सात दृढ पुरियो (गढियो) को तुरन्त बलपूर्वक विदीर्ण कर दिया। आनव (अनुओ) के स्थान को तृत्सु के लिए दिया। झूठे पुरु को हम युद्ध मे जीते।।१३।।

—वसिष्ठ, ७।१८

३ भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वजेण दाशुषे नृत ।
अतिथिग्वाय शम्बर गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा।।७।।

—१।१३०

३ हे इन्द्र, के नर्तक तुमने महान् भक्त पूरु (वशी) दिवोदास के लिए वज्र से नब्बे गढियो को छिन्न-भिन्न किया। अतिथिग्व (दिवोदास) के लिए शबर को उग्र (इन्द्र ने) गिरि से नीचे गिराया, (अपने) ओज से महान् धन दिये, सारे धन ओज से (दिये)।।७।।

—परुच्छेप दिवोदास—पुत्र, १।१३०

४ त्व धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरप सीरा न स्रवन्ती ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वश यदु स्वस्ति।।६।।

—१।१७४

४ हे इन्द्र, धुननेवाले तुमने नदियो की तरह धुननेवाले जलो को बहाया। हे शूर, जब तुम समुद्र मे बाढ करते हो, तब तुर्वश और यदु को कल्याण सहित पार करो।।६।।

—अगस्त्य, १।१७४

५ त्वमाविथ **नर्यं तुर्वशं यदुं** त्वं **तुर्वीतिं वय्यं** शतक्रतो।
त्वं **रथमेतशं** कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव।।६।।

—१।५४

५ हे शतक्रतु (इन्द्र), तुमने नर्य, **तुर्वश**, **यदु** की रक्षा की, तुमने वय्य, **तुर्वीति** की रक्षा की। तुमने धन के लिए सग्राम मे एतश के रथ की रक्षा की, तुमने निन्नानवे गढियो को नष्ट किया।।६।।

—सव्य आगिरस, १।५४

६ येनाव **तुर्वशं यदुं कण्वं** धनस्पृतम्। राये सु तस्य धीमहि।।१८।।

—८।७

६ जिससे **तुर्वश-यदु** की रक्षा की, जिससे तुमने धनाभिलाषी **कण्व** की (रक्षा की), उस (रक्षा) को धन के लिए हम चाहते हैं।।१८।।

—वत्स कण्व-पुत्र, ७।८

७ सना ता त इन्द्र भोजनानि **रातहव्याय** दाशुषे **सुदासे**।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाज।।६।।

७ हे इन्द्र, भक्त **रातहव्य** (हविदाता) **सुदास** के लिए वह तुम्हारे भोजन सनातन है। हे कामवर्षक, तुम्हारे लिए दोनो घोडो को मै जोतता हूँ। हे महाशक्ति, हमारे स्तोत्र (और) अन्न तुम्हारे पास पहुँचे।।६।।

मा ते अस्या सहसावन् परिष्टावधाय भूम हरिव परादै।
त्रायस्व नो वृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियास सूरिषु स्याम।।७।।

हे बलवान् और अश्ववान्, तुम्हारे इस यज्ञ मे हम अघ के भागी न हो। हमे निराघाध अपनी रक्षाओ द्वारा बचाओ, ताकि हम सूरियों (राजकुमारो) मे तुम्हारे प्रिय होवे।।७।।

प्रियास इत्ते **मघवन्नभिष्टौ** नरो मदेम शरणे सखाय।
नि **तुर्वशं** नि याद्व शिशीह्य**तिथिग्वाय** शस्य करिष्यन्।।८।।

—७।१९

हे मघवा (धनवान्), तुम्हारी इष्टि (यज्ञ) मे हम नर (लोग) प्रिय सखा हो घर मे मौज करे। **अतिथिग्व** (दिवोदास) की भलाई की इच्छा से (तुम) **तुर्वश यदु** को मारो।।८।।

—वसिष्ठ, ७।१९

८ त्वमपो **यदवे तुर्वशायारमय** सुदुघा पार इन्द्र।
उग्रमयातमवहो ह **कुत्सं** स ह यद्वामुशना रन्तदेवा ।।८।।

—५।३१

८ हे इन्द्र, तुमने **यदु** और **तुर्वश** के लिए परले पार उर्वर नदियॉ रोकीं, **कुत्स** के ऊपर आये उग्र (दस्यु) को तुमने मारा, जबकि तुम दोनो **उशना** और देवो के साथ आये।।८।।

—अवस्यु आत्रेय, ५।३१

९ यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरूषु चरतो रेरिहाणा।

९ जिसकी सुतृण-इच्छुक लेलिहान लाल गोवे (द्यौ पृथिवी के) भीतर विचरण करती हैं।

स सृंजयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवातो दैववाताय शिक्षन्।।७।।

—६।२७

उस (इन्द्र) ने सृजय के लिए दूसरे लाकर तुर्वश को दिया, देववात के लिए वृचीवान् को प्रदान किया ।।७।।

—भरद्वाज, ६।२७

१० य आनयत्परावत सुनीती तुर्वशं यदु।
इन्द्र स नो युवा सखा ।।१।।

—६।४५

१० सुन्दर आनयन से जो तुर्वश, यदु को पश्चिम से ले आया वह युवा इन्द्र हमारा सखा है।।१।।

—शयु बार्हस्पत्य, ६।४५

११ यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थ।
अत परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य।।८।।

—१।१०८

११ हे इन्द्र-अग्नि, यदि तुम यदुओं, तुर्वशों में, यदि द्रुह्यओं, अनुओं, पुरुओं मे हो, तो भी हे प्रभुओ, आओ और सुत (छाने) सोम को पियो।।८।।

—कुत्स आंगिरस, १।१०८

१२ यदा तृक्षौ मघवन्द्रुह्या वा जने यत्पुरौ कच्च वृष्ण्य।
अस्मभ्य तद्रिरीहि स नृषाह्ये मित्रान्पृत्सु तुर्वणे।।८।।

—६।४६

१२ हे मघवन् तृक्षु या द्रुह्यु जन मे, पुरु मे जो वल है, उसे हमे दो, ताकि मनुष्य-पराजय के युद्ध मे हम अमित्रों को पराजित करे।।८।।

—शयु वृहस्पति-पुत्र, ६।४६

१३ पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टि चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूची ।।६।।

१३ हव्यदाता यज्ञकर्ता, तुर्वश धन के इच्छुक पानी मे मछलियो की तरह वधे थे। भृगुओ और द्रुह्यओ ने सुना, दूसरो (तुर्वश-यदु) के वीच सखा (इन्द्र) ने सखा (सुदास) की रक्षा की, ।।६।।

अध श्रुत कवष वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणक् वज्रवाहु।
वृणाना अत्र सख्याय सख्य त्वायन्तो ये अमदन्नु त्वा।।१२।।

वज्रवाहु (इन्द्र) ने प्रसिद्ध वृद्ध कवष को पानी मे डुवाया, द्रुह्यु को नष्ट किया। मित्रता को स्वीकार करते यहाँ जो तुम सखा के पास आये, वे तुम्हारे पीछे आनन्दित हुए।।१२।।

नि गव्यवो नवो द्रुहयवश्च षष्टि शता सुषुपु षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो, अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्य कृतानि।।१४।।

—७।१८

लूट-इच्छुक अनु और द्रुह्यु साठ सौ छ हजार और छियासठ वीर सो गये (भक्तो के लिए) यह सव पराक्रम इन्द्र ने किये।।१४।।

—वसिष्ठ, ७।१८

१४ **अनवस्ते** रथमश्वाय तक्षन् **त्वष्टा** वज्रं पुरुहूत द्युमन्तं।
ब्रह्माण इन्द्र महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ।।४।।

—५।३१

१४ हे पुरुहूत (इन्द्र), **अनुओं** ने तुम्हारे घोडो के लिए रथ तैयार किया, अहि (राक्षस) को मारने के लिए **त्वष्टा** ने प्रकाशमान वज्र को, ब्राह्मण ने स्तुतियो से तुम्हे बढाया।।४।।

—अवस्यु आत्रेय, ५।३१

१५ यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभि।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यान**वेसि** प्रशर्ध **तुर्वशे**।।१।।

—८।४

१५ हे इन्द्र, यद्यपि तुम पूर्व, उत्तर या दक्षिण मे आदमियो द्वारा बुलाये जाते हो, तो भी वीर **अनु के** और **तुर्वश** के साथ होते हो।।१।।

—देवातिथि काण्व, ८।४

१६ य ई राजानावृतुथा विदधेद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस **आनवाय**।।६।।

—६।६२

१६ जो ऋतु के अनुसार अश्विद्वय राजाओ की पूजा करते हैं, उसे मित्र और वरुण जानते हैं। वह गुप्त राक्षसो, झूठ बोलनेवाले **अनव** के लिए अस्त्र फेकते हैं।।६।।

—भरद्वाज, ६।६२

१७ याभि **पक्थम**वथो याभिर**ध्रिगु** याभि**र्बभ्रु** विजोषस।
ताभिर्नो मक्षू तूय**मश्विना** गत **भिषज्यत** यदा**तुर**।।१०।।

—८।२२

१७ हे अश्विद्वय, जिन चिकित्साओ से तुमने पक्थ की रक्षा की, जिन से **अध्रिगु** की, जिनसे असहाय **बभ्रु** की रक्षा की, उनके साथ जल्दी आकर आतुर (बीमार) की चिकित्सा करो।।१०।।

—**सोभरि** कण्व-पुत्र, ८।२२

१८ आ **पक्थासो भलानसो** भनन्तालि**नासो** **विषाणिन शिवास**।
आ यो नयत्सधमा **आर्यस्य** गव्या **तृत्सुभ्यो** अजगन्युधा नृन्।।७।।

१८ **पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी, शिव** आये। जो (इन्द्र) आर्य की गाये **तृत्सुओं** के लिए लाया, युद्ध मे लोगो को जीता।।७।।

दुराध्यो अदिति स्रवयन्तो चेतसो वि जगृभ्रे **परुष्णीं**।
महना विव्यक् पृथिवीं पत्यमान **पशुष्कविरशयच्चायमान**।।८।।

दुर्विचार, अविचारी (शत्रु) के अदिति (पृथिवी) को खोदते **परुष्णी** (रावी) पर अधिकार कर लिया। (इन्द्र की) महिमा से **चायमान कवि** पशु की तरह पृथिवी पर गिरते मारा गया।।८।।

इयुरर्थ न न्यर्थ परुष्णीमाशु--
श्चनेदभिपित्व जगाम।
सुदास इन्द्र सुतुका
अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाच ।।६।।

—७।१८

अर्थ की तरह अनर्थ के लिए परुष्णी के पास वह पहुँचे। ठीक हो वह (जल) अपने स्थान पर चला गया। सुदास के लिए इन्द्र ने मनुष्यो मे बकवादी, बहु-सन्तानी शत्रुओ को मारा।।६।।

—वसिष्ठ ७।१८

१६ इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर क्षिप्रेषवे
देवाय स्वधान्वे।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय
भरता शृणोतु न ।।१।।

—७।४६

१६ भरतो, स्थिर धनुषवाले, क्षिप्र बाण फेकनेवाले, अन्नवान्, अपराजित, विजेता, विधाता, तीक्ष्णायुध रुद्र के लिए यह मेरी स्तुति सुनो।।१।।

—७।४६

२० उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी
अधिक्षियन्ति पूरव ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो
मघोना।।२।।

—७।५६

२० हे शुभ्रे, तेरी महिमा है, जो कि पूरु लोग दोनो तटो पर बसते हैं। सो तुम रक्षिका हमे बोध दो, मरुतो की सखी होकर धनवानो के धन को भेजो।।२।।

—वसिष्ठ, ७।५६

अध्याय ३
वर्ण, वर्ग

१ स हि ष्मा **धन्वाक्षित** दाता न दात्या पशु ।
हरिश्मश्रु **शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषि** ।।७।।
—५।७

१ सुनहले मूछ-दाढी वाले, सफेद दॉतवाले अप्रतिहत-शक्ति वह महान् अग्नि दराती से जैसे पशु, (काटते है,) वैसे उजाड मरु के प्रदाता हैं।।७।।
—इष आत्रेय, ५।७

२ **हरिश्मशारुर्हरिकेश** आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता **पारिषद्धरी**।।८।।
—१०।९६

२ सुनहले (पीले) मूछ-दाढी वाले-पीले केशवाले पत्थर से दृढ, सोमपायी अश्व जो पेय मे तुरन्त बढते है। जो द्रुतगामी घोडो द्वारा यज्ञ मे आते है। दोनो घोडो पर चढे सारी बाधाओ को पार करते है।।८।।
—वरु आगिरस, १०।९६

३ ऋतावान यज्ञिय **विप्रमुक्थ्य**माय दधे मातरिश्वा दिविक्षय।
त चित्रयाम **हरिकेशमी**महे सुदीतिमग्नि सुविताय नव्यसे ।।१३।।
—३२

३ शक्तिमान् यज्ञ-योग्य विप्र, स्तुति-योग्य, द्यौ निवासी जिसे वायु ने स्थापित किया। उस विचित्र गतिवाले सुनहले केश-युक्त सुदीप्त अग्नि की स्तुति नई सपत्ति के लिए हम करते हैं।।१३।।
—विश्वामित्र, ३।२

४ **हिरण्यकेशो** रजसो बिसारे' हिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो न वेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्या ।।१।।
—१।७९

४ लोको के फैलाव मे सुनहले केश-युक्त, कपमान सर्प सा द्रुतगामी वायु सा शुद्ध प्रकाश द्वारा सची यशोवती उषाओ की तरह, कर्मियो सा जानता है।।१।।
—गोतम रहूगण-पुत्र, १।७९

५ एवेदिन्द्र सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती **हरिशिप्र** स त्वा।

५ सुनहले मुकुट वाले, सुआहूत, सहायक– बिना सहायक इन्द्र धन देते हैं। इस प्रकार

एवा हि जातो असमात्योजा पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ।।६।।

—६।२६

प्रकट अत्यन्त ओजस्वी इन्द्र बहुत से शत्रु दस्युओ को मारते हैं।।६।।

—भरद्वाज, ६।२६

६ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु ।
उतिष्ठन्वोचे परि वर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठा ।।१।।

—७।३३

६ गोरे, दाहिनी और जूडा रखनेवाले सुबुद्धि वे वासिष्ठ मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञ से उठते मैं आदमियो को कहता हूँ, वसिष्ठ सताने मुझसे दूर न जाये"।।१।।

—वसिष्ठ, ७।३३

७ इहेह व स्वतवस कवय सूर्यत्वच ।
यज्ञ मरुत आ वृणे।।११।।

—७।५६

७ स्वय शक्तिमान् सूर्य के जैसे वर्णवाले हे कवि मरुतो, यहा मे मैं तुम्हे वरण करता हूँ।।११।।

—वसिष्ठ, ७।५६

८ खे रथस्य खे नस खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणो सूर्यत्वचं।।७।।

—८।८०

८ हे शतक्रतु (इन्द्र), रथ के छिद्र, शकट के छिद्र, जूये के छिद्र मे तीन बार पवित्र करके तुमने अपाला को सूर्य के वर्ण जैसे चर्मवाली बना दिया।।७।।

—अपाला आत्रेयी, ८।८०

६ तुविग्रीवो वपोदर सुवाहुरन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ।।८।।

—८।१७

६ विस्तृत-ग्रीव स्थूल-उदर सुन्दर-बाहु वाले इन्द्र सोम के मद मे शत्रुओ को मारते है।।८।।

—इरिन्विठ काण्व, ८।१७

१० क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानत ।
ब्रह्मा कस्त सपर्यति।।७।।

—८।५३

१० वह वृषभ (पहलवान), युवा, विशाल-ग्रीव न झुकनेवाला (इन्द्र) कहाँ है? कौन ब्राह्मण उसकी स्तुति करता है।।८।।

—प्रगाथ काण्व, ८।५३

११ पिशगरूप सुभरो वयोधा श्रुष्टी वीरो जायते देवकाम ।
प्रजा त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथ ।।६।।

—२।३

११ हमारे पिशग-रूप (सुवर्ण-वर्ण), सुघर, आयुष्मान, क्षिप्रकारी देवभक्त वीर (पुत्र) जन्मे। त्वष्टा (हमे) नाभि-सन्तान देवे, वह देवो के स्थान को जाये।।६।।

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र २।३

१२ अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्त कृष्णा अरुषैर्द्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमाननृतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वा ।।२१।।

—३।३१

१२ शत्रुनाशक गोस्वामी (इन्द्र), गाये प्रदान करे। अरुण तेज द्वारा कालो के भीतर पहुँचा। उसने अनृत सुन्दर वचन सिखलाने वाले अपने सारे दरवाजो को खोल दिया।।२१।।

—विश्वामित्र, ३।३१

आर्यों की नाक अधिक लम्बी ऊँची होती थी, जब कि उनके विरोधी छोटी नाकवाले इसीलिए उन्हे वह अ-नास कहते थे। ऋक् ५।२९।१०।

१३ स वृत्रहेन्द्र **कृष्णयोनी** **पुरन्दरो** **दासीरैरयद्वि**। अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत्।।७।। —२।२०	१३ उस वृत्रहा पुरन्दर (पुरनाशक) इन्द्र ने जन्म से **काले दासों** को नष्ट किया। उसने मनुष्य के लिए पृथिवी और जल को जन्माया। वह यजमान की आकाक्षा को पूरा करता है।।७।। —गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२०
१४ शत मे **गर्दभाना** शत**मूर्णावतीना**। शत **दासा** अतिसृज।।३।। —(बालखिल्य) ८।८	१४ मुझे सौ गदहे, सौ भेडे, सौ **दास** उस (पूतक्रतु-पुत्र) ने दिये।।३।। —पृषध्र, बालखिल्य, ८।८
१५ शुभ्र नु ते शुष्म वर्धयन्त शुभ्र वज्र बाह्वोर्दधाना। शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे **दासीर्विश** सूर्येण सह्या।।४।। —२।११	१५ हे इन्द्र, (हम) तुम्हारे शुभ्र बल को बढाते तुम्हारी दोनो बाहो मे शुभ्र वज्र को धारण कराते हैं। तुम सूर्य के साथ शुभ्र बढते हुए **दासीय प्रजाओं** को हमारे लिए पराजित करो।।४।। —गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र २।११
१६ येनेमा विश्वा च्यवान कृतानि यो **दास** **वर्णमधर** गुहाक। श्वघ्नीव यो जिगीवालक्षमाददर्य पुष्टानि, स जनास इन्द्र।।४।। —२।१२	१६ जिसने इस सारे नश्वर (विश्व) को बनाया, जिस गुह्य (इन्द्र) ने **दास वर्ण** को नीच गुहा-निवासी बनाया। जिस स्वामी ने शिकारी की तरह लक्ष्य को जीत कर धन को ग्रहण किया। हे लोगो, वह इन्द्र है।।४ ।। —गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१२
१७ विश्वस्मात् सीमधमा इन्द्र **दस्यून्विशो** **दासीर**कृणोरप्रशस्ता। अबाधेथाममृणत नि शत्रूनविन्देथा—मपचिति वधत्रै।।४।। —४।२८	१७ हे इन्द्र, तुमने **दस्युओ** को सभी से अधम बनाया, **दासीय** प्रजाओ को अप्रशस्त किया। (इन्द्र और सोम ने) शत्रुओ को बाधा दी, बध के हथियारो से बदला लिया।।४।। —वामदेव गोतम-पुत्र, ४।२८

१८ क अदान्मे **पौरुकुत्स्य** पचाशत नाम **त्रसदस्युर्बधूना**।
महिष्टो अर्य सत्पति ।।३६।।

१८ पुरुकुत्स-पुत्र **त्रसदस्यु** ने जो कि अतिमहान् अर्य (स्वामी) सत्पति है, मुझे पचास दासियॉ दीं।।३६।।

उत मे प्रयियोर्वयियो **सुवास्त्वा** अधि तुग्वनि।
तिसृणा सप्ततीना श्याव प्रणेता भुवद्वसुर्दियाना पति ।।३७।।

—८।१६

दान-पति धनी सुनेता **श्यावने** भी मुझे **सुवास्तु** के तट पर मजबूत घोडा और तीन सत्तर गाये दीं ।।३७।।

—सोभरि कण्वपुत्र, ८।१६

१८ ख दास (उपमा १५।६३)

१६ **शर्यणावति** सीममिन्द्र पिबतु वृत्रहा।
बल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यमहद्
इन्द्रायेन्दो परि स्रव।।१।।

१६ वृत्र-हन्ता इन्द्र ने **शर्यणावत** मे सोम पिया। अपने मे बल धारण करते महान् विक्रम करने को तैयार हो हे इन्दु (सोम), इन्द्र के लिए बहो।।१।।

आ पवस्व दिशा पत **आर्जीकात्** सोम मीढ्व।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तमसा सुत।।२।।

दिशाओ के पति, सिचक हे सोम, **आर्जीक** से बहो। ऋत वचन सत्य, श्रद्धा और तप द्वारा चूवाये, हे सोम इन्द्र के लिए बहो।।२।।

पर्जन्यवृद्ध महिष त सूर्यस्य दुहिता भरत्।
त **गन्धर्वा** प्रत्यगृभ्णन्त सोमे रसमादधु।।३।।

उस पर्जन्य से बढे महिष (महान) सोम को सूर्य की दुहिता ले आयी। उसे गधर्वो ने ग्रहण किया।।३।।

ऋत वदन्नृतद्युम्न सत्य वदन्त्सत्यकर्मन्।
श्रद्धा बदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत।।४।।

—९।११३

ऋतवादी ऋत-प्रकाशक सत्यवादी सत्यकर्मा श्रद्धावादी हे सोमराजा विधाता द्वारा परिष्कृत०।।४।।

—कश्यप मरीच-पुत्र ९।११३

२० **ब्रह्मणो**'स्य मुखमासीद् बाहू **राजन्य** कृत ।
ऊरू तदस्य यद् **वैश्य** पद्भ्या **शूद्रो** अजायत।।१२।।

—१० ।६०

२० इस (पुरुष) का मुख **ब्राह्मण** हुआ, दोनो बाहु से **राजन्य** (क्षत्रिय) बना। सो इसकी दोनो जाघे हुई, जो कि वैश्य (और) दोनो पैरो से शूद्र जनमा।।१२।।

—नारायण, १० ।६०

२१ सगच्छध्व सवेदध्व स वो मनासि जानता।
देवा भाग यथा पूर्वे सजानाना उपासते।।२।।

२१ तुम साथ चलो, साथ बोलो, तुम्हारे मन साथ जाने-समझे, (वैसे ही) जैसे पूर्वकाल के देवता साथ जानते हुए अपने (भोग्य) भाग का सेवन करते थे।। २।।

समानो मत्र समिति समानी समान मन सह चित्तमेषा।
समान मत्रमभिमत्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।

तुम्हारा मन्त्र (सलाह) समान हो, समिति समान हो। चित्त-सहित इनका मन समान हो। तुम्हे समान सलाह से अभिमत्रित करता हूँ। समान हवि से तुम्हारे लिए मैं हवन करता हूँ।। ३ ।।

समानी व आकूति समाना हृदयानि व ।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति।।४।।

—१० ।१६१

तुम्हारी कल्पना समान हो, तुम्हारे हृदय समान हो। तुम्हारा मन समान हो, जिससे कि तुम्हारी सुन्दर सम्मति हो।।४।।

—सवनन, १० ।१६१

अध्याय ४
खानपान

१ मांस—

१ पीवान मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा ननु दीव आसन्।
द्वा धेनु वृहतीमप्स्वन्त पवित्रवन्ता चरत पुनन्ता।।१७।।-

—१०।२७

१ वीरो ने मोटे भेडे पकाये, दाव पर पासे फेके। दो शुद्ध पवित्र पानी के भीतरी स्थान के भीतर विचरण करते पहुँचे।।१७।।

—वसुक्र, १०।२७

२ ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभि निर्हरेति।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु।।१२।।

—१।१६२

२ जो पके घोड़े को देखते हैं जो कहते हैं "सोधा हे, उतारो" और जो घोड़े के मास-भोजन का सेवन करते हैं, उनका सकल्प हमारा सहायक हो।।१२।।

—दीर्घतमा उच्यथ-पुत्र, १।१६२

२ अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान् पिबसि त्वमेषा।
पचन्ति ते वृषभा अत्सि तेषा पृक्षेण यन्मघवन् हूयमान।।३।।

—वसुक्र १०।२८

२ हे इन्द्र, तुम्हारे लिए ऋत्विक् शीघ्र मस्त करनेवाले सोमो को पत्थर से तैयार करते हैं, तुम उन्हें पीते हो। वह तुम्हारे लिए साड (वृषभ) पकाते हैं। हे मघवन्, भोजन के लिए पुकारे जाते तुम उन्हे खाते हो।।३।।

—वसुक्र, १०।२८

३ आदिद्धनेम इन्द्रिय यजन्त आदित्पक्ति पुरोळाश रिरिच्यात्।
आदित् सोमो विपपृच्यादसुष्वीना—दिज्जुजोष वृषभ यजध्यै।।५।।

—४।२४

३ तब कोई इन्द्र के पराक्रम की पूजा करते, कोई पकाते, पुरोडाश को तैयार करके देते, अदानियो को सोम सतावे, हम यजन के लिए वृषभ प्रस्तुत करते हैं।।५।।

—वामदेव, ४।२४

वृषभ पकाना १५।३६, ६७—१००
इन्द्र का ३५ बैल खाना १६।३। (१४)

- ग्राम्य पशु थे—गाय, घोडा, भेड, बकरी गदहा ऊट।

४ त्व नो वायवेषामपूर्व्य **सोमाना** प्रथम **पीति**मर्हसि सुताना पीतिमर्हसि।
उतो विहुत्मतीना **विशा** ववर्जुषीणा।
विश्वा इत्ते धेवनो दुह **आशिर** घृत दुहत आशिर।।६।।

—१।१३४

४ हे सर्वपुरातन वायु, (तुम) इन सोमो के प्रथम पान करने योग्य हो, छाने हुओं के प्रथम पान के योग्य हो। हवन करनेवाली निर्दोष प्रजाओ की आहुतियो को (तुम स्वीकार करते हो)। सारी धेनुये तुम्हारे लिए दूध-घी दुहाती, दूध दुहाती हैं।।६।।

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र १।१३४

५ कि ते कृण्वन्ति **कीकटेषु** गावो **नाशिर** दुहे न तपन्ति धर्म्म।
आ नो भर **प्र मगन्दस्य** वेदो **नैचाशाख** मघवन्रन्धया न।।१४।।

—३।५३

५ हे मघवन् (इन्द्र), **कीकटों** (अनायो के देश) मे तुम्हारी गाये क्या करती है ? न **आशिर** (दूध) दुहाती हैं, न धर्म (दूध) तपाती हैं। **नैचाशाख** (नगर) को नष्ट करो, **प्रमगध** के धन को हमारे लिए लाओ।।१४।।

—विश्वामित्र, ३।५३

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतास।
शुक्रा **आशिर** याचन्ते।१०।

हे इन्द्र, तुम्हारे लिए यह हमारे छाने श्वेत तीव्र सोम हैं, यह **आशिर** (दूध) चाहते हैं।।१०।।

ता **आशिर पूरोळाश**मिन्द्रेम सोम श्रीणीहि।
रेवन्त हि त्वा शृणोमि।।११।।

—८।२

हे इन्द्र, उन (सोमो) को **आशिर**, पुरोडाश से मिलाओ। मैं तुम्हे धनवान् सुनता हूँ।।११।।

—प्रियमेघ आगिरस, ८।२

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभि पुनानो अभि वास**याशिर**।
ये ते **मदा** आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्र चोदय दातवे मघ।।५।।

—९।७५

हे सोम, स्वस्ति के लिए तुम चारो ओर बहो। मनुष्यो द्वारा पूत हुए तुम दूध से मिलो। जो तुम्हारे फेनिल तीव्र मद हैं, उनके द्वारा इन्द्र को धन देने के लिए प्रेरित करो।।५।।

—कवि भार्गव, ९।७५

अय पुनान उषसो विरोचयदय सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अय त्रि सप्त दुदुहान **आशिर** सोमो हृदे पवते चारु मत्सर।।२१।।

—९।८६

यह पुना (शोधा) जाता उषाओ को प्रकाशमान करता है। यह सिन्धुओं (नदियो) के लिए स्थान बनाता है। यह २१ बार दुहाता, मददायक सोम हृदय में सुरक्षित होता है।।२१।।

—पृष्णि, अज, ९।८६

अह तदासु धारय यदासु न देवश्च न त्वष्टा धारयद्रुशत्।
स्पार्हं गवामूध सु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्य सोममाशिर।।१०।।

—१० ।४६

मैंने इन (गायो) मे उसे स्थापित किया, जिसे इनमे न किसी देवता ने न त्वष्टा ने स्थापित किया। गायो के ढोनेवाले स्तनो मे मधु का भी मधु स्पृहणीय सफेद सोम आशिर (दूध) है।।१०।।

—इन्द्र, १० ।४६

इन्द्रो बल रक्षितार दुघाना करेणेव विचकर्त्ता रवेण।
स्वेदाजिभिराशिरमिच्छमानो रोदयत् पणिमाग अमुष्णात्।।६।।

—१० ।६७

धेनुओ के रक्षिक बल को इन्द्र ने हुँकार के साथ हाथ से ही चीर डाला। मरुतो के साथ आशिर (दूध) को चाहते गायो को छीन लिया, पणि को रुलाया।।६।।

—अयास्य आगिरस, १० ।६७

६ उप न सुतमागहि सोममिन्द्र गवाशिर।
हरिभ्या यस्ते अस्मयु ।।१।।
इममिन्द्र गवाशिर यवाशिरं च न पिव।
आगत्या वृषभि सुत ।।७।।

—३ ।४२

६ हे इन्द्र, हम पर कृपा कर अपने दोनो घोडो (के रथ) द्वारा हमारे गोदुग्धवाले छाने सोम के पास आओ।।।१।।
हे वाहन-युक्त इन्द्र, आकर हमारे छाने इस गवाशिर और यवाशिर को पियो।।७।।

—विश्वामित्र, ३ ।४२

७ सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिर ।
निम्न नयन्ति सिन्धवोभि प्रय ।।७।।

—५ ।५१

७ इन्द्र के लिए वायु के लिए, दध्याशिर (दधि-मिश्रित) सोम छाने हैं। जैसे सिन्धु (नदियाँ) निम्न (उपत्यकाओ) की ओर जाती हैं, वैसे (तुम) आओ।।७।।

—स्वस्ति, ५ ।५१

८ विश्वेत्ता विष्णुरामरदुरुक्रमस्त्वेषित ।
शत महिषान् क्षीरपाकमोदन वराहमिन्द्र एमुष ।।१०।।

—८ ।६६

८ हे इन्द्र, तुमसे प्रेरित बहुगामी इन्दु उस सबको लाया—सौ महिषो, क्षीरपाक, ओदन, वराह, चोर।।१०।।

—कुरुसुति, ८ ।६६

९ **अश्वमेध—**

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुत परिख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्ते प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि।।१।।

९ **अश्वमेध—**

जब देव-उत्पन्न शीघ्रगामी घोडे के पराक्रम को विदथ (यज्ञ—सभा) मे हम बखाने, तो वरुण, मित्र, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा, मरुत हमारी निन्दा न करे।।१।।

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृत स्य राति गृभीता मुखतो नयन्ति।
सुप्राङ जो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्ण प्रियमप्येति पाथ ।।२।।

जब स्नान जल से ढँके उसे मुख पकड़ कर ले चलते हैं, तो आगे-आगे इन्द्र-पूषन् के प्रिय स्थान को मिमियाता बकरा जाता है।।२।।

एषच्छाग पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्य ।
अभिप्रिय यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेन सौश्रवसाय जिन्वति।।३।।

बलशाली अश्व द्वारा आगे-आगे यह बकरा ले जाया जाता है, जो सारे देवो वाला तथा पूषन् का भाग है। जब त्वष्टा सुयश के लिए घोडे के साथ इसे अतिप्रिय पुरोडाश के तौर पर भेजता है।।३।।

यद्वविष्यमृतुशो देवयान त्रिर्मानुषा पर्यश्व नयन्ति।
अत्रा पूष्ण प्रथमो भाग एति यज्ञ देवेभ्य प्रतिवेदयन्नज ।।४।।

जब क्रमानुसार देवताओ की ओर जानेवाले हविष् या घोडे को मनुष्य तीन बार ले जाते हैं। तो पूषन का प्रथम भाग बकरा देवताओं को सूचना देते यहाँ यज्ञ मे प्राप्त होता है।।४।।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राम उत शस्ता सुविप्र ।
तेन यज्ञेन स्वरकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्व।।५।।

होता, अध्वर्यु, आवय (शोधक), अग्नीध्र, सिलबट्टा पकडनेवाला, प्रशस्ति गानेवाला, सुदीप्र—ये सारे ऋत्विक् अच्छी प्रकार किये गये उस यज्ञ द्वारा वाहिकाओ नदियों को पूर्ण करे।।५।।

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषाल ये अस्य यूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु।।६।।

जो यज्ञस्तम्भ (यूप) काटनेवाले, और जो यूप ढोनेवाले जो इस यूप के लिए चषाल गाठ का तक्षण करते हैं, और जो घोडे के लिए पचनपात्र को लाते हैं। उनकी सहायता हमारे काम को ऐसे पूरा करे।।६।।

यद्वाजिनो दामसन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृण सवाताते अपि देवेष्वस्तु।।८।।

शीघ्रगामी घोडे के बाँधने की जो रस्सी है, जो सिरपर बाँधने की और इसके लगाम की रस्सी है, जो इसके मुँह में रक्खा तृण है, वह सब सभी देवों के विषय मे होवे ।।८।।

यदश्वस्य क्रविषा मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्वस्तयो शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु।।६।।

मक्खियो द्वारा खाया गया अथवा जो काष्ठ मे और खड्ग में चिपका हुआ घोड़े का मास है। काटने वाले के दोनों हाथों में या नखों में जो लगा है। सो सभी देवों के विषय में होवे ।।६।।

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति। सुकृतातच्छमितार कृण्वतूत मेघ श्रृतपाक पचन्तु।।१०।।	जो पेट का न पचा भोजन बाहर आता है, जो कच्चे मास का गध है। उसे काटनेवाला सुन्दर बनाये और बलि को सुन्दर पाक से पकाये।।१०।।
यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूल निहतस्याव धावति। मातदभूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तु दशदभ्यो रातमस्तु।।११।।	हे अश्व, आग से पकाये जाते बास के शूल पर रक्खे तेरे शरीर से बहता है। वह न भूमि पर पडे, न तृणो पर, बल्कि वह इच्छुक देवताओं के लिए दान होवे।।११।।
ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति। ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु।।१२।।	जो घोड़े को पका देखते हैं, जो कहते हैं "उतारो, सोंधा है"। जो घोडे की मास-भिक्षा (मास भोजन) के लिए बैठे हैं, उनकी सहायता हमारे काम को पूरा करे।।१२।।
यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि। ऊष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषयन्त्यश्व।।१३।।	मास पकाने की हडिया का जो परखना है, जो पात्रों में जूस का डालना है, चरुओ का ऊष्मणि (ढक्कन), अकुश, काटने का पीढ़ा अश्व को परिभूषित करते हैं।।१३।।
निक्रमण निपदन विवर्तन यच्च पड्वीशमर्वत । यच्च पपौ यच्च घासि जघास सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु।।१४।।	जाने का स्थान, पढने का स्थान, घूमने का स्थान और जो घोड़े की पैर की रस्सी है, एव जो उसने पिया, जो उसने खाया सो सभी देवों के विषय में होवे।।१४।।
मा तवाग्निर्ध्वनयीद्ध मा गन्धिर्मोखा भ्राजत्यभिविक्त जघ्रि । इष्ट वीतमभिगूर्तं वट्कृत त देवास प्रतिगृभ्णन्त्यश्व।।१५।।	धूम की गधवाला अग्नि तुझे शब्दायमान न करे, न पकती हडिया गध दे या टूटे। प्रिय, अपेक्षित, बषट्कार द्वारा बलि दिये उस अश्व को देवता ग्रहण करते हैं।।१५।।
यदश्वाय वास उपस्तृणत्यधीवास या हिरण्यान्यस्मै। सदानमर्वत पड्वीश प्रिया यामयन्ति।।१६।।	जो अश्व के लिए वस्त्र फैलते हैं, जो ऊपरी वस्त्र और सोना इसके लिए फैलाते हैं, घोड़े को बॉधने की रस्सी, पैर की रस्सी सो प्रिय वस्तुयें देवो के पास प्रदान करते हैं।।१६।।
यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद। स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ताते ब्रह्मणा सूदयामि।।१७।।	हे अश्व, अधिक उतावलेपन से जो तुझे एड़ी से या चाबुक से मारा गया है, उसे हवि--यज्ञो में स्रुचा की तरह मन्त्र के साथ मैं फेंकता हूँ।।१७।।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधिति समेति।
अच्छिद्रा गावा वयुना कृणीत परुष्परुनुधुष्या विशस्त।।१८।।

देव-प्रिय बलशाली अश्व की चौंतीस पसलियो मे खड्ग समाता है। चतुराई से गात्रो को छिद्र-रहित काटो, पोर-पोर को कहते काटो।।१८।।

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतु।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डाना प्रजुहोम्यग्नौ।।१९।।

त्वष्टा के घोडे का एक भाग काटनेवाले का, दो सभालेने वाले का होता है, ऋत वैसा (विधान) है। ऋत के अनुसार तेरे गात्रो को जो मैं बॉटता हूँ, उन-उनके पिण्डो की अग्नि मे हवन करता हूँ।।१९।।

मा 'त्वा तपत् प्रिय आत्मापि यन्त मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठपत्ते।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रागात्राण्यसिना मिथूक।।२०।।

बाहर निकलते तेरे प्रिय शरीर को आग न तपाये, खड्ग तेरे शरीर मे न पडा रहे। लालची अविशस्ता (काटनेवाला) तलवार द्वारा छिद्र गात्र जोड को छोड कर न बनाये।।२०।।

न वा उ एतान्म्रियसे न रिष्यसि देवा इदेषि पथिभि सुगेभि।
हरी ते युजा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य।।२१।।

यहाँ तू मरता नहीं है, न घायल होता है। तू सुगम मार्गो से देवो के पास जाता है। इन्द्र के दोनो घोडे (हरी) मरुतो के तुमारे (रथ मे) जुतैगे। (अश्विनो के वाहन) रासभ (गदहे) के धुरे मे दो घोडे चितकबरे हरिन (जुडेगें)।।२१।।

सुगव्य नो वाजी स्वश्व्य पुस पुत्रा उत विश्वापुष रयि।
अनागास्त्व नो अदिति कृणोतु क्षत्र नो अश्वो वनता हविष्मान्।।२२।।
—१।१६२

यह अश्व हमे सुन्दर गायोवाला, सुन्दर अश्वोवाला, पुरुषो, पुत्रो और सारी स्त्रियो वाला धनवाला करे। अदिति, तुम हमे निष्पाप करो, हविवाला अश्व हमे क्षत्र (राजशक्ति) प्रदान करे।।२२।।
—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

६ यन्नीक्षण मास्पचन्या **उखाया** या पात्राणि **यूष्ण** आसेचनानि।
उष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषन्त्यश्व।।१३।।
—१।१६२

६ जो कि मास पकाने की उखा (हडिया) का देखना है, जो जूस डालने के पात्र है। चरुओ (बर्तनो) को गरम रखने वाले ढक्कन हैं, सूना (काटने के पीढे) और चिन्ह-करना (ये) अश्व को तैयार करते हैं।।१३।।
—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

२. अन्न—

१० आजनगंधिं सुरभि बहृवन्नामकृषीवला।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिष।।६।।
—१०।१४६

१० सुगन्धवाली (सोंधी) बिना किसानो के बहुत अन्नोवाली, मृगो की माता अरण्यानी (वन) की मैंने स्तुति की।।६।।
—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

११ असौ य एषि वीरको गृहं गृहं विचाकशत्।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनं ।।२।।
—८।८०

११ यह जो तुम प्रकाशमान वीर घर-घर में जाते हो। (सो) इस धानायुक्त सत्तू-सहित अपूपवान् स्तुति-सहित सोम को पियो।।२।।
—अपाला आत्रेयी, ८।८०

१२ धानावन्तं करंभिणमपूपवन्तमुक्थिनं।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व न ।।१।।

१२ हे इन्द्र, धानावान् सत्तू-युक्त अपूपवान् स्तुति समन्वित् हमारे सोम को प्रात स्वीकार करो।।१।।

पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धाना ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भि सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।।७।।
—३।५२

पूषन्सहित, हरे घोड़ेवाले सुनहले इन्द्र के लिए हमने सत्तू और धाना बनाया है। हे शूर विद्वान वृत्रहन्ता, गण सहित मरुतों के साथ अपूप (रोटी) खाओ, सोम पियो।।७।।
—विश्वामित्र ३।५२

१३ य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषण। न तेन देव आदिशे।।१।।
—६।५६

१३ जो इस सत्तूभक्षी पूषन् का स्मरण करता है, उसे (दूसरे) देव को स्मरण करना नही पड़ता।।१।।
—भरद्वाज, ६।५६

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वो सुत।
करम्भमन्य इच्छति।।२।।
—६।५७

पीने के लिए दो चमुओ (पात्रो) में छाने सोम के पास एक बैठता है, एक करम्भ (सत्तू) चाहता है।।२।।
—भरद्वाज, ६।५७

१४ सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखाय सख्यानि जानते भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाच।।२।।
—१०।७१

१४ जैसे लोग छलनी द्वारा सत्तू को छानते, वैसे जब धीरो ने मन द्वारा छानी वाणी बनाई। यहाँ (इस समय) सखा मित्रता को जानते हैं, इनकी वाणी मे भद्रा लक्ष्मी निहित होती है।।२२।।
—बृहस्पति, १०।७१

१५ यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊद्ध्वो भवति सोतवे।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुल ।।१।।
—१।२८

१५ जहाँ मोटे आकारवाले पत्थर सोम चुआने के लिए उठाये जाते है, वहाँ हे इन्द्र, लालसा के साथ ओखल मे निचोडे (सोम) को पिओ।।१।।
—शुन शेप विश्वामित्र-पुत्र, १।२८

१६ यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषाल ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूतिर्न इन्वतु।।६।।
—१।१६२

१६ जो यूप (स्तम्भ-काष्ठ) काटते और जो यूप ढोते, जो अश्व यूप के लिए चषाल (कुडी) गढते हैं, और जो घोडे के पकाने का पात्र तैयार करते है, अनुमति हमे प्राप्त हो।।६।।
—दीर्धतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

हे इन्द्र, जब तुमने तीन सौ भैसो का मास खाया सोम के तीन सरोवरो को पिया। सारे देवो ने चिल्लाते हुए इन्द्र के लिए पुकारा, जब उसने अहि (वृत्र) को मारा।।८।।
—गौरीवीति शक्ति-पुत्र, ५।२६

हे इन्द्र, तुम्हारे लिए ऋत्विक् शीघ्र मस्त करने वाले सोमो को पत्थर से तैयार करते हैं, तुम उन्हे पीते हो। वह तुम्हारे लिए साडो (वृषभो) को पकाते हैं, भोजनार्थ पकाये गये उन्हे हे मघवन्, तुम खाते हो।।३।।
—वसुक्र, १०।२६

आजनगंधि सुरभि बहवन्नामकृषीवला।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिष।।६।।
—१०।१४६

सविता ने जिसे प्रदान किया, वह सूर्या की बरात के आगे–आगे गई। मघा नक्षत्रो मे बैल मारे गये, दोनो फाल्गुनी (पूर्वा उत्तरा) मे वह व्याही गई।।१३।।
—सूर्या, १०।८५

बेर का फल भी खाया जाता था (९५/८५)

अपने खाने की ही चीजे आर्य अपने देवताओ को अर्पित करते थे। अश्व, गौ, मेष ये बलिपशु थे। इनके उल्लेख के बारे मे देखो—
अश्व—१।१६२।१–२१, १।१६३।१२
गौ—२।७।५, १०६।१४, १०।२८।३, १०।८६।१३, १०।६१।१४
मेष (भेडा)—१०।६१।१४
आर्य दूध देने वाली गायो 'धेनु को अघ्न्या (न मारने लायक) मानते थे, लेकिन, बहिला गाये (बेहद) बलिपशु थीं २।७।५।, १०।६१।१४
यज्ञ के कुछ पात्र थे १।१६२।६, १४

३ खेती—

१७ **सरस्वत्यभि** नो नेषि वस्यो माप स्फरी पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ।।१४।।

—६।६१

१७ हे सरस्वती, हमे धन के लिए ले जाओ, हमे न अपने जल से वचित करो, न हमे दूर करो, हमारी मित्रता और भक्ति स्वीकार करो। हम तुम से दूर के क्षेत्र-अरण्य मे न जावे ।।१४।।

—भरद्वाज, ६।६१

१८ **हिमेव** पर्णा मुषिता **वनानि** बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गा।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरात ।।१०।।

—१०।६८

१८ जैसे हिम द्वारा अपहृत पत्तेवाले वन, वैसे ही बृहस्पति द्वारा अपहृत गायो के लिए **वल** रोया। यह न अनुकरणीय, न दोहराया जाने वाला काम किया, जिससे सूर्य और चद्रमा परस्पर (बारी-बारी से) उगने लगे।।१०।।

—अयास्य आगिरस, १०।६८

१६ उतोस मह्यमिन्दुभि षड्युक्ता अनुसेषिधत्।
गोभिर्यव न **चकृर्षत्** ।।१५।।

—१।२३

१६ जैसे बैलो से जौ की खेती होती है, वैसे मेरे लिए सोमो के साथ छ जुडी (ऋतुओ) को लाये।।१५।।

—शुन शेप विश्वामित्र-पुत्र, १।२३

२० महान्त कोशमुदचा नि षिच स्यन्दन्ता **कुल्या** विषिता पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि **सुप्रपाण** भवत्वघ्न्याभ्य ।।८।।

—५।८३

२० हे पर्जन्य, बडे कोश को उठाओ, सींचो, वेग-युक्त कुल्याये सामने की ओर बहे। जल से द्यौ और पृथिवी को गीला कर दो, गौओ के (पीने के) लिए सुन्दर पान होवे।।८।।

—भौम आत्रेय, ५।८३

२१ शुन वाहा शुन नर शुन कृषतु **लागल**। शुन **वरत्रा** बध्यन्ता शुनमष्ट्रामुदिगय।।४।।

—४।५७

२१ बैल सुखी हो, नर सुखी हो, हल सुख-पूर्वक कृषि करे। रस्सी सुखमय बॉधी जाये, पैना सुख से उठाये।।४।।

—वामदेव, ४।५७

२२ अर्वाची सुभगे भव **सीते** वन्दामहे त्वा। यथा न सुभगाससि यथा न सुफलाससि।।६।।

,२२ हे सुभगे सीते (हराई), पास होओ, हम तुम्हारी वदना करते है जिसमे कि तुम हमारे लिए सुभगा हो, जिसमे कि तुम हमारे लिए सुफला हो ।।६।।

इन्द्र **सीता** नि गृहणातु ता पूषानु यच्छतु ।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा।।७।।

—४।५७

इन्द्र सीता को पकडे, पूषन् उसे प्रदान करे। वह (सीता) दूहने के अगले-अगले सालो तक हमारे लिए दुग्धवाली हो।।७।।

—वामदेव, ४।५७

२३ शुन न **फाला** वि कृषन्तु भूमि शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहै ।
शुन **पर्जन्यो** मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त।।८।।

—४।५७

२३ हमारे लिए फाल सुख से भूमि को जोते, हलवाहे सुखपूर्वक बैलो के साथ गमन करे। पर्जन्य मधु और जल के साथ सुखमय होवे। शुनाशीर (इन्द्र-वायु देवता) हमे सुख प्रदान करे।।८।।

—वामदेव, ५।५७

२४ न वा **अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।**
स्वादो **फलस्य** जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते।।५।।

—१०।१४६

२४ अरण्यानी (वन) हत्या नहीं करती, यदि दूसरा हत्या के लिए न आ जाये। (वहाँ आदमी) स्वादु फल खाता, यथेच्छ पड़ रहता है।।५।।

—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

२५ देखो १४।२६

२५ देखो १४।२६

२६ आरगरेव **मध्वेरयेथे** **सारघेव** गवि नीचीनबारे।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे।।१०।।

—१०।१०६

२६ हे अश्विद्वय, जैसे भनभनानेवाली दो मक्खियाँ मधु जमा करती हैं, वैसे तुम गाय मे मधुर (दूध सचारित करते हो)। जैसे मजूरे पसीने-पसीने हो जाता है, वैसे ही तुम पसीने-पसीने हो जाते हो, जैसे सुन्दर घास से दुर्बल (पशु) शक्ति-सम्पन्न होता है, (वैसे तूम होते हो)।।१०।।

—भूताश काश्यप, १०।१०६

४. सोम—

२७ स बह्रिरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्यो।
सोमश्चमूषु सीदति।।६।।

—६।२०

२७ पानी में दुस्तर वाहक वह सोम दोनों हाथों से मींजा जाता चमुओं में अब स्थित होता है।।६।।

—असितदेवल, ६।२०

२८ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व **सोम** धारया। इन्द्रय पातवे सुत ।।१।। —६।१	२८ इन्द्र के पीने के लिए छाने गये हे सोम, तुम स्वादिष्ठ और मदिष्ठ (अत्यन्त नशा–युक्त) धारा से क्षरित होओ।।११।। —मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, ६।१
२६ अपाम **सोमममृता** अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। कि नूनस्मान् कृणवदराति किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य।।३।। —८।४८	२६ -हमने सोम पिया, अमर हो गये, ज्योति को प्राप्त हुए, देवो को जाना। निश्चय ही शत्रु हमारा क्या कर सकता है। हे अमृत, हिंसक मर्त्य मेरा क्या कर सकता है।।३।। —प्रगाथ कण्व-पुत्र, ८।४८
३० सीदन्तस्ते वयो गोश्रीते **मधौ मरिरे** विवक्षण। अभि त्वामिन्द्र नोनुम ।।५।। —८।२१	३० दुग्ध-मिश्रित मधुर विचक्षण मदिर सोमपान मे पक्षियो की तरह बैठे तुम्हे हम हे इन्द्र नमस्कार करते है।।५।। —सोभरि कण्वे-पुत्र ८।२१
३१ तुविग्रीवो वपोदर सुबाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते।।८।। —८।१७	३१ देखो अध्याय ३।६

अध्याय ५
प्रधान ऋषि

१ भरद्वाज—

१ नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि **तोकाय** **तनयाय** पश्व ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा **सौश्रवसानि** सन्तु ।।१२।।

—६।१

१ भरद्वाज वार्हस्पत्य—

१ हे धनवान् (अग्नि), मनुष्यवत् हमे सदा धन दो, पुत्र-पौत्रो के लिए बहुत पशु दो। निष्पाप, बडे उत्तम अन्न हमे दो, हमारे भद्र यश होवे।।१२।।

—६।१

२ अभि प्रयासि सुधितानि हि ख्यो नि त्वादधीत रोदसी यजध्यै।
अवा नो **मघवन्वाजसातावग्ने** विश्वानि दुरिता तरेम, **ता** **तरेम** तवावसा तरेम।।१५।।

—६।१५

२ हे अग्नि, सुन्दर प्रकार से रक्खी हवि को देखो, द्यौ और पृथिवी के यजन करने के लिए तुम्हे स्थापित किया है। हे मघवन (धनवान्), सग्राम मे हमारी रक्षा करो, सारी बाधाओ से हम तरे, तुम्हारी रक्षा से हम उन्हे तरे, तरे ।।१५।।

—६।१५

३ नू नो अग्ने वृकेभि स्वस्ति वेषि राय पथिभि पर्ष्यह ।
ता **सूरिम्यो** गणते रासि सुम्न मदेम **शतहिमा** सुवीरा ।।८।।

—६।४

३ हे अग्नि, धन के निराबाध मार्गो द्वारा स्वस्ति से हमारे समीप आओ, हमारे दुखो को हटाओ। स्तुति-कर्ता (हम) सूरियो को सुख दो, हम सुन्दर वीर (सन्तानो) सहित सौ जाडे (वर्ष) आनन्द करे।।८।।

—६।४

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिष ।
अमा **चैनमरण्ये** पाहि रिषो मदेम **शतहिमा** सुवीरा ।।१०।।

—६।२४

हे इन्द्र, सग्राम मे (भक्त की) रक्षा के लिए सहायक हो, उस की यहॉ शत्रुओ से रक्षा करो। घर मे और अरण्य मे शत्रु से इसकी रक्षा करो। हम सुवीर (सन्तानो) सहित सौ जाडे आनन्द करे।।१०।।

—६।२४

४ हुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोधवाच मतिभिर्यविष्ठ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अधुक्।।१।।

—६।५

४ अमिथ्याभाषी, सहस के पुत्र (अग्नि), युवातम तुम्हे हम स्तुति से आह्वान करते हैं, जो बहु-स्तुति द्रोह-रहित प्रज्ञावान् सर्वश्रेष्ठ धनो को देता है।।१।।

—६।५

५ ऋजीते परि वृङ्‌ग्धि नो श्मा भवतु नस्तनू।
सोमो अधि ब्रवीतु नो' दिति शर्म यच्छतु।।१२।।

—६।७५

५ हे सीधे जा वालेने (वाण), हमे बचाओ, हमारा तन पत्थर सा होवे, सोम हमसे बात करे, अदिति हमे शरण प्रदान करे।।१२।।

—६।७५

६ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा पस्फरी पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म।।१४।।

—६।६१

६ देखो ४।१७

७ त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते।
भरद्वाजाय दाशुषे।।५।।

—६।१६

७ हे अग्नि, सोम सेवन करनेवाले दिवोदास के लिए इन श्रेष्ठ बहुत धनो को दो, सेवक भरद्वाज के लिए (भी दो)।।५।।

—६।१६

८ उत न प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत्।।१०।।

—६।६१

८ और प्रियाओ मे प्रिया सात बहिनोवाली सुप्रसन्ना सरस्वती हमारे लिए स्तुतियोग्य हो।।१०।।

९ इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत्सानु गिरीणा तविषेभिरूर्मिभि।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वती मा विवासेम धीतिभि।।२।।

—६।६१

९ यह सरस्वती भिस खोदनेवाली की तरह अपने बलो, बेगवती तरगो द्वारा गिरियो के पादभागको भग्न करती है। तटो को ध्वस्त करनेवाली सरस्वती को रक्षा के लिए हम स्तुतियो और गीतो द्वारा बुलाये।।२।।

—६।६१

१० सनेम ते वसा नव्य इद्र प्र पूरव स्तवन्त एना यज्ञै।
सप्त यत्पुर शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासी पुरुकुत्साय शिक्षन्।।१०।।

—६।२०

१० हे इन्द्र तुम्हारी रक्षा से नये धन पाये, इसलिए यज्ञ द्वारा पुरु लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। क्योकि पुरुकुत्स को सहायता करते तुमने दासो की शरदवाली सात गढियो को नष्ट किया।।१०।।

—६।२०

२ वसिष्ठ—

११ यथा व स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यै ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभि शत पूर्भिरायसीभिर्निपाहि ।।७।।

—७।३

१२ दण्डा इवेद् गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकास ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित्तृत्सूना विशो अप्रथन्त ।।६।।

—७।३३

१३ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य श्रृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भा ।
अभि य पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि शुशोच ।।४।।

—७।८

१४ धेनु न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ ।
त्वामिन्मे गोपति विश्व आहा न इन्द्र सुमति गन्त्वच्छ ।।४।।

—७।१८

१५ आवदिन्द्र यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेद सर्वताता मुषा यत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलि शीर्षाणि जभ्ररश्व्यानि ।।१६।।

—७।१८

१६ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभि ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपिगुर्ऋत न ।।५।।

—७।२१

२ वसिष्ठ मैत्रावरुण—

११ हे अग्नि, जो कि तुम्हारे के लिए हम घृत-युक्त परिपूजित स्वाहा (सुन्दर हव्य) दान करते हैं, तुम भी (वैसे ही अपने) अमित तेजो से सौ पत्थर की पुरियो की तरह हमारी रक्षा करो ।।७।।

—७।३

१२ दण्ड से जैसे गौवे वैसे ही भरत जनहीन शिशुओ की तरह छिन्न-भिन्न थे। वसिष्ठ इनका अगुआ (पुरोहित) हुआ, तो तृत्सुओं की प्रजाये बढने लगीं ।।६।।

—७।३३

१३ जब यह भरत की अग्नि अति प्रसिद्ध, सूर्य की तरह अति प्रकाशवान् हो चमका, जिसने युद्ध मे पुरुओ को जीता, वह दीप्तिमान् दिव्य अतिथि प्रज्वलित हुआ ।।४।।

—७।८

१४ दूहने की इच्छा से जैसे धेनु को सुन्दर घास (देवे), वैसे ही वसिष्ठ ने तुम्हारे लिए मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति बतलाते हैं, हे इन्द्र, सुमति के साथ हमारे पास आओ ।।४।।

—७।१८

१५ यमुना ने और तृत्सुओने इन्द्र की सहायता की, जो कि (उसने) भेद का सर्वस्व छीन लिया। अज, शिग्रु और यक्षु घोडों के सिर की बलि लाये ।।१६।।

—७।१८

१६ हे इन्द्र, जादूगर हमे न सताये। न राक्षस हे बलिष्ट, (अपनी) चालोसे। स्वामी (इन्द्र), दुष्ट जन्तुओ को मारे। शिश्न-पूजक हमारे ऋत मे न दखल दे ।।५।।

—७।२१

१७ एवेन्नु क **सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्न** क **भेदमेभिर्ज्जघान।**
एवेन्नु क **दाशराज्ञे सुदास** प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो **वसिष्ठा** ।।३।।

—७।३३

१७ इस प्रकार ही इनके साथ वह सिन्धु को पार हुआ, इस प्रकार ही इनके साथ **भेद** को मारा। इस प्रकार ही हे **वसिष्ठो,** तुम्हारे ब्रह्म (ऋचा) द्वारा इन्द्र ने **दाशराज्ञ** मे **सुदास** की रक्षा की।।२।।

—वसिठ, ७।३३

१८ उतासि **मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या** ब्रह्मन्मनसो'धिजात।
द्रप्स स्कन्न ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवा पुष्करे त्वाददन्त।।११।।

—७।३३

१८ हे ब्राह्मण **वसिष्ठ,** तुम मित्रावरुण-पुत्र हो, और **उर्वशी** के मन से उत्पन्न हो। गिरे बूद की तरह दिव्य मन्त्र द्वारा सारे देवो ने तुम्हे कमल मे धारण किया।।११।।

—७।३३

१६ स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदा न।
यमेन तत परिधि वयिष्यन्नप्सरस परि **जज्ञे वसिष्ठ** ।।१२।।

—७।३३

१६ दोनो (लोको) के प्रकृष्ट विद्वान्, सहस्र—दानवाले और दानसहित, यम के बुने वस्त्र को पहिननेवाले **वसिष्ठ** अप्सरा से पैदा हुए।।१२।।

—७।३३

२० अद्या मुरीय यदि **यातुधनो** अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघ **यातुधा**नेत्याह।।१५।।

—७।१०४

२० यदि मैं जादूगर हू, या यदि मैंने पुरुष की आयु नष्ट की, तो आज ही मैं मर जाऊँ। नहीं तो जिसने मुझे व्यर्थ ही यातुधान कहा, वह अपने दस वीर (पुत्रो) से वचित हो।।१५।।

—७।१०४

२१ यदि वाहमनृतदेव आस मोघ वा देवा अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्य जातवेदो हृणीषे **द्रोघवाचस्ते** निर्ऋथ सचन्ता।।१४।।

—७।१०४

२१ हे अग्नि, यदि मैं झूठे देवतावाला हूँ, या व्यर्थ देवो को आह्वान करता हूँ, (तो भले ही, अन्यथा) हे जातवेद, क्यो हमसे क्रुद्ध हो। तुम्हारे क्रोध को मिथ्याभाषी पावे।।१४।।

—७।१०४

२२ विद्युतो ज्योति परि सजिहान मित्रवरुणा यदपश्यता त्वा।
तत्ते जन्मोतैक **वसिष्ठागस्त्यो** यत्त्वा विश आजभार।।१०।।

—७।३३

२२ जब कि मित्र-वरुण ने विद्युत् की ज्योति से उठते तुम्हे देखा था वह तुम्हारा एक जन्म था और हे **वसिष्ठ,** (दूसरा जन्म वह) जब कि तुम्हे **अगस्त्य** प्रजाओ के पास लाये।।१०।।

—७।३३

२३ दश राजान समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु।।७।।

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत इन्द्रावरुणावशिक्षत। श्वित्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सव।।८।।

—७।८३

२३ हे इन्द्र-वरुण, युद्ध मे यज्ञ-विमुख दस राजा सुदास से नहीं लड सके। भोज में बैठे इन आदमियो की स्तुति सत्य हुई, इनके देव-निमन्त्रण मे देवगण उपस्थित हुए।।७।।
हे इन्द्र और वरुण, दाशराज्ञ युद्ध मे घिरे हुए सुदासकी (तुमने) सहायता की। जिस दाशराज्ञ (युद्ध) मे स्तुति करते श्वेत (गौर) जूडाधारी तृत्सु लोग स्तोत्र से तुम्हारी पूजा करते थे।।८।।

—७।८३

३ विश्वामित्र—

२४ एभिरग्ने सरथ याह्यर्वाङ्नाना रथ वा विभवो ह्यश्वा।
पत्नीवतस्त्रिंशत त्रींश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व।।६।।

—३।६

३ विश्वामित्र कौशिक—

२४ हे अग्नि, इन (देवो) के साथ एक रथपर अथवा नाना रथो पर (चढ) पास आओ, तुम्हारे अश्व समर्थ हैं। पत्नियो-सहित तैंतीस देवताओ को स्वधा के अनुसार लाओ, और (सोम पीकर) मस्त होओ।।६।।

—३।६

विश्वामित्र-जमदग्नि एक साथ—

२५ प्रसूतो भक्षमकर चरावपि स्तोम चेम प्रथम सूरिरुन्मृजे।
सुते सातेन यद्यागम वा प्रति विश्वामित्रयमदग्नी दमे।।४।।

—१०।१६७

२५ प्रेरित हो मैने चरु मे भोजन किया, और सूरि मैंने इस स्तुति को कहा। हे विश्वामित्र, सोम तैयार होने पर यमदग्नि धन के साथ घर मे तुम दोनो के पास आये।।४।।

—विश्वामित्र-यमदग्नि, १०।१६७

२६ वैश्वानर मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्य स्वर्विद।
सुदानु देव रथिर वसूयवो गीर्भीरण्व कुशिकासो हवामहे।।१।।

२६ मन से आदर करते हवि-युक्त हम कुशिक लोग सत्य-अनुसारी स्वर्गज्ञाता सुदानी, दिव्य-रथी, फलदाता वैश्वानर (अग्नि का) धन की कामना से स्तुतियो से आह्वान करते हैं।।१।।

अश्वो न क्रन्द जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे।
स नो अग्नि सुवीर्य स्व्यश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृवि।।३।।

—३।२६

घोडो की तरह हिनहिनाता वैश्वानर (अग्नि) कुशिको द्वारा युग-युग मे (हर समय) प्रज्वलित किया जाता रहा। वह अमृतो मे जागरूक अग्नि हमे सुन्दर अश्व-युक्त, सुन्दर वीर्य-युक्त रत्न दे।।३।।

—३।२६

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु ।
द्युम्नवद ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे ।।१५।।

—३ ।२६

मरुतो की तरह अमित्रो से लडनेवाले आगामी प्रथम उत्पन्न वह मन्त्रो का सब कुछ जानते हैं। कुशिक तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रस्तुत करते हैं, (उनमे) एक-एक (अपने) घर मे अग्नि का समिन्धन करते हैं।।१५।।

—३ ।२६

इम काम मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्य विप्रा इन्द्राय वाह कुशिकासो अक्रन्।।२०।।

—३ ।३०

(हमारी) इस कामना को गौवो, अश्वो (और) चमत्कारिक धन द्वारा पूरा और प्रसिद्ध करो। (हे इन्द्र), स्वर्ग कामनावाले सनातन विप्रो ने स्तुतियो द्वारा तुम्हारा सम्मान किया है।

—३ ।३० ।२० ।३ ।५० ।४

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवे ।
प्र सिन्धुमच्छा वृहती मनीषावस्युरह वे कुशिकस्य सूनु ।।५।।

—३ ।३३

हे पवित्राओ, मेरे सौम्य वचन (सुनने) के लिए मुहूर्त भर अपनी यात्रा से रुक जाओ। कृपाकाक्षी मैं कुशिक-सुनु वडी लालसा से नदी की प्रार्थना करता हूँ।।५।।

—३ ।३३

त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे।
कुशिकासो अवस्यव ।।६।।

—३ ।४२

हे पुरातन इन्द्र, तुम को रक्षा-प्रार्थी कुशिक लोग छाने सोम को पीने के लिए हम बुलाते हैं।।६।।

—३ ।४२

महा ऋषिर्देवजा देवजूतो स्तभ्नात् सिन्धुमर्णव नृचक्षा ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ।।६।।

देवज, देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि विश्वामित्र ने सिन्धुनदी को स्तम्भित किया, जव सुदास को (नदी) पार कराया, तो इन्द्र ने कुशिकों द्वारा (सुदास के साथ) प्रिय वर्ताव किया।।६।।

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता सुदास ।
राजा वृत्र जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या ।।११।।

—३ ।५३

हे कुशिको, पास आओ, चेतो, धन (जीतने) के लिए सुदास के घोडे को छोडो। राजा (सुदास) ने पूर्व, पश्चिम और उत्तर के शत्रु मारे, फिर पृथिवी के वरस्थान मे यज्ञ करे।।११।।

—३ ।५३

२७ अर्णासि चित् पप्रथाना **सुदास** इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्द्धन्त **शिम्युमुचथस्य** नव्य शाप **सिन्धूनामकृणोदशस्ती** ।।५।।

—७।१८

२७ स्तुत्य इन्द्र ने **सुदास** के लिए फूली नदियो को गाध और सुपारा बनाया। (उस) भयानक नमस्करणीयने स्तुति-शत्रु **शिम्युसे** सिन्धुओ के शापको अ-प्रशस्त किया।।५।।

—वसिष्ठ, ७।१८

२८ प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे **विपाट्छुतुद्री** पयसा जवेते ।।१।।

२८ पर्वतो को गोद से दो मुक्त घोडियो की तरह अभिलाषवती हसती, चाटती गाय-माताओ की तरह, शुभ्र **विपाश्** और **शुतुद्रि** जल के साथ बह रही हैं।।१।।

"इन्द्रेषिते प्रसव भिक्षमाणे अच्छा **समुद्र** रथ्येव याथ ।
समाराणे उर्मिभि पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे।।२।।

(विश्वामित्र—) "इन्द्र द्वारा प्रेरित आज्ञा सुनती दो रथियो की तरह तुम समुद्र को जाती हो। हे शुभ्रे, एक साथ प्रवाहित, लहरो से फूली, एक दूसरे को (साथ) लिए तुम जाती हो।।२।।

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मीनषावस्युरह **वे** **कुशिकस्य** सूनु"।।५।।

"हे पवित्राओ, मेरा सौम्य वचन (सुनने के) लिए मुहूर्त भर अपनी यात्रा से रुक जाओ। कृपाकाक्षी मैं **कुशिक-सूनु** बडी लालसा से नदी से प्रार्थना कर रहा हूँ"।।५।।

"इन्द्रो अस्मा अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्र परिधि **नदीना**।
देवो नयत सविता सुपाणिस्तस्य वय प्रसवे याम उर्वी"।।६।।

(नदियाँ—) "वज्रबाहु इन्द्र ने नदियो के रोकनेवाले वृत्र को मारा, हमे खोदा। सुपाणि सवितादेव हमे लाया, उसकी आज्ञा मे हम फैली हुई जा रही हैं"।।६।।

"ओषु स्वसार **कारवे** शृणोत ययौ वो दूरा**नदनसा** रथेन।
निषू नमध्व भवता सुपारा अधो अक्षा सिन्धव स्रोत्याभि"।।६।।

(विश्वामित्र—) "हे बहिनो, ठहरो, कवि की सुनो। वह दूर से तुम्हारे पास शकट-रथ द्वारा आया है। थोडा नीची हो सुपारा हो जाओ। हे सिन्धुओ, अपनी धाराओ मे हमारे धुरे से नीची हो जाओ"।।६।।

"आ **ते** **कारो** शृणवामा वचासि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नसै पीप्यानेव योषा मय येव कन्या शश्वचै ते"।।१०।।

(नदियाँ—) "हे कवि, तेरे वचनो को हम सुनती हैं, तू जो शकट-रथ द्वारा दूर से आया है। हम पिलानेवाली माता की तरह, पति को आलिगन करनेवाली तरुणी की तरह तेरे लिए नीची हो जाती हैं" ।।१०।।

—३।३३

"यदग त्वा **भरता** सतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूत।
अर्षादह प्रसव सर्गतक्त आ वो वृणे सुमति यज्ञियाना" ।।११।।

हे प्रियाओ, इन्द्र-प्रेरित योधा-समूह **भरत** तुम्हे जब पार हो जाये तो (तुम्हारी) धारा बेग से बहे। मैं यज्ञ-योग्य तुम्हारी सुमति चाहता हूँ"।।११।।

अतारिषु**र्भरता** गव्यव समभक्त विप्र सुमति नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभ।।१२।।

—३।३३

लडने वाले भरत पार हो गये, विप्र ने नदियो की सुमति प्राप्त की। धन-युक्त लहरो से परिपूर्ण होओ, दूसरी धारा को भरती शीघ्र जाओ।।१२।।

—विश्वामित्र ३।३३

२६ महा ऋषिर्देवजा देवजूतोस्तभ्नात् **सिन्धुमर्णव नृचक्षा** ।
विश्वामित्रो यदबहत् **सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र** ।।६।।

—३।५३

२६ देवज देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि **विश्वामित्र** ने सिन्धुनद को स्तभित किया, जब इन्द्र ने **कुशिको** के द्वारा **सुदास** से प्रिय बर्ताव किया।।६।।

—३।५३

३० इळामग्ने पुरुदस सनि गो शश्वत्तम हवमानाय साध।
स्यान्न सूनुस्तनयो विजावा'ग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे।।२३।।

——३।१।२३, ३।७।११, ३।१५।७, ३।२२।५, ३।२३।५

३० हे अग्नि, सदा के स्तुतिकर्त्ता, मुझे अन्न प्रदान करो। हमारे पुत्र-पौत्र सन्तानवाले हो। हमारे लिए वह तुम्हारी सुमति हो।।२३।।

—३।१

३१ शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सजित धनाना।।२२।।

—३।३०।२२, ३।३१।२२, ३।३२।१७, ३।३४।११, ३।३६।११, ३।३८।११, ३।४८।५, ३।४६।५, ३।५०।५

३१ इस युद्ध मे श्रेष्ठतम नेता मघवान् उग्र इन्द्र को रक्षा के लिए हम पुकारते हैं, जो कि युद्धो मे वृत्रो (शत्रुओ) को मारता, घनो को जीतता, स्तुतियो को सुनता है।।२२।।

—३।५३

३२ य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारत जन।।१२।।

—३।५३

३२ जो यह दोनो द्यौ-पृथिवी हैं, (उनके धारक) इन्द्र की मैने स्तुति की।
विश्वामित्र का यह ब्रह्म (ऋचा) **भरत जन** की रक्षा करता है।।१२।।

—३।५३

४ वामदेव—	**४ वामदेव गौतम—**
३३ महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय। त्व नो अस्य वसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूना ।।११।। —४।४	३३ हे अतितरुण, सुक्रियावान् गृहमित्र होता, वाणियो और बन्धुता से, जो मेरे पास पिता **गोतम** से आई, तुम हमारे इस वचन को जानो मैं महान् (शत्रुओ) को नष्ट करता हूँ।।११।। —४।४
३४ ये पायवो **मामतेयन्ते** अग्ने पश्यन्तो **अन्ध** दुरितादरक्षन्। ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देमु ।।१३।। —४।४	३४ हे अग्नि, तुम्हारी जिन रक्षिका किरणो ने आपदाओ से **मामतेय** अन्धे की रक्षा की, सारे धनोवाले सुकर्मा तुमने उन्हे रक्षित किया, नाश करने की इच्छावाले रिपु उसे हानि नहीं पहुँचा सके।।१३।। —४।४
३५ अह **पुरो** मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती **शम्बरस्य**। शततम वैश्य सर्वताता **दिवोदासमतिथिग्व** यदाव।।३।। —४।२६	३५ मैने सोम से मस्त हो **शम्बर की** नौ-सहित नब्बे पुरियो (गढियो) को ध्वस्त किया। जब यज्ञ (युद्ध) मे अतिथिपूजक **दिवोदास की** मैने रक्षा की, तो सौवीं को उसके प्रवेश-योग्य बनाया।।३।। —४।२६
३६ गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमह देवाना जनिमानि विश्वा। शत मा **पुर** आयसीररक्षन्नधश्येनो जवसा निरदीय।।१।। —४।२७	३६ मैंने इन सारे देवो की सतानो को गर्भ मे रहते जाना। सौ **आयसी** (दृढ) पुरियो ने मुझे बन्द रक्खा। तब बाज की तरह वेग से मै निकल गया।।१।। —४।२७
३७ शतश्मन्मयीना **पुरामिन्द्रो** व्यास्यत्। **दिवोदासाय** दाशुषे।।२।। —४।३०	३७ इन्द्र ने **अश्मन्मयी** (पत्थरवाली) सौ पुरियो को यजमान **दिवोदास** के लिए नष्ट किया।।२०।। —४।३०
३८ वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुम्या नृतम शचीवान्। श्रिये **परुष्णीमु**षमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये।।२।। —४।२२	३८ श्रेष्ठतम नेता शचीवान् बुद्धिमान् उग्र पराक्रमी इन्द्र ने दोनो बाहुओ से वृष्टिकारी चार धारोवाले वज्र को फेकते ढॉकनेवाली **परुष्णी** (रावी) का सेवन करते जिसके भागो को मित्रता के लिए ढॉका।।२।। —४।२२

३६ बोधद्यन्मा हरिभ्या **कुमार साहदेव्य** । अच्छा न हूत उदर।।७।।

उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात्। प्रयता सद्य आददे।।८।।

एष वा देवावश्विना **कुमार साहदेव्य** । दीर्घायुरस्तु **सोमक** ।।६।।

—४।१५

३६ **सहदेव-पुत्र कुमार** ने मुझे दो घोडे को देना चाहा। पुकारने पर मै पीछे नहीं हटा।।७।।

सहदेव-पुत्र कुमार से दो बढिया तेज घोडो को तुरन्त मेने पाया।।८।।

हे अश्विनो, तुम्हारी (कृपा से) यह **सहदेव-पुत्र कुमार सोमक** दीर्घायु हो।।६।।

—४।१५

४० त्व **पिप्रू** मृगय शूशुवा**समृजिश्वनै वैदथिनाय** रन्धी ।
पचाशत् **कृष्णा** निवप सहस्रात्क न पुरो जरिमा विदर्द ।।१३।।

—४।१६

४० हे इन्द्र, तुमने **प्रिप्रु**, मोटे **मृगय** को **विदथी**-पुत्र **ऋजिश्वा**के लिए मारा, पचास हजार **कालों** को मारा, जीर्ण चोगे की तरह पुरो को नष्ट किया।।१३।।

—४।१६

४१ अय चक्रमिषणात् सूर्यस्य न्येतश रीरमत् ससृमाण।
आकृष्ण ई जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ।।१४।।

४१ इस इन्द्र ने सूर्य के चक्र को प्रेरित किया, (युद्ध के लिए) जाते **एतश** को रोका। कुटिलगति काले (मेघ) ने आकाश के गर्भ मे इसके आधार मे चमडे से सिक्त किया।।१४।।

असिक्न्या यजमानो न होता।।१५।।

—४।१७

जैसे **असिक्नी** (चनाब) मे यजमान होता।।१५।।

—४।१७

४२ एतदस्या अनःशये सुसम्पिष्ट **विपाश्या**। ससार सीं परावत ।।११।।

उत **दास कौलितर** बृहत पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र **शम्बर**।।१४।।

उत दासस्य **वर्चिन** सहस्राणि शता वधी । अधि पच प्रधींरिव।।१५।।

—४।३०

४२ (इन्द्र द्वारा) अतिचूर्णित उषा का शकट **विपाश्** (व्यास) के किनारे गिरा। वह (उषा) पश्चिम देश को चली गयी।।११।।

हे इन्द्र, तुमने **कुलितर-पुत्र शम्बर दास** को बृहत् पर्वत **(हिमालय)** के ऊपर मारा।।१४।।

और चक्के की अरो की तरह दास **वर्ची के** १५०० (भट) मारे।।१५।।

—४।३०

४३ शुन **वाहा** शन नर शुन कृषतु **लागल**।
शुन **वरत्रा** बध्यन्ता शुनमष्ट्रमुदिगय।।४।।

—४।५७

४३ बैल सुखी हो, नर सुखी हो, हल सुखपूर्वक कृषि करे, रस्सी सुखमय बॉधी जाये पैना सुख से उठाये।।४।।

—४।५७

४४ अर्वाची सुभगे भव **सीते** वन्दामहे त्वा। यथा न सुभगाससि यथा न सुफलाससि।।६।।

४४ हे सुभगे, पास होओ, हम तुम्हारी वन्दना करते हैं, जिसमे कि तुम हमारे लिए सुफला हो।।६।।

इन्द्र **सीता** नि गृह्णातु ता पूषानुयच्छतु। सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा।।७।।

—४।५७

इन्द्र सीता को पकडे, पूषन् उसे प्रदान करे, वह सीता दूहने के अगले-अगले साल हमारे लिए दुग्धवाली हो।।७।।

—४।५७

४५ शुन न **फाला** वि कृषन्तु भूमि शुन **कीनाशा** अभि यन्तु वाहै। शुन पर्जन्या मधुना पयोभि **शुनासीरा** शुनमस्मासु धत्त।।८।।

—४।५७

४५ हमारे लिए फाल से भूमि को जोते, हलवाहे सुखपूर्वक बैलो के साथ गमन करे। पर्जन्य मधु और जल के साथ सुखमय होवे, **शुनाशीर** (इन्द्र-वायु देवता) हमे सुख प्रदान करे।।८।।

—४।५७

४६ अभि प्रवन्त समनेव **योषा** कल्याण्य स्मयमानासो अग्नि। घृतस्य धारा समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदा ।।८।।

—४।५८

४६ जैसे मुस्कुराती कल्याणी स्त्रियॉं मेले मे, (जाती) वैसे ही घृत की धारा अग्नि का अभिगमन करती है। घृत की धारा ईंधन बनती, उन्हे अग्नि प्रसन्न हो सेवन करता है।।८।।

—४।५८

५. गृत्समद—

५ गृत्समद शौनहोत्र—

४७ असर्जि **स्कम्भो** दिव उद्यतो मद परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति। अशु रिहन्ति मतय पनिप्नत गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययु ।।४६।।

४७ द्यौ का खम्भा उद्यत-मद तेहरा छाना गया भुवनो मे विचरण करता है। जब स्तुतियाँ प्रशसनीय सोम को छूती हैं, तो शब्द करते ऋत्विज सोम के चोगे के पास जाते हैं।।४६।।

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्य पुनानस्य सयतो यन्ति रहय। यद् गोभिरिन्दो **चम्वो** समज्यस आ सुवान सोम कलशेषुसीदसि।४७।

छाने जाते (समय) तुम्हारी धाराये भेड के ऊनको सूक्ष्म वेग से पार होती है। हे सोम, जब तुम दोनो चमुओ मे गौओ से मिलाये जाते, तो हे सोम, तुम कलशो मे बैठते हो।।४७।।

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्यो' व्यो वारे परि धाव मधु प्रिय।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ।।४८।।

—६।८६

ऋतु के जानकार, हमारी प्रशसा के योग्य हे सोम भेड के लोमो (वाले छननो) मे प्रिय और मधुर रसके साथ तुम दौडो, सारे राक्षसो को मारो। हे सोम, सुवीर सन्तानोवाले हम अत्रि लोग यज्ञ में तुम्हारी महिमा गायेगे।।४८।।

—६।८६

४८ अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधु। विश्वा अधिश्रियो दधे। ।।५।।

—२।८

४८ स्वयप्रकाश्य भक्षक अग्नि के लिए उक्थ (मन्त्र) बढे। (उसने) सारी शोभा धारण की।।५।।

—२।८

४६ स रन्धयत् सदिव सारथये शुष्णमशुषं कुयव कुत्साय।
दिवोदासाय नवति च नवेन्द्र पुरो व्येरच्छवरस्य।।६।।

—२।१६

४६ उस दिव्य इन्द्र ने सारथी कुत्स के लिए शुष्ण, अशुष, कुयव को मारा।
और दिवोदास के लिए शम्बर की नित्रानवे पुरिया ध्वस्त कीं।।६।।

—२।१६

५० अध्वर्यवो य शत शंबरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वी।
यो वर्चिन शमतमिद्र सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै।।६।।

अर्ध्वयवो य शतमासहस्र भूम्या उपस्थे बपज्जघन्वान्।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्यावृणग्भरत सोममस्मै।। ७ ।।

—२।१४

५० हे अध्वर्युओ, जिसने शम्बर की पत्थर सी सौ प्राचीन पुरियो को नष्ट किया। जिसने वर्ची के सौ-हजारो (भटो) को मारा, उसके लिए सोम ले आओ।।६।।

—२।१४

५१ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी पुरन्दरो दासीरैरयद्वि।
अजनयन्मनवे क्षामपञ्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत्।। ७।।

—२।२०

५१ उस वृत्रनाशक, पुर-दर्दरक इन्द्र ने काले दासों का विनाश किया। मनु के लिए पृथिवी और जल को पैदा किया। वह यजमान की अभिलाषा पूरी करता है।।७।।

—२।२०

५२ अध्वर्यवो य स्वश्न जघान य शुष्णमशुष यो व्यस।
य पिप्रु नमुचि यो रुधिका तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत।।५।

—२।१४

५२ हे अध्वर्युओ, जिसने स्वश्न को मारा, जिसने शुष्ण, अशुष को, जिस ने व्यस को मारा। जिसने पिप्रु, नमुचि को, जिसने रुधिका को मारा, उस इन्द्र के लिए अन्न चढाओ।।५।।

—२।१४

५३ स्वप्नेनाभ्युप्या **चुमुरिं धुनिं** च जघन्थ दस्यु प्र **दभीतिमाव** ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्य सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।६।।
—२।१५

५३ जिसने स्वप्न द्वारा निद्रा-अभिभूत कर **चुमुरि** और **धुनि** दस्युको मारा, तथा **दभीति** की तुमने रक्षा की। यहाँ अनुचर ने भी हिरण्य प्राप्त किया। यह सब इन्द्र ने सोम के मद मे मस्त हो किया।।६।।
—२।१५

५४ देखो इसी अध्याय मे ४६।

५४ देखो यहीं ४६

५५ य **शम्बर** पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमान यो अहि जघान दानु शयान स जनास इन्द्र ।।११।।
—२।१२

५५ जिसने पर्वत मे रहते **शम्बर** को चालीसवीं शरद मे जा धरा। जिसने ओजायमान हो सोते हुए दानव **अहि**[1]**को** मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है।।११।।
—२।१२

५६ देखो यहीं ४७।

५६ देखो ४७

६ कक्षीवान्—

६ कक्षीवान् दैर्घतमस—

५७ परावत नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्न चक्रथुर्जिह्मबार।
क्षरन्नापो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते **गोतमस्य**।।१।।
—१।११६

५७ नासत्य (अश्विद्वय), तुमने ऊपर पेदी तिरछी बारीवाले पश्चिम के कुऍं को उठाया। उससे प्यासे **गोतम** के सहस्र (गुण) धन और पान के लिए जल निकला।।६।।
—१।११६

५८ चरित्र हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्याया।
सद्यो जघामायसीं **विश्पलायै** धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्त।।१५।।

५८ **खेल** की स्त्री का एक पैर युद्ध मे पक्षी के पख की तरह कट गया। तुमने तुरन्त उसे चलने तथा धन के लिए **आयसी** (तॉबे की) जघा प्रदान की।।१५।।

शत मेषान् वृक्ये चक्षदान**मृजाश्व** त पितान्ध चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त दस्रा भिषजावनर्वन्।।१६।।

वृकीके लिए काट कर सौ भेडे देनेवाले उस **ऋजाश्व** को पिता ने अन्धा कर दिया। उसे दोनो श्रेष्ठ भिषज नासत्यो ने अ-सत् देखनेवाली विचक्षण ऑखे प्रदान कीं।।१६।।

यदयात **दिवोदासाय** वर्तिर्**भरद्वाजाया**श्विना हयन्ता।।
रेवदुवाह सचनो रथो वा वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता।।१८।।
—१।।११६

जब पुकारे गये दोनो अश्वि हवि के लिए **दिवोदास** के पास, **भरद्वाज** (अन्न-प्रदायक या ऋषि) के पास गये, तो वृषभ और सोस जुडा तुम्हारा रथ अन्न-धन को ढोकर ले गया ।।१८।।
—१।११६

[1] सर्प, नमुचि वृत्र, शबर के लिए यह नाम

५९ अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रा नावमातास्थिवास।।५।।

—१।११६

५९ हे अश्विद्वय, तुमने आश्रय-रहित, शरणस्थान-रहित पकडने की वस्तु से रहित समुद्र मे वह पराक्रम किया, जब कि सौ पतवारोवाली नाव मे बैठे भुज्यु को उठा लाये।।५।।

—१।११६

६० युव नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्व ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त।।७।।

६० हे दोनो नेताओ तुमने स्तुतिकर्त्ता कृष्ण-पुत्र विश्वक के लिए (उसके पुत्र) विष्णापु को दिया। तुमने पिता के घर बैठी झुराती घोषा को पति प्रदान किया।।७।।

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाज विप्राय भुरणा रदन्ता।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना स विश्पलां नासत्यारिणीत।।११।।

—१।११७

हे शीघ्रगामी अश्विनो, तुमने पुत्र के मान से स्तुत सतुष्ट हो विप्र के लिए अन्न प्रदान किया। मन्त्रो से बढाये जाते हे नासत्यो, तुमने विश्पला को अगस्त्य के लिए पुन प्रदान किया।।११।।

—१।११७

६१ अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमान।।१।।

६१ सिन्धु तटवासी भाव्य (स्वनय) के वास्ते मैं बुद्धि-युक्त अ-मद स्तोत्र लाता हूँ। जिस अजेय राजा ने यश की कामना से मेरे लिए हजार सवन किये।।१।।

शत राज्ञो नाथमानस्य निष्काच्छतमश्वान् प्रयतान्त सद्य आद।
शत कक्षीवा असुरस्य गोना दिवि श्रवो' जरमाततान।।२।।

मैं कक्षीवान् ने याचना करने पर राजा से सौ निष्क (सुवर्ण-माला), दानके सौ घोडे तुरन्त पाये, और असुर की सौ गाये (भी)। उसका अ-जर यश द्यौ मे फैला।।२।।

उप मा श्यावा. स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थु।
षष्टि सहस्रमनुगव्यमागात् सनत् कक्षीवा अभिपित्वे अहूना।।३।।

और स्वनय द्वारा दत्त काले घोडो वाले वधुओ (दासियो) चढे दस रथ मेरे पास रहे। पीछे एक हजार साठ गाये भी आईं। कक्षीवान् ने दिनो की समाप्ति के समय उन्हे पाया।।३।।

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणा सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्ति।
मदच्युत कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्रा।।४।।

दशरथ के चालीस लाल घोडे हजार (गायो) की पाती वहन करते थे। कक्षीवान् (लोगो) और पज्रो ने मुक्तावाले वे मस्त घोड़े पाये।।४।।

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथा।
सर्वाहमस्मि **रोमशा** गन्धारीणामिवाविका।।७।।

—१।१२६

समीप-समीप मेरा स्पर्श करो। मुझे छोटा न मानो। गन्धार की भेडो की तरह मैं (स्वनय-पत्नी) रोमशा सम्पूर्ण (अगवाली) हूँ।।७।।

—१।१२६

७. अगस्त्य—

७ अगस्त्य मैत्रावरुण—

६२ नदस्य मा रुधत काम आगन्नित आजातो अमुत कुतश्चित्।
लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्त।।४।।

—१।१७६

६२ रोकते हुए भी मुझे यहाँ-वहाँ या कहीं से काम-भाव आ गया। अधीर **लोपामुद्रा** पति को चाहती है। वह अधीरा स्वास लेती धीर (पति) को चुम्बन करती है।।४।।

—१।१७६

६३ अभूदिद वयुनमोषु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण।
धिय जिन्वा धिष्ण्या **विश्पला वसू** दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता।।१।।

—१।१८२

६३ हे मनीषियो, यह था, कि (अश्विनीकुमारो का) दृढ (घोडो) का रथ मौजूद है। आगे होओ, प्रसन्न रहो। स्तुति करो, स्तुति-योग्य हैं। द्यौ के नाती शुचिव्रत, **घिष्ण्य विश्पला**-सहायक अश्विन सुकर्मा (लोगो) का भला करे।।१।।

—१।१८२

६४ त्व धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरप **सीरा** न स्रवन्ती।
प्रयत् **समुद्र**मतिशूर पर्षि पारया **तुर्वश यदुं** स्वस्ति।।६।।

—१।१७४

६४ हे इन्द्र, धुननेवाले तुमने नदियो की तरह धुननेवाले जलो को बहाया, कँपनेवाली सीरा की तरह नदियो को गिराया। हे शूर, जब तुम समुद्र मे बाढ करो, तब **तुर्वश** और **यदु** को कल्याण-सहित पार करो।।६।।

—१।१७४

६५ **करम्भ** ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथि।
वातापे पीव इद् भव।।१०।।

—१।१८७

६५ हे औषधि (रूप) सत्तू, तुम स्थूल, दृढ पोषक बनो। और हे वायुमित्र (वातापि), तुम भी स्थूल बनो।।१०।।

—१।१८७

शरास कुशरासो दर्भास सैर्या उत।
मौंजा अदृष्टा वैरिण सर्वे साक न्यलिप्सत।।३।।

—१।१९१

शर, कुशर (कुश), दर्भ, सैर्य, मूँज, वीरण (खश) (मे रहते) सभी अदृष्ट वैरी (जन्तु) मुझे लगते हैं।।३।।

—१।१९१

६६ यस्य विश्वानि हस्तयो पचक्षितीना वसु।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि।।३।।
—१।१७६

६६ जिसके दोनो हाथो मे पाचो जनो के सारे धन हैं। (उसे) चीन्हो, जो हमसे द्रोह करता है, दिव्य विजली की तरह उसे नष्ट करो।।३।।
—१।१७६

८ दीर्घतमा—

८ दीर्घतमा मामतेय—

६७ को वा दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गो।
जिगृतमस्मे रैवती पुरन्धी कामप्रेणेव मनसा चरन्ता।।२।।

६७ हे दोनो वसु (अश्विनीकुमारो), (तुम्हारी) सुमति के लिए तुम दोनो को हव्य प्रदान कौन करे, जिसे कि तुम नमस्कार (सुन कर) गौ के स्थान मे देते हो। हमारे लिए जागो, धनवाली, इच्छापूरक, कामना प्रेरक (गाये) मन के साथ (लिए मानो) तुम विचरण करते हो।।२।।

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मामामिमे पतत्रिणी विदुग्धा।
मामा मेधो दशतयश्चितो धाक प्रयद्वा बद्धस्त्मनि खादति क्षा।।४।।
—१।१५८

(यह) स्तुति उचथ्य-पुत्र की रक्षा करे। यह उडनेवाले (दोनो) हमारी हानि न करे। दस गुनी चिनी हुई जलती आग मुझे न जलाये, जब कि (वह) तुम्हारे लिए शरीर से वद्ध पृथिवी को खाता है, लेटता है।।४।।
—१।१५८

६८ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यत नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण **औचथ्यो** वा प्रयत्सस्राथे अकवाभिरूती ।।१।।
—१।१५८

६८ रुलानेवाले, वहुत ज्ञानी, वर्धनशील, कामनावर्षी हे दोनो वसु, हमे अभीष्ट प्रदान करो, जिसे कि **उचथ्य-पुत्र** (दीर्घतमा) तुम से चाहता है। तुम अ-कृपण (हो) रक्षा प्रदान करते हो।।१।।
—१।१५८

६६ न मा गरन्नद्यो मातृमा दासा यदीं सुसमुब्धमबाधु।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत स्वय दास उरो असावपिग्ध।।५।।
—१।१५८

६६ (तुम) अत्यन्त माता (रूपी) नदियॉं मुझे नहीं निगल गयीं, जब कि दासो ने नीचे मुँह करके फेक दिया। जब त्रैतन ने इसका सिर काटा दास ने स्वय (अपने) उर और कन्धे पर चोट खा लिया।।५।।
—१।१५८

७० रथाय **नावमुत** नो गृहाय नित्यारित्रा पद्वतीं रास्यग्ने।
अस्माक वीरा उप नों मघोनो जनाश्च या पारयाच्छर्म या च ।।१२।।

—१।१४०

७० हे अग्नि, रथ के लिए गृह के लिए सदा हमे पतवारवाली पदवाली नाव प्रदान करो। जो हमारे वीरो और धनवाले जनो को पार करे, और जो शरण हो।।१२।।

—१।१४०

७१ ये **वाजिनं** परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिर्निहरेति।
ये **चार्वतो** **मांस**भिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु।।१२।।

—१।१६२

७१ जो पके घोडे को देखते, जो बोलते "उतारो सोधा है" और जो घोडे के मॉस-भोजन को सेवन करते है, उनका सकल्प हमारे काम को पूरा करे।।१२।।

—१।१६२

७२ न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवा इदेषि पथिभि सुगेभि।
हरी ते युजा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य।।२१।।

—१।१६२

७२ हे अश्व, यहॉ न तुम मरता है न आहत होता है, (बल्कि) सुगम मार्गो से देवो के पास जाता है। इन्द्र के पास दोनो घोडे मरुतो के चितकबरे हरिन तुम्हारे (रथ मे) जुतेगे, (अश्वि-वाहन) रासभ के धुरे में दो घोडे (जुडेगे) ।।२१।।

—१।१६२

६ गोतम रहूगणा-पुत्र—

६ गोतम रहूगण-पुत्र—

७३ अवोचाम **रहूगणा** अग्नये मधुमद्वच। द्युम्नैरभि प्रणोनुम ।।५।।

—१।७८

७३ हम **रहुगण** (लोग) अग्नि के लिए मधुर वाणी बोलते हैं। उज्ज्वल (स्तुतियो) से बहुत नमस्कार करते हैं।।५।।

—१।७८

७४ **यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ्** धियमतन्वत।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्नु स्वराज्य ।।१६।।

—१।८०

७४ हे इन्द्र, **अथर्वा**, (हमारे) पिता **मनु**, **दधीचि** ने जिस यज्ञ को किया। उसमे अपना स्वराज्य प्रकट करते पूर्व जैसे मन्त्र, उक्थ तुम्हे प्राप्त हुए।।१६।।

—१।८०

७५ आदगिरा प्रथम दधिरे वय इद्धाग्नय शम्या ये सुकृत्यया।
सर्व पणे समविन्दन्त भोजनमश्वावन्त **गोम**न्तमा पशु नर ।'।४।।

७५ ऋतु से महान् स्वधा के पीछे बल से भयकर बढे, सुन्दर शिप्रवाले हरित अश्वोयुक्त इन्द्र ने लक्ष्मी के लिए अपने बलिष्ठ दोनो हाथो मे आयस (कठोर) वज्र (गदा) धारण किया।।४।।

यज्ञैरथर्वा प्रथम पथस्तते तत सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आगा आजदुशना काव्य सचा यमस्य जातममृत यजामहे।।५।।

—१।८३

(तुमने) पृथिवीलोक को परिपूर्ण किया, द्यौ मे तारो को स्थापित किया। हे इन्द्र, तुम्हारे जैसा न कोई जन्मा, न जन्मेगा। तुम विश्व को अत्यन्त ठीक से धारण करते हो।।५।।
पहले अगिराओ ने अन्न प्राप्त किया, फिर जन का अग्नि सुकृत्य (यज्ञा) द्वारा प्रज्वलित हुआ। नरो ने पणि के अश्व-युक्त, गो-युक्त सभी पशु, भोजन (छीन) लिए।।४।।
अथर्वा ने पहले यज्ञो द्वारा पथ विस्तृत किया, तब व्रतपालक प्रकाशमान सूर्य (इन्द्र) प्रकट हुआ। (जो) कवि-पुत्र उशना के साथ गाये लाया। यम के अमर पुत्र (इन्द्र) का हम यजन (पूजा) करते हैं।।५।।

—१।८३

७६ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत। जघान नवतीर्नव।।१३।।
इच्छन्नश्वस्य यच्छिर पर्वतेष्वपश्रित। तद्विदच्छर्यणावति।।१४।।

—१।८४

७६ दुर्धर्ष इन्द्र ने दधीचि की हड्डियो से वृत्र को नौ नब्बे बार मारा।।१३।।
पर्वत मे छिपे अश्व के सिर को ढूढते, उसे शर्यणावत् ने प्राप्त किया।।१४।।

—१।८४

७७ गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धन। सुमित्र सोम नो भव।।१२।।

—१।६१

७७ हे सोम, तुम हमारे गृहबर्धन, रोगहन्ता, धनदाता, पुष्टिवर्धक और सुमित्र बनो।।१२।।

—१।६१

७८ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पणि गा।
अवातिरत बृसयस्य शेषो विन्दत ज्योतिरेक बहुभ्य।।४।।

—१।६३

७८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हारा परक्रम प्रसिद्ध है, जिससे कि तुमने पणि से भोजन और गाये छीनीं, जिससे बृसय के पुत्र को मार गिराया, और बहुतो के लिए एक ज्योति को प्राप्त किया।।४।।

—१।६३

१० मेघातिथि कण्व-पुत्र—

७९ आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धिय। देवेभिरग्न आ गहि।।२।।

७९ कण्व (लोग) तुम्हे पुकारते हैं, हे विप्र, तुम्हारी प्रशसा गाते है। हे अग्नि, देवो के साथ तुम आओ।।२।।

ईळते त्वामवस्यव कण्वासो वृक्तबर्हिष हविष्मन्तो अरकृत ।।५।।

—१।१४

रक्षा-अभिलाषी कुश-बिछाये हवि युक्त अलकृत कण्व (लोग) तुम्हारी स्तुति करते हैं।।५।।

—१।१४

८० कण्वा इव भृगव सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयव प्रियमेधासो अस्वरन्।।१६।।

—८।३

८० भृगु कण्वों की तरह सूर्यों की तरह (अपनी) सारी कामनायुक्त आयुवाले प्रियमेधों ने स्तुतियाँ गाते पूजा की।१६।।

—८।

८१ प्रास्मै गायत्रमर्चत वावतुर्य पुरन्दर ।
याभि काण्वस्योपवर्हिरासद यासद्वज्री भिनत् पुर ।।८।।

८१ इस (इन्द्र) के लिए अच्छी तरह गाय (गान) द्वारा यजन करो, जो पुरोका नाशक है, पूजनीय (है)। जिन ऋचाओ द्वारा व कण्व-पुत्र के यज्ञ मे बैठा, (जिनके द्वारा वज्रधारीने पुरो को नष्ट किया।।८।।

यत्तुदत् सूर एतश वङ् कू वातस्य पर्णिना।
वहत् कुत्समार्जुनेय शतक्रतुस्त्सरद्गन्धर्वमस्तृत।।११।।

जब सूरने एतशको आहत किया, (तब इन्द्रने वात के उडते रथ द्वारा अर्जुन-पुत्र कुत्सको वहन किया, और अजेय गन्धर्व (सूर्य) पर परिहास (आक्रमण) किया।।११।।

त्व पुर चरिष्ण्व बधै शुष्णस्य सम्पिणक्।
त्व भा अनुचरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुव ।।२८।।

तुमने वज्रसे शुष्णके गमनशील दुर्ग (पुर) को ध्वस्त किया। हे इन्द्र, तुम पुकारने योग्य हो, क्योकि तुम प्रभाका अनुसरण करते हो।।२८।।

स्तुहि स्तुहीदेते घाते महिष्ठासो मघोना।
निन्दिताश्व प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे।।३०।।

स्तुति करो, धनवानो मे (वह) अतिमहान् हैं। हे मेध्या-तिथि, मेरा अश्व बहुत चलनेवाला धन (छीनने) के लिए मेरा परमआयुध है।।३०।।

आ यदश्वान्वनन्वत श्रद्धयाह रथे रुह।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति योअस्ति याद्व· पशु ।।३१।।

जब कि श्रद्धाके साथ मैं अश्वो को जोड़ रथ पर चढता हूँ। (यदु-पुत्र) सुन्दर धनको जानता है, (उसे) जो कि यदुओं का पशु है।।३१।।

य ऋज्रा मह्य मामहे सह त्वचा हिरण्यया।
एप विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासगस्य स्वनद्रथ ।।३२।।

जिस (आसग) ने सुनहले ओहार के साथ मुझे भूरे (घोडे) दिये, वह यह आसंग स्वनद्रथ सारे (धन) सौभाग्यको पाये।।३२।।

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासगो अग्ने दशभि सहस्रै ।
अधोक्षणो दश मह्य रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन्।।३३।।

—८।१

हे अग्नि, **प्लयोग-पुत्र आसग** दस हजार गायो के (दान) द्वारा दूसरो से (आगे) बढ गया। फिर सरोवर से निकले नाले की तरह दीप्तिमान् दस बैल मेरे लिए आये।।३३।।

—८।१

तत्वा यामि सुवीर्य तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन **प्रस्कण्व**माविथ।।६।।

(हे इन्द्र), प्रार्थना पर प्रथम ध्यान देने के लिए तुमसे उस सुवीरता को माँगता हूँ, जिसके द्वारा तुमने धन के लिए **यतियो**, भृगुओ की, जिसके द्वारा **प्रष्कण्व** की रक्षा की।।६।।

शग्धी नो अस्य यद्ध **पौर**माविथ धिय इन्द्र सिषासत ।
शग्धि यथा **रुशम श्यावक** कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णर।।१२।।

हे इन्द्र, हमे (वह रक्षा) दो, जिसे तुमने स्तुति द्वारा चाहते **पुरु-पुत्र** की रक्षा की। जैसे हे इन्द्र **रुशम, श्यावक स्वर्णर** और कृप की रक्षा की।।१२।।

कण्वा इव भृगव **सूर्या** इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयव **प्रियमेधासो** अस्वरन्।।१६।।

भृगु **कण्वो** की तरह सूर्य-किरणो की तरह हैं। उन्होने (अपनी) सारी कामना पा ली। आयु वाले प्रियमेधोन स्तुति युक्त इद्र का यजन किया।।१६।।

य मे' दुरिन्द्रो मरुत **पाकस्थामा कौरयाण** ।
विश्वेषा त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान।।२१।।
रोहित मे **पाकस्थामा** सुधुर कक्ष्यप्रा।
अदाद्रायो विबोधन।।२२।।

जो मुझे इन्द्र और मरुतो ने दिया, उस सारे को, स्वय अतिशोभन द्यौलोक मे (मानो) दौडते को **कुरुयाण-पुत्र पाकस्थामा** ने दिया।।२१।।

पाकस्थामा ने मुझे धन-दायक लाल सुन्दर जुतनेवाला कमरबन्द-युक्त घोडा प्रदान किया।।२२।।

यस्मा अन्ये दश प्रति धुर वहन्ति वह्नय ।
अस्त वयो न तुग्य।।२३।।

जिसके (जैसे) दूसरे दस घोडे धुरे को वहन करते है, वह पक्षियो की तरह तुग्र-पुत्र को (उडा ले गये)।।२३।।

आत्मा पितुस्तनुर्वास ओजोदा अभ्यजन।
तुरीयमिद्रोहितस्य **पाकस्थामान** भोज दातारमब्रव।।२४।।

—८।३

वह पिता का शरीर आत्मा, वस्त्र और बलप्रद भोजन है। एव चौथे लाल घोडे दाता भोजकर्ता **पाकस्थामा** को मैं कहता हूँ।।२४।।

—८।३

अध्याय ६

दस्यु (अन्-आर्य)

१ पणि—

१ स सत्पति शवसा हति वृत्रमग्ने विप्रो वि **पणेर्भर्ति** वाज।
य त्वाषा प्रचेत ऋतजात राया सजो नप्तापा हिनोषि।।३।। —६।१३

१ हे सत्पति अग्नि, तुम (अपने) बल से वृत्र को मारते हो। विप्र (तुम) **पणि के धन को** (छीन) लेते हो। जानकार ऋत-उत्पन्न हे जल के नाती, जिसे तुम धन के लिए प्रेरित करते हो (वह पाता है) ।।३।। —६।१

२ शतैरपदन् **पणय** इन्द्रात्र दशोणये कवये'र्कसातौ।
बधै **शुष्णस्याशुषस्य** माया पित्वो नारिरेचीत् कि चन प्र।।४।। —६।२०

२ हे इन्द्र, यहाँ युद्ध मे कवि दशोणि से अप सैकडो (सेनिको) के साथ पणि भाग गये **शुष्ण-अशुष** की माया के नाश से कुछ भ अन्न वच न रहा।।४।। —६।२

३ अदित्सन्त चिदाधृणे पूषन्दानाय चोदय। **पणे**श्चिद्वि म्रदा मन।।३।। —६।५३

३ हे पूषन्, (तुम) न देने की इच्छावाले को दान के लिए प्रेरित करो **पणि** के मन को कोमल बनाओ।।३।।

४ परि तृन्धि **पणीनामारया** हृदया **कवे**। अथेमस्यभ्य रन्धय।।५।। —६।५३

४ हे कवि पूषन् **पणियो** के हृदय को आरा से बेध दो, और उन्हे हमारे वश मे कर दो।।५।। —६।५३

५ स सुक्रतुर्यो वि दुर **पणीना** पुनानो अर्क पुरुभोजसन्न।
होता मन्द्रो विशा दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणा।।२।। —७।६

५ वह सुकर्मा है, जो **पणियो** के द्वार को खोल हमारे लिए बहुत भोजन देनेवाले सूर्य को लाया। वह प्रसन्न होता, प्रजाओ का मित्र, घर मे, रात के अँधेरे मे दिखाई देता हे।।२।। —७।६

६ न्यक्रतून् ग्रथिनो मृघ्रवाच पर्णीरश्रद्धा अवृधा अयज्ञान्।
प्रप्र तान्दस्यूग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापरा अयज्यून्।।३।।

—७।६

६ कर्महीन, बकवासी, कटुभाषी, अश्रद्ध, पूजाहीन, यज्ञहीन पणियो-दस्युओ को अग्नि ने पूर्व मे भगाया, यज्ञहीनो को स्वय पश्चिम मे भगाया।।३।।

—७।६

७ रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरित ऊतिमाहिन।
न वा द्यावोहिभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघ।।६।।

—१।१५१

७ हे मित्रावरुण, तुम धन-युक्त आयु-युक्त हो, धन-युक्त (करना) चाहते हो। हे नरो, (तुम्हारे द्वारा), मायाओ से भारी रक्षा पाई है। तुम्हारे देवत्व को न दिन और रात ने पाया और न सिन्धुओ ने। न पणियो ने (तुम्हारे) धन को प्राप्त किया।।६।।

—१।१५१

८ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पणि गा।
अवातिरत वृसयस्य शेषो विन्दत ज्योतिरेक बहुभ्य।।४।।

—१।६३

८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हारा पराक्रम प्रसिद्ध है, जिससे तुमने पणि से गाये और भोजन छीने, जिससे वृसय के पुत्र को मार गिराया, और बहुतो के लिए एक ज्योति को प्राप्त किया।।४।।

—१।६३

६ अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधि पणीना परम गुहाहित।
ते विद्वासा प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयु राविश।।६।।

—२।२४

६ खोजते हुए चारो ओर जिन अगिराओ ने परम गुहानहित पिणियो की निधि को प्राप्त किया। वे विद्वान झूठ को प्रत्याख्यात करने जहॉ से आये थे, फिर वहीं चले गये।।६।।

—२।२४

१० नि सर्वसेन इषुधीं रसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वाम मा पणिभूरस्मदधि प्रवृद्ध।।३।।

—१।३३

१० सारी सेना मे तर्कश लगाता (वह) सम्यक् स्वामी इन्द्र जिसकी चाहता, उसकी गाये (छीन) ले जाता। बहुत सा धन जमा करते हे प्रवृद्ध इन्द्र, हमारे लिए तुम बनिया (कजूस) न बनना।।३।।

—१।३३

११ प्रबोधयोष घृणातो मघोन्यबुध्यमाना पणय ससन्तु।

११ हे धनवती उषा, दाताओ को जगाओ, (पर) पणि बिना जागे सोये रहे। हे सम्पत्तिमती,

रेवदुच्छ मघयो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती।।१०।।

—१।१२४

धनवानो को तुम धनवाला बनाओ। हे सूनृते (मधुरभाषिणी), सबको क्षीण करती स्तोताओ को सम्पत्ति प्रदान करो।।१०।।

—१।१२४

१२ समीम्पणेरजति भोजन मुषे वि दाशुषे भजति सूनर वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रधत्।।७।।

—५।३४

१२ (वह) बनियो (पणि) का भोजन छीनने के लिए गमन करते है, शोभा बढानेवाले धन को दाताओं मे बाँटते हैं। जो इस इन्द्र के बल को क्रुद्ध करता है, वह सारा जन महा विपद् मे पडता है।।७।।

—५।३४

१३ ग्रावाण सोम नो हि क सखित्वनाय वावशु।
जही न्यत्रिण **पणि** वृको हि ष।।१४।।

—६।५१

१३ हे सोम, हमारे (पीसने के) पत्थर तुम्हारा सखित्व चाहते हैं। तुम खाऊ **पणि** को नष्ट करो, क्योकि वह वृक (भेडिया) है।।१४।।

—६।५१

१४ त्व सोम **पणिभ्य** आ वसु गव्यानि धारय। तत तन्तुमचिक्रद।।७।।

—६।२२

१४ हे सोम, तुम **पणियों** से गौ-धन छीन लाते हो, (यहाँ) पसारे ततु (यज्ञ) के लिए शब्द करो।।७।।

—६।२२

१५ त्व त्यत् **पणीना** विदो वसु स मातृभिर्मर्जयसि।
स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतय।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयोदधे रोचमानो वयो दधे।।२।।

—६।१११

१५ हे सोम, तुमने पणियो के धन का पता लगाया, तुम माताओ (जलो) द्वारा अपने ऋत (सत्य) की क्रियाओ से घर मे सजते हो। जहाँ (घर मे) स्तुतियाँ दूर के साम (गान) की तरह प्रिय लगती हैं। तीनो लोको के धारक लाल दीप्ति के साथ प्रकाशमान (वह) अन्न प्रदान करते हैं, अन्न प्रदान करते हैं।।२।।

—६।१११

१६ अगस्त्यस्य नद्भ्य सप्ती युनक्षि रोहिता।
पणीन् न्यक्रमीरमि विश्वान्राजन्नराधस।।६।।

—१०।६०

१६ हे राजन्, (तुम) **अगस्त्य** के भाजो के लिए लाल घोडे जोतते हो।
न दान देनेवाले सारे **पणियों** को पराजित करते हो।।६।।

—१०।६०

१७ अधि **बृबु** **पणीना** वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्।
उरु कक्षो न गाङ्ग्य।।३१।।

—६।४५

१७ **पणियो** मे **बृबु** बहुत ऊँचे (उनके) शिर-स्थान पर अवस्थित, है, जैसे गगा का विस्तृत कछार।।३१।।

—६।४५

१८ यस्य वायोरिव द्रवद् भद्रा राति सहस्रिणी। सद्यो दानाय महते।।३२।।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारव।
बृबुं सहास्रदा तम सूरिं सहस्रसातम।।३३।।

—६।४५

१८ जिस (बृबु) के हजारो गायो के भद्र वायु की तरह दौडते हैं, जो तुरन्त दान के लिए तैयार है।।३२।।
सो सभी हमारे कवि अर्य सहस्रदातातम बृबु की, सहस्रदायकतम सूरि (राजकुमार) की प्रशसा करते ।।३३।।

—६।४५

१६ "किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानट् दूरे ह्यध्वा जगुरि पराचै।
कास्मे हिति का परितक्म्यासीत् कथ रसाया अतर पयासि"।।१।।

"इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् व।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतर पयासि"।।२।।

"कीदृड ङि्द्र सरमे का दृशीका यस्येद दूतीरसर पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवा गोपतिर्नो भवाति"।। ३ ।।

"नाह त वेद दम्य दभत् स यस्येद दूतीरसर पराकात्।
न त गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणय शयध्वे"।।४।।

"इमा गाव सरमे या ऐच्छ परि दिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अवसृजादयुध्व्युता–स्माकमायुधा सन्ति तिग्मा"।।५।।

१६ (पणिगण)–सरमा, क्या इच्छा करके तुम आई ? नाना स्थानो को जानेवाला बहुत दूर का रास्ता है। हमसे क्या चाहती हो ? क्यो घूमी ? कैसे तुमने रसा (नदी) के[1] जल को पार किया।।१।।

(सरमा—) हे पणियो, मैं इन्द्र की दूती होकर तुम्हारी भारी निधियो को ढूँढने आई हूँ। उसके भारी भय ने मुझे बचाया, ऐसे मैं रसा के जल को पार हुई।।२।।

(पणि—) सरमा, कैसा इन्द्र है, कैसी (उसकी) आकृति (है), जिसकी दूती होकर तुम दूर से आई? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेगे। वह हमारी गायो का चरवाहा बनेगा।।३।।

(सरमा—) मैं उसको (किसी से) हारने योग्य नहीं जानती, वह हरा सकता है, जिस (इन्द्र) की दूती बन कर मैं आई हूँ। गहरी नदियाँ भी उसको नहीं छिपा सकतीं। हे पणियो, उस इन्द्र द्वारा निहत तुम सो जाओगे।।४।।

(पणि—) हे सुभगे सरमा, आकाश के अन्तिम भाग तक उडती यह गाये हैं, जिनकी इच्छा करके आई हो। उन (गायो) को युद्ध के बिना कौन छीन सकता है ? हमारे आयुध तीक्ष्ण हैं।।५।।

---

[1] नदी का नाम जो सिध के अदूर पूर्व मे थी।

"असेन्या व पणयो वचास्यनिषव्यास्तन्व सन्तु पापी ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात्" ।।६।।

(सरमा—) **पणियो** तुम्हारे वचन घावकारक नहीं हैं, तुम्हारे पापी शरीर वाण से अभेद्य नही हैं। आने का मार्ग यदि अप्रचलित हो, तो भी वृहस्पति तुम्हे सकटापन्न किये बिना नहीं रहेगा।।६।।

"अय निधि सरमे **अद्रिबुध्नो** गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृ ष्ट ।
रक्षन्ति त **पणयो** ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ"।।७।।

(पणि—) **सरमा**, पर्वत कोठरियो मे, (हमारी) यह निधि घोडो, अश्वो, गायो और वसुओ (धनो) से पूर्ण है। सुरक्षक **पणि** उसकी रक्षा करते हैं। हमारे एकात स्थान मे तुम व्यर्थ ही आई।।७।।

"एह गमन्नृषय सोमशिता **अयास्ये** अगिरसो नवग्वा ।
त एतमूर्व वि भजन्त गोनामथैतद्वच **पणयो** वमन्नित्" ।।८।।

(सरमा—) यहॉ सोम से मस्त **अयास्य आगिरस** नवगु (जैसे) ऋषि आयेगे। वह इस गायो के खड को बाट ले जायेगे, फिर **पणियो** यह तुम्हारा वचन बकना भर है।।८।।

"एवा च त्व **सरम** आजगन्थ प्रवाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसार त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवा सुभगे भजाम"।।६।।

(पणिगण—) हे **सरमे**, ऐसे ही देवताओ से बाधित हो कर तुम यहॉ आई। हम तुम्हे (अपनी) बहिन बनाते हैं, तुम लौट के मत जाओ। हे सुभागी, हम तुम्हे गाये देगे।।६।।

"नाह वेद भ्रातृत्व नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरगिरसश्च घोरा ।
गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत **पणयो** वरीय "।।१०।।

(सरमा—) न मैं भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व। इन्द्र और घोर **अगिरावशी** (उसे) जानते हैं, जो गायो के इच्छुक हैं। अब मैं चली। **पणियो,** यहॉ से दूर भाग जाओ।।१०।।

"दूरमित **पणयो** वरीय उद्गावो यन्तु मिनती ऋतेन।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूह्ळा सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्रा "।।११।।

—१० ।१०८

पणियो, यहॉ से बहुत दूर भाग जाओ। (वह) गाये ऋत की आज्ञा से बॉ करती जाये, जिन निगूढ (गौओ) को बृहस्पति, सोम, (सोम पीसने के) पत्थरो और विप्रो (ऋषियो) ने प्राप्त किया।

—१० ।१०८

अध्याय ७
आदिम आर्य राजा

१ मनु—

१ एता धिय कृणवाम सखायो'प यामातॉ ऋणुत व्रज गो ।
यया **मनुर्विशिशिप्र** जिगाय यया **वणिग्वकु**रापा पुरीष।।६।।

—५।४५

१ हे सखो, आओ, इस ऋचा को बनाये, जिस माता ने गायो का व्रज खोल दिया था, जिसके द्वारा **मनु** ने **विशिशिप्र** को जीता, जिसके द्वारा बहुत भटकते **वणिक्** ने जल प्राप्त किया था।।६।।

—सदाप्रण आत्रेय ५।४५

२ आ त्वा **कण्वा** अहूषत गृणन्ति विप्र ते धिय । देवेभिरग्न आ गहि।।२।।

—१।१४

२ हे अग्नि, तुम्हे **कण्व** पुकारते हैं, विप्र (गायक) तुम्हारे कामो की प्रशसा करते है, देवताओ के साथ तुम आओ।।२।।

—मेधातिथि कण्व-पुत्र १।१४

३ या वो भेषजा मरुत शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयायोभु।
यानि **मनुर**वृणीता पिता नस्ता श च योश्च रुद्रस्य वश्मि ।।१३।।

—२।३३

३ हे समर्थ मरुतो, जो तुम्हारी शुचि औषधियॉ हैं, सो तुम्हारी अतिकल्याणकारी सुखदायक (औषधियॉ) है। तुम्हारी जिस औषधि को हमारे पिता **मनु** ने चुना था। मैं (उसके द्वारा) रुद्र से मगल और हित चाहता हूँ।।१३।।

—गृत्समद, २।३३

४ नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभि सूनो सहसो यजत्रै ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये **मनुं** चक्रुरुपर दसाय।।११।।

—६।२१

४ हे विद्वान् सहस्-सूनु (अग्नि), मेरी वचन से सारे यजन-योग्य देवताओ के साथ मेरे पास आओ। जो (देवता कि) अग्निरूपी जीभवाले, जो यज्ञ के जाननेवाले है। जिन्होने **मनु** को दासो के ऊपर (विजयी) किया।।११।।

—भरद्वाज, ६।।२१

५ तन्नु सत्य पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारव सन्नसन्त।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोक प्रावन्मनु दस्यवे करभीक।।५।।

—६।६२

५ वह पवमानका,सत्य हो जहाँ सारे कवि एकत्रित होते हैं। जिसने दिन मे ज्योति और लोक बनाया, जिसने दस्यु को हराया, मनु की रक्षा की ।।४।।

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ६।६२

प्रश्येनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
प्रवन्नमीं साप्य सत पणाग् रायासमिषास स्वस्ति।।६।।

—भरद्वाज, ६।२०

इन्द्र ने उत्पीडक दास नमुचि के सिर को तोडा जैसे बाज मदिरनाल सोम को। उसने सोते सप्य-पुत्र नमी की रक्षा की, अन्न, सफलता, सपत्तिके साथ स्वस्ति प्रदान किया।।६।।

—भरद्वाज, ६।२०

२ पुरूरवा—

६ त्वमग्ने मनवे द्यामवाशय पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तर।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापर पुन।।४।।

—१।३१

२ पुरूरवा ऐल—

६ हे अग्नि, तुमने सुकृत्तर मनु के लिए, सुकृत् (सुकर्मा) पुरूरवा के लिए द्यो को बनाया। दोनो (अरणीरूपी) माता-पिता से जब तुम शीघ्रतया मुक्त होते हो, तो तुम्हे (ऋत्विक्) पूर्व की ओर फिर पश्चिम की ओर ले जाते है,।।४।।

—हिरण्यस्तूप अगिरापुत्र, १।३१

७ "हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचासि मिश्रा कृणवावहै नु।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन्"।।१।।

७ (पुरूरवा—) हे जाया, हे घोर (निष्ठुर) मन इधर लगा कर ठहर। हम आपस मे बात तो करे। हमारी न कही ये मन्त्रणाये हमारे लिए पहिले सुखद नहीं हुईं।।१।।

"किमेता वाचा कृणवा तवाह प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव।
पुरूरव पुनरस्त परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि"।।२।।

(उर्वशी—) तेरी इन बातो को मैं क्या करूँ? प्रथम उषा सी मैं तेरे पास चली आई। हे पुरूरवा, अपने घर लौट जा, मैं वायु की तरह दुर्लभ हूँ।।२।।

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषा शतसा न रहि।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायु चितयन्त धुनय।।३।।

(पुरूरवा—) श्री के लिए जैसे तूणीर से फेका बाण, जैसे सैकडो गायो को, जीतनेवाला तेज घोडा, अ-वीरवाले कार्य मे जैसे बिजली चमके, जैसे आफत मे गाय मेमने की तरह चिल्लाये, वैसे मैं विलाप करता हूँ।।३।।

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्ति गृहात्। अस्त ननक्षे यस्मिन् चाकन्दिवा नक्त श्नथिता वैतसेन।।४।।	(उर्वशी—) हे उषा, जब (पति ने) चाहा, वह (उर्वशी) पास के घर से, श्वसुर को जीवन-धन देती। उसने घर चाहा, जिसमे दिन-रात पति से आलिगिता हो सुख पाया।।४।।
"त्रि स्म माह्न श्नथयो वैतसेनोत स्म मे व्यत्यै पृणासि। पुरूरवो नु ते केतमाय राजा मे वीर तन्वस्तदासी ।।५।।	दिनो मे तीन बार अपनी प्रिया को आलिगित करता, यद्यपि वह मुझे पसन्द नहीं था। हे **पुरूरवा**, (तो भी) तेरी इच्छा पूरी करती, तब हे वीर, तुम मेरे शरीर के राजा थे।।५।।
सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे। अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन् रथस्पृशे नाश्वा ।।८।।	(पुरूरवा—) जब मानुष (पुरूरवा) में कचुकहीना अमानुषियो को सेवन करने चला तो भयभीत होकर हरिनी की तरह या रथ के अश्वो की तरह भागी।।८।।
यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक् स क्षोणीभि क्रतुभिर्न पृड्क्ते। ता अन्तयो न तन्व शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशाना।।६।।	जब मरणधर्मा ने अमृताओ से अनुमति पा उनसे बात की, तो हसो की तरह उन्होने शरीर-शोभा दिखाई, दशते अश्वो की तरह वह खेलीं।।६।।
विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद् भरन्ती मे अप्या काम्यानि। जनिष्टो अपो नर्य सुजात **प्रोर्वशी** तिरत दीर्धमायु ।।१०।।	जो गिरती विजली की तरह चमकी, वह (उर्वशी) मेरे लिए जल की कमनीय भेट लाई, जिसने मेरे लिए सुजात नेता, पुत्र जना वह **उर्वशी** दीर्घायु हो।।१०।।
जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत् **पुरूरवो** म ओज । अशास त्व विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणो किमभुग्वदासि"।।११।।	(उर्वशी—) हे **पुरुरवा**, ऐसे पार्थिव दूध पीने के लिए पुत्र पैदा किया, मेरे मे वह ओज रखा। मैं जानती थी, मैंने तुझे कहा था। उस समय मेरी बात तूने नहीं सुनी (अब) क्यो व्यर्थ बोलता है।।११।।
"कदा सूनु पितर जात इच्छाच्चक्र नाश्रु वर्तयद्विजानन्। को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्नि श्वशुरेषु दीदयत्।।१२।।	(पुरूरवा—) जब पुत्र पैदा हो पिता के (जानने की) इच्छा करेगा, जानने पर चक्र की तरह क्या आसू गिरायेगा? (परस्पर) प्रेमी (पति-पत्नी) को कौन वियुक्त करेगा, जबकि श्वसुर के घर मे (होम की) अग्नि जल रही है।।१२।।

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्र नक्र ददाध्ये शिवायै।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे अपरेह्यस्त नहि मूर स माप ।।१३।।

(उर्वशी—) आयुचक्र गिराते समय उससे मैं सात्वना वचन कहूँगी, (वह) स्नेह के लिए नहीं रोयेगा। हमारे बीच जो तेरा (पुत्र) है, उसे मैं तेरे पास भेज दूँगी। तू घर लौट जा, मूर्ख, तू मुझे नहीं पा सकता।।१३।।

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावत परमा गन्तवा उ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेधैन वृका रभसासो अद्यु"।।१४।।

(पुरूरवा—) सुदेव (पुरूरवा) आज गिरेगा अत्यन्त दूर जाके फिर नहीं लौटेगा। (फिर) तो वह आपदाओ की गोद मे सोये, उसे खूखार भेडिये खा जाये।।१४।।

"पुरूरवो मा मुथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणा हृदयान्येता।।१५।।

(उर्वशी—) नहीं, हे पुरूरवा, तू मत मर मत गिर, न अशिव भेडिये तुझे खाये। स्त्रियो की मित्रता (स्थायी) नही होती, उनके ये हृदय सालावृको (लकडबग्घो) के (हृदय) हैं।।१५।।

यद्विरूपाचर मर्त्येष्ववस रात्रि शरदश्चतस्र ।
घृतस्य स्तोक सकृदह्न आश्ना ता देवेदन्तातृपाणा चरामि"।।१६।।

नाना रूप मे घूमती मैंने मनुष्यो मे चार शरदो (सालो) की राते बिताईं। थोडा सा घी मैंने एक बार चखा, उससे तृप्त (हो) अब भी विचरण करती रही।।१६।।

"अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठ ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तम्यते मे"।।१७।।

(पुरूरवा—) मैं उसका महानतम प्रेमी (हूँ), आकाश को पूरनेवाली लोको की नापनेवाली उर्वशी से मैं प्राथना करता हूँ। तेरे पास मेरे सुकृत का दान पहुँचे। लौट आ, मेरा हृदय सतप्त हो रहा हे।।१७।।

"इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद् भवसि मृत्युबन्धु ।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे"।।१८।।

—१०।६५।

(उर्वशी—) हे ऐल (इला-पुत्र) यह देवता तुझसे कह रहे हैं, कि तू मृत्यु का बँधुआ होगा, तेरी सन्तान हवि से देवो की पूजा करेगी और तू भी स्वर्ग मे सुखी होगा।।१८।।

—१०।६५

३ नहुष—

८ यो देह्यो अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृत सहोभि।।५।।
—७।६

८ जिसने भयकर आयुधो से (असुरो की) भीतो को तोड दिया, जिसने उषाओ को अर्य-पत्नी बनाया। उस तरुण अग्नि ने नहुष की प्रजाओ को बलो द्वारा दबा कर उन्हे बलिहर्ता (करद) बनाया।।५।।
—वसिष्ठ, ७।६

९ त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पति।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते।।११।।
—१।३१

९ हे अग्नि, देवो ने नहुष के प्रजा-पति, प्रथम आयुवाले तुमको आयु वाले (मनुष्य) के लिए इळा (अन्न) को मनुष्य की उपदेशिका बनाया। (कैसा था समय) जब मेरे पिता के (यहाँ) जुत्र जनमा।।११।।
—हिरण्यस्तूप आगिरस, १।३१

४ ययाति नहुष-पुत्र—

१० परावतो ये दिधिषन्त आप्य मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वत ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधिब्रुवन्तु न।।१।।
—१०।६३

१० मन से प्रसन्न विवस्वान् की सन्ताने जो पश्चिम से आ बन्धु बनती हैं, जो देवता नहुष-पुत्र ययाति के यश मे बैठते हैं, वे हमसे मगलालप करे।।१।।
—गय प्लति-पुत्र १०।६३

११ मनुष्वदग्ने अगिरष्वदगिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे।
अच्छ याह्या वहा देव्य जनमासादय बर्हिषि यक्षि च प्रिय।।१७।।
—१।३१

११ शुचि अग्नि, हे अगिरा, अगिरा की तरह, ययाति की तरह (हमारे) पूर्वजो की तरह (हमारे) सदन मे आओ। यज्ञ मे आओ, दिव्य जनो को लाओ, (उन्हे) यज्ञ मे बैठाओ, और प्रिय (वस्तु) प्रदान करो।।१७।।
—हिरण्यस्तूप आगिरस, १।३१

५ मन्धाता—

१२ यो अग्नि सप्त मानुष श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु।
तमागन्म त्रिपस्त्य मन्धातुर्दस्युहन्तममग्नि यज्ञेषु पूर्व्य, नभन्तामन्यके समे।।८।।
—८।३९

१२ सारी सात सिन्धुओ (नदियो) मे बसते जाति के मानुषो के स्वामी त्रिधातु (द्यो-पृथिवी-अन्तरिक्ष)-निवासी मन्धाता के लिए अत्यधिक दस्युओ के हन्ता, यज्ञो मे प्रथम अग्नि को हम चाहते है। अन्य सारे मर जाये।।८।।
—नाभाक काण्व, ८।३९

अध्याय ८

शंबर

१ दस्यु

१ स वृत्रहेन्द्र **कृष्णयोनी** पुरन्दरो **दासीरैरयद्वि।**
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत्।।७।।

—२।२०

१ उस वृत्रहन्ता पुरदर (पुरनाशक) (इन्द्र) ने काली औलाद दास लोगो को नष्ट कर दिया। उसने मनुष्य के लिए पृथिवी और जल पैदा किये। उसने यजमान की कामना सदा पूरी की ।।७।।

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२०

२ इन्द्र समत्सु यजमानमार्य प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीह्ळेष्वाजिषु।
मनवे शासदव्रतान् **त्वच कृष्णामरन्धयत्**
दक्षन्नविश्व ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति।।८।।

—१।१३०

२ युद्ध मे इन्द्र ने आर्य यजमान की रक्षा की, युद्धो मे जिसकी सारी सैकडो रक्षाये स्वर्गदायक (हैं)। उसने मनु के लिए व्रतहीन काली चमडीवालो को दण्ड दिया, नाश किया। जलाते हुए सारे हिसको को जला डाला, निष्ठुरो को जला डाला।।८।।

—परुच्छेप दिवोदोस-पुत्र, १।१३०

३ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभि।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा **शिश्नदेवा** अपिगुर्ऋत न ।।५।।

—७।२१

३ हे इन्द्र, जादू (पिशाच) हमे न मारे, हे बलिष्ठ न दुष्ट अपनी चालो से (मारे)। वह स्वामी विषम जन्तु को मारे, शिश्नपूजक हमारे ऋत के पास न आये।।५।।

—वसिष्ठ, ७।२१

४ स वाज यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परिषदत् सनिष्यन्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो **धनृनछिश्नदेवा** अभि वर्पसा भूत्।।३।।

—१०।६६

४ वह अच्छे रास्ते युद्ध मे गये, वह स्वर्ग इच्छुक श्रम करते, वह सौ दरवाजोवाले नगर की निधि को लाये, अविचलित हो उन्होने **शिश्नपूजको** को (अपने) तेज से अभिभूत किया।।३।।

—वभ्रु वैखानस, १०।६६

५ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशर शतयातुर्वसिष्ठ ।
न ते भोजस्य सख्य मृषन्ताधा सूरिभ्य सुदिना व्युच्छान् ।।२१।।
—७।१८

५ हे इन्द्र, जिनने तुम्हे प्रसन्न किया, (वे हैं) पराशर और सौ जादूवाले वसिष्ठ। तुम (जैसे) भोज की मित्रता को जो नहीं भूलेगा, उन सूरियो के[1] लिए सुन्दर दिन होगे।।२१।।
—वसिष्ठ, ७।१८

६ अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रो मानुष यन्मानुषो निजूर्वात्।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य।।१०।।

६ मनुष्य-हितकारी (इन्द्र) ने जब शत्रु को जलाया, तो पराक्रमी (इन्द्र) का वज्र बार-बार गरजने लगा। छाने (सोम) को पीकर इन्द्र ने मायी दानव की माया को गिरा दिया।।१०।।

सनेम येत ऊतिभिस्तरन्तो विश्वा स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्य तत्त्वाष्ट् विश्वरूपमरन्धय साख्यस्य त्रिताय।।१६।।
—२।११

तुम्हारी रक्षाओ से युक्त हो, आर्य द्वारा हम शत्रु-दस्युओ को हराये।
हमारे लिए जो कि त्वष्टपुत्र विश्वरूपको तुमने त्रित के लिए मारा।।१६।।
—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।११

७ अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुष ।
त्व तस्यामित्रहन वधर्दासस्य दम्भय।।८।।
—१०।२२

७ हमारे चारों ओर कर्महीन, मन्त्रहीन, व्रतहीन, अमानुष दस्यु हैं। हे अमित्रहन्ता (इन्द्र), उस दस्यु दास का बध करते नाश करो।।८।।
—विमद, १०।२२

८ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधर गुहाक ।
श्वघ्नीव यो जिगीवालक्षमाददर्य पुष्टानि, स जनास इन्द्र ।।४।।
—२।१२

८ जिसने इस सारे नश्वर (ससार) का निर्माण किया, जिस गुह्य (देवता) ने दास वर्ण को नीच बनाया, जो शिकारी की तरह लक्ष्य जीतकर पुष्ट धन लेता है। हे लोगो, वह इन्द्र है।।४।।
—गृत्समद, २।१२

९ बधीर्हि दस्यु धनेन धनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वान सनका प्रेतिमीयु ।।४।।
—१।३३

९ हे इन्द्र शक्तिशाली (मरुतो) के साथ जा अकेले तुमने धनी दस्यु को घन (वज्र) से मारा। पुरातन यज्ञहीन चारो ओर से आये (दस्यु) द्यौ के नीचे मृत्यु प्राप्त हुए।।४।।
—हिरण्यस्तूप, १।३३

[1] सूरि राजकुमार विद्वान्।

१० त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्व मित्रो भवसि दस्म ईळ्य ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुज त्वमशो विदथे देवमाजयु ।।४।।

—२।१

१० हे अग्नि, तुम व्रतधारी राजा वरुण हो, तुम स्तुति-योग्य अद्‌भुत मित्र हो। तुम अर्यमा सच्चे स्वामी, जिसका सम्यक् भोज है। हे देव, तुम अश (सूर्य) यज्ञ मे भोजदायक हो।।४।।

—गृत्समद, २।१

११ अग्ना **तुर्वश यदु** परावत उग्रादेव हवामहे।
अग्निर्नय **नववास्त्व बृहद्रथ तुर्वीति दस्यवे** सह ।।१८।।

—१।३६

११ अग्नि के द्वारा पश्चिम (देश) से उग्र-पूजक (उग्रादेव) **तुर्वश-यदु** को हम बुलाते हैं। अग्नि (देवता) **नववास्त्व** वृहद्रथ और **तुर्वीति** को दस्युओ को हराने के लिए लावे।।१८।।

—कण्व घोर-पुत्र, १।३६

१२ त्व पिप्रु मृगय शुशूवासमृजिश्वने **वैदथिनाय** रन्धी ।
पचाशत् **कृष्णा** निवप सहस्रा' त्क न पुरो जरिमा विदर्द ।।१३।।

—४।१६

१२ हे इन्द्र, तुमने **विदथि-पुत्र ऋजिश्वा** के लिए पिप्रु, (और) फूले मृगय को मारा। तुमने पचास हजार कालो को नष्ट किया, जिस तरह जरा कचुक को उसी तरह तुमने पुरों को ध्वस्त किया।।१३।।

—४।१६

१३ तस्मै तवस्यमनुदायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ।
प्रति यदस्य वज्र बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नितारीत्।।८।।

—२।२०

१३ उस इन्द्र की देवताओ ने रण मे सदा प्रभुता मानी। जब उसके दोनो बाहो में वज्र रक्खा, तो उसने **दस्युओ** को मारा, आयसी पुरियो को नष्ट किया।।८।।

—गृत्समद, २।२०

१४ स्त्रियो हि **दास** आयुधानि चक्रे कि मा करन्न**बला** अस्य सेना ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्र ।।६।।

—५।३०

१४ दास (शबर) ने स्त्रियो को आयुध (सैनिक) बनाया, इसकी अबला सेना मेरा क्या करेगी ? उसके दो स्वर प्रसिद्ध हुए। तब दस्यु से लड़ने के लिए आगे बढा।।६।।

—५।३०

१५ त्व जघन्थ **नमुचि** मखस्यु दास कृण्वान ऋषये विमाय।
त्व चकर्थ **मनवे** स्योनान् पथो देवत्राजसेव यानान्।।७।।

—१०।७३

१५ हे इन्द्र, तुमने लडाकू **नमुचि** को मारा, ऋषि के लिए दास को मायारहित बनाया। तुमने मनु के लिए सुखमय पथ बनाया, जो कि देवों के पास शीघ्र ले जाता है।।७।।

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, १०।७३

१६ प्र श्येनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्। प्रावन्नमीं साप्य ससन्त पृणग्राया समिषा स स्वस्ति।।६।। —६।२०	१६ इन्द्र ने उत्पीडक दास नमुचि के सिर को तोडा, जैसे बाज मदिर नाल (सोम) को। उसने सोते सय-पुत्र नमी की रक्षा की, अन्न, सफलता, सम्पत्ति के साथ स्वस्ति प्रदान किया।।६।। —भरद्वाज, ६।२०
१७ विषूमृधो ननुषा दानमिन्वन्नहन् गवॉ मघवन्त्सचकान। अत्रा दासस्य नमुचे शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन्।।७।।	१७ हे मघवा, जन्म से ही तुमने शत्रुओ का नाश किया। मनु के लिए सुख की इच्छा से यहॉ तुमने दास-नमुचि के सिर को काटा।।७।।
युज हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्। अश्मान चित्स्वर्य वर्तमान प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्य।।८।। —५।३०	हे इन्द्र, शव्द करते घूमते बादल की तरह दास नमुचि के सिर को चूर्ण करते मुझे सहायक बनाया। तब स्वर्गीय पत्थर को पृथिवी और द्यौ चक्र की तरह घूमती मरुतो के पास लाये।।८।। —वभ्रु, ५।३०
१८ अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिशत हथे। दासानामिन्द्रो मायया।।२१।। —४।३०	१८ इन्द्र ने दभीतिके लिए अपनी माया (शक्ति) और हथियारो से तीस हजार दासो को मार कर सुला दिया।।२१।। —वामदेव, ४।३०
१६ स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तु नामा चुमुरिं धुनि च। वृणक्पिप्रु शम्बर शुष्णमिन्द्र पुरा च्यौत्नाय शयथाय नू चित।।८।। —६।१८	१६ जो इन्द्र, सग्राम में कभी नहीं विमूढ हुआ, जिसने वृथा काम नहीं किया, जो प्रसिद्ध नामवाला है, उस तुम इन्द्र ने, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण को मारा, पुरो को नष्ट होने को छोड दिया।।८।। —भरद्वाज, ६।१८
२० उरु यज्ञाय चक्रथुरु लोक जनयन्ता सूर्यमुषासमग्नि। दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु।।४।। —७।६६	२० इन्द्र और विष्णु ने विस्तृत यज्ञ के लिए सूर्य, उषा अग्नि को उत्पन्न करते विशाल लोक को बनाया। हे नेताओ, तुमने वृषशिप्र दास की माया को सग्राम मे नष्ट कर दिया।।४।। —वसिष्ठ, ७।६६

२१ **शुष्ण पिप्रुं** कुयव **वृत्रमिन्द्र** यदावधीर्वि पुर **शम्बरस्य**।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति सिन्धु पृथिवी उत द्यौ।।८।।

—१।१०३

२१ हे इन्द्र, तुमने **शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्र** को जब बध किया, शम्बर के पुरो को नष्ट किया। सो मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ हमे अनुगृहीत करे।।८।।

—कुत्स आगिरस, १।१०३

२२ अध्यर्यवो य **स्वश्न जघान** य **शुष्णमशुष** यो **व्यस**।
य **पिप्रु नमुचि** यो **रुधिक्रा** तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत।।१५।।

—२।१४

२२ हे अध्वर्युओ, जिसने स्वश्न को मारा, जिसने शुष्ण को, अशुष को, जिसने व्यस को, जिसन पिप्रु को, नमुचि को, जिसने रुधिक्रा को (मारा), उस इन्द्र के लिए अन्न से हवन करो।।५।।

—गृत्समद, २।१४

२३ शत दासे **बल्बूथे** विप्रस्तरुक्ष आददे।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपा।।३२।।

—८।४६

२३ विप्र मैंने दास बलबूथ और तरुक्ष से सौ (गाय, अश्व) पाये। हे वायु वे (जन) तुम्हारे हैं, वे इन्द्र से रक्षित देवो से रक्षित आनन्द करते हैं।

—वश, अश्वपुत्र, ८।४६

२. शंबर के सेनापति

१ शुष्ण—

१ शुष्ण—

२४ त शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेष सत्त्वानमृग्मिय।
उतो नु चिद्य ओजसा **शुष्णस्याण्डानि** भेदति। जेषत् स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे।।१०।।

—८।४०

२४ दीप्तिमान्, वीर, प्रशसनीय उस (इन्द्र) को सुन्दर स्तुतियो से उत्तेजित करो, जिसने (अपने) ओज से शुष्ण के बच्चो को छिन्न-भिन्न किया, स्वर्गीय जल को इन्द्र जीते और अन्य सारे शत्रु मरे।।१०।।

—नाभाक, ८।४०

२५ त्व पुर चरिष्ण्व बधै **शुष्णस्य** सम्पिणक्।
त्व मा अनुचरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवो।।२८।।

—८।१

२५ तुमने वज्र से **शुष्ण** की गमनशील छावनी (पुर) को ध्वस्त किया। हे इन्द्र, तुम पुकारने योग्य होओ, क्योकि तुम प्रभा का अनुसरण करते हो[1]।।२८।।

—८।१

---

[1] मिलाओ ५।८१ (२८)

२६ अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एक।
अजयो गा अजय शूर सोममवासृज सर्तवे सप्त सिन्धून्।।१२।।

—१।३२

२६ हे एकदेव (इन्द्र), जब (उसने) तुम्हारे ऊपर वज्र प्रहार किया, तो तुम घोडे के बाल मे थे। तुमने गाये जीतीं। हे शूर, तुमने सोम को जीता। तुम ने बहने के लिए सातो सिन्धुओ (नदियों) को बनाया।।१२।।

—हिरण्यस्तूप आगिरस, १।३२

२७ मायाभिरिन्द्र मायिन त्व शुष्णमवातिर।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषा श्रवास्युत्तिर।।७।।

—१।११

२७ हे इन्द्र, तुमने मायावी शुष्ण को मायाओ द्वारा पछाडा। वैसे (ही) तुम्हे मेधावी जानते हैं, उन्हे यश (गान) मे उतारो।।७।।

—जेता मधुच्छन्दा-पुत्र, १।११

२८ स तुर्व्वणिर्महा अरेणु पौंस्ये गिरेभृष्टिर्न भ्राजते तुजा शव।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि।।३।।

—१।५६

२८ वह (इन्द्र) विजयी और महान् है। (वह) निर्मल, निर्दोष पौरुषमय, सग्राम मे पर्वत के शिखर की तरह दमकता है। जिसने मस्त हो बलपूर्वक मायावी शुष्ण को आयस (ताबे की) शृखला पकडकर बन्द किया।।३।।

—सव्य आगिरस, १।५६

२६ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम।।१३।।

—४।३

२६ हे अग्नि हमारे किसी प्रतिहिंसक के भोज मे तुम मत जाना, मत दुष्ट विचारवाले पड़ोसी के पास मत बन्धु के पास। मत अयोग्य भाई का ऋण भोगना। मित्र और शत्रु के विक्रम को हम भोगे।।१३।।

—वामदेव, ४।३

३० त्व ह त्यदिन्द्र कुत्समाव शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दास यच्छुष्ण कुयव न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्।।२।।

—४।१६

३० हे इन्द्र, जब तुमने अर्जुन-पुत्र का भला चाहते उसके लिए शुष्ण, कुयव दास को मारा, तब तुमने शरीर से शुश्रूषा करते युद्ध मे कुत्स की रक्षा की।।२।।

—वसिष्ठ, ७।१६

३१ वृषा जजान वृषण तमु चिन्नारी नर्य ससूव।
प्र य सेनानीरध नृभ्यो अस्तीन सत्वा गवेषण स धृष्णु।।५।।

—७।२०

३१ रण के लिए वृष (पराक्रमी) ने वृष (इन्द्र) को पैदा किया। नारी ने उस नर्य (महानर) को जना, जो मनुष्यो के लिए सेनानी, दृढ, वीर, (धन) ढूढनेवाले और (शत्रु-) पराजेता है।।५।।

—वसिष्ठ, ७।२०

३२ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम।।१३।।

—४।३

३२ हे अग्नि, हमारे किसी प्रतिहिसक के भोज में तुम मत जाना, मत दुष्ट विचारवाले पडोसी के पास, मत बन्धुके पास। मत अयोग्य भाईका ऋण भोगना। मित्र और शत्रु के विक्रम को हम भोगे[1]।।१३।।

—वामदेव, ४।३

३३ त्व कवि चोदयोऽर्कसातौ त्व कुत्साय शुष्ण दाशुषे वर्क्।
त्व शिरो अमर्मण पराहन्नतिथिग्वाय शस्य करिष्यन्।।३।।

—६।२६

३३ (हे इन्द्र,) तुमने सूर्य-प्राप्ति के लिए कवि को प्रेरित किया, भक्त कुत्स के लिए तुमने शुष्ण को मारा। तुमने अतिथिग्व की भलाई करने की इच्छा से मर्महीन (शम्बर) के सिर को काटा।।३।।

—भरद्वाज, ६।२६

३४ त्व सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्व षाट्।
त्व शुष्ण वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन्।।३।।

—१।६३

३४ हे इन्द्र, तुम इनके सच्चे धर्षणकर्ता हो। तुम ऋभुक्षा (ऋभुओ के स्वामी), श्रेष्ठ नर, तुम विजेता हो। तुमने युद्ध मे द्युतिमान् तरुण कुत्सके लिए शुष्ण को घोडे (चढकर) के रथ पर मारा।।३।।

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६३

३५ त्व कुत्स शुष्णहत्येष्वाविथारन्ध–योऽतिथिग्वाय शबर।
महान्त चिदर्बुद नि क्रमी पदा सनादेव दस्युहत्याय यज्ञिषे।।६।।

—१।५१

३५ शुष्ण के युद्ध मे तुमने कुत्स की रक्षा की, अतिथिग्व (दिवोदास) के लिए शम्बर को मारा। बड़े अर्बुद (विघ्न) को भी पादाक्रान्त किया, सदा से ही तुम दस्युओं की हत्या के लिए जनमे हो।।६।।

—सव्य आगिरस, १। ५१

३६ मुषाय सूर्य कवे चक्रमीशान ओजसा।
वह शुष्णाय बध कुत्स वातस्यश्वै।।४।।

—१।१७५

३६ हे कवि, ईशान (इन्द्र), तुमने अपने ओज से सूर्य के एक चक्के को छीन लिया। शुष्ण के बध के रूप में कुत्स को वायुवेगवाले घोडो द्वारा लाओ।।४।।

—अगस्त्य, १।१७५

[1] मिलाओ यही २६

३७ कुत्साय शुष्णमशुष निबर्ही प्रपित्वे अहन कुयव सहस्रा।
त्स सद्यो दस्यून् प्रमृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्र बृहतादभीके ।।१२।।
—४।१६

३७ (हे इन्द्र,) कुत्स के लिए तुमने शुष्ण, अशुष को मारा, प्रात कुयव और सहस्रो को मारा। कुत्सीयो के साथ हो तुरन्त दस्युओ को तुमने नष्ट किया। सूर्य के चक्के को (हमारे) पास लाओ।।१२।।
—वामदेव, ४।१६

३८ देखो ३५

३८ देखो ३५

३९ अव त्मना भरते केतवेदा अवत्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नात कुयवस्य योषे हते ते स्याता प्रवणे शिफाया.।।३।।
—१।१०४

३९ वह केवल कामना का धन फेकता है, जल मे फेन फेकता है, कुयव की दोनो स्त्रियॉ क्षीर से नहाई हैं। वह शिफा की धार मे मर जायें[1] ।।३।।
—१।१०४

४० सो अप्रतीनि मनवे पुरुणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्र।
सद्यो यो नृम्यो अतसाय्योभूत् पस्पृधानेभ्य सूर्यस्य सातो।।४।।
—२।१९

४० उस (इन्द्र) ने भक्त मनु के लिए अमित वहुत (धन) दिया, वृत्र (शत्रु) का नाश किया। जो (इन्द्र) सूर्य की (प्रकाश) प्राप्ति मे मनुष्यो का स्पर्धा करते तुरन्त सहायक हुआ।।४।।
—गृत्समद, २।१९

४१ उशना यत्सहस्यैरयात गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वै ।
वन्वानो अत्र सरथ ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्ण ।।९।।
—५।२९

४१ हे इन्द्र, हे उशन, तुम जव शक्तिशाली शीघ्रगामी अश्वो द्वारा (कुत्स) के गृह मे आये, तो रथ द्वारा यहॉ से (शत्रुओ को) नाश करने गये, कुत्स और देवताओ के साथ (जा) शुष्ण को मारा।।९।।
—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ५।२९

२ पिप्रु—

२ पिप्रु—

४२ त्व पिप्रु मृगय शूशुवा समृजिश्वने वैदथिनाय रन्धी ।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रात्क न पुरो जरिमा विदर्द ।।१३।।
—४।१६

४२ देखो १२

---

१ मिलाओ ५।८७

४३ अस्य स्तोमेभिरौशिज **ऋजिश्वा** व्रज दरयद्वृषभेण **पिप्रो** ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद् गा पुर इयानो अभि वर्पसा भूत्।।१०।।

—१० ।६६

४३ उशिज-पुत्र **ऋजिश्वा** ने इस इन्द्र की स्तुतियो द्वारा, वृषभ (पराक्रमी इन्द्र) द्वारा पिप्रु के गोष्ठ को विदीर्ण किया। जब याजको ने सोम सेवन करके स्तुति की तो (इन्द्र ने) आकर शत्रु की पुरियो को बलात् ध्वस्त किया।।११।।

—वभ्रु वैखानस, १० ।६६

४४ स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरबर्धन्नरधयो **वैदथिनाय पिप्रु**।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिव सोममस्य।।११।।

—५ ।२६

४४ हे इन्द्र, गौरिवीति के स्तोम तुम्हे बढाये तुमने विदथि-पुत्र (ऋजिश्वा) के लिए पिप्रु को मारा। ऋजिश्वा ने तुम्हारी मित्रता के लिए पुरोडाश पका कर तैयार किया। तुमने उसके सोम को पिया।।११।।

—गौरिवीति शक्ति-तुत्र, ५ ।२६

४५ त्व मायाभिरप मायिनो धम. स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्व **पिप्रोर्नृमण** प्रारुज पुर प्र **ऋजिश्वानं** दस्युहत्येष्वाविथा।।१।।

—१ ।५१

४५ (हे इन्द्र) तुमने मायाओ द्वारा मायावियो को उडा दिया, जो कि अन्नो द्वारा मुख मे हवन करते हैं। मनुष्यो के लिए तुमने **पिप्रु** के पुरो को नष्ट किया, दस्यु-युद्धो मे **ऋजिश्वा** की सुरक्षा की ।।५।।

—सव्य आगिरस, १ ।५१

३ वगृद, ४ करज, ५ पर्णाय—

३ वगृद, ४ करज, ५, पर्णय—

४६ त्व **करंजमुत** पर्णय बधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी।
त्व शता **वगृदस्या** भिनत् पुरो नानुद परिषूता **ऋजिश्वना**।।८।।[1]

—१ ।५३

४६ हे इन्द्र, तुमने **करज** और **पर्णय** को मारा, **अतिथिग्व** (दिवोदास) की भलाई के लिए अत्यन्त तीक्ष्ण (हथियारो) से मारा। निराबाध तुमने ऋजिश्वा द्वारा घेरी गयी **वगृद** की सौ पुरियो को ध्वस्त किया।।८।।

—सव्य आगिरस, १ ।५३

४७ प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो य **कृष्णगर्भा** निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषण बज्रदक्षिण मरुत्वन्त सख्याय हवामहे।।१।।

—१ ।१०१

४७ जिस (इन्द्र) ने **ऋजिश्वा** के साथ हो कृष्णगर्भो (कालो) को मारा। उस आनदी (इन्द्र) की हवि-युक्त वाणी से अर्चना करो। रक्षा की कामना से मरुतोवाले दाहिने हाथ मे वज्र धारे पराक्रमी इन्द्र को हम मित्रता के लिए पुकारते हैं।।१।।

—कुत्स अगिरापुत्र, १ ।१०१

---

१ देखो ८ ।३६ ।८ भी

४८ वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथ दिवो विददासाय प्रतिमानमार्य । दृह्ळानि **पिप्रोरसुरस्य** मायिन **इन्द्रो** व्यास्यच्चकृवा **ऋजिश्वना**।।३।। —१०।१३८	४८ द्यौ के मध्य मे सूर्य ने अपने रथ को छोड दिया। दास के लिए आर्य ने प्रतिद्वन्द्वी पाया। इन्द्र ने **ऋजिश्वा से** मित्रता करके मायावी पिप्रु, असुर के दृढ (दुर्गो) को नष्ट किया।।३।। —अग उरु-पुत्र, १०।१३८
६ वर्ची—	६ वर्ची—
४६ इन्द्राविष्णू दृहिता **शम्बरस्य** नव पुरो नवति च श्नथिष्ट। शत **वर्चिन** सहस्र च साक हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्।।५।। —७।६६	४६ हे इन्द्र और विष्णु, तुमने **शम्बर की** निन्नानबे दृढ पुरियो को ध्वस्त किया। साथ ही तुमने **वर्ची** असुर के सौ हजार अप्रतिम वीरो को नष्ट किया। —वसिष्ठ, ७।६६
५० अध्यवर्यवो य शत **शंबरस्य** पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वी । यो **वर्चिन** शतमिन्द्र सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै।।६।। अर्ध्वयवो य शतमासहस्र भूम्या उपस्थे बपज्जघन्वान्। **कुत्सस्यायो** **रतिथिग्वस्य** वीरान्यावृणग्भरता सोममस्मै।।७।। —२।१४	५० हे अध्वर्युओ (पुरोहितो), जिस इन्द्र ने **शम्बर की** पत्थर सी सौ प्राचीन पुरियो को छिन्न-भिन्न किया, जिस इन्द्र ने **वर्ची** के सौ हजार (वीर) मारे, उस के **लिए** सोम प्रदान करो।।६।। हे अध्वर्युओ, जिस (इन्द्र) ने सौ हजार असुरो को मार भूमि की गोद मे फेक दिया, जिसने **कुत्स, आयु, अतिथिग्व के** शत्रुवीरो को वध किया, उसके लिए सोम प्रदान करो।।७।। —गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१४
५१ उत दासस्य **वर्चिन** सहस्राणि शता बधी। अधि पच प्रधींरिव।।१५।। —४।३०	५१ और दास **वर्ची** के सौ हजार पाच (भटो) को चक्के के अरो की तरह मारा।।१५।। —वामदेव, ४।३०
५२ य सुन्वन्तमवति य पचन्त य शसन्त य शसमानमूती। यस्य ब्रह्म वर्धन यस्य सोमो यस्येद राध, स जनास इन्द्र।।१४।। —२।१२	५२ जो (इन्द्र) सोम-सवनकर्त्ता की, जो पकानेवाले की रक्षा करता है, जो रक्षा की स्तुति कर्ता की, जो प्रशसा करते की रक्षा करता है। मन्त्र जिसका वर्धक है, जिसका सोम है, जिसका यह अन्न है, हे लोगो, वह इन्द्र है।।१४।। —गृत्समद, २।१२

७. गुगु, ८ वृत्रतुर—देखो (६।३६) भी

७ गुगु, ८ वृत्रतुर—

५३ अह गुगुभ्यो **अतिथिग्वमिष्करमिष** न **वृत्रतुर** विक्षु धारय।
यत् **पर्णयघ्न** उत वा **करजहे** प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि।।८।।
—१०।४८

५३ मैंने **गुगोओ** के विरुद्ध **अतिथिग्व** (दिवोदास) को बलवान् किया। लोगो मे वृत्र-नाशक की तरह मैने स्थापित किया। जब मैं **पर्णय** हत्या अथवा **करज**-हत्या, महान् वृत्र-हत्या मे बहुत प्रसिद्ध हुआ।।८।।
—१०।४८

शंबर

५४ न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्ना।
देवक चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहत **शम्बर** भेत्।।२०।।
—७।१८

५४ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उषा की तरह तुम्हारी सुमतियाँ और न धन, कहने के है। तुमने मन्यमान-पुत्र देवक को मार, स्वय बडे (पर्वत) से **शम्बर** को छिन्न-भिन्न किया।।२०।।
—वसिष्ठ, ७।१८

५५ यस्य त्यच्छम्बर मदे **दिवोदासाय** रन्धय।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिव।।१।।
—६।४३

५५ जिसके मद मे तुमने **दिवोदास** के लिए **शम्बर** को मारा। हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारे लिए छना हुआ है, पियो।।१।।
—भरद्वाज, ६।४३

५६ उत दास **कौलितर** बृहत पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र **शम्बरं** ।।१४।।
—४।३०

५६ और हे इन्द्र, तुमने **कुलितर-पुत्र शम्बर** दास को वृहत् पर्वत के ऊपर मारा।।४।।
—वामदेव, ४।३०

५७ यो नन्त्वान्यमन्नयोजसो ता दर्दर्मन्युना **शम्बराणि** वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिराचाविशद्वसुमन्त वि पर्वत।।२।।
—२।२४

५७ हे ब्रह्मणस्पति, ओज से तुमने झुकाने योग्यो को झुकाया, क्रोध मे **शवर** के पुरो को नष्ट किया। न च्युत होनेवालो को च्युत किया। धनवाले पर्वत मे प्रवेश किया।।२।।
—गृत्समद, २।२४

५८ य **शम्बर** पर्वतेषु क्षियन्त **चत्वारिंश्या** शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमान यो अहिं जघान दानु शयान, स जनास इन्द्र ।११।।
—२।१२

५८ जिसने पर्वत मे रहते शम्बर को चालीसवे शरद मे जा धरा। जिसने ओजायमान हो सोते हुए दानव अहि को मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है।।११।।
—गृत्समद २।१२

५६ त्व तदुक्थमिन्द्र बर्हणा क प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दास **शम्बर** हन् प्रावो **दिवोदास** चित्राभिरूती।।५।।
—६।२६

५६ हे इन्द्र तुम शत्रुहन्ता हो। उस स्तुति को अच्छा किया, हे शूर, जब तुमने शत सहस्रो को दर्दराया। तुमने पहाड के दास **शम्बर को** मारा, विचित्र सहायता से **दिवोदास** की रक्षा की ।।५।।
—भरद्वाज, ६।२६

६० इन्द्राविष्णू दृहिता **शम्बरस्य** नव पुरो नवति च श्नथिष्ट।
शत **वर्चिन** सहस्र च साक हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ।।५।।
—७।९९

६० हे इन्द्र और विष्णु, तुमने **शबर** की निन्नानवे दृढ पुरियो को ध्वस्त किया। साथ ही तुमने वर्ची असुर के सौ हजार अप्रतिम वीरो को नष्ट किया।।५।।
—वसिष्ठ, ७।९९

६१ अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती **शम्बरस्य**।
शततम वेश्य सर्वताता **दिवोदासमतिथिग्व** यदाव।।३।।
—४।२६

६१ मैंने सोम से मस्त हो **शबर** की नौ-सहित नब्बे गढियो को ध्वस्त किया। जब युद्ध मे अतिथिग्व **दिवोदास** की रक्षा की तो सौवीं को (उसके) प्रवेश योग्य बनाया।। ३ ।।
—वामदेव, ४।२६

६२ भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र **पूरवे दिवोदासाय** महि दाशुषे नृतो, वज्रेण दाशुषे नृतो।
अतिथिग्वाय शम्बर गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा।।७।।
—१।१३०

६२ हे नृत्य करनेवाले (इन्द्र) तुमने सग्राम मे **भक्त पुरु दिवोदास** के लिए वज्र से निन्नानबे पुरिया नष्ट कीं। अतिथिग्व के लिए तुम उग्र ने शबर को गिरि से नीचे पटका। बडी निधि को बाटते, अपने पराक्रम से सारी निधि बाटते।।७।।
—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

६३ त्व शतान्यव **शम्बरस्य** पुरो जघन्था प्रतीनि **दस्यो** ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो **दिवोदासाय**।

६३ (हे इन्द्र) जहॉ शचिमान् (बुद्धिमान्), तुमने शक्ति के साथ सोमक्रेता, सवनकर्ता **दिवोदास** के लिए शबर दस्यु के सौ पुरो को नष्ट किया। स्तुति करनेवाले **भरद्वाज**

सुन्वते सुतक्रे **भरद्वाजाय** गृणते वसूनि।।४।।

—६।३१

को धन दिये।।४।।

—सुहोत्र, ६।३१

६४ दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्द्धं **कृष्णा** असेधदप सद्मनो जा।

अहन्दासा वृषभोव वस्नयन्तोदव्रजे **वचिना शम्बर** च ।।२१।।

६४ दिन-प्रतिदिन समान प्रकार से (उगते) उसने दूसरे आधे मे काले को दूर करते सद्म से उत्पन्न कृष्णा (रात्रि) को दूर किया। वृषभ (पराक्रमी) इन्द्र ने धन-लोभी **वर्ची** और **शबर** को **उदव्रज** मे मारा।।२१ ।।

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र इश कोशयीर्दश वाजिनो दात्।
दिवोदासदतिथिग्वस्य राध **शम्बरं** वसु प्रत्यग्रभीष्म।।२२।।

—६।४७

हे इन्द्र, प्रस्तोक ने दस और दस घोड़े दिये। दिवोदास **अतिथिग्व** से **शम्बरवाला** धन हमने पाया।।२२।।

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

अध्याय ६

दिवोदास

१ पूर्वकाल के आर्य नेता

१ दध्यङ् —

१ दध्यङ् ह मे जनुष पूर्वो अगिरा प्रियमेध कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पुर्वे, मनुर्विदु ।
तेषा देवेष्वायतिरस्माक तेषु नाभय ।
तेषा पदेन मह्यानमे गिरेन्द्राग्नी, आनमे गिरा । ।६ । ।

—१ ।१३६

१ दधीचि—

१ वे पूर्वज दधीचि, अगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि मनु मेरे जन्म को जानते है, वे मेरे पूर्वज (और) मनु जानते हैं। उनका देवो मे विस्तार है, उनमे हमारे सम्बन्धी हैं। हे इन्द्राग्नि, उनको गीत द्वारा पूजता हूँ, वाणी से नमस्कार करता हूँ, वाणी से नमस्कार करता हूँ । ।६ । ।

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १ ।१३६

२ सम, ३ रुशम, ४ श्यावक, ५ कृप—

२ शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासत ।
शग्धि यथा रुशम श्यावक कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णर । ।१२ । ।

—८ ।३

२ रुम, ३, रुशम, ४ श्यावाक, ५ कृप—

२ हे इन्द्र, हमारी स्तुति से इस यजमान को वही (सहायता) दो। जैसे तुमने पुरु-पुत्र की रक्षा की, जैसे रुशम, श्यावक, कृप की तुमने रक्षा की वैसे (ही) हविवाले यजमान की रक्षा करो । ।१२ । ।

—मेध्यातिथि कण्व-पुत्र, ८ ।३

३ यद्धा रुमे रुशमे श्यावके कृत इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्यागहि । ।२ । ।

—८ ।४

३ हे इन्द्र, जब कि तुम रुम, रुशम, श्यावाक, कृप के साथ होते हो। स्तोम बहन करनेवाले कण्व लोग मन्त्रो द्वारा तुम्हारी प्रशसा करते हैं, आओ । ।२ । ।

—देवातिथि कण्व-पुत्र ८ ।४

६ **बध्रयश्व**—

४. भद्रा अग्नेर्बध्र्यश्वस्य सदृशो वामी प्रणीति सुरणा उपेतय।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते धृतेनाहुतो जरते दविद्युतत्।।१।।

घृतमग्नेर्बध्र्यश्वस्य वर्धन घृतमन्न कृतम्वस्य मेदन।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्राथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुति।।२।।

शश्वदग्निर्वध्र्यश्स्य शत्रून्नृभिर्जिजगाय सुतसोमवद्भि।
समन चिददहश्चित्रभानो' व बाधन्तमभिनदृधश्चित्।। ११ ।।

अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्य।
स नो अजीर्मी रुत वा विजामीनभितिष्ठ शर्धतो वाध्रुयश्व।।१२।।

—१० ।६६

६ **बध्र्यश्व**—

४ **वध्र्यश्व**-का अग्नि दर्शनीय है। उसका नेतृत्व भद्र है, उसका आगमन रमणीय है। जब सुमित्र प्रजायें उसे पहिले प्रज्वलित करती हैं, तो घृत से हवन किया दीप्तिमान् होता है, जलता है।।१।।

वध्र्यश्व की अग्नि का वर्धक घृत है, घृत उसका अन्न है, घृत ही उसको मोटा करनेवाला है। घृत द्वारा आहुति दिया गया खूब विस्तृत होता है, घी प्रदान करने से प्रकाशित होता है।।२।।

सोम छाननेवाले नरो द्वारा **वध्र्यश्वके** अग्नि ने शत्रुओ को सदा जीता। हे अद्भुत प्रकाश वाले, दुष्टको तुमने जलाया है। वृद्धि प्राप्त हो बाधा देनेवाले को उसने मारा।। ११ ।।

वध्र्यश्वका यह अग्नि शत्रुहन्ता है, सदा से वह अतिप्रज्वलित और नमस्कार योग्य है। वह वध्र्यश्ववाला अग्नि हमारे जातिवाले या अजातिवाले हिसको को पराजित करे।।१२ ।।

—सुमित्र वध्रयश्व-पुत्र, १० ।६६

५ इयमददाद्रभमृणच्युत **दिवोदास** **वध्रुयश्वाय** दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावस **पणिं** ता ते दात्राणि तविषा **सरस्वति**।।१।।

—६ ।६१

५ इस (**सरस्वती**) ने भक्त वध्र्यश्व को ऋणमोचक भयकर **दिवोदास** प्रदान किया। जिस (तू) ने दानहीन **पणि** को बराबर खाया, हे सरस्वती, तेरे वे दान बलिष्ठ हैं।।१।।

—सरस्वती, ६ ।६१

७ **अभ्यावर्ती चायमान**—

६ द्वया अग्ने रथिनो विशति गा बधूमतो मघवा मह्य सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा **पार्थवाना**।।८।।

—६ ।२७

७ **अभ्यावर्ती चायमान**—

६ हे अग्नि, मघवा (धनवान्) सम्राट् **अभ्यावर्ती** **चायमान** ने बधुओ-(दासियो) सहित दो रथ और बीस गाये दी। **पार्थवो** की यह दक्षिणा कडी है।।८।।

—भरद्वाज, ६ ।२७

८ सुमीळ्ह, ६ पुरय, १०. पेरुक, ११ शाड—

७ उत म ऋजे पुरयस्य रघ्वी सुमीह्ळे शत पेरुक च पक्वा।
शाडो दाद्धिरणिन स्मद्दिष्टीन्दश वशासो अभिषा च ऋष्वान्।।६।।

—६।६३

८ सुमीळ्ह, ६. पुरय, १० पेरु, ११ शांड—

७ मेरे पास पुरय की भूरी और शीघ्रगामी दो (घोडिया) है। सुमीळ्ह की सौ (गायें) और पेरु का पक्व (भोजन) है। शांड ने सुवर्ण अलकृत शिक्षित दर्शनीय दस बडे घोडे दिये।।६।।

—भरद्वाज, ६।६३

१२ पुरुणीथ—

८ वेश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा।
शातवनेये शतिनीभिरग्नि पुरुणीथे जरते सूनृतावान्।।७।।

—१।४६

१२. पुरुणीथ—

८ अपनी महिमा से वैश्वानर (अग्नि) सब प्रजाओ मे अवस्थित, भरद्वाजो मे पूजनीय और प्रकाशमान है। शतवन-पुत्र पुरुणीथ ने सुन्दर स्तुतियोवाले अग्नि की सैकडों (स्तुतियो) द्वारा प्रशसा की।।७।।

—नोधा गोतम-पुत्र, १।४६

१३ प्रस्तोक—

६ प्रस्तोक इन्नु राधसन्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनो दात्।
दिवोदासादतिथिग्यस्य राध शाम्बंर वसु प्रत्यग्रभीष्म।।२२।।

—६।४७

१३. प्रस्तोक—

६ हे इन्द्र, प्रस्तोक ने तुम्हारे स्तोताओ को युद्धधन में से दस कोश और दस घोड़े दिये। अतिथिग्व दिवोदास से हमने शबरवाला धन पाया।।२२।।

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

१३. भरद्वाज—

१० अग्निरत्रि भरद्वाज गविष्ठिरं प्रावन्न कण्व त्रसदस्युमाहवे।
अग्नि वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहित।।५।।

—१०।१५०

१३ भरद्वाज—

१० युद्ध मे अग्नि ने हमारे अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व, त्रसदस्यु की रक्षा की। वसिष्ठ पुरोहित अग्नि को पुकारता है, सुख के लिए पुरोहित (पुकारता है)।।५।।

—मुळीक वसिष्ठ-पुत्र १०।१५०

१४ कुत्स आर्जुनेय—

११ महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्ण।
उरु ष सरथ सारथये करिन्द्र•कुत्साय सूर्यस्य सातौ।।५।।

—६।२०

१४ कुत्स अर्जुन-पुत्र—

११ जब वज्र के गिरने पर शुष्ण गिर गया, तो महान् द्रोही की सारी आयु (प्राण) विनिष्ट हो गयी। सूर्य के (प्रकाश के) पाने पर सारथि कुत्स के लिए इन्द्र ने रथ को विस्तृत किया।।५।।

—भरद्वाज, ६।२०

१२ प्र ते अस्या उषस प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृदणा।
अनु त्रिशोक शतमाबहनृन्दन् **कुत्सेन** रथो यो असत् ससवान्।।२।।
—१० ।२६

१२ (हे इन्द्र) इस उषाकाल मे नेताओ मे महानतम नेता के दूसरे नृत्य मे हम अच्छे सेवक बने। **त्रिशोक** सौ आदमियो को लाये, जो **कुत्स** के साथ एक रथ पर बैठा था।।२।।
—वसुक्र, १० ।२६

१५ श्रुतर्य, १६ तुर्वीति, १७ दभीति, १८ ध्वसति १६ पुरुषन्ति—

१५ श्रुतर्य, १६ तुर्वीति, १७ दभीति, १८ ध्वसति, १६ पुरुषन्ति—

१३ याभि सिन्धु मधुमन्तमसश्चत **वसिष्ठ** याभिरजरावजिन्वत।
याभि **कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावत** ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत।।६।।

१३ हे अजर अश्विद्वय, जिन उपयो से तुमने मधुमयी सिन्धु को बहाया। जिन उपायो से तुमने **वसिष्ठ** को सुखी किया, जिनसे तुमने कुत्स, **श्रुतर्य**, **नर्य** की सहायता की, उस सहायता के साथ आओ।।६।।

याभि **कुत्समार्जुनेय** शतक्रतु प्र **तुर्वीति** प्र च **दभीतिमावत**।
याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावत ताभिरू षु ऊतिभिरिश्वना गत।।२३।।
—१ ।११२

जिनसे हे शतक्रतु (इन्द्र) तुमने कुत्स **आर्जुनेय**, **तुर्वीति** और **दभीति** की सुरक्षा की, जिनसे **ध्वसिन्त**, **पुरुषन्ति** की रक्षा की, उन रक्षाओ के साथ हे अश्विद्वय, आओ।।२३।।
—कुत्स आगिरस, १।११२

१४ प्रतत्ते अद्या करण कृत **भूत्कुत्स** यदा**युमतिथिग्वमस्मै**।
पुरु सहस्रा नि शिशा अभि **क्षमुत्तुर्वयाण** धृषता निनेथ।।१३।।
—६ ।१८

१४ (हे इन्द्र) वह तुम्हारा काम आज भी प्रसिद्ध है। तुमने जो **कुत्स**,**आयु**, **अतिथिग्व** और बहुत हजार (दूसरे) दबाये। तुमने पिटते, **तुर्वयाण** को बचाया।।१३।।
—भरद्वाज, ६ ।१८

२० देवक मान्यमान—

२०. देवक मान्यमान—

१५ न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्ना।
देवक चिन्मान्यमान जघन्थाव त्मना बृहत **शम्बर** भेत्।। २० ।।
—७ ।१८

१५ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उषा की तरह न तुम्हारी सुमतियॉ और न धन, कहने के है। तुमने **मन्यमान-पुत्र देवक** को मारा, स्वय बडे (पर्वत पर) **शबर** को नष्ट किया।।२०।।(८ ।५४)
—वसिष्ठ ७ ।१८

२१ सुश्रवा—

१६ त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुष ।
षष्टि सहस्रा नवति नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्।।६।।

—१।५३

१६ हे प्रसिद्ध इन्द्र, वधु-हीन **सुश्रवा** पर चढ आये बीस राजाओ और (उनके) साठ हजार निन्नानबे अनुचरो को दुर्लघ्य रथचक्र द्वारा तुमने पराजित किया।।६।।

—सव्य, आगिरस, १।५३

२२ तुर्वयाण—

१७ त्वमाविथ **सुश्रवस** तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र **तूर्वयाण**।
त्वमस्मै **कुत्समतिथिग्वमायु** महे राज्ञे यूने अरन्धनाय ।।१०।।

—१।५३

१७ हे इन्द्र, तुमने अपनी रक्षाओ से सुश्रवा की रक्षा की, तुम्हारी त्रातियो से तुर्वयाण की रक्षा की। तुमने **कुत्स, अतिथिग्व, आयु** की इस तरुण महान् राजा (तुर्वयाण) के लिए अहानिकर किया।।१०।।

—सव्य आगिरस, १।५३

२३ ऋणचय—

१८ भद्रमिद **रुशमा** अग्ने अक्रन् गवा चत्वारि ददत सहस्रा।
ऋणचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृदणाम्।।१२।।
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या या **ऋणचये** राजनि **रुशमाना**।
अत्यो न वाजीरघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा।।१४।।

—५।३०

१८ हे अग्नि रुशमो ने चार हजार गाये मुझे देते भला किया। नेताओ मे महानतम नेता **ऋणचय के** धन को हमने तत्परतासे ग्रहण किया।।१२।।

रुशमो के राजा **ऋणचय के** पास वह सर्वगामिनी रात बीत गयी।
शक्तिशाली घोडे की तरह आगे बढ **बभ्रु** ने चार हजार (गाये) पाई।।१४।।

—बभ्रु, ५।३०

२४ पाकस्थामा कौरयाण—

१६ य मे दुरिन्द्रो मरुत **पाकस्थामा कौरयाण** ।
विश्वेषा त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान।।२१।।

रोहित मे **पाकस्थामा** सुधुर कक्ष्यप्रा।
अदाद्रायो विबोधन।।२२।।

१६ द्यौ के पास दौडनेवाला सा स्वय सबमे अत्यन्त शोभनीय (घोडा) है जिसे मुझे इन्द्र और मरुतो ने कुरयाण-पुत्र पाकस्थामा ने दिया।।२१।।

पाकास्थामा ने मुझे धनप्राप्त करनेवाला रस्सी-सहित सुधुर[1] लाल (घोडा) दिया।।२२।।

[1] रथ मे जुतने लायक।

आत्मा पितुस्तनुर्वास ओजोदा अभ्यजन। तुरीयमिद्रोहितस्य **पाकस्थामान** भोज दातारमब्रव।।२४।।

—८।३

वह पिता का शरीर है, आत्मा वस्त्र **और** बलप्रद भोजन। चौथा लाल घोडे के **दाता** भोजनकर्त्ता **पाकस्थामा** को मैं **कहता** हूँ।।२४।।(५।८१)

—मेध्यातिथि कण्व-पुत्र ८।३

२५ देवश्रवा, २६ देववात—

२५ देवश्रवा, २६ देववात—

२० अमन्थिष्टा **भारता** रेवदग्नि **देवश्रवा देववात** सुदक्ष।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषा नो नेता भवतादनुद्यून्।।२।।

दशक्षिप पूर्व्य सीमजीजनन्त्सुजात। मातृषु प्रिय।।
अग्नि स्तुहि **दैववात देवश्रवो** यो जनानामसद्वशी।।३।।

—३।२३

२० भरत-सन्तान **देवश्रवा** और **दैववात** ने सुदक्ष, धनवान् अग्नि को मथित किया। हे अग्नि, तुम बडे धन के साथ हमारी ओर देखो। प्रतिदिन हमारे नेता बनो।।२।।

(अरणी) माताओ मे प्रिय पूर्वतन सुजात अग्निको दस अगुलियो ने उत्पन्न किया। हे **देवश्रवा दैववात-कृत** *अग्नि की स्तुति* करो, जो कि जनो को बस मे करनेवाला है।।३।।

—देवश्रवा, देववात, ३।२३

२७ सृजय दैववात, २८ वृचीवान्—

२७ सृजय देववात-पुत्र, २८ वृचीवान्—

२१ यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स **सृजयाय तुर्वश** परादाद् **वृचीवतो दैववाताय** शिक्षन्।। ७ ।।

—६।२७

२१ जिसके दो सुन्दर घास चरनेवाले लालसा भरे लाल (घोडे) (द्यौ पृथिवी के) मध्यमे विचरते हैं। उस (इन्द्र) ने **सृजय** को पास **तुर्वश** को समर्पित किया देववात-पुत्र के लिए **वृचीवान्** को।।७।।

—भरद्वाज, ६।२७

२२ अय य **सृजये** पुरो **दैववाते** समिध्यते। द्युमा अमित्रदम्भन ।।४।।

—४।१५

२२ यह अमित्रनाशक द्युतिमान अग्नि है, जो कि **देववात-पुत्र सृजय** के यहाँ प्रज्वलित होता है।।४।।

—वामदेव, ४।१५

२६ सार्ञ्जय महिराध—

२६ सृजय-पुत्र—

२३ **महिराधो** विश्वजन्य दधानान्भरद्वाजान्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट।।२५।।

—६।४७

२३ सभी जनो के हितार्थ महान् धन को तपानेवाले **भरद्वाजो** का सम्मान सृजय-पुत्र ने किया।।२५।।

—६।४७

३० पुरुकुत्स—

२४ सनेम ते वसा नव्य इन्द्र प्र पूरव स्तवन्त एना यज्ञै ।
सप्त यत्पुर शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासी पुरुकुत्साय शिक्षन् । ।१० । ।

—६ ।२०

२४ हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम नवीन धन चाहते है। (अपने) यज्ञो द्वारा पुरु लोग ये स्तुतियाँ करते हैं। जब पुरुकुत्स की सहायता करते तुमने दासो की सात शरद-कालीन शरणस्थानीय गढियो को नष्ट किया । ।१० । ।

—भरद्वाज ६ ।२०

२५ दनो विश इन्द्र मृध्रवाच सप्त यत् पुर शर्म शारदीर्दत् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्ण यूने पुरुकुत्साय रन्धी । ।२ । ।

—१ ।१७४

२५ हे दनु इन्द्र, जब तुमने बकवासी दानव प्रजाओ की शरणस्थानीय सात शरदकालीन पुरियो को नष्ट किया। हे निर्दोष, तुमने बाढ के जल को चलाया। तुमने तरुण पुरुकुत्स के लिए शत्रु को मारा । ।२ । ।

—अगस्त्य, १ ।१७४

२६ त्व ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्द ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिव पूरवे-क । ।७ । ।

—१ ।६३

२६ हे वज्रधारी इन्द्र, तुमने लडते हुए पुरुकुत्स के लिए जो सात पुरियो को ध्वस्त किया। हे राजन्, सुदास के लिए जो कुश की तरह तुमने व्यर्थ के पापी (शत्रु) को मारा, पुरु को धन और मगल दिया । ।७ । ।

—नोधा गोतम-पुत्र, १ ।६३

२७ याभि शुचन्ति धनसा सुषसद तप्त धर्ममोम्यावन्ततत्रये ।
याभि पृश्निगुं पुरुकुत्समावत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत । ।७ । ।

—१ ।११२

२७ जिन रक्षाओ द्वारा तुमने शुचन्ति को धन और सुन्दर सदन दिया, अत्रि के लिए रक्षावाला तपते घाम को बनाया। जिन (रक्षाओ) से पृश्निगु, पुरुकुत्स की तुमने रक्षा की। हे अश्विद्वय, उन रक्षाओ के साथ आओ । ।७ । ।

—कुत्स आगिरस, १ ।११२

३१ त्रसदस्यु पौरुकुत्स—

२८ त्व धृष्णो धृषता वीतहव्य प्रावो विश्वाभिरूतिभि सुदास ।
प्र पौरुकुत्सि त्रसदस्युमाव क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरु । ।३ । ।

—७ ।१९

३१ त्रसदस्यु पुरुकुत्सपुत्र—

२८ हे (इन्द्र) शत्रुओ का दमन करते अपनी सारी रक्षाओ द्वारा वीतहव्य सुदास की रक्षा करो। क्षेत्र पाने के लिए वृत्र-युद्ध मे पुरुवशी पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्यु की रक्षा करो । ।३ । ।

—वसिष्ठ, ७ ।१९

२६ अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्र न वृत्रतुरमर्धदेव।।८।।

२६ यहाँ हमारे वे सात पितर ऋषि थे, दुर्गह-पुत्र के बदी होने के समय उन्होने इन्द्र जैसे अर्धदेव शत्रुनाशक **त्रसदस्यु को** पाया।।८।।

३० **पुरुकुत्सानी** हि वामदाशग्रद्धव्येभि– रिन्द्रापरुणा नमोभि।
अथा राजान **त्रसदस्युमस्या** वृत्रहण ददथुरर्धदेव ।। ६ ।।

—४।४२

३० हे इन्द्र-वरुण, नमस्कारो के साथ **पुरुकुत्सानी** ने तुम्हे हवि प्रदान किया। फिर तुमने उसे शत्रु-नाशक राजा **त्रसदस्यु को** प्रदान किया।।६।।

—वामदेव, ४।४२

३१ उप त्ये मा **पौरुकुत्स्यस्य** सूरेस्त्रसदस्योहिरणिनो रराणा।
बहन्तु मा दश श्येतासो अस्य **गैरिक्षितस्य** ऋतुभिर्नु सश्चे।।८।।

—५।३३

३१ सुवर्णवाले सूरि **पुरुकुत्स-पुत्र** त्रसदस्यु के वे दस श्वेत रमणीय घोडे मुझे वहन करते है। उस **गिरिक्षित-पुत्र** के यज्ञो से हम शीघ्र आये।।८।।

—सवर्ण प्रजापति-पुत्र, ५।३३

३२ उतो हि वा दात्रा सन्ति पूर्वा या **पुरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे**।
क्षेत्रासा ददथुरुर्वरासा धन **दस्युभ्यो** अभिभूतिमुग्र।।१।।

—४।३८

३२ (हे द्यौ-पृथिवी) तुम्हारे पास से पहले धन पाकर दाता **त्रसदस्यु** ने पुरुओ को प्रदान किया। तुमने उसे उर्बर क्षेत्र दिया, दस्युओ को पराजित करने के लिए कठोर अस्त्र दिया।।१।।

—वामदेव, ४।३८

३३ अदान्मे **पौरुकुत्स्य** पचाशत **त्रसदस्युर्बधूना**। महिष्ठो अर्य सत्पति।।३६।।

३३ अतिमहान् स्वामी सत्पति पुरुकुत्स-पुत्र **त्रसदस्यु** ने मुझे पचास बधुये (दासिया) दीं।।३६।।

उत मे प्रयियोर्चयियो **सुवास्त्वा** अधि तुग्वनि।
तिसृणा सप्ततीना **श्याव** प्रणेता भुवद्वसुर्दियाना पति।।३७।।

—८।१६

और प्रणेता दानपति **श्यावने** सुवास्तु के तट पर शीघ्र जानेवाला मुझे मजबूत घोडा, दो सौ दस बैल दिये।।३७।।

—सोमरि काण्व, ८।१६

३२ कुरुश्रवण **त्रसदस्यु-पुत्र**—

३२ कुरुश्रवण **त्रसदस्युपुत्र**—

३४ तमागन्म **सोभरय** सहस्रमुष्क स्वभिष्टिमवसे।
सम्राज **त्रासदस्यव**।।३२।।

—८।१६

३४ रक्षा के लिए हम **सोभरि** सम्राट् **त्रसदस्यु** के उस बहुत तेजस्वी सुरूप (अग्नि) के पास आये।।३२।।

—सोभरि काण्व, ८।१६

३५ एतानि भद्रा कलश क्रियाम **कुरुश्रवण** ददतो मघानि।
दान इद्वो मघवा न स अस्त्वय च सोमो हृदि य बिभर्मि।।६।।

—१० ।३२

कुरुश्रवणमावृणि राजान **त्रासदस्यव।**
महिष्ठ वाघतामृषि ।।४।।

—१० ।३३

३५ हे कलश, हम ये मगल करते है, धनो के दाता **कुरुश्रवण** तुम्हे मघवा (इन्द्र) फल दे और सोम भी, जिसे कि मै हृदय मे धारण करता हूँ।।६।।

—कवष ऐलूष, १० ।३२

मैं (कवष) ऋषि दाताओ मे महान्तम त्रसदस्यु-पुत्र राजा **कुरुश्रवण** को पसद करता हूँ।।४।।

—१० ।३३

३३ अभ्यावर्ती चायमान—
द्वया अग्ने रथिनो विशति गा बधूमतो मघवा मह्य सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा **पार्थवानाम्**।।८।।

—६ ।२७

३३ अभ्यावर्ती चायमान—
हे अग्नि, धनवान् पार्थवो के सम्राट् चायमानपुत्र अभ्यावर्ती ने मुझे बधुओ (दासियो) सहित दो रथ के घोडे और बीस गाये प्रदान कीं।।८।।

—भरद्वाज ६ ।२७

३४ (चित्र) सरस्वती-तट—देखो १६ ।४३।

३४ चित्र (सरस्वती तट)—देखो १६ ।४३
दिवोदास-सुदास के समय आर्यो के भिन्न-भिन्न जनो मे अनेक प्रतापी राजा थे, जिनका उल्लेख ऋषियो ने अपनी ऋचाओ मे किया है—वश अश्व्य (८ ।४६ ।३३) जिसके लिए सुवर्ण आभूषित अच्छी सुन्दरी लाई गयी थी।

३५ कशु चैद्य—
ता मे अश्विना सनीना विद्यात नवाना।
यथा **चिच्चैद्य** कशु शतमुष्ट्राणा ददत्सहास्रा दश गोना।।३७।।

३५ कशु चैद्य—
चेदी जन सप्तसिन्धु के गुमनाम से जनो मे एक था, जिसका राजा कशु अपने दान के लिए बहुत मशहूर था। ब्रह्मातिथि काण्व ने इसकी प्रशसा मे लिखा है ८ ।३ ।३७ ।३६—
हे अश्विनो मुझे मिले नये दानो को जानो। **कशु चैद्यने** सौ ऊँट और दस हजार गाये दीं।।३७।।

यो मे हिरण्यसन्दृशो दशराज्ञो अमहत।
अघस्पदा **इच्चैद्यस्य** कुष्टयश्चर्मन्मा अभितो जना ।।३८।।

जिसने मुझे सुवर्ण समान दस राजाओ को प्रदान किया। ढालो लिए आदमी जन घेर कर चेद्य (कशु के) पैरो मे खडे हुए।।३८।।

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति **चेदय** ।
अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जन ।।३६।।

—८।५

जिस रास्ते से यह चेदि लोग जाते हैं, दूसरा नहीं जाता। उससे अधिक देने वाला राजा सूरि नहीं हैं।।३६।।

—८।५

२. दिवोदास के कार्य

१ दिवोदास—

३६ प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखाय ।
नि **तुर्वश** नि **याद्व** शिशीह्यतिथि**ग्वाय** शस्य करिष्यन्।।८।।

—७।१६

१ दिवोदास—

३६ हे मघवन्, तुम्हारी शरण मे हम प्रिसखा नर पास मे मौजसे रहे। **अतिथिग्व** (दिवोदास) की भलाई करते **तुर्वश** और **याद्व** को पराजित करो।।८।।

—वसिष्ठ, ७।१६

३७ पुर सद्य इत्था धिये **दिवोदासाय** **शम्बर**। अध त्य **तुर्वश यदु**।।२।।

—६।६१

३७ (सोमने) इस प्रकार तुरन्त ही **शबर की** पुरियो को और उस **तुर्वश** यदु को **दिवोदास** लिए नष्ट किया।।२।।

—अमहीयु आगिरस, ६।६१

३८ त्व **करजमुत** **पर्णय** वधीस्तेजिष्ठया**तिथिग्व**स्य वर्तनी।
त्व शता **वगृद**स्याभिनत् पुरो नानुद परिषूता **ऋजिश्विना**।।८।।

—१।५३

३८ हे इन्द्र, तुमने **करज** और **पर्णय** को मारा, अतिथिग्व **दिवोदास** की भलाई के लिए अत्यन्त तीक्ष्ण हथियारो से मारा। तुमने निराबाध **ऋजिश्वा** द्वारा घेरी गई **वगृद** **की** सौ पुरियो को ध्वस्त किया।।८।। (८।४६)

—सव्य आगिरस १।५३

३६ अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाभी द्वा किमु त्रय करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरिं कि मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्रा ।।७।।

अह गुगुभ्यो **अतिथिग्वमिष्करमिष** न **वृत्रतुरं** विक्षु धारय।
यत् **पर्णयघ्न** उत वा करजहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि।।८।।

—१०।४८

३६ आये, एक (शत्रु) को मैं अकेला पराजित करनेवाला हूँ। दो या तीन मेरी क्या कर सकते हैं। खलिहान मे धान्य की तरह मैं खूब मारूँगा। इन्द्रहीन शत्रु मेरी क्या निन्दा करेगे।।७।।

मैंने गुगुओ के विरुद्ध अतिथिग्व (दिवोदास) को दृढ किया, और प्रजाओ मे अन्न की तरह शत्रुनाशक हो धारण किया। पर्णयहत्या अथवा **करज**-हत्या या महान् वृत्र-हत्या मे मैं बहुत प्रसिद्ध हुआ।।८।।

—इन्द्र, १०। ४८

४० यदयात **दिवोदासाय** वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेवदुवाह स चनो रथो वा वृषभश्च शिशुमरश्च युक्ता।।१८।।

—१।११६

४० हे अश्विद्वय, पुकारे जाने पर जब तुम **दिवोदास** के पास, **भरद्वाज** के पास आये। तो उस समय तुम्हारे उपयोग का रथ धन लेकर आया था, (उसमे) वृषभ और शिशुमार जुते हुए थे।।१८।।

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

४१ याभिर्महामतिथग्व कशोजुव **दिवोदास** शम्बरहत्य आवत। याभि **पूर्भिद्ये** त्रसदस्युमावत ताभिरूषु ऊतिभिरश्विना गत।।१४।।

—१।११२

४१ हे अश्विद्वय, तुमने जिन रक्षाओ से शवरयुद्ध मे कशाधारी अतिथिग्व **दिवोदास** की रक्षा की। जिनसे पुरो के तोडने के समय तुमने त्रसदस्यु की रक्षा की, उन (रक्षाओ) के साथ आओ।।१४।।

—कुत्स आगिरस, १।११२

४२ युव भुज्यु भुरमाण विभिर्गत स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्ट वर्तिर्वृषणा विजेन्य **दिवोदासाय** महि चेति वामव।।४।।

—१।११६

४२ हे अश्विद्वय तुम पक्षियो के साथ जल मे डूबते **भुज्यु** को अपनी युक्तियो से निकाल पिताओ के पास ले गये। पराक्रमियो, तुम दूर गये। दिवोदास को तुम्हारी रक्षा का महत्व है।।४।।

—कक्षीवान दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

२ शम्बर-हत्या—

२ शवरयुद्ध—

४३ त्व कवि चोदयोऽर्कसातो त्व **कुत्साय** **शुष्ण** दाशुषे वर्क्।
त्व शिरो अमर्मण पराहन्**नतिथिग्वाय** शस्य करिष्यन्।।३।।

—६।२६

४३ (हे इन्द्र) तुमने प्रकाशप्राप्ति के लिए कवि को प्रेरित किया, भक्त कुत्स के लिए तुमने शुष्णको मारा। तुमने **अतिथिग्व** की भलाई करने की इच्छा से मर्महीन (शबर) के सिर को काटा।।३।।

—भरद्वाज, ६।२६

४४ भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र **पूरवे** **दिवोदासाय** महि दाशुषे नृतो, वज्रेण दाशुषे नृतो।
अतिथिग्वाय शम्बर गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा, विश्वा धनान्योजसा।।७।।

—१।१३०

४४ हे नृत्य करनेवाले इन्द्र, तुमने सग्राम मे भक्त पुरु **दिवोदास** के लिए वज्र से निन्नानबे पुरिया नष्ट कीं। **अतिथिग्व** के लिए तुम उगते **शबर** को गिरि से नीचे पटका। बडी निधि को अपने पराक्रम से बाटते, अपने पराक्रम से सारी निधि को बाटते।।७।। (८।६२)

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

४५ त्वमिभा वार्या पुरु **दिवोदासाय** सुन्वते।
भरद्वाजाय दाशुषे।।५।।

—६।१६

४५ हे अग्नि, तुमने सोम सवन करनेवाले पुरु **दिवोदास** के लिए इन श्रेष्ट (धनो) को दिया, और भक्त **भरद्वाज** के लिए (भी)।।५।।

—भरद्वाज, ६।१६

४६ आग्निरगामि **भारतो** वृत्रहा पुरुचेतन।
दिवोदासस्य सत्पति।।१६।।

—६।१६

४६ बहुत चेतनावाला शत्रुनाशक **भरतोवाला** **दिवोदास** का सत्पति अग्नि आया।।१६।।

—भरद्वाज, ६।१६

४७ यस्य त्यच्छम्बर मदे **दिवोदासाय** रन्धय।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिब।।१।।

—६।४३

४७ जिसके मद मे मस्त हो हे इन्द्र, तुमने **दिवोदास** के लिए **शबर** को मारा। सो यह सोम तुम्हारे लिए छना हुआ है, पियो।।१।।

—भरद्वाज, ६।४३

४८ अह पुरो मन्दसाना व्यैर नव साकन्नवती **शम्बरस्य**।
शततम वेश्य सर्वताता **दिवोदासमतिथिग्व** यदाव।।३।।

—४।२६

४८ मैंने मस्त हो **शम्बर** की निन्नानवे पुरियो को ध्वस्त किया, सर्वी को प्रवेश करने के लिए (रक्खा), जब (युद्ध मे) **दिवोदास** **अतिथिग्व** की मैंने रक्षा की थी।।३।।

—वामदेव, ४।२६

३. हथियार

१ इषु, २ निषग—

४९ सक्रन्दनेनानिमिषण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्व युधो नर **इषुहस्तेन** वृष्णा।।२।।

स **इषुहस्तै** स **निषगिभिवशी** ससृष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
ससृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता।।३।।

—१०।१०३

१ वाण, २ तर्कश—

४९ कोलाहल करनेवाले बराबर देखते, जय करने वाले, जोडनेवाले, चित न होनेवाले, सघर्षवाले, वाणहस्त, पराक्रमी इन्द्र के साथ हो युद्ध मे हे नरो, (शत्रुको) पराजित विताडित, करो।।२।।

वह वाण-हस्तो, तुणीर वालो, के साथ, गुण से युक्त युद्ध मे भिडन्त करनेवाले, भीड जीतनेवाले सोम-पायी, बाहुबल-युक्त उग्र धनुर्धर उस इन्द्र ने फेके बाणो से शत्रुओ को गिराया।।३।।

—अप्रतिरथ इन्द्र-पुत्र १०।१०३

३ धनुष, ४ ज्या, ५ वर्म—

५० जीमूतस्येव भवति प्रतीक यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्व स त्वा **वर्मणो** महिमा पिपर्तु।।१।।
धन्वना गा **धन्वना**जि जयेम **धन्वना** तीव्रा समदो जयेम।
धनु शत्रोरपकाम कृणोति धन्वना सर्वा प्रदिशो जयेम।।२।।

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्ण प्रिय सखाय परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि **धन्वन् ज्या** इय समने पारयन्ती।।३।।
ते आचरन्ती समनेव योष मातेव पुत्र बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यता सविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान्।।४।।

—६।७५

३ धनुष, ४ प्रत्यचा, ५ कवच—

५० कवचधारी (वीर) जब युद्ध के बीच जाता है, तो मानो मेघ का प्रतीक होता है। तुम घावरहित शरीर वाले होओ, **कवच** की वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे।।१।।

हम धनुष से गायो को जीते धनुष से युद्ध को जीते, धनुष से तीव्र सेनाओ को जीते। **धनुष** शत्रु मे भगदड मचाता है, **धनुष** से हम सारी दिशाओ को जीते।।२।।
कान तक खिची युद्ध मे पार कराती धनुष के ऊपर फैली यह प्रत्यचा प्रिय सखा को आलिगन करती स्त्री की तरह बोलती है।।३।।

वे (दोनो धनुष के कोर) प्रेमी मे स्त्री की तरह लडाई के उपस्थित होने पर पुत्र मे माता की तरह आचरण करती गोद मे लेती है। यह कोर मिलकर हिलते शत्रुओ अमित्रो को बेधे।।४।।

—पायु भरद्वाज-पुत्र ६।७५

५१ प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चता।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माक बोधि चोदिता।
नभन्तामन्यकेषा **ज्याका** अधि धन्वसु।।१।।

—१०।१३३

५१ जो रथ के समान रक्खेगा उस इन्द्र के लिए बल को पूजो। युद्ध मे समीप आ जाने पर लोककर्त्ता प्रेरक शत्रुनाशक (इन्द्र) हमे जतलाये।
दूसरो की प्रत्यचाये धनुषो मे टूट जाये।।१।।

—सुदास पिजवन-पुत्र १०।१३३

६ कुलिश—

५२ वैश्वानाराय धिषणामृतावृधे घृत न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतार मनुषश्च वाघतो धिया रथ न **कुलिश** समृण्वति।।१।।

—३।२

६ कुल्हाडा—

५२ हम ऋतवर्धक वैश्वानर अग्नि के लिए घृत की तरह पवित्र स्तुति करते हैं। जैसे रथ को कुल्हाडा (बसूला) ठीक गढता है वैसे ही दो प्रकार से होता (अग्नि) की मनुष्यो के स्तुति से बढते हैं।।१।।

—विश्वामित्र ३।२

७ परशु—

५३ **परशु** चिद्वितपति शिम्बल चिद्विवृश्चति।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता
फेनमस्यति।।२२।।

—३।५३

७ फरसा—

५३ हे इन्द्र, फरसा जैसे तपाता, सेमल जैसे काटता, (जैसे) पकाई जाती हडिया खौलती फेन छोडती है।।२२।।

—विश्वामित्र, ३।५३

८ वाशी, ९ ऋष्टि (छुरा)—

५४ **वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो** मनीषिण
सुधन्वान **इषुमन्तो निषगिण।**
स्वस्वा स्थ सुरथा पृश्निमातर स्वायुधा
मरुतो याथमाशुभ।।२।।

—५।५७

८ बसूला, ९ छुरा—

५४ **बसूलेवाले, छुरेवाले** मनीषी **सुधनुष-युक्त वाणवान्, तूणीरधारी,** सुन्दर घोडेवाले, सुन्दर रथवाले, सुन्दर आयुधवाले हो पृश्नि-माता के पुत्र हे मरुतो, हमारे विजय के लिए आओ।।२।।

—श्यावाश्व, ५।५७

५५ **वाशीमेको** बिभर्ति हस्त
आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुवि ।।३।।

—८।२९

५५ देवो के बीच निश्चल स्थान मे स्थित एक पुरुष हाथ मे आयसी (ताबे के) बसूले को धारण करता है।।३।।

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ८।२९

१० वज्र—

५६ वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहित तेन
वृत्राणि जिघ्नते।।४।।

—८।२९

१० वज्र—

५६ एक हाथ मे वज्र धारे, उससे शत्रुओ को मारता है।।४।।

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ८।२९

११ अत्क—

५७ त्व त इन्द्रोभया **अमित्रान्दासा**
वृत्राण्यार्या च शूर।
बर्धीवनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि
नृणा नृते।।३।।

—६।३३

११ अत्क—

५७ हे शूर इन्द्र, तुम दास और आर्य उन दोनो अमित्रो (शत्रुओ) को, हे नेताओं मे श्रेष्ठतम नेता, तीक्ष्ण धारवाले अत्कों (कुल्हाडो) द्वारा जैसे वन को, वैसे युद्ध में मारते हो।।३।।

—शुनहोत्र, ६।३३

१२ नाव—

५८ अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्त शतारित्रा नावमातस्थिवास।।५।।

—१।११६

१२ नाव[1]—

५८ हे अश्विद्वय, तुमने निरालम्ब, ठहरने के स्थान से रहित समुद्र मे वीरता दिखलाई, जब कि भुज्यु को सौ पतवारोवाली नाव मे बैठा कर घर ले गये।।५।।

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

१३ अष्ट्रा (आरा)—

देखो १५।५२

१४ स्वधिति (छुरा), १५ क्षणोत्र (शान)

देखो १८।१२ (७)।

---

[1] घर के उपयोग के हथियारो का उल्लेख निम्न प्रकार है—
आरा—६।५३।५, क्षुर (अस्तुरा)—८।४।१६, १०।२६।८, परशु, कुठार स्वधिति—१।१६२।६ १८ २० १०।२८।८ (परशु), वाशी (बसूला)—२८।२६।३, सूची (सूई)—१।१६१।७ २।३२।४ घर मृण्मय (मिट्टी के) होते थे ७।८६।१

अध्याय १०

सुदास

१ सुदास वीतहव्य

१ वसिष्ट पुरोहित—

१ दण्डा इवेद्गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना **भरता** अर्भकास ।
अभवच्च पुर एता **वसिष्ठ** आदित्तृत्सूना विशो अप्रथन्त।।६।।

—७।३३

२ इद्रेणैते **तृत्सवो** वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवत नीची ।
दुर्मित्रास प्रकलविन् विमाना जहुर्विश्वानि **भोजना सुदासे**।।१५।।

—७।१८

३ **श्वित्यचो** मा दक्षिणतस्कपर्दा घिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे **वसिष्ठा** ।।१।।

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशान्तमतिपान्तमुग्र।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रो वृणीता **वसिष्ठान्**।।२।।

एवेन्नु क **सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु** क **भेदमेभिर्ज्जघान**।
एवेन्न क **दाशराज्ञे सुदास** प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो **वसिष्ठा** ।।३।।

—७।३३

१ वसिष्ठ पुरोहित—

१ दण्ड से जैसे गौवे, वैसे ही भरत जनहीन शिशुओ की तरह छिन्न-भिन्न थे। **वसिष्ठ** इनका अगुआ (पुरोहित) हुआ, तो **तृत्सुओ** की प्रजाये बढने लगीं।।६।। (५।१२)

—वसिष्ठ, ७।३३

२ इन्द्र द्वारा प्रताडित ये तृत्सु छोडे हुए जल की तरह नीचे की ओर भागे। दुष्ट मित्रोवाले विकल-बुद्धि उन्होने बाधित हो सारे भोजन **सुदास** के लिए फेक दिये।।१५।।

—वसिष्ठ, ७।१८

३ गोरे दाहिनी ओर जूडा रखनेवाले सुबुद्धि वे (वसिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञ से उठते मैं आदमियो को कहता हूँ "वसिष्ठ-सतान मुझसे दूर न जाये"।।१।।(३।६)

वायत-पुत्र **पाशद्युम्न** के छाने सोम से इन्द्र ने **वसिष्ठो** के (सोम को) पसन्द किया। छाने हुए सोम के साथ पात्र मे स्थित सोम को बहुत पीने से उग्र इन्द्र को **वसिष्ठ** वैशन्त से लाये।।२।।

ऐसे ही इनके द्वारा (वह) सिन्धु को पार हुआ ऐसे ही इनके द्वारा (उसने) भेद को मारा। ऐसे ही हे **वसिष्ठो**, तुम्हारे ब्रह्म (ऋचा) द्वारा इन्द्र ने **दाशराज्ञ** मे **सुदास** की रक्षा की।।३।।

—वसिष्ठ, ७।३३

२. सुदास—

४ द्वे नप्तुर्देववत शते गोर्हा रथा वधूमन्ता सुदास ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन ।।२२।।

५ चत्वारो मा पैजवनस्य दाना स्मद्दिष्टय कृशनिनो निरेके।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठा सुदासस्तोक ताकाय श्रवसे वहन्ति।।२३।।

—७।१८

६ इम नरो मरुत सश्चतानु दिवोदास न पितर सुदास ।
अविष्टना पैजवनस्य केत दूणाश क्षत्रमजर दुवोयु।।२५।।

—७।१८

७ त्व धृष्णो धृषता वीतहव्य प्रावो विश्वाभिरूतिभि सुदासं।
प्र पौरुकुत्सि त्रसदस्युमाव क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरु।।३।।

—७।१९

८ सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाज।।६।।

—७।१९

९ हन्ता वृत्रमिन्द्र शूशुवान प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोक दाता वसु मुहुरा दाशुपे भूत् ।।२।।

—७।२०

२ सुदास पैजवन—

४ हे अग्नि, अर्हत देववान् के नाती पैजवन सुदास की दो सौ गाय और बहुओं-सहित दो रथों को दान के तौर पर पा होता की तरह गान करते मैं घर जाता हूँ।।२२।।

५ पैजवन के दिये दानों के अलंकारोंवाले हमारे शिक्षित सन्लगामी मोतीमण्डित पृथिवी पर स्थित चार घोड़े मुझे और पुत्र-पौत्र को यशपूर्वक वहन करते हैं।।२३।।

—वसिष्ठ, ७।१८

६ हे नेता मरुतो पिता दिवोदास की तरह सुदास की सहायता करो, पैजवन की इच्छा की पूर्ति करो, उसके स्थिर अजर राज्य की रक्षा करो।।२५।।

—वसिष्ठ ७।१८

७ हे धर्षक इन्द्र तुमने शत्रुओं का धर्षण करते वीतहव्य सुदास की सारी रक्षाओ मे रक्षा की। वृत्र युद्ध मे क्षेत्र लाभ के लिए पुरुवशी पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्यु की रक्षा की।।३।।

—वसिष्ठ ७।१९

८ हे इन्द्र रातहव्य (हविदाता) सुदास के लिए तुम्हारे भोजन (सम्पत्ति) सदा से है। हे पराक्रमी तुम्हारे दोनों मजबूत घोड़े रथ मे जोड़ता हूँ।
तुम बड़े शक्तिशाली हो, तुम्हारे पास हमारे पद (ब्रह्म) शक्ति के लिए जाय।।६।।

—वसिष्ठ, ७।१९

९ सुपुष्ट शत्रु को मारता वह वीर इन्द्र स्तोता की शीघ्र रक्षा करता है। सुदास के लिए उसने लोक को बनाया, भक्त को उसने बार-बार धन दिया।।२।।

—वसिष्ठ, ७।२०

१० शत ते शिप्रिन्नतय **सुदासे** सहस्र शसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्न च धेहि।।३।।

—७।२५

१० हे उष्णीषधारी इन्द्र, **सुदास** के लिए तुम्हारे सहस्रो उपकार और होवे, घातक मर्त्य को नष्ट करो। हमें तेज और रथ प्रदान करो।।३।।

—वसिष्ठ ७।२५

११ नकि **सुदासो** रथ पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गौमति वज्रे।।१०।।

—७।३२

११ **सुदास** के रथ को कोई नहीं दूर फेक सका, न रोक सका, जिसका रक्षक इन्द्र, जिसके (रक्षक) मरुत् हैं, वह गौवोवाले गोष्ठ मे जाता है।।१०।।

—वसिष्ठ, ७।३२

१२ युवा नरा पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्त **पृथुपर्शवो** ययु।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च **सुदास**मिन्द्रावरुणावसावत।।११।।

—७।८३

१२ हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हे और तुम्हारी मित्रता को देखते हुए गौ लूटनेवाले **पृथु** और **पर्शु** पूर्वकी ओर गये। तुमने (उसके) आर्य और दास शत्रुओ को मारा, और **सुदास** को (अपनी) रक्षा से बचाया।।११।।

—वसिष्ठ, ७।८३

२. दाशराज्ञ युद्ध

१ शत्रु—

१३ युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्र च वस्वो वरुण च सातये।
यत्र **राजभिर्दशभिर्निबाधित** प्र **सुदास**मावत **तृत्सुभि** सह।।६।।

दस राजान समिता अयज्यव **सूदास**मिन्द्रावरुणा न युयुधु।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु।।७।।

—७।८३

१ शत्रु—

१३ दोनों सग्रामो मे धन की इच्छा करते दोनो (पक्षो) ने तुम इन्द्र और वरुण को सहायता के लिए बुलाया। जहाँ दस राजाओ से **तृत्सुओ** के साथ सकटग्रस्त सुदास की तुमने रक्षा की।।६।।

हे इन्द्र-वरुण, यज्ञ-विमुख दस राजा युद्ध मे **सुदास**से नहीं लड सके। यज्ञ मे बैठे हुए इन नरो की स्तुति सत्य हुई, देव लोग इनके देव-निमत्रण मे उपस्थित हुए।।७।।

—वसिष्ठ, ७।८३

१४ पुरोळा **इत्तुर्वशो यक्षूरासीद्राये मत्स्यासो** निशिता अपीव।
श्रुष्टि चक्रुर्भृगवो **द्रुह्यवश्च** सखा सखायमतरद्विषूचो।।६।।

१४ तुर्वश हव्यदाता यज्ञकर्त्ता, धन के इच्छुक पानी मे मछलियो की तरह बँधे थे। भृगुओ और द्रुह्युओ ने सुना, सखा (इन्द्र) ने सखा (सुदास) की इससे (तुर्वश)-युद्ध के बीच रक्षा की।।६।।२।१३।६

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिन शिवास ।
आ यो नयत्सधमा आर्यस्य गव्य तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नृन् ।।७।।

पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी, शिव आये। जिस (इन्द्र) ने आर्य की गाये तृत्सुओ के लिए ला, युद्ध मे लोगो को जीता।।७।।(२।१८।७)

दुराध्यो अदिति स्रेवयन्तो चेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीं।
मह्ना विव्यक् पृथिवीं पत्यमान पशुष्कविरशयच्चायमान ।।८।।

—७।१८

दुर्विचार, अविचारी (शत्रु) ने अदिति (पृथिवी) को खोलते परुष्णी (रावी) पर अधिकार कर लिया। (इन्द्र की) महिमा से चायमान कवि पशु की तरह पृथिवी पर गिराकर मारा गया।।८।। (२।१८।८)

—वसिष्ठ, ७।१८

१५ दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षत।
श्वित्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सव ।।८।।

—७।८३

१५ दाशराज्ञ (युद्ध) मे घिरे हुए सुदास की इन्द्र और वरुण ने सहायता की। जिस (दाशराज्ञ युद्ध) मे श्वेत (गौर) जूडाधारी स्तुतिपाठी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तोत्र से तुम्हारी पूजा करते थे।।८।।

—वसिष्ठ, ७।८३

१६ अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्द्धन्त शिम्युमुचथस्य नव्य शाप सिन्धूनामकृणोदशस्ती ।।५।।

—७।१६

१६ स्तुत्य इन्द्र ने सुदास के लिए फूली नदियो को गाध और सुपारा बनाया। (उस) नमस्करणीय स्तुति-शत्रु शिम्यु से सिन्धुओ के शाप को अप्रशस्त किया।।५।। (५।२७)

—वसिष्ठ, ७।१६

१७ एक च यो विशति च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्त ।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हि शूर सर्गमकृणोदिन्द्र एषा।।११।।

१७ यश के लिए (सुदास) राजा ने दोनो वैकणो के एक्कीस जनो को मारा। जैसे ऋत्विज यज्ञ-सदन मे कुश को काटता है, वैसे शूर इन्द्र ने इनका किया।।११।।

अध श्रुत कवष वृद्धमप्स्वनु द्रुह्यु नि वृणाक् वज्रबाहू ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्य त्वायन्तो ये अमदन्नु त्वा।।१२।।

फिर वज्रबाहु ने वृद्ध श्रुतकवष को फिर द्रुह्यु को पानी मे डुबा मारा। यहाँ जिनने मित्रता चाहते तुम्हे चाहा, वे मित्र हो तुम्हारे पीछे (चलते) मस्त रहे।।१२।।

वि सद्यो विश्वा दृहितान्येषामिन्द्र पुर सहसा सप्त दर्द ।
व्यानवस्य **तृत्सवे** गय भाग्जेष्म **पूरु** विदथे मृध्रवाच ।।१३।।
नि गव्यवोऽ**नवो द्रुह्यव** च षष्टि शता सुषुपु षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि षड्दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि।।१४।।

—७।१८

इन्द्र ने तुरन्त ही एकाएक इनके सात दृढ पुरो को दर्दरा दिया। **अनुओ** के स्थान को **तृत्सुओ** को दे दिया। हम युद्ध मे बकवासी **पुरुओ** को जीते।।१३।।

गौ लूट के इच्छुक साठ सौ, छ हजार, और छियासठ अनु और **द्रुह्यु** (वीर) (मरकर) सो गये। (भक्तो के लिए) यह सब इन्द्र के पराक्रम के काम हैं।।१४।।

—वसिष्ठ ७।१८

१८ शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे **भेदस्य** चिच्छर्द्धतो विन्द रन्धि।
मर्ता एन स्तुवतो य कृणोति तिग्म तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र।।१८।।

—७।१८

१८ हे इन्द्र, तुम्हारे प्राय सभी शत्रु पराजित होवे, खूनखार **भेद को** भी पराजित किया। स्तुतिकर्त्ता मनुष्यो की जो हानि करता हे, उसके ऊपर तीक्ष्ण वज्र मारो।।१८।।

—वसिष्ठ, ७।१८

१६ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णे शीर्ष्णे विवभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्र न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ।।२४।।

१६ जिस (सुदास) की कीर्ति द्यौ और पृथिवी के बीच फैली मौजूद है, जो प्रति शिरपर बॉट कर धन देता है, इन्द्र की तरह सात नदियॉ जिसकी प्रशसा करती हैं। युद्ध मे **युधामधि** का जिसने विनाश किया था।।२४।।

इम नरो मरुत सश्चतानु **दिवोदास** न पितर **सुदास** ।
अविष्टना **पैजवनस्य** केत दूणाश क्षत्रमजर दुवोयु।।२५।।

—७।१८

हे नेता मरुतो, पिता **दिवोदास** की तरह **सुदास** की सहायता करो। पैजवन (सुदास) के घर की रक्षा करो, उसके क्षत्र (राज्य) को दुर्घर्ष और अजर बनाओ।।२५।।

—वसिष्ठ ७।१८

२ **युद्ध**—

२ **युद्ध**—

२० यवा नरा पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्त **पृथुपर्शवो** ययु ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च **सुदासमिन्द्रावरुणावसाक्त**।।११।।

२० हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हे और तुम्हारी मित्रता को देखते हुए गौर लूटने वाले **पृथु** और **पर्शु** पूर्व की ओर गये। तुमने आर्य और दास शत्रुओ को मारा, और सुदास को (अपनी) रक्षा से बचाया।।११।। (यहीं १२)

यत्रा नर समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किचन प्रिय।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचत।।२।।

जिस (युद्ध) मे ध्वजा फहराते आदमी लडते हैं, जिसमे कुछ भी प्रिय नहीं होता। जहाँ सुख दिखनेवाली (चीजे) भय देती हैं, वहाँ हे इन्द्र और वरुण, तुम हमारी बात करना।।२।।

स भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत्।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गत।।३।।

भूमि की सीमाये सब ध्वस्त होती दिखाई दी, हे इन्द्र और वरुण, कोलाहल द्यौ तक पहुँचा। हमारे जन के शत्रु पास आ गये। हे पुकार सुननेवाले इन्द्र-वरुण, रक्षा के साथ हमारे पास आओ।।३।।

इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेद वन्वन्ता प्र सुदासमावत।
ब्रह्माण्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहित ।।४।।

हे इन्द्र-वरुण, तुमने आयुधो द्वारा अप्रतिम भेद को मारते हुए सुदास की रक्षा की। इन की स्तुतियो को सुनो, तृत्सुओं की पुरोहिताई युद्ध मे सत्य सिद्ध हो।।४।।

इन्द्रावरुणाभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातय ।
युव हि वस्व उभयस्य राजथो ध स्मा नोवत पार्ये दिवि।।५।।

हे इन्द्र-वरुण, चारो ओर से शत्रु के हथियार मुझे सतप्त कर रहे हैं। वह बाधा दे रहे हैं। तुम दोनो दिव्य और पार्थिव उभय प्रकार के धनो के राजा हो, इसलिए द्यौ के पार हमारी रक्षा करो।।५।।

युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्र च वस्वो वरुण च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधित प्र सुदासमावत तृत्सुभि सह।।१६।।

दोनो सग्रामो मे धन की इच्छा करते दोनो (पक्षों) ने तुम इन्द्र और वरुण को सहायता के लिए बुलाया जहाँ दश राजाओ से तृत्सुओं के साथ तुमने सकग्रस्त सुदास की रक्षा की।।१६।।(१३।६)

दश राजान समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुण न युयुधु ।
सत्या नृणामद्मसंदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु।।७।।

हे इन्द्र-वरुण, यज्ञ-विमुख दस राजा युद्ध मे सुदास से नहीं लड सके। यज्ञ मे बैठे हुए इन नरो की स्तुति सत्य हुई, देव लोग इनके देवनिमन्त्रण मे उपस्थित हुए।।७।। (१३।७)

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षत।
श्वित्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सव ।।८।।

दाशराज्ञ (युद्ध) मे घिरे हुए सुदास की इन्द्र व औरुण ने सहायता की। जिस (दाशराज्ञ युद्ध) मे श्वेत (गौर) जूडाधारी स्तुति पाठी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तोत्र से तुम्हारी पूजा करते थे।।८।।(१३।१५)

वृत्राण्यन्य समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा।
हवामहे वा वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुण शर्म यच्छत।।६।।

एक (इन्द्र) युद्ध मे शत्रुओ को मारता है, दूसरा (वरुण) सदा व्रतो की रक्षा करता है। हम कामनावर्षक तुम दोनो पराक्रमियो को सुन्दर स्तुतियो से पुकारते हैं। हे इन्द्र-वरुण, हमे शरण प्रदान करो।।६।।

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्न यच्छन्तु महि शर्म सप्रथ।
अवध्र ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोक सवितुर्मनामहे।।१०।।

—७।८३

इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा हमे यश देवें, विस्तृत महान् घर देवे। अदिति की ऋतवर्धक ज्योति अहानिकर हो, हम सविता देव के श्लोक को गाते हैं।।१०।।

—वसिष्ठ, ७।८३

२१ आवदिन्द्र यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेद सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलि शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि।।१६।।

—७।१८

२१ यमुना ने और तृत्सुओ ने इन्द्र की सहायता की। युद्ध मे यहाँ भेद को बिल्कुल लूट लिया। अज, शिग्रु और यक्षु घोडो के सिर की बलि लेकर आये।।१६।।

—वसिष्ठ, ७।१८

२२ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भा।
आभि य पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि शुशोच।।४।।

—७।८

२२ यह भरत का अग्नि अति प्रसिद्ध है, जो सूर्य की तरह बडे प्रकाश से चमकता है, जिसने युद्ध मे पुरुओ को हराया, दीप्तिमान् वह दिव्य अतिथि प्रज्वलित हुआ।।४।।

—वसिष्ठ, ७।८

३ सुदेवी रानी—

३ रानी सुदेवी—

२३ याभि पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिवरुणीरशिक्षत।
याभि सुदास ऊहथु सुदेव्य ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत।।१६।।

—१।११२

२३ हे अश्विद्वय, जिन सहायताओ द्वारा तुम विमद के लिए पत्नियॉ (विवाहार्थ) लाये, जिनके द्वारा लाल गाये दीं, जिनके द्वारा सुदास के लिए तुम सुदेवी को लाये, उन रक्षाओ के साथ आओ।१६।।

—कुत्स आगिरस, १।११२

३ अश्वमेध

१ विश्वामित्र पुरोहित—

२४ य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारत जन।।१२।।

—३।५३

२५ महा ऋषिर्देवजा देवजूतो स्तभ्नात् सिन्धुमणर्व नृचक्षा।
विश्वामित्रो यदवहत् **सुदासमप्रियायत** **कुशिके**भिरिन्द्र।।६।।

—३।५३

२६ अश्वो न क्रन्दन् जनिभि समिध्यते वैश्वानर **कुशिके**भिर्युगे युगे।
स नो अग्नि सुवीर्य स्वश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि।।३।।

—३।२६

२७ अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु।
द्युम्नवद् ब्रह्म **कुशिकास** एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे।।१५।।

—३।२६

१ विश्वामित्र पुरोहित—

२४ यह जो दोनो द्यौ-पृथिवी हैं, उनके (रक्षक) इन्द्र की मैंने स्तुति की। **विश्वामित्र** का यह ब्रह्म (ऋचा) **भारतजन** की रक्षा करता है।।१२।।

—विश्वामित्र, ३।५३

२५ देवज, देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि **विश्वामित्र** ने सिन्धुनद को स्तभित किया, जब सुदास को (नदी) पार कराया, तो इन्द्र ने **कुशिकों** के द्वारा (सुदास के साथ) प्रिय बर्ताव किया।।६।।(५।२६।६)

—विश्वामित्र, ३।५३

२६ घोडो की तरह हिनहिनाता वैश्वानर (अग्नि) माताओ **कुशिको** द्वारा युग-युग मे (हर समय) प्रज्वलित किया जाता रहा। वह अमृतो मे जागरूक अग्नि हमे सुन्दर अश्व-युक्त, सुन्दर वीर्य-युक्त रत्न दे।।३।।५।२६।६

—विश्वामित्र, ३।२६

२७ मरुतो की तरह अमित्रो से लडनेवाले अग्रगामी प्रथम उत्पन्न वह सब कुछ जानते हैं। **कुशिक** तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रेरित करते है, (उनमे) एक-एक (अपने) घर मे अग्नि का समिधान करते हैं।।१५।। (५।२६।१५)

—विश्वामित्र ३।२६

२ अश्वमेध—

२८ ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषा–मभिगूर्तिर्न इन्वतु।।१२।।
—१।१६२

२९ उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता **सुदास**।
राजा वृत्र जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या।।११।।
—३।५३

३० इम इन्द्र **भरतस्य** पुत्रा अपपित्व चिकितुर्न प्रपित्व।
हिन्वन्त्यश्वमरण न नित्य ज्यावाज परिणयन्त्याजौ।।२४।।
—३।५३

२ अश्वमेध—

२८ जो पके घोडे को देखते, जो बोलते "सोधा है उतारो" और जो घोडे के मास-भोजन का सेवन करते हैं, उनका सकल्प हमारा सहायक हो।।१२।।(४।२)
—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

२९ हे **कुशिको**, पास आओ, चेतो, धन (जीतने) के लिए **सुदास** के अश्व को छोडो। राजा (सुदास) पूर्व, पश्चिम और उत्तर के शत्रु मारै, फिर पृथिवी के वरस्थान मे यज्ञ करे।।११।। (५।२६।११)
—विश्वामित्र, ३।५३

३० हे इन्द्र, भरत के ये पुत्र (सन्ताने) न अमिलन जानते, न मिलन, वह पर की तरह नित्य युद्ध मे (अपना) घोडा भेजते हैं, धनुष झुकाते हैं।।२४।।
—विश्वामित्र, ३।५३

अध्याय ११

राजव्यवस्था

१ ग्रामणी

१ सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनु सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवा प्रतियुर्यरन्त्वास्मिन्नश्रान्ता असनाम वाज।।११।।

—१० ।६२

१ सहस्र (गौवो के) दाता ग्रामणी मनु मत अनिष्ट करे, इसकी दक्षिणा सूर्य समान होवे। सावर्णी (मनु) को देवता आयु प्रदान करे जिसके पास हम अश्रान्त हो अन्न पाते हैं।।११।।

—नाभानेदिष्ट, १० ।६२

२ राष्ट्र

२ आचष्ट आसा पाथो नदीना वरुण उग्र सहस्रचक्षा ।।१०।।
राजा राष्ट्राणा पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु।।११।।

—७ ।३४

२ सहस्र-चक्षु उग्र वरुण इन नदियो के जल को देखते हैं।।१०।।
वह (वरुण) राष्ट्रों के राजा, नदियो के यश हैं। उनका क्षत्र (राज्य) अनुपम और सर्वत्र है।।११।।

—वसिष्ठ, ७ ।३४

३ हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा यथा राष्ट्र गुपित क्षत्रियस्य।।३।।

—१० ।१०९

३ "इसकी देह को हाथ से ही ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्म-जाया है।"
यह सबने कहा। भेजे दूत की वह नहीं बनी जिस तरह क्षत्रिय का राष्ट्र रक्षित।।३।।

—जुहू, १० ।१०९

३ विश

४ अपामुपस्थे महिषा अगभ्णत विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मियं।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानर मातरिश्वा परावत ।।४।।

—६ ।८

४ महान् (मरुतो) ने अन्तरिक्ष मे ग्रहण किया, पूजनीय राजा मान प्रजाओं ने उसका उपस्थान (सम्मान) किया। विवस्वान् का दूत वायु दूर से वैश्वानर अग्नि को यहाँ लाया।।४।।

——भरद्वाज, ६ ।८

४ राजा

५ विद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्न।
स त्व न ऊर्जं सन ऊर्ज धा राजेव जेर वृके क्षेष्यन्त।।४।।

—६।४

५ हे सूनु (अग्नि), तुम गायक, सहभोजी है। जन्मते अपना पथ घर और अन्न तैयार करता तू हमे पुष्टि दे, पुष्टि हममे रख निरुपद्रव गृह मे राजा की तरह शत्रुओ को जीतो।।४।।

—भरद्वाज, ६।४

६ आ यस्मिन्त्वे स्वपा के यजत्र यक्षद्राजन् त्सर्वतातेव नु द्यौ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै।।२।।

—६।१२

६ हे पूज्य राजन, जिस तुम ज्ञानी मे द्यौ पूर्णता के लिए हैं। तीनो स्थानो मे रहनेवाले हो, सूर्य की तरह मनुष्यो के हव्य और धन को यजन के लिए जाते हो।।२।।

—भरद्वाज, ६।१२

७ त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्ह मरुज पर्वतस्य।
राजा भवो जगतश्चर्षणीना साक सूर्यं जनयन्द्यामुषास।।५।।

—६।३०

७ (हे इन्द्र), तुमने जल को चारो ओर बहने के लिए पर्वत को जोर से ध्वस्त किया। तुम द्यौ, उषा और सूर्य को एक साथ उत्पन्न करते जगत् के लोगो के राजा हो।।५।।

—भरद्वाज, ६।३०

८ स रायस्खामुप सृजा गृणान पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्व।
पतिर्बभूथासमो जानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा।।४।।

—६।३६

८ हे इन्द्र, स्तुति किये जाते तुम बहुत बढिया चमकते धन-सम्पत्ति की धारा बहाओ। तुम जनो के अद्वितीय पति, अकेले सारे भुवन के राजा हो।।४।।

—भरद्वाज, ६।३६

६ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूप यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक्।।३।।

—७।२७

६ जगत् के मनुष्यो को राजा इन्द्र है, जो कुछ पृथिवी पर नाना प्रकार की (वस्तु) है, (उसका भी)। तिससे भक्त को वह धन देता है। स्तुति किया गया वह हमारे पास धन भेजे।।३।।

—वसिष्ठ, ७।२७

१० आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळ नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वत जीरदानू।।२।।

—७।६४

१० महान् ऋत के रक्षक, सिन्धु-पति, क्षत्रिय, मित्र-वरुण दोनो राजा, हमारे पास आये। शीघ्र देनेवाले मित्र और वरुण हमे अन्न दे, द्यौ से वृष्टि भेजे।।२।।

—वसिष्ठ, ७।६४

११ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुताना। त्व राजा जनाना।।३।।

—८।५३

११ हे इन्द्र, तुम छाने न छाने (सोमो) के स्वामी हो। तुम जनो के राजा हो।।३।।

—प्रगाथ, ८।५३

(१) राजाभिषेक—

१२ आ त्वा हार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलि।
विशस्त्वा सर्वा वाछन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत।।१।।
इहैवैधि माप च्योष्ठा पर्वत इवा विचाचलि।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय।।२।।

इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुव ध्रुवेण हविषा।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पति।।३।।

ध्रुवा द्योर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवास पर्वता इमे।
ध्रुव विश्वमिद जगद् ध्रुवो राजा विशामय।।४।।

ध्रुव ते राजा वरुणो ध्रुव देवो बृहस्पति।
ध्रुव त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धारयता ध्रुव।।५।।

ध्रुव ध्रुवेण हविषाभि सोम मृशामसि।
अथो त इन्द्र केवलीर्विशो बलिहृतस्करत्।।६।।

—१०।१७३

१२ मैं तुम्हे लाया, (देश के) भीतर बढो, अचल ध्रुव बने रहो। सारी प्रजाये तुम्हे चाहे, तुम्हारा राष्ट्र (राज्य) भ्रष्ट न हो।।१।।

यहीं रहो, अचल रहो, पर्वत की तरह च्युत मत होओ। इन्द्र की तरह यहाँ ध्रुव रहो, यहाँ राष्ट्र को धारण करो।।२।।

ध्रुव हवि द्वारा इन्द्र ने इस ध्रुव (अचल) को स्थापित किया। उससे सोम बोले और उससे ब्रह्मणस्पति भी।।३।।

द्यौ ध्रुवा (अचल) है, पृथिवी ध्रुवा, यह पर्वत भी ध्रुव हे। यह सारा जगत् ध्रुव है। प्रजाओ का यह राजा ध्रुव है।।४।।

राजा वरुण तुम्हारे ध्रुव हैं, देव बृहस्पति ध्रुव, वह इन्द्र ओर अग्नि ध्रुव। (वे) राष्ट्र को ध्रुव धारण करे।।५।।

ध्रुव हवि द्वारा, ध्रुव सोम को हम मिलाते हैं। फिर इन्द्र, तेरी प्रजा को एक-परायण और कर-प्रदाता बनाये।।६।।

—ध्रुव आगिरस १०।१७३

(२) सम्राट्—

१३ मूर्द्धान दिवो अरति पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्नि।
कविं सम्राजमतिथि जानामासन्ना पात्र जनयन्त देवा।।१।।

—६७

१३ देवो ने वैश्वानर अग्नि को द्यौ का मस्तक, पृथिवी का दूत, यज्ञ के लिए उत्पन्न, कवि सम्राट्, जनो का अतिथि, मुख और रक्षक उत्पन्न किया।।१।।

—भरद्वाज ६७

१४ अभि य देव्यदितिर्गृणाति सव देवस्य सवितुर्जुषाणा।
अभि **सम्राजो** वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषा।।४।।

—७।३८

१४ सविता देव के सवन (उत्पत्ति) का सेवन करती देवी अदिति जिसकी स्तुति करती है, वरुण **सम्राट्** पत्नियो-सहित अर्यमा और मित्र भी स्तुति करता है।।४।।

—वसिष्ठ, ७।३८

(३) शास—

१५ मरुत्वन्त वृषभ बावृधानमकवारिं दिव्य शासमिन्द्र।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्र सहोदामिह त हुवेम।।५।।

—३।४७

१५ मरुतोवाले वृषभ (पराक्रमी), सदा बढते पौरुष वाल, दिव्य शास (राजा), सर्वजेता, उग्र, बलदायक उस इन्द्र को हम नई रक्षा के लिए यहॉ पुकारते हैं।।५।।

—विश्वामित्र, ३।४७

(४) ईशान—

१६ अभि त्वा शूर नोनुमो दुग्धा इव धनव **ईशानमस्य** जगत स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष।।२२।।

—७।३२

१६ हे शूर, न दुही धेनुओ की तरह हम तुम्हे जोर से पुकारते हैं। जो कि इस जगत् का स्वर्गदर्शक हे इन्द्र, स्थावर के ईशान हो।।२२।।

—वसिष्ठ, ७।३२

(५) स्वराट्—

१७ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्व दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्त स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय।।६।।

—१।६१

१७ द्यौ, पृथिवी से परे अन्तरिक्ष से भी इन्द्र की महिमा बढ कर है। अपने गृह मे सर्वकारी निपुण इन्द्र **स्वराट्** (स्वय राजा) गभीर-घोष रण के लिए बलिष्ठ है।।६।।

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६१

(६) नृपति—

१८ त्रिविष्टि धातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीद विश्व भुवन ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि।।८।।

—१।१०२

१८ हे नृपति इन्द्र, तुम तेहरी रस्सी के समान ओज की माप हो। तीनो भूमि (द्यौ, प्रथिवी, आकाश), तीन प्रकाश (सूर्य, बिजली, अग्नि) हो। तुम इस सारे भुवन को बहन करते हो। तुम सदा जन्म से (ही) शुत्रु-रहित हो।।८।।

—कुत्स आगिरस, १।१०२

(७) पती राजा—

१६ पिवा सोम मदाय कमिन्द्र श्येनाभृत सुत।
त्व हि शश्वतीना **पती** **राजा** विशामसि।।३।।

—८।८४

(७) राजा—

१६ हे इन्द्र, श्येन (पक्षी) द्वारा लाये छाने गये सुखमय सोम को मद के लिए पियो। तुम्ही शाश्वत प्रजाओ के पतिराजा हो।।३।।

—तिरश्ची आगिरस, ८।८४

(८) राजपुत्र, राजदुहिता—

२० प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृह।
कस्य ध्वस्रा भवथ कस्य वा नरा **राजपुत्रेव** सवनाव गच्छथ।३।।

युवा ह **घोषा** पर्यश्विना यती **राज्ञ** ऊचे **दुहिता** पृच्छे वा नरा। भूत मे अह्न उत भूतमक्तवे' श्वावते रथिने शक्तमवतै।।५।।

—१०।४०

(८) राजपुत्र, राजदुहिता—

२० हे अश्विद्वय, बृद्ध (राजाओ) की तरह सबेरे तुम स्तुति गाते हो। पूजनीयो, दिन-दिन घर जाते हो। किसके ध्वसक होते हो। हे दोनो नेताओ, किसके (सोम)-सवन मे राजपुत्र की तरह तुम जाते हो।।३।।
हे अश्विद्वय, मैं घूमती **राजदुहिता घोषा** तुम दोनो नेताओ के पास आई, तुमसे पूछती हूँ। मेरे पास दिन मे रहो, रात मे रहो, अश्ववाले रथी प्रभु (पुरुष) मुझे प्रदान करो।।५।।

—घोषा, १०।४०

५ प्रशासन

(१) सभा—

२१ **सभामेति** कितव पृच्छमानो "जेष्यामीति" तन्वा शूशुजान।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति काम प्रतिदीव्ये दधत आ कृतानि।।६।।

—१०।३४

२२ उताशिष्ठा अनुशृण्वन्ति वह्नय **सभेयो** विप्रो भारते मतीधना।
वीळुद्वेषा अनुवश ऋणमाददि सह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पति ।। १३ ।।

—२।२४

२३ अश्वी रथी सुरूप इद् गोमा इदिन्द्र ते सखा।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति **समामुप**।। ६ ।।

—८।४

(१) सभा—

२१ "मैं जीतूँगा" कह शरीर फुलाता, बात करता जुआडी सभा मे जाता है। पासे इसकी कामना कभी पूरा करते हैं, कभी प्रतिद्वन्द्वी की पूरा करते हैं।।६।।

—कवष, १०।३४

२२ (यज्ञीय) अग्नि शीघ्र (पुकार) सुनते हैं, सभेय विप्र स्तुति से धन पाता है। युद्ध मे बलिष्ट इच्छानुसार ऋण दे देनेवाला, धृष्ट द्वेषी ब्रह्मणस्पति है।।१३।।

—गृत्समद २।२४

२३ हे इन्द्र तुम्हारा सखा अश्ववान् रथवान्, गोमान्, सुरूप, शीघ्र धन पानेवाला, सदा चन्द्र (आह्लादक) हो सभा मे जाता है।।६।।

—देवातिथि, कण्व-पुत्र, ८।४

२४ यूय गावो मेदयथा कृश चिदश्रीर चित् कृणुथा सुप्रतीक।
भद्र गृह कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते **सभासु**।। ६ ।।

—६।२८

२४ हे गौवो, तुम कृश को मोटा करती हो, शोभाहीन को सुरुप बनाती हो। भद्रवाणी हो, हमारे घर को भद्र बनाओ। **सभाओ** मे तुम्हारी शक्ति की बडाई की जाती है।।६।।

—भारद्वाज, ६।२८

(२) समिति—

२५ यत्रौषधी समग्मत राजान समिताविव।
विप्र स उच्यते भिषहग् रक्षोहा, मीवचातन।।६।।

—१०।९७

२५ **समिति** मे राजाओ की तरह जहॉ औषधियॉ एकत्रित होती हैं, वह विप्र राक्षसनाशक रोग-निवारक भिषग् कहा जाता है।।६।।

—भिषग् अथर्वा-पुत्र, १०।९७

२६ परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्य **समितीरियान**।
सोम पुनान कलशा अयासीत् सीदन् मृगो न महिषो वनेषु।।६।।

—९।९२

२६ जैसे होता (ऋत्विक) पशु-सदन मे जाता है, जैसे सच्चा राजा **समितियो** मे जाता होता हैं, और पुना (छाना) जाता सोम वनो मे महान् मृग की तरह कलशो मे बैठता है।।६।।

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ९।९२

२७ समानो मन्त्र **समिति** समानी समान मन सहचितमेषा।
समान मन्त्रमभिमन्त्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।

—१०।१९१

२७ (इनका) मन्त्र समान हो, **समिति** समान हो, चित-सहित मन समान हो। तुम्हे एक से मन्त्र अभिमत्रण करता हूँ, एक सी हवि से तुम्हारे लिए हवन करता हूँ।।३।।

—सवनन, १०।१९१

(३) कुलप, (४) व्राजपति—

२८ श्रात हविरोष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्य।
परि त्वासते निधिभि सखाय **कुलपा** न **व्राजपति** चरन्त।।२।।

—१०।१७९

२८ हे इन्द्र, हवि पक गयी, आओ, सूर्य मध्यकाल (दोपहर) मे पहुँच गया। जैसे विचरते **व्राजपति** को **कुलप**, वैसे निधियो के साथ सखा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।।२।।

—प्रतर्दन काशिराज, १०।१७९

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)—

२६ यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
त प्रत्नास ऋषयो दीध्याना पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्व।। १ ।।

—४।५०

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)—

२६ जिस बृहस्पति ने एकाएक (अपनी) शक्ति से पृथिवी के अन्तो तक को थाम्हा। जो गडगडाहट से तीनो स्थानो मे है। उस मधुर जिह्वावाले (बृहस्पति) को प्राचीन ध्यानी विप्र ऋषियो ने (अपने) मम्मुख रक्खा।।१।।

—वामदेव, ४।५०

३० इन्द्रावरुणा वधनााभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावत।
ब्रह्मणाण्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहिति ।। ४ ।।

—७।८३

३० हे इन्द्र-वरुण, तुमने दुर्धर्ष आयुधो द्वारा अप्रतिम भेद को मारते हुए सुदास की रक्षा की। इनके मन्त्रो को युद्ध मे सुने, तृत्सुओ की पुरोहिताई सत्य सिद्ध हुई।।४।।

—वसिष्ठ, ७।८३

अध्याय १२

शिक्षा, स्वास्थ्य

१. शिक्षा

१ य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति **शिक्षा** सखिभ्य पुरुहूत नृभ्य ।
त्व हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृत न राध ।।२।।

—७।२७

१ हे मघवन् पुरुहूत (बहुनिमत्रित) इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे (हमारे) सखा नरो को प्रदान करो। हे मघवन्, तुमने दृढ (पुरियो) को नष्ट किया, विज्ञ तुम (अपनी) छिपी निधि को हमारे लिए प्रकट कर दो।।२।।

—वसिष्ठ, ७।२७

२ यदेषामन्यो अन्यस्य वाच शाक्तस्येव वदति **शिक्षमाण** ।
सर्व तदेषा समृधेव पर्व यत् सुवासो वदथ नाध्यप्सु ।।५।।

—७।१०३

२ इन (मेढको) मे से एक दूसरे का वचन शिष्य को **सिखाते** सा बोलता है। जब जल मे सुवाच बोलते हो, तो इनका सारा अग बढ सा जाता है।।५।।

—वसिष्ठ, ७।१०३

३ य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति **ब्रह्मेद** भारत जन।।१२।।

—३।५३

२. स्वास्थ्य

४ नि येन **मुष्टिहत्या** नि वृचा रुणधामहै। त्वोतासोन्यर्वता।।२।।

—१।८

४ (हे इन्द्र,) जिस तुम्हारी रक्षा से रथो द्वारा हम शत्रुओ को मुष्टि-युद्ध द्वारा रोक दे।।२।।

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।८

५ ससेन चिद्विमदायाबहो वस्वाजावद्रि बावसानस्य **नर्तयन्**।।३।।

—१।५१

५ हे इन्द्र, तुमने युद्ध मे पाषाण (वज्र) नचाते स्तुतिकर्त्ता विमद को अन्न प्रदान किया।।३।।

—सव्य आगिरस, १।५१

३ रोग

६ यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा।।११।।

६ जब शक्ति लाती इन ओषधियो को मैं हाथ मे लेता हूँ, तो यक्ष्मा रोग की आत्मा मानो जीव पकडने से पूर्व (ही) नष्ट हो जाती है।।११।।

यस्यौषधी प्रसर्पथागमग परुष्परु।
ततो यक्ष्म विबाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव।।२१।।

—१० ।६७

जैसे उग्र (पुरुष) सघर्ष मे, वैसे ही औषधियो, तुम जिसके अग-अग पोर-पोर मे प्रविष्ट होती हो, तो (उसके) यक्ष्मा (रोग) को बाधित करती हो।।१२।।

—भिषग् अथर्वा-पुत्र, १० ।६७

७ मुचामि त्वा हविष जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेन तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेन।।११।।

—१० ।१६१

७ जीने के लिए हवि द्वारा मैं तुम्हे अज्ञात यक्ष्मा (रोग) या राजयक्ष्मा से मुक्त करता हूँ। यदि भूतग्रह ने इसे पकडा, तो उससे इसे इन्द्र और अग्नि मुक्त करे।।१।।

—यक्ष्मनाशन, १० ।१६१

८ उद्यन्नद्य मित्रामह आरोहन्नुत्तरा दिव।
हृद्रोग मम सूर्य हरिमाण च नाशय।।११।।

—१ ।५०

८ मित्र-प्रकाशवाले सूर्य, आज उगते उच्चतम द्यौ पर आरोहण करते मेरे हृद्रोग, पीलिया को नष्ट करो।।११।।

—प्रस्कण्व कण्व-पुत्र, १ ।५०

९ अक्षीभ्या ते नासिकाभ्या कर्णाभ्या छुबुकादधि।
यक्ष्म शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते।।१।।

९ तेरी दोनो आँखो से, दोनो नाको से, दोनो कर्णों से, ठुड्डी के ऊपर से, मस्तिष्क से, जिह्वा से, शीर्षस्थान से तेरे यक्ष्म (रोग) को मैं दूर करता हूँ।।१।।

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्य कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्म दोषण्यमसाभ्या बाहुभ्या वि वृहामि ते।।२।।

तेरी ग्रीवा से, धमनियो से, हड्डी के जोडो से, दोनो, कन्धो से, दोनो बाहुओ से, हाथ से तेरे यक्ष्म को मैं दूर करता हूँ।।२।।

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्टो हृदयादधि।
यक्ष्म मतस्नाभ्या यवद प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते।।३।।

तेरी आँतो से, गुदाओ से, हृदय से, मूत्राशय से, यकृत् से, प्लीहा से तेरे यक्ष्म को दूर करता हूँ।।३।।

ऊरुभ्या ते अष्ठीवद्भ्या पार्ष्णिभ्या[1] प्रपदाभ्या।
यक्ष्म श्रोणिभ्या भासदाद् भससो वि वृहामि ते।।४।।
मेहनाद्वनकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्य।
यक्ष्म सर्वस्मादात्मनास्तमिद वि वृहामि ते।।५।।
अगादगाल्लोम्नो लोम्नो जात पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्म सर्वस्मादात्मनस्तमिद वि वृहामि ते।।६।।
—१०।१६३

तेरे दोनो उरुओ से, दोनो जाघो से, दोनो गुल्फो से, दोनो पैर के पजो से, दोनो नितबो से तेरी कटि और मलद्वार से यक्ष्म को दूर करता हूँ।।४।।
तेरे मूत्रण काम-करण (लिग) से, तेरे रोमो से, नखो से, तेरी सारी आत्मा (शरीर) से उस यक्ष्म को दूर करता हूँ।।५।।
अग-अग से, रोम-रोम से, पोर-पोर मे पैदा हुए, सारी आत्मा (शरीर) से तेरे उस यक्ष्म को दूर करता हूँ।।६।।
—विबृहा काश्यप, १०।१६३

१० युव नारा स्तुवते **कृष्णियाय विष्णाप्व** ददथुर्**विश्वकाय**।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त।।७।।
—१।११७

१० हे दोनो नेताओ, तुमने स्तुतिकर्त्ता **कृष्ण**-पुत्र **विश्वक** के लिए (उसके पुत्र) विष्णापु को दिया। तुमने पिता के घर बैठी झुराती घोषा को पति प्रदान किया।।७।।(५।६०।७)
—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११७

४. चिकित्सा

११ यत्रोषधी समग्मत राजान समिताविव।
विप्र स उच्यते **भिषग्रक्षो**हामीवचातन।।६।।
—१०।६७

११ समिति मे राजाओ की तरह जहाँ औषधियाँ एकत्रित होती है, वह विप्र राक्षसनाशक रोग-निवारक भिषग् कहा जाता है।।६।।
—भिषग् अथर्वा-पुत्र, १०।६७

१२ उत त्या दैव्य **भिषजा** श न करतो अश्विना।
युयुयातामितो रपो अप स्रिध।।८।।
—८।१८

१२ और वे दिव्य **भिषग्** अश्विद्वय हमारा मगल करे, यहाँ से पाप हटाये, शत्रुओ को दूर भगाये।।८।।
—इरिन्विठि, ८।१८

१३ त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि **भेषजा** त्रि पार्थिवानि त्रिरुदत्तमद्भ्य।
ओमान शयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म्म बहत शुभस्पती।।६।।

१३ हे अश्विद्वय, हमे द्यौसे तीन बार पृथिवी से, तीन बार आकाश से भेषज (दवा) दो। हे शुभ के स्वामियो, मेरे पुत्र के लिए सुख स्वास्थ्य दो, तीन प्रकारण शरण लाओ।।६।।

[1] पाणिम्या—निर्णय सागर प्रेस की पुस्तक मे

क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो बन्धुरो ये सनीळा।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञ नासत्योपयथ ।।६।।

—१।३४

हे नासत्यो, तुम्हारे तेहरे रथ के तीन चक्र कहाँ है ? नाभि-युक्त जो धुरे तुम्हारे वह तीनो कहाँ है ? बलवान् रासभ का जोडना कब होगा, जिसके द्वारा तुम यज्ञ मे आते।।६।।

—हिरण्यास्तूप, १।३४

१४ सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषज।।१७।।

—८।६१

१४ हे मित्र और वरुण, सूर्य उगते मैं सोम ग्रहण करता हूँ। वह आतुर (रोगी) का भेषज है।।१७।।

—हर्यत प्रगाथ-पुत्र, ८।६१

१५ यामि पक्थमवथो याभिरध्रिगु याभिर्बभ्रु विजोषस।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गत भिषज्यत यदातुरं।।१०।।

—८।२२

१५ जिन (औषधियो) के द्वारा तुमने पक्थ की रक्षा की, जिनसे अध्रिगु, जिनसे असहाय बभ्रु की रक्षा की, उनके साथ हे अश्विनो, तुरन्त तेजी से आओ, आतुर की चिकित्सा करो।।१०।।

—सोभरि कण्व-पुत्र, ८।२२

अध्याय १३
वेष-भूषा
१ वस्त्र

१ युवा **सुवासा** परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमान ।
त धीरास कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त ।।४।।

—३।८

१ सुन्दर वस्त्र पहने ढँका युवा (यूप) आया, उत्पन्न हो वह श्रेयान् होता है। ज्ञानी धीर कवि मन से देवो की कामना करते उस (यूप) को उठाते हैं।।४।।

—विश्वामित्र, ३।८

२ अभ्रातेव पुस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनाना।
जायेव पत्य उशती **सुवासा** उषा हस्रेव निरिणीते अप्स ।।७।।

—१।१२४

२ भ्राता-विहीना जैसे पुरुषो को, रथ पर चढी मानो धनो की प्राप्ति के लिए जाती है। जैसे पति को चाहती सुवस्त्रा जाया, वैसे ही उषा हँसती हुई अपने सौंदर्य को खोलती है।।७।।

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२४

३ उत त्व पश्यन्न ददर्श **वाचमुत** त्व शृण्वन्न शृणोत्येना।
उतो त्वस्मै तन्व वि सस्रे जायेव पत्य उशती **सुवासा** ।।४।।

—१०।७१

३ किसी ने देखते हुए (भी) वाणी को नहीं देखा, किसी ने सुनते हुए भी इसे नहीं सुना, और जेसे सुवस्त्रा स्निग्ध जाया पति के लिए, वैसे किसी के लिए अपने शरीर को खोलती है।।४।।

—बृहस्पति, १०।७१

४ एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवति **शुक्रवासा** ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छे।।७।।

—१।११३

४ यह (अन्धकार) दूर करती, शुक्लवस्त्रा, युवती द्यौ-दुहिता सब की स्वामिनी दिखाई पडी। हे सुभगे उषा, आज यहाँ पार्थिव धन हमे प्रदान कर।।७।।

—कुत्स आगिरस, १।११३

५ दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना।
भद्रा **वस्त्राण्यर्जुना** वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्याधी ।।२।।

—३।३६

५ (हे इन्द्र), पहले द्यौ से उत्पन्न हो जागरूक, विदथ (पूजा-सभा) मे गायी जाती, सो यह शुक्लवस्त्रा हमारे पितारो की सनातन (ऋचा) है।।२।।

—विश्वामित्र, ३।३६

६ आधीषमाणाया पति शुचायाश्च शुचस्य च।
वासो वायों' वीनामा **वासांसि** ममृर्जत्।।६।।
—१०।२६

६ इच्छा करती शुचा (बकरी) और शुच (बकरे) के पति (पूषन्) भेड के (लोम के) वस्त्र बुनते वस्त्रो को चमकाते है।।६।।
—विमद, १०।२६

७ मा नो अग्ने वीरते परा दा **दुर्वाससे** मतये मा नो अस्यै।
मा न शुधे म रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहर्था।।१९।।
—७।१

७ हे अग्नि, हमारे वीर (सन्तान)—पन को न दूर करना, बुरे वस्त्र न देना, न कुबुद्धि, न हमे भूख देना। हे ऋत (सत्य)—वान्, हमे राक्षस को मत देना, हमे न घर मे दुखाना, न वन मे।।१९।।
—वसिष्ठ, ७।१

८ यो वा यज्ञेभिरावृतोऽ**धिवस्त्रा** वधूरिव।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना।।१३।।
—८।२६

८ वस्त्र पहनी बधूकी तरह, हे अश्विद्वय, जो यज्ञ से परिवृत हो तुम्हारी पूजा करता है, उसको तुम यशमगल देते हो।।१३।।
—विश्वमना आगिरस, ८।२६

१ द्रापी—

६ दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापति पिशग **द्रापिं** प्रति मुचते कवि।
विचक्षण प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजत् सविता सुम्नमुक्थ्य।।२।।
—४।५३

१ द्रापि (कचुक, तोगा)—

६ द्यौ का धारक, भुवन का प्रजापति, कवि, पीली द्रापि पहनता है। विचक्षण सविता प्रख्यात होते, परिपूर्ण करते स्तुत्य सुख उत्पन्न करता है।।२।।
—वामदेव, ४।५३

१० जुजुरुषो नासत्योत **वव्रिं** प्रामुचत **द्रापिमिव च्यवानात्**।
प्रातिरत जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुत कनीना।।१०।।
—१।११६

१० हे अश्विद्वय, जैसे जीर्ण द्रापि को, वैसे ही चवान के बुढापे को तुमने निकाल फेका। हे दर्शनीयद्वय, तुमने असहाय चवन की आयु बढाई, उसे कन्याओ का पति बनाया।।१०।।
—कक्षीवान दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

११ विभ्रद् **द्रापिं** हिरण्यय वरुणो वस्त निणिज। परिस्पशो निषेदिरे।।१३।।
—१।२५

११ वरुण सुनहली द्रापि को पहने चमकीली पोशाकवाले है चारो आर (उनके) चद गुप्तचर बैठे हैं।।१३।।
—शुन शेप अजीगर्त-पुत्र १।२५

२ अत्क—

१२ श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वजी शवसा दक्षिणावान्।
वसानो **अत्क** सुरभि दृशे क स्वर्णनृतविषिरो बभूथ।।३।।
—६।२९

२ अत्क—

१२ हे वज्रधारी, बल से शत्रु घर्षणकर्ता दानी (इन्द्र) लक्ष्मी के लिए तुम्हारे पैरो की (लोग) सेवा करते है। हे नेता, सुगन्धित सुवर्ण अत्क पहने तुम चतुर नर्तक से दिखाई देते हो।।३।।
—भरद्वाज, ६।२९

१३ ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यड् चित्र बिभ्रदस्यायुधानि।
वसानो **अत्क** सुरभि दशे क स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि।।७।।

—१० ।१२३

१३ वह गधर्व ऊपर स्वर्ग मे अवस्थित हैं, वह (हमारे) सामने विचित्र आयुध धारण करते, सुगन्धित सुवर्ण अत्क पहने, देखने मे सुन्दर प्रिय (वस्तुओ) को उत्पन्न करता है।।७।।

—वेन भार्गव, १० ।१२३

३ शिप्र—

१४ शत ते **शिप्रिन्नूतय सुदासे** सहस्र शसा उत रातिरस्तु।
जहि बधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्न च धेहि।।३।।

—७ ।२५

३ शिप्र (मुकुट, पगडी)—

१४ हे उष्णीषधारी (इन्द्र), सुदासकी अपनी सैकडो सहायताये (रक्षाये) है। तुम्हारे सहस्रो उपकार और दान (उसे प्राप्त) होवे। (हमारे) हिस मर्द को मारो। हमे यश और रत्न प्रदान करो।।३।।

—वसिष्ठ, ७ ।२५

१५ पीवो अश्वा शुचद्रथा हि भूताय **शिप्रा** वाजिन सुनिष्का।
इन्द्रस्य सूनो शवसो न पातो नु वश्चेत्यग्रिय मदाय।।४।।

—४ ।३७

१५ हे ऋभुजो, तुम्हारे अश्व पीन हैं, रथ चमकीले हैं। (तुम) सोने के शिप्रवाले निष्काधारी[1] अन्नवाले हो। इन्द्र के पुत्रो, बल के नातियो, तुम्हारी प्रसन्नता (नशा) के लिए (यह) श्रेष्ठ (खानपान) है।।४।।

—वामदेव, ४ ।३७

२ भूषण

१ कर्णाभरण—

१६ उत न **कर्णशोभना** पुरूणि धृष्णवा भर।
त्व हि शृण्विषे वसो।।३।।

—८ ।६७

१ कर्णभूषण—

१६ हे शत्रुधर्षक, धन-सम्पन्न वसु (इन्द्र), तुम्ही (सर्वत्र) सुने जाते हो, हमारे लिए बहुत सारे कर्णशोभन (कुण्डल) लाओ।।३।।

—कुरुसुति, ८ ।६७

१७ **हिरण्यकर्ण मणिग्रीवमर्णस्तन्नो** विश्वे वरिवस्यन्तु देवा।
अर्यो गिर सद्य आ जग्मषीरोस्राश्चाकन्तूमयेष्वस्मे।।१४।।

—१ ।१२२

१७ सारे देव और समुद्र हमे सुवर्ण-कर्ण, मणिग्रीव, (पुत्र) प्रदान करे। वह अर्य (उषा) तुरन्त स्तुति को चाहती आती, हम दोनो पर प्रसन्न हो।।१४।।

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १ ।१२२

२ सोने का कण्ठा (निष्कग्रीव)—

१८ आ **श्वैत्रेयस्य** जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टय।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एनामध्वा न वाजयु।।३।।

—५ ।१९

२ सोने का कठा—

१८ **श्वेत्रेय** के सारे जन्तु, मनुष्य यश के साथ बढे। निष्कग्रीव **वहदुक्थ** मानो इस (सोम) द्वारा (लूट-) धन चाहता।।३।।

—बबृ आत्रेय, ५ ।१९

---

१ सोने का कठा पहिनने वाला।

१६ स्वायुधास इष्मिण **सुनिष्का** उत स्वय तन्व शुम्भमाना ।।११।। —७।५६	१६ सुन्दर आयुधवाले, फुर्तीले, सुन्दर निष्क पहने वह मरुत्गण स्वय (हमारे) शरीर को सजाते हैं।।११।। —वसिष्ठ, ७।५६
२० देखो १७	**२० देखो ऊपर १७**
३ (रुक्मवक्ष)—	**३ सुनहली माला—**
२१ असेष्वा मरुत खादयो वो वक्ष सु **रुक्मा** उपशिश्रियाणा । वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमान ।।१३।। —७।५६	२१ हे मरुतो, तुम्हारे कन्धो पर खादियाँ, तुम्हारी छातियो पर स्वर्णभूषण पडे हुए है। पानी देती वृष्टि मे बिजली की तरह चमकते आयुध तुम चलाते हो।।१३।। —वसिष्ठ, ७।५६
४ खादि, ५, ऋष्टि, ६, शिप्र—	**४ खादि (ककण), ५ ऋष्टि (भाला), ६, शिप्र (शिरस्त्रण)—**
२२ असेषु व **ऋष्टय** पत्सु खादयो वक्ष सु **रुक्मा** मरुतो रथे शुभ । अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्यो **शिप्रा** शीर्षसु वितता हिरण्ययी ।।११।। —५।५४	२२ हे मरुतो, तुम कन्धोपर ऋष्टि (भाले), पैरो मे खादि (कडे), छातियो पर सोना आभूषण, धारे रथ पर अग्नि की तरह चमकने वाले बिजली तुम्हारे हाथो मे, और सिर पर फैली सुनहली शिप्रा (पगडी) है।।११।। —श्यावाश्व, ५।५४
२३ त्वेष गण तवस खादिहस्त धुनिप्रत मायिन दातिवार। मयोभुवो ये अभिता महित्वा बदस्व विप्रतु विराधसो नृन्।।२।। —५।५८	२३ हे विप्र, दीप्तिमान, शक्तिशाली, हाथ मे **खादि** (ककण) धारे, सुखदायक, मायावी, दाता, सुखदायक, अमित महिमावाले, विशाल ऐश्वर्य-युक्त, नेता (मरुतो) की तुम वन्दना करो।।२।। —श्यावाश्व, ५।५८
२४ आ य हस्ते न **खादिन** शिशु जात न बिभ्रति। **विशामग्नि** स्वध्वर।।४०।। —६।१६	२४ जिस सुन्दर अध्वरवाले अग्नि को (ऋत्विक् लोग) हाथ मे खादि की पहने नवजात शिशु की तरह ग्रहण करते है।।४०।। —भरद्वाज, ६।१६

७ ओपश—

२५ **स्तोमा** आसन् **प्रतिधय** कुरीर छन्द **ओपश** ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगव ।।८।।

—१० ।८४

७ ओपश—

२५ सूर्या के लिए स्तोम (स्तोत्र) चक्के थे, कुरीर छन्द ओपश[1] था, अश्विद्वय वर थे, अग्नि अगुवा था।।८।।

—सूर्या, १० ।८५

३. सज्जा

१ कपर्द—

२६ रथीतम **कपर्दिनमीशान** राधसो मह । राय सखायमीमहे।।२।।

—६ ।५५

१ कपर्द (वेणी)—

२६ सर्वश्रेष्ठ रथी, कपर्दधारी, महान्, ऐश्वर्य के ईशान, (अपने) सखा पूषन् से हम धन मॉगते है।।२२।।

—भरद्वाज, ६ ।५५

२७ **श्वित्यचो** मा दक्षिण**तस्कपर्दा** धिय जिन्वासो अमि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नृत्र मे दूरादवितवे **वसिष्ठा** ।।१।।

—७ ।३३

२७ गोरे, दाहिनी ओर जूडा रखने वाले सुबुद्धि वे (वसिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते है। यज्ञ से उठते मै आदमियो को कहता हूँ, "वसिष्ठ-सन्तान मुझसे दूर न जाये" ।।१।। (३ ।६)

—वसिष्ठ, ७ ।३३

२८ चतु**ष्कपर्दा** युवति **सुपेशा** घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।
तस्या सुपर्णा वृषणा निषेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेय।।३।।

—१० ।११४

२८ चार वेणियोवाली, सुरुपा, सुवस्त्रा। उस (यज्ञरूपी) युवती मे पराक्रमी दो पक्षी बैठते हैं। जहॉ देवता लोग अपना-अपना भाग पाते हैं।।३।।

—सध्रि वैरुप, १० ।११४

२ क्षौर—

२६ यदुद्वतो निवतो यासि **वप्सत्** पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना।
यदा ते वातो अनवाति **शोचिर्वप्तेव श्मश्रु** वपसि प्रभूम।।४।।

—१० ।१४२

२ क्षौर—

२६ (हे अग्नि), जब तुम ऊँचे (पहाड़ो) निचली (उपत्यकाओं) मे खाते, हुए लूटती सेना की तरह अलग-अलग जाते हो। जब वायु तुम्हारा अनुगमन करता है। मूँछ-दाढी को जैसे नाई, वैसे तुम बहुत-सी भूमि को मूडते हो।।४।।

—जरिता, १० ।१४२

---

१ मथटीका

अध्याय १४

क्रीडा, विनोद

१. नृत्य

१ देखो (१२।५)

१ देखो १२।५, १३।१२

—१।५१

२. संगीत

२ मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततन। गाय गायत्रमुक्थ्य।।१४।।

—१।३८

२ मुख मे श्लोक रचो, मेघ की तरह फैलो, उक्थ (गान)-योग्य गायत्र गाओ।।१४।।

—कण्व घोर-पुत्र, १।३८

३ पान

१ सोम—

३ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुत। पिबेदस्य त्वमीशिषे।।७।।

यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे। पिबेदस्य त्वमीशिषे।।८।।

—८।७१

१ सोम—

३ हे इन्द्र तुम्हारे लिए जो सोम चमसो मे (प्यालो) और चमुओ (सुराहियो) मे छाना गया। इसे तुम पियो, तुम स्वामी हो।।७।।

पानी मे चन्द्रमा की तरह जो सोम चमुओ मे दिखाई देता है। इसे तुम पियो, तुम स्वामी हो।।८।।

—कुसीदी कण्व-पुत्र, ८।७१

स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत।।१।।

—६।१

हे सोम, छाने हुए स्वादिष्ट मदिष्ट धारा-सहित इन्द्र के पीने के लिए तुम क्षरित होओ।।१।।

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, ६।१

४ एष देवो अमर्त्य पर्णवीरिव दीयति। अभि द्रोणान्यासदं।।१।।

—६।३

४ यह अमर देव (सोम) कलश मे बैठने के लिए पक्षी की तरह उडकर जाता है।।१।।

—शुन शेप, ६।३

५ समिद्धो विश्वतस्पति पवमानो वि राजति। प्रीणन् वृषा कनिक्रदत्।।१।।

—६।५

५ पराक्रमी पति उद्दीप्त पवमान (सोम) शब्द करता है। प्रसन्न करता चारों ओर विराजता है।।१।।

—असितदेवल काश्यप ६।५

६ मृजन्ति त्वा दश क्षिप्रा हिन्वन्ति सप्त धीतय । अनु विप्रा अमादिषु ।।४।।	६ (हे सोम) दश फुर्तीली (अगुलिया) तुम्हे मींजती हैं, सात स्तोता तुम्हे प्रेरित करते हैं। फिर विप्र मस्त होते हैं।।४।।
पुनान कलशेष्वावस्त्राण्यरुषो हरि । परि गव्यान्यव्यत।।६।।	लाल सुनहला (सोम) कलशो मे क्षरण करता दूध रूपी वस्त्र पहनता है।।६।।
—६।८	—असितदेवल, ६।८
७ उपास्मै गायता नर पवमानायेन्दवे। अभि देवा इयक्षते।।१।।	७ हे नरो, देवो की उपासना करते, इस क्षरण करते सोम का गान करो।।१।।
स न पवस्व श गवे श जनाय शमर्वते। श राजन्नोशधीभ्य ।।३।।	हे राजन (सोम) सो तुम हमारी गौओ के लिए मगल क्षरण करो, जनके लिए मगल, घोडे के मगल, ओषधियो के लिए मगल क्षरण करो।।३।।
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन। इन्दुमिन्द्रे दधातन।।६।।	नमस्कार के साथ (सोम के) पास जाओ, दही के साथ मिलाओ। इन्द्र को सोम प्रदान करो।।६।।
—६।११	—असितदेवल, ६।११
८ एषा धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभि । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृत।।१।।	८ यह शूर (सोम) सूक्ष्म धारा से तेज रथो द्वारा इन्द्र के (मिलन) स्थान मे जाता है।।१।।
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये। यत्रामृतास आसते।।२।।	जहाँ अमर रहते हैं, उस महान् देवयज्ञ मे यह (सोम) बहुत ध्यान करता है।।२।।
एष शृगाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा। नृम्णा दधान ओजसा।।४।।	यह ओज से पराक्रम करता, यूथपति वृषभ की तरह दोनो तीक्ष्ण सींगो को हिलाता है।।४।।
—६।१५	—असितदेवल, ६।१५
९ आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिच्यते। उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते।।४।।	९ यह (सोम) कलशो मे दौडता है, पवित्र (छन्ने) मे सींचा जाता है, उक्थो (गानो) द्वारा यज्ञो मे बढता है।।४।।
तमु त्वा वाजिन नरो धीभिर्विप्रा अवस्यव । मृजन्ति देवतातये।।७।।	(हे सोम) उस तुम अश्व को रक्षा की कामनावाले विप्र नर यज्ञ मे मींजते है।।७।।
—६।१७	—असितदेवल, ६।१७
१० एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिन । सर्गा सृष्टा अहेषत।।१।।	१० ये रथो की तरह शीघ्रगामी सोम, छोडे घोडो से हिनहिनाते हैं।।१।।
एते वाता इवोरवपर्जन्यस्येव वृष्टय । अग्नेरिव भ्रमा वृथा।।२।।	ये विस्तृत वायु से, पर्जन्य-वृष्टि से, अग्निशिखा से, चलते हैं।।२।।

एते पूता विपश्चित सोमासो **दध्याशिर** ।
विपा् व्यानशुर्धिय ।।३।।

यह विद्वान् विप्र पवित्र दधि-मिश्रित सोम मन को प्राप्त करते हैं।।३।।

त्व **सोम पणिभ्य** आ वसु गव्यानि धारय । तत तन्तुमचिक्रद ।।७।।

—६ ।२२

हे सोम, तुम **पणियो** से गो-धन को (छीन) लेते हो, फैले तुन्तु (यज्ञ) मे शब्द करते हैं।।७।।

—असितदेवल, ६ ।२२

११ वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वरा उप ते सु वन्वन्तु वग्वना अराधस ।।२।।

—१० ।३२

११ हे बहुस्तुत वीर, इन्द्र द्यौ और पृथिवी-सम्बन्धी लोको को प्रकाशित करते तुम जीते हो। जो तुम्हे प्राय यज्ञ मे ले जाते हैं, वह अ-दानी बकवादियो को जीते।।२।।

—कवष ऐलूष १० ।३२

१२ स सुत पीतये वृषा सोम **पवित्रे** अर्षति। विघ्नन्रक्षासि देवयु ।।१।।

—६ ।३७

१२ वह राक्षसो का नाश करता है, देवकामी, पराक्रमी सोम पीने के लिए छाना हुआ पवित्र (चषक) मे जाता है।।१।।

—रहूगण, ६ ।३७

१३ असृग्रन् देववीतये' त्यास **कृत्व्या** इव। क्षरन्त **पर्वतावृध** ।।१।।

१३ पत्थरो से बढे, कार्यपरायण घोडो की तरह देवपान के लिए क्षरित होते (सोम) भेजे गये हैं।।१।।

परिष्कृतास इन्दवो **योषेव** पित्र्यावती।
वायु सोम असृक्षत।।२।।

पितावाली परिष्कृत बहू की तरह सोम (इन्दु) वायु के पास जाते हैं।।२।।

स पवस्व धनजय प्रयन्ता राधसो मह ।
अस्मभ्य सोम गातुवित्।।५।।

—६ ।४६

हे धन जीतनेवाले, मार्गवेत्ता सोम, हमे धन, यश देते क्षरित होओ।।४।।

—अयास्य आगिरस ६ ।४६

१४ अभि त्वा योषणो दश **जार** न कन्यानूषत।
मृज्यसे सोम सातये।।३।।

—६ ।५६

१४ हे सोम कन्या जैसे प्रियतम को, वैसे तुम्हे दस अगुलिया बुलाती हैं, देने के लिए तुम मींजे जाते हो।।३।।

—अवत्सार ६ ।५६

१५ पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित् सोम रण्यजित्। प्रजावद्रत्नमाभर।।१।।

—६ ।५६

१५ हे गो-विजयी, अश्व-विजयी, सुख-विजयी सोम क्षरित होओ पुत्रो-सहित रत्न ले आओ।।१।।

—अवत्सार ६ ।५६

१६ प्र **गायत्रेण गायत** पवमान विचर्षणिम्। इन्दु सहस्रचक्षुस ।।१।।

—६।६०

१६ सहस्र-चक्षु सोम, का, बहुदर्शन पवमान का गायत्र (साम) द्वारा गान करो।।१।।

—अवत्सार, ६।६०

१७ अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन् नवतीर्नव।।१।।

पुर सद्य इत्था धिये **दिवोदासाय शबर**। अध त्य **तुर्वश यदु**।।२।।

जघ्निर्वृत्रममित्रिय सस्निर्वाज दिवेदिवे। गोषा उ अश्वसा असि ।।२०।।

—६।६१

१७ हे सोम, उस पान के साथ बहो, तुम्हारे जिस (पान के) मद मे हो (इन्द्र ने) निन्नानबे (पुरियो) का सहार किया।।१।।

इस प्रकार तुरन्त **शम्बर को**, पुरो को **दिवोदास के** लिए (नष्ट किया), और उस **तुर्वश और यदु को** भी।।२।।

हे सोम, तुमने अमित्र वृत्र को मार कर, रोज-रोज अन्न दिया, तुम गोदाता और अश्वदाता हो।।२०।।

—अमहीयु आगिरस, ६।६१

१८ सुत इन्द्राय विष्णवे सोम **कलशे** अक्षरत्। मधुमा अस्तु वायवे।।३।।

एते असृग्रमाशवोति ह्वरासि बभ्रव। सोमा ऋतस्य धारया।।४।।

इन्द्र वर्धन्तो अप्तुर **कृण्वन्तो विश्वमार्य**। अपघ्नन्तो अराव्ण ।।५।।

—६।६३

१८ इन्द्र के लिए, विष्णु के लिए छाना सोम कलश मे क्षरित हुआ। वह वायु के लिए मधुर होवे।।३।।

पिगल-वर्ण शीघ्रगामी सोम ऋत (यज्ञ) की धारा द्वारा घुमावो से होते बहते हैं।।४।।

इन्द्र को बढाते, जल लाते, सब आर्य (कर्म) करते कजूसो को विनाश करते (बहते) हैं।।५।।

—निध्रुव काश्यप, ६।६३

१६ अभ्यर्ष सहस्रिण रयि गोमन्तमश्विन। अभि वाजमुत श्रव ।।१२।।

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभि पवते सुत। दधान **कलशे** रस।।१३।।

—६।६३

१६ गाय-अश्व-सहित हजारोवाला धन, बल, अन्न और यश हमे दो।।१२।।

सूर्य की तरह सोम पत्थरो से (तैयार किया) कलश मे रस डालता क्षरित होता है।।१३।।

—निध्रुव काश्यप, ६।६३

२० हिन्वन्ति सूरमुस्रय स्वसारो **जामयस्पति**। महामिन्दु महीयुव ।।१।।

यस्य वर्ण मधुश्चत **हरिं** हिन्सन्त्यद्रिभि[1]। इन्दुमिन्द्राय पीतये।।८।।

२० महानता की कामना करनेवाली (अगुली रूपी) बहिने सूर को, स्त्रियाँ महान् पति सोम को बनाती हैं।।१।।

(अध्वर्यु लोग) इन्द्र के पीने के लिए पत्थरो द्वारा जिस मधुदायक पीले वर्ण इन्दु को (सोम) बनाते हैं।।८।।

[1] यद्रिचि—निर्णय सागर प्रेस

यस्ये ते मद्य रस तीव्र दुहन्त्यद्रिभि । स पवस्वाभिमाहिता।।१५।।

—६।६५

हे सोम तेरे तीव्र मद्यरस को पत्थरो से (घिसकर) निकालते हैं सो (तुम) दुष्टो का नाश करते क्षरो।।१५।।

—जमदग्नि भृगु-पुत्र, ६।६५

२१ ये सोमास परावति ये अर्वावति सुन्विरे। ये वाद शर्यणावति।।२२।।

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये' मध्ये पस्त्याना। ये वा जनेषु पचसु ।।२३।।

ते नो वृष्टि दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्य। सुवाना देवास इन्दव ।।२४।।

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना। हिन्वानो गोरधि त्वचि।।२५।।

—६।६५

२१ जो सोम पश्चिम (दूर) मे जो पूर्व (नजदीक) मे छाने गये, अथवा जो वहॉ शर्यणावत मे।।२२।।

जो आर्जीकों (ऋची को), जो कर्मनिष्ठो, जो पस्त्यो के बीच अथवा जो पॉचो जनो मे छाने गये।।२३।।

छाने जाते वे सोम हमारे लिए द्यौ के ऊपर से वृष्टि और सुवीरता को प्रदान करते क्षरण करे।।२४।।

यमदग्नि द्वारा स्तुति किया जाता सुनहला सोम गाय के चमडे के ऊपर तैयार होता क्षरित होता है।।२५।।

—यमदग्नि, भृग-पुत्र, ६।६५

२२ पवित्र ते वितत ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत।।१।।

—६।८३

२२ हे ब्रह्मणस्पति (मन्त्रपति सोम), तुम्हारा पवित्र (प्याला) फैला हुआ है, प्रभु तुम गात्रो से चारो ओर पहुँचे हो। अतप्त-शरीर (कच्चा व्यक्ति) उसे नहीं पाता। पके बहन करते उसे ठीक से पाते हैं।।१।।

—पवित्र आगिरस, ६।८३

२३ प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्य पुनानस्य सयतो यन्ति रहय ।।
यद् गोभिरिन्दो चम्वो समज्यस आ सुवान सोम कलशेषु सीदसि।।४७।।

—६।८६

२३ हे सोम, छाने जाते तुम्हारी धाराये सूक्ष्म मेष-लोम को लॉघकर वेगवती हो बहती हैं। जब दो चमुओ मे दूध मे मिलाये जाते हो, तब छाने जाकर कलशो मे बैठते हो।।४७।।

—गृत्समद, ६।८६

२४ शूरग्राम सर्ववीर सहावा जेता पवस्व सनिता धनानि।

तिग्मायुध क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाह्ळ साह्वान् पृतनासु शत्रून्।।३।।

—६।९०

२४ हे शूर-समूहवाले, सारे वीरोवाले, पराक्रमी, विजेता धनो के दाता तीक्ष्ण आयुधवाले, क्षिप्र धनुष चलानेवाले, युद्ध मे अजेय, सेनाओ मे शत्रुओ को पराजय करनेवाले हे सोम, तुम क्षरित होओ।।३।।

—वसिष्ठ, ६।९०

२५ प्र सेनानी शूरो अग्रे रथाना गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
भद्रान्कृण्वन्निद्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते।।१।।

सोम पवते जनिता मतीना जनिता दिवो जनिता पृथिव्या।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो।।५।।
ब्रह्मा देवाना पदवी कवीनामृषिर्विप्राणा महिषो मृगाणा।
श्येनो गृध्राणा स्वधितिर्वनाना सोम पवित्रमत्येति रेभन्।।६।।

त्वया हि न पितर सोम पूर्वे कर्माणि चक्रु पवमान धीरा।
वन्वन्नवात परिधीरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा न।।११।।

यथा पवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान्।
एवा पवस्व द्रविण दधान इन्द्रे स तिष्ठ जनयायुधानि।।१२।।

—६।९६

२५ लूटनेवाला सेनानी, शूर, रथो के आगे जाता है, इसकी सेना हर्षित होती है। इन्द्र के आह्वान को भला बनाता सोम सखाओ के लिए शीघ्र वस्त्र प्रदान करता है।।१।।
बुद्धियो का जनक (उत्पादक), द्यौ का जनक, पृथिवी का जनक अग्नि का जनक, सूर्य का जनक और विष्णु का जनक सोम क्षरित होता है।।५।।
देवो का ब्रह्मा, कवियो का पदज्ञ, विप्रो का ऋषि, महिष, गिद्धो का बाज, वनो का कुल्हाडा सोम शब्द करता पवित्र (पात्र) को पार करता है।।६।।

हे पवमान सोम, तुम्हारे साथ हमारे पूर्वज धीर पितरो ने कर्म किये। वीरो तथा अश्वो द्वारा तुम शत्रुओ को वेग से मारते हो। सो तुम हमारे धनिक (मघवा) बनो।।११।।
जैसे मनु के लिए आयुधधारी, शत्रुनाशक धन-युक्त हवि-युक्त हो तुम क्षरित हुए थे, वैसे ही धन धारण करते (हमारे लिए) क्षरित होओ। इन्द्र आश्रय लो, आयुध पैदा करो।।१२।।

—प्रतर्दन दिवोदास-पुत्र, ९।९६

२६ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यास्य तीर्थे।
षष्टि सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्ष न पक्व धूनवद्रणाय।।५३।।

—९।९

२६ हे सोम, तुम हमारे लिए यशस्वी हो प्रसिद्ध तीर्थ मे इस धारा से क्षरित होओ। जैसे पका फल पाने के लिए वृक्ष को हिलाते है, वैसे ही (मागने पर) शत्रुनाशक सोम ने साठ हजार धन हमे दिये।।५३।।

—कुत्स आगिरस, ९।९७

२७ त गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।
उतो कृपन्त धीतयो देवाना नाम बिभ्रती।।४।।

—९।९९

२७ क्षरित होते (समय) उस सोम की पुरानी गाथा द्वारा स्तुति करते हैं। चलनेवाली (सोम रूपी) देवो की अगुलिया हवि (को) धारण करती हैं।।४।।

—रेभ काश्यप, ९।९९

२८ **अव्यो वारेभि** पवते सोमो **गव्ये** अधि त्वचि।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृत।।१६।।

—६।१०१

२८ सोम गो के चमडे[1] पर भेड के लोमो के बीच छाना जाता है। पराक्रमी सुनहला सोम शब्द करता इन्द्र के (मिलन-) स्थान मे जाता है।।१६।।

—विश्वामित्र वाक्-पुत्र ६।१०१

२६ **शर्यणावति** सोममिन्द्र पिबतु वृत्रहा।
बल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्य महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव।।१।।

२६ वृत्रहन्ता (इन्द्र) **शर्यणावत** मे सोम को पिये। शरीर मे बलधारण करते महान् पराक्रम करे। हे सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।।१।।

आ पवस्व दिशा पत **आर्जीकात्** सोम मीढ्व।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत,
इन्दायेन्दो परि स्रव।।२।।

ऋतवचन-सत्य-श्रद्धा-तपस्या द्वारा छाने गये हे दिशाओ के पति, सेचक, सो **आर्जीक** से क्षरित होओ।।२।।

यत्र ज्योतिरजस्त्र यस्मिन्ल्लोके स्वर्हित।
तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते **लोके** अक्षित, इन्द्रायेन्दो परि स्रव।।७।।

जहॉ निरन्तर ज्योति है। जिस लोक मे स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उस अक्षुण्ण, अमर लोक मे मुझे ले चलो ।।७।।

यत्रानुकाम चरण त्रिनाके त्रिदिवे दिव।
लोका यत्र **ज्योतिष्मन्तस्**त्तत्र माममृत कधीन्द्रयेन्दो परि स्रव।।६।।

जहॉ द्यौके त्रिस्वर्ग, त्रि-द्यौ मे इच्छानुसार विचरण होता है जहॉ लोक ज्योतिषमान् है, वहॉ मुझे अमर बनाओ।।६।।

यत्रानन्दाश्च मुद मोदाश्च प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ता कामास्तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव।।११।।

—६।११३

जहॉ आनन्द और मोद और मुद प्रमुद अवस्थित है, काम की कामनाये जहॉ प्राप्त होती है, वहॉ मुझे अमर बनाओ ।।११।।

—कश्यप मारीचि-पुत्र ६।११३

२ सुरा—

३० हृत्सु पीतासो युध्यन्ते **दुर्मदासो** न **सुराया**।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते।।१२।।

—८।२

३० जैसे अतरिक पिये सुरा मे बदमस्त से लडते हैं, (गो-) स्तन की तरह नगे बकते हैं।।१२।।

—मेधातिथि कण्व-पुत्र ८।२

[1] चमडे मे खाने पीने की चीजो के रखने का उस समय बहुत रवाज था। सुरा रखने की चमडे की थैली (१।१६१।१०) और सोम रखने की चम थैली (४।१५।१) का उल्लेख मिलता है।

३१ नस स्वो दक्षो वरुण ध्रुति सा **सुरा** मयुर्विमीदको अचित्ति।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता।।६।।

—७।८६

३१ हे वरुण, वह दोष अपने से नहीं होता, वह सुरा, क्रोध, जुआ, अज्ञान है, (जो) बडे छोटो को पथभ्रष्ट करते हैं, नींद भी अनृत जोडनेवाली होती है।।६।।

—वसिष्ठ, ७।८६

३२ भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा।
भोजा जिग्यरन्त पेय **सुराया भोजा** जिर्ग्युर्ये अहूता प्रयन्ति।।६।।

—१०।१०७

३२ भोजदाता (सबसे) पहले सुगन्धित स्थान पाते हैं, भोज सुवस्त्र बन्धुओ को पाते हैं भोज आन्तरिक पेय सुरा को पाते हैं, भोज उनको जीत लेते हैं, जो बिना बुलाये बढ आते हैं।।६।।

—दिव्य आगिरस, १०।१०७

४ जूआ

३३ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृताना।
सोमस्येव **मौजवतस्य** भक्षो **विभीदको** जागृविर्मह्यमच्छान्।।१।।

३३ प्रवतीय बडे (वृक्ष) की गतिशील पट्टी पर घूमते (पासे) मुझे आनन्दित करते हैं, जेसे मुजवान् (पर्वत) वाले सोम का भक्ष्य, वैसे (ही) जागरूक काठ के पासे मुझे उत्तेजित करते हैं।।१।।

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोध।।२।।

न मुझे वह हैरान करती थी न क्रोध करती थी। मित्रो और मेरे लिए कल्याणिनी थी। केवल जूये के बस मे पडने के कारण मैंने अनुरागिणी जाया को विरक्त कर दिया।।२।।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितार।
अश्वस्येव जरतो **वस्न्यस्य** नाह विदामि **कितवस्य** भोग।।३।।

सास द्वेष करती है स्त्री छोड देती है। मागने पर वह (जुआरी) किसी को देनेवाला नहीं पाता। जैसे मूल्यवान् बूढे घोडे को, वैसे ही जुआरी के लिए (मिलनेवाला) कोई भोग मैं नहीं जानता।।३।।

अन्ये जाया परिमृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने **वाज्यक्ष**।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेत।।४।।

जिसके धन का लोभ बलवान् पासा करते है, उसकी पत्नी को दूसरे भोगते हैं। उसके बारे मे पिता, माता, भाई कहते है—"हम नहीं जानते, इसे बॉध कर ले जाओ"।।४।।

यदा दीध्येनदविषाण्येभि परायद्भ्यो' वहीये सखिभ्य ।
न्युप्ताश्च वभ्रवो वाचमक्रत एमीदेषा निष्कृत जारिणीव।।५।।

जब तै करता हूँ "इन (पासो) के साथ नहीं खेलूँगा", तो मित्र जुआरियो से दूर होता हूँ। पर, जब भूरे पासे फलक पर पडे शब्द करते हैं, तो व्यभिचारिणी की तरह उन (जुआरियो) के मिलनस्थान मे जाता हूँ।।५।।

सभामेति कितव पृच्छमानो "जेष्यामीति" तन्वा शूशुजान ।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति काम प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि।।६।।

"मैं जीतूँगा" कह पूछता शरीर फुलाता, जुआरी सभा मे जाता है। पासे इसकी कामना बढाते है। प्रतिद्वन्द्वी के भाव को पूरा करते है।।६।।

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरत क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद् धनमिच्छमानो न्येषामस्तमुप नक्तमेति।।१०।।

जुआरी की पत्नी हीन होकर सतप्त होती है कहीं भटकते की मा। (भी) महाजनो से डरता, धनलोभी वह दूसरे के घर मे रात को जाता है।।१०।।

स्त्रिय दृष्ट्वाय कितव ततापान्येषा जाया सुकृत च योनि।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि वभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषल पपाद।।११।।

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमान ।
तत्र गाव कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्य ।।१३।।

—१० ।३४

पासो से मत खेलो, खेती करो, (उसे) बहुत मानते हुए लाभ से सतुष्ट रहो। हे जुआरी, वहाँ (तेरे लिए) गाये है, वहाँ पत्नी हैं, स्वामी सविता ने मुझे यह बतलाया ।।१३।।

—कवष ऐलूष, १० ।३४

५ (समन मेला)

यक्ष, (समन मेला) देखने जाते थे वसिष्ठ ७ ।६६ ।१६;—प्रस्कण्व, १ ।४८ ।६, कक्षीवान् १ ।१२४ ।८, सुमित्र वाघ्रयश्व, १० ।६६ ।११,

अध्याय १५

देवता (धर्म)

१ देवता

१ नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारक। विश्वे सतो महान्त इत्।।१।।

—८।३०

१ हे देवो, तुम्हारे मे न कोई शिशु है, न बच्चा। तुम सभी महान् हो।।१।।

—मनु वैवस्वत, ८।३०

१ नाम, सख्या—

२ हुवे वो देवीमदिति नमोभिर्मृळीकाय वरुण मित्रमग्नि।
अभिक्षदामर्यमण सुशेव त्रातृन्देवान्त्सवितार भग च।।१।।

२ हे देवो, सुख के लिए मै नमस्कार द्वारा तुम्हे—देवी, अदिति को, वरुण को मित्र को, अग्नि को बिना माँगे दाता सुन्दर धनवाले अर्यमा को, रक्षक देवताओ को, सविता और भग को पुकारता हूँ।।१।।

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवो' धृष्टा।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान्।।४।।

पुकारे गये रुद्र-पुत्र अजेय वसु लोग आज हमारे पास आये हैं, जब हम कष्ट मे होते हैं, तो हम मरुत देवो को पुकारते हैं।।४।।

अभि त्य वीर गिर्वणसमर्चेन्द्र ब्रह्मणा जरितर्नवेन।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजा उप महो गृणान।।६।।

हे स्तोता, नवीन मन्त्र (ब्रह्म) से उस वीर देव इन्द्र की अर्चना करो। इस प्रकार सुन और स्तुत हो, वह हमे बहुत अन्न देवे।।६।।

ओमानमापो मानुषीरमुक्त धात तोकाय तनयाय श यो।
यूय हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्री।।७।।

आप (जल) देवियाँ, मनुष्य हितकारिणी हमारे पुत्र-पौत्रो के लिए तुम मगलकारिणी हो रक्षक बनो। तुम सारे चराचर की श्रेष्ठतम माता, वैद्य और जनयित्री हो।।७।।

उत त्या मे हवमा जग्म्यात नासत्या धीभिर्युवमग विप्रा।
अत्रि न महस्तमसो मुमुक्त तूर्वत नरा दुरितादभीके।।१०।।

हे विप्र, नासत्यो (अश्विनीकुमारो), स्तुतियो द्वारा मेरी पुकार को सुनने आओ, अत्रि की तरह महान् अन्धकार से छुडाओ। हे नेताओ, युद्ध कर कष्ट से हमे बचाओ।।१०।।

ते नो रुद्र सरस्वती सजोषा मीहळुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायु ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्या वाता पिप्यतामिष न ।।१२।।

—६ ।५०

वे रुद्र, सरस्वती, सेचक वायु विष्णु सहित हमे सुखी करे। ऋभुक्षा, वाज (दिव्य अन्न)-विधाता, पर्जन्य-वात हमारे अन्न को बढाये।।१२।।

—ऋजिश्वा ६ ।५०

३ द्यौष्पित पृथिवी मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता न ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्य शर्म बहुल वि यन्त।।५।।

—६ ।५१

३ हे पिता द्यौ, हे द्रोहहीन माता पृथिवी, हे भ्राता अग्नि, हे वसुओ, हमे सुखी करो। हे सारे आदित्यो, हे अदिति इकट्ठे हो हमारे लिए बहुत शरण प्रदान करो।।५।।

—ऋजिश्वा, ६ ।५१

४ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धव पिन्वमाना ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ।।४।।

४ उगती उषाये मेरी रक्षा करे, फूलती हुई नदियाँ मेरी रक्षा करे, अचल पर्वत मेरी रक्षा करे। देवो की पुकार मे पितर मेरी रक्षा करे।।४।।

विश्वदानीं सुमनस स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरत।
तथा करद्वसुपतिर्वसूना देवा ओहानोऽवसागमिष्ठ ।।५।।

सदा हम सुमनवाले हो, उगते हुए सूर्य को हम देखे। वैसा ही वसुओ के वसुपति (धनपति) करे। देवताओ को वहन करते रक्षा के साथ वह हमारे पास आवे।।५।।

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठ सरस्वती सिन्धुभि पिन्वमाना।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्नि सुशस सुवह पितेव।।६।।

—६ ।५२

रक्षा के साथ इन्द्र फूलती हुई सिन्धुओं के साथ सरस्वती हमारे अति नजदीक आवे। औषधियो के साथ पर्जन्य, सुप्रशसनीय सुआह् वनीय पिता तुल्य अग्नि सुखमय होवे।।६।।

—ऋजिश्वा, ६ ।५२

५ श न इन्द्राग्नी भवतामवोभि श न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय श यो श न इन्द्रापूषणा वाजसातौ।।१।।

५ इन्द्र-अग्नि (दोनो) रक्षाओ के साथ हमारे लिए कल्याणकारी हो । हव्य प्रदान किये गये (रातहव्य) इन्द्र-वरुण हमारे लिए कल्याणकारी हो। इन्द्र-सोम कल्याण उत्पादन के लिए हो। यज्ञ मे इन्द्र-पूषन् हमारे लिए कल्याणकारी हो।।१।।

श नो भग शमु न शसो अस्तु श न पुरन्धि शमु सन्तु राय ।
श न सत्यस्य सुयमस्य शस श नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।।२।।

भग हमारे लिए कल्याणकारी हो, हमारे लिए (नरा) शस कल्याणकारी हो, पुरन्धि हमारे लिए कल्याकारी हो, धन कल्याणकारी होवे। अर्यमा सत्य की प्रशसा हमारे लिए कल्याणकारी हो। बहुत बार प्रकट अर्यमा हमारे लिए कल्याणकारी होगा।।२।।

श नो **धाता** शमु धर्ता नो अस्तु श न उरुची भवतु स्वधाभि । श रोदसी बृहती श नो अद्रि श नो देवाना सुहवानि सन्तु।।३।।	**धाता** -हमारे लिए कल्याणकारी हो, **धर्ता** हमारे लिए कल्याणकारी हो। अन्नो के साथ **उरुची** (पृथिवी) हमारे लिए कल्याणकारी हो, **द्यौ-पृथिवी** हमारे लिए कल्याणकारी हो, **अद्रि** (पर्वत) हमारे लिए कल्याणकारी हो। देवताओ के लिए सुन्दर हवन हमारे लिए कल्याणकारी हो।।३।।
श नो **अग्निर्ज्योतिरनीको** अस्तु श नो **मित्रावरुणावश्विना** श। श न सुकृता सुकृतानि सन्तु श न इषिरो अभि वातु **वात** ।।४।।	ज्योतिर्मुख **अग्नि** हमारे लिए कल्याणकारी हो, **मित्र-वरुण** हमारे लिए कल्याणकारी हो, **अश्विद्वय** कल्याणकारी हो। **सुकृतो** (सुकर्मओ) की सुकृति हमारे लिए कल्याणकारी हो। गतिशील वात हमारे लिए कल्याणकारी बहे।।४।।
श नो **द्यावापृथिवी** पूर्वहूतौ **शमन्तरिक्ष** दृशये नो अस्तु। श न **ओषधीर्वनिनो** भवन्तु श नो रजसस्पतिरस्तु **जिष्णु** ।।५।।	पूर्वजो की पुकार मे **द्यौ-पृथिवी** हमारे लिए कल्याणकारी हो, अन्तरिक्ष दर्शनार्थ हमारे लिए कल्याणकारी हो, वनवाला **औषधि** हमारे लिए कल्याणकारी हो, राजस्पति (लोकपति) **जिष्णु** (विजेता) हमारे लिए कल्याणकारी हो।।५।।
श न **इन्द्रो** **वसुभिर्देवो** अस्तु **शमादित्येभिवरुण** सुशस । श नो **रुद्रो** रुद्रेभिर्जलाष श **नस्त्वष्टा** ग्नाभिरिह श्रृणोतु।।६।।	वसुओ के साथ **इन्द्रदेव** हमारे लिए कल्याणकारी हो, **अदित्यों के** साथ सुप्रशसनीय **वरुण** कल्याणकारी हो। रुद्रों के साथ जल देनेवाले **रुद्र** हमारे लिए कल्याणकारी हो। **ग्ना** (देवियो) के साथ **त्वष्टा** हमारे लिए कल्याणकारी हो।।६।।
श न **सोमो** भवतु **ब्रह्म** श न श नो ग्रावाण शमु सन्तु **यज्ञा** । श न स्वरूणा मितयो भवन्तु श न प्रस्व श वस्तु **वेदि** ।।७।।	**सोम** हमारे लिए कल्याकारी हो, **ब्रह्म** (ऋचा) हमारे लिए कल्याणकारी हो, **ग्रावा** (सोम पीसने के पत्थर) हमारे लिए कल्याकारी हो, **यज्ञ** हमारे लिए कल्याणकारी हो। **स्वरूपों** (यज्ञ-यूपो) के माप हमारे लिए कल्याणकारी हो, औषधिया हमारे लिए कल्याणकारी हो, वेदी कल्याणकारी हो।।७।।

श न **सूर्य** उरुचक्षा उदेतु श नश्चतस्र **प्रदिशो** भवन्तु।
श न **पर्वता** ध्रुवयो भवन्तु श न **सिन्धव** शमु सन्त्वाप ।।८।।

विस्तृत प्रकाशवाले **सूर्य** हमारे लिए कल्याण-युक्त उगे, हमारे लिए चारो **दिशाये** कल्याणकारी हो, ध्रुव (अचल) **पर्वत** हमारे लिए कल्याणकारी हो, हमारे लिए **सिन्धुये** (नदियॉ) कल्याणकारी होवे, **आप** (जल) देवियॉ कल्याणकारी होवे।।८।।

श नोऽ**दितिर्भवतु** व्रतेभि श नो भवन्तु **मरुत** स्वर्का।
श नो **विष्णु** शमु **पूषा** नो अस्तु श नो भवित्र शवस्तु **वायु** ।।६।।

व्रतो के साथ **अदिति** हमारे लिए कल्याणकारी हो, सुन्दर स्तुतिवाले मरुत् हमारे लिए कल्याणकारी हो। **विष्णु** हमारे लिए कल्याणकारी हो, **पूषन्** हमारे लिए कल्याणकारी हो, **भवित्र** (आकाश) हमारे लिए कल्याणकारी, **वायु** हमारे लिए कल्याणकारी हो।।६।।

श नो देव **सविता** त्रायमाण श नो भवन्तू**षसो** विभाती।
श न **पर्जन्यो** भवतु प्रजाभ्य श न **क्षेत्रस्य पतिरस्तु शभु** ।।१०।।

रक्षा करते हुए **सविता** देव हमारे लिए कल्याणकारी हो, चमकने वाली **उषाये** हमारे लिए कल्याणकारी हो, **पर्जन्य** हमारी प्रजाओ (सन्तानो) के लिए कल्याणकारी हो, **क्षेत्रपति** शम्भु हमारे लिए कल्याणकारी हो।।१०।।

श नो देवा **विश्वदेवा** भवन्तु श **सरस्वती** सह धीभिरस्तु।
शमभिषाच शमु रातिषाच श नो दिव्या पार्थिवा श नो अप्या ।।११।।

विश्वदेव (सारे देवता) देव हमारे लिए कल्याणकारी हो, बुद्धियो के साथ **सरस्वती** कल्याणकारी हो। सन्मुख दान देनेवाले कल्याणकारी हो, दिव्य (द्यौवाले), पार्थिव (पृथिवीवाले), अप्य (जलवाले) प्राणी हमारे लिए कल्याणकारी हो।।११।।

श न सत्यस्य पतयो भवन्तु श नो अर्वन्त शमु सन्तु गाव।
श न **ऋभव** सुकृत सुहस्ता श नो भवन्तु **पितरो** हवेषु।।१२।।

सत्य के पति हमारे लिए कल्याणकारी हो, **अर्वन्त** (घोडे) हमारे लिए कल्याणकारी हो, **गायें** हमारे लिए कल्याणकारी हो। सुकृत (सुकर्मा) सुहस्त ऋभु हमारे लिए कल्याणकारी हो। हवनो मे हमारे लिए **पितर** कल्याणकारी हो।।१२।।

श नो अज एकपाद्देवो अस्तु श नोऽहिर्बुध्न्य श समुद्र ।
श नो अपानपात् पेरुरस्तु श न पृश्निर्भवतु देवगोपा ।।१३।।

एक पैरवाला **अज** देव हमारे लिए कल्याणकारी हो, **अहिर्बुध्न्य** (गम्भीर सर्प) हमारे लिए कल्याणकारी हो, **समुद्र** कल्याणकारी हो, आप देवियो का नाती **पेरु** हमारे लिए कल्याणकारी हो, देवरक्षिका **पृश्नि** हमारे लिए कल्याणकारी हो।।१३।।

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेद ब्रह्म क्रियमाण नवीय ।
शृण्वन्तु नो दिव्या पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियास ।।१४।।

इस अतिनवीन बनाये जाते ब्रह्म (मन्त्र) को **आदिन्त्य, रुद्र,** वसु लोग सेवन करे। दिव्य, पार्थिव गौवो (वाणी या गाय) से उत्पन्न और जो यज्ञीय है, वे (देव) हमारी स्तुति सुने।।१४।।

ये देवाना यज्ञिया यज्ञियाना मेनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञा ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूय पात स्वस्तिभि सदा न ।।१५।।

—७।३५

जो यज्ञीय देवो के यज्ञीय (पूजनीय), मनु (राजा) के पूजनीय अमर ऋत (सत्य)-ज्ञाता है। वे आज हमे विस्तृत स्थान (यश) प्रदान करे, तुम सदा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो।।१५।।

—वसिष्ठ, ७।३५

६ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्र हवामहे प्रातर्मित्रवरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भग पूषण ब्रह्मणस्पति प्रात सोममुत रुद्र हुवेम।।१।।

६ प्रात **अग्नि** को प्रात **इन्द्र** को हम पुकारते हैं, प्रात **मित्र-वरुण** को प्रात **अश्विद्वय** को। प्रात **भग** को **पूषन्** को **ब्रह्मणस्पति** (वेदपति) को, प्रात **सोम** और **रुद्र** को हम पुकारते है।।१।।

प्रातर्जित भगमुग्र हुवेम वय पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्य मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्य भग भक्षीत्याह।।२।।

—७।४१

प्रात जीतनेवाले उग्र **भग** को हम पुकारते है, जो कि विधर्ता (धारक) अदिति का पुत्र है। जिसे सोचते—गरीब (स्तोता), धनी, राजा दोनो, ही "भग" कहते प्रार्थना करते हैं।।२।।

—वसिष्ठ, ७।४१

७ अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायु पूषा सरस्वती सजोषस ।
आदित्या विष्णुर्मरुत स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पति ।।१।।

७ **अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, पूषन्** सहित **सरस्वती** *आदित्य,* **विष्णु मरुत्गण,** महान **स्वर्, सोम, रुद्र, अदिति, ब्रह्मणस्पति** (वेदपति) ।।१।।

—वसिष्ठ, ७।३५

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकसा।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन्।।२।।
—१० ।६५

वृत्रयुद्धो मे सच्चे स्वामी सहवासी इन्द्र और अग्नि ने परस्पर शरीर से (शत्रुओ को) भगाते महान् अन्तरिक्ष को अपनी महिमा से, ओज से भर दिया। घृतश्री (घृत की शोभावाले) सोम ने महिमा को बढाते (भर दिया)।।२।।
—वसुकर्ण वसुक्र-पुत्र, १० ।६५

८ **ऐभिरग्ने** सरथं याह्यर्वाङ् नाना रथं वा विभवो ह्यश्वा।
पत्नीवतस्त्रिंशतं **त्रींश्च** देवाननुष्वधमावह मादयस्व।।६।।
—३ ।६

८ हे अग्नि, एक रथ या नाना रथ पर इन (देवताओ) के साथ आगे जाओ, क्योकि (तुम्हारे) अश्व विभु (वैभववाले) हैं। पत्नियोसहित तैंतीस देवताओ को ला, स्वभावानुसार आनन्दित करो।।६।।
—विश्वामित्र, ३ ।६

६ **त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च** देवा नव चासपर्यन् ।
ओक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ।।६।।
—३ ।६

६ तीन-सौ, तीन-हजार, तीस और नौ (३३३६) देवताओ ने अग्नि की पूजा की। घृत से उन्हे सींचा, कुश उनके (बैठने के) लिए फैलाया, होता मान कर उस (अग्नि) को बैठाया ।।६।।
—विश्वामित्र, ३ ।६

२ देवो के वास-स्थान—

२ देवताओ के वास-स्थान—

१० **नाकस्य** पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो यः पृणाति सहदेवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति **सिन्धवस्तस्मा** इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ।।५।।
—१ ।१२५

१० जो देवताओ को प्रसन्न करता है, वह देवो के पास जाता है, नाक (स्वर्ग) के पीठ पर अधिष्ठान करता है । उसके लिए सिन्धु आप (जलदेवियॉ) घृत प्रदान करती यह दक्षिणा सदा तृप्त करती है।।५।।
—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १ ।१२५

२ देवो के स्वरूप

१ अग्नि—

१. अग्नि—

११ त्वं हि क्षैतवद्यशो**ऽग्ने** मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि।।१।।

११ हे अग्नि, मित्र की तरह राजयशवाले स्वामी हो । हे सक्रिय वसु (बसानेवाले) तुम पुष्टि से पुष्ट करते हो ।।१।।

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता **दमे विशा** ।
समृधो **विश्पते** कृणु जुषस्व हव्यमंगिर ।।१०।।

हे अग्नि, यज्ञ की इच्छा वाले विशो के घर मे होता होकर तुम प्रविष्ट होते हो। हे विशापति (प्रजाओं के स्वामी) समृद्ध करो, हे अगिरा, हव्य का सेवन करो।।१०।।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच सुमति **रोदस्यो** ।
वीहि स्वस्ति सुक्षिति दिवो नृन्द्विषो अहासि दुरिता ।
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ।।११।।

—६।२

हे मित्र-तेजवाले अग्नि देव, रोदसी (द्यौ और पृथिवी) मे देवो के लिए हमारी स्तुति को कहो। द्यौ से स्वस्ति लाओ, मनुष्य का सुन्दर वास हो । पापवाले दुष्ट शत्रुओ से (हम) बचे। तुम्हारी सहायता से हम तरे, हम तरे, हम तरे।।११।।

—भरद्वाज, ६।२

१२ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमान **परशुर्न** जिह्वा **द्रविर्न** द्रावयति दारु धक्षत् ।।४।।

—६।३

१२ तीक्ष्ण सा (इसका) आकार है, महान् शरीर है, अश्व की तरह मुँह से तृण-काष्ट[1] खाता, कुठार की तरह जिह्वा को हिलाता है, कलछी की तरह काष्ट को जलाते भगाता है ।।४।।

—भरद्वाज, ६।३

यथा होतर्मनुषो यज्ञेभि **सूनो सहसो** यजासि।
एवा नो अद्य समना सामानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ।।१।।

—६।४

हे सहस-पुत्र[2] होता अग्नि, जैसे मनुष्य के यज्ञ मे हवि द्वारा तुमने देवो का यजन किया, उसी प्रकार चाहते आज हमारे यज्ञ मे देवो को साथ ले आओ और यजन करो ।।१।।

—भरद्वाज, ६।४

१३ हुवे व **सूनु सहसो** युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ।।१।।

—६।५

१३ तुम अमिथ्याभाषी प्रशस्त तरुण सहस-पुत्र (अग्नि) को स्तुतियो द्वारा हम हवन करते है, जो कि प्राज्ञ अद्रोही बहुदाता बहुत श्रेष्ठ धनो को प्रदान करता है ।।१।।

—भरद्वाज, ६।५

---

[1] लगाम [2] शक्ति (साहस) के पुत्र।

१४ स जायमान परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ।।२।।

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावत ।।४।।

—६।८

१४ परम आकाश मे उत्पन्न हो वह व्रतपालक अग्नि व्रतो की रक्षा करता है। सुकर्मा वैश्वानर ने अंतरिक्ष को नापा, अपनी महिमा से नाक (स्वर्ग) को छुआ ।।२।।

महिषो (महानों) ने अन्तरिक्ष मे उसे धारण किया। प्रजाओ ने पूजनीय कह कर राजा अग्नि का उपस्थान किया । विवस्वान् (सूर्य) का दूत वायु वैश्वानर अग्नि को दूर (परिमण) से लाया ।।४।।

—भरद्वाज ६।८

१५ त्वा दूतमग्ने अमृत युगे युगे हव्यवाह दधिरे पायुमीड्य ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे ।।८।।

—६।१५

१५ हव्यवाहक रक्षक पूज्य है अग्नि तुम अमर दूत को युग युग मे (लोग) धारण करते है । विभु जागरूक, प्रजाओ के पति तुमको देव और मनुष्य नमस्कारपूर्वक स्थापित करते है ।।८।।

—भरद्वाज ६।१५

१६ वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भीरण्वं कुशिकासो हवामहे ।।१।।

अश्वो न क्रन्दन् जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे ।
स नो अग्नि सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ।।३।।

१६ हम हविवाले धनकामी कुशिक मनो-अनुगत स्वर्गवेत्ता सुदाता अश्व सारथी, अणु (सूक्ष्म) वैश्वानर अग्नि को मन से जान कर पुकारते है ।।१।।

हिनहिनाता स्त्रियो द्वारा (जलाया) वैश्वानर अग्नि कुशिकों द्वारा युग-युग से वर्धित होता है। वह अमरों मे जागरूक अग्नि हमें सुवीर्य (सुन्दर वीरो-युक्त), सुन्दर अश्वोवाला रत्न प्रदान करे ।।३।।

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातूरजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ।।७।।

—३।२६

मै जन्म से सबका जानने वाला, अग्नि हूँ, घृत मेरा चक्षु है, अमृत मेरे मुख मे है। मै त्रिविध अर्क (सूर्य) हूँ, लोको का नापनेवाला, सदा गर्म हूँ, और हवि नामवाला हूँ ।।७।।

—विश्वामित्र, ३।२६

१७ आ वो **राजानमध्वरस्य** रुद्र होतार सत्ययज **रोदस्यो.** ।
अग्नि पुरास्तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्व ।।१।।

अय योनिश्चकृमा य वयन्ते जायेव पत्य उशती **सुवासा** ।।
अर्वाचीन परिवीतो निषीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीची ।।२।।

—४।३

१७ बिजली पडने के कारण मृत होने से पहले तुम रुद्र, होता **द्यौ-पृथिवी** सत्य-याजी, सुवर्ण-रूप, यज्ञ के राजा अग्नि को अपना रक्षक बनाओ ।।१।।

हे अग्नि, जैसे अभिलाषिणी सुवस्त्रा स्त्री पति के लिए, वैसे ही हम यह तुम्हारे लिए स्थान बनाते है। परिच्छादित हो सामने बैठो, और (यह) स्वपाक पीछे की ओर।।२।।

—वामदेव, ४।३

१८ नित्या दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह् ना ।
दृषद्वत्या मानुष **आपयाया सरस्वत्या** रेवदग्ने दिदीहि ।।४।।

—३।२३

१८ हे अग्नि, दिनो के सुदिन मे लिये पृथिवी के उत्तम अन्न-स्थान मै तुम्हे स्थापित करता हूँ। तुम **दृषद्वती** (घग्घर) **आपया** (मरकण्डा), **सरस्वती** पर आदमियो के लिए धन-युक्त दीप्तिमान् होओ।।४।।(१।६)

—देवश्रवा-देववात भारत, ३।२३

२ अरण्य—

१६ न वा **अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।**
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ।।५।।

—१०।१४६

आजनगधि सुरभि बह्वन्नाम**कृषीवला** ।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिष।।६।।

—१०।१४६

२ अरण्य—

१६ दूसरा यदि न आक्रमण करे, तो अरण्यानी (जगल) नही मारती। (वहाँ) स्वादु फल खाकर यथेच्छ पडा (रहा) जा सकता है।।५।।

आजन के गधवाली सोधी (सुरभि) बिना किसानो के बहुअन्नवाली, मृगो की माता अरण्यानी की मै बहुत स्तुति करता हूँ।।६।। (४।१६ ६)

—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

२ अश्विद्वय देखो १७।५

३ आप—

२० **आपो** हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ।।१।।

योव शिवतमो रसस्तस्य भजयतेह न।
उशतीरिव मातर ।।२।।

तस्मा अरगमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च न ।।३।।

श नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शयोरभि स्रवन्तु न ।।४।।

—१० ।६

३ आप (जल) देवी—

२० हे आप, तुम सुखमय हो। वह (आप) हमे शक्ति (रस) महान रमणीयता देखने के लिए दे।।१।।

जो तुम्हारा कल्याणतम रस है। उसे स्नेहवती माता की तरह हमे प्रदान करो।।२।।

हे आपो, जिसके स्थान मे (हमे) भेजती हो, हम प्रसन्नता पूर्वक तुम्हारे पास आते है। हमे (प्रजा) जनन कराओ।।३।।

दिव्य आप कल्याण और आनन्द के वास्ते हमारे पीने के लिए होवे। (तुम) हमारे स्वास्थ्य के लिए क्षरित होओ।।४।।

—सिन्धुद्वीप अम्बरीष-पुत्र १० ।६

४ इळा, भारती, सरस्वती—

२१ आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ।।८।।

—३ ।४

४ इळा, भारती, सरस्वती—

२१ भारतीयो के साथ भारती, देवो के साथ इळा (दिव्य अन्न), मनुष्यो के साथ अग्नि, सरस्वती-तीरवाले (देवो) के साथ सरस्वती— तीनो देवियॉ आकर इस कुश (-आसन) पर बेठे ।।८।

—विश्वामित्र, ३ ।४

५ इन्द्र—

२२ स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो य **शिप्रवान्वृषभो** यो मतीना।
यो **गोत्रभिद्वज्रभृद्यो** हरिष्ठा स इन्द्र चित्रा अभितृन्धि वाजान् ।।२।।

—६ ।१७

२३ त्रातारमिन्द्रमवितार**मिन्द्र हवे** हवे सुहव शूरमिन्द्र।
ह्वयामि शक्र पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ।।११।।

५ इन्द्र—

२२ वह सोम को पान करे, जो घातक-ऋजीषी (विजयी), जो शत्रु-रक्षक है, जो शिप्र (मुकुट) धारी, जो मतियो का वृषभ (स्वामी) है, जो पर्वत-ध्वसक, वज्रधर, जो अश्वारोही है, वह इन्द्र अद्भूत बलो को बेधे ।।२।।

—भरद्वाज, ६ ।१७

२३ त्राया इन्द्र सहायक इन्द्र हवन–हवन मे अच्छी तरह पुकारने लायक शूर इन्द्र, शक्र (शक्तिशाली) पुरुहूत (बहुतो द्वारा पुकारे गये) इन्द्र को मै पुकारता हूँ। वह मघवा (इन्द्र) हमारे लिए स्वस्ति प्रदान करे ।।११।।

रूपरूप प्रनिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश ।।१८।।

—६।४७

जो रूप-रूप मे प्रतिरूप हुआ, वह है उसके रूप को प्रकट करने के लिए। मायाओ से इन्द्र बहुत रूपोवाला (बना) डोलता है, उसके दस सौ घोडे जुते हुए है ।।१८।।

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र ६।४७

२४ अय सोम **इन्द्र** तुभ्य सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोका।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि **मघवन्नियान** ।।१।।

—७।२६

२४ हे इन्द्र, तुम्हारे लिए यह सोम छाना गया है, हे घोडेवाले, उसके स्थान पर जल्दी आओ। इस अच्छे प्रकार छाने चारु सोम को पियो । हे मघवन् आकर मघ (धन) दो ।।१।।

—वसिष्ठ, ७।२६

२५ **इम इन्द्राय** सुन्विरे सोमासो **दध्याशिर** ।
ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्या याह्योक आ।।४।।

—७।३२

२५ यह दध्याशिर (दधि-मिश्रित) सोम इन्द्र के लिए छाने गये है। हे वज्रहस्त, उनके पीने, मस्त हाने के लिए दोनो घोडो के साथ (हमारे) घर आओ।।४।।

—वसिष्ठ, ७।३२

२६ इन्द्र जहि पुमास **यातुधानमुत** स्त्रिय **मायया** शाशदाना ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्तू **सूर्यमुच्चरत** ।।२४।।

—७।१०४

२६ हे इन्द्र, पुरुष यातुधान (राक्षस) को और माया द्वारा हानि पहुँचाती स्त्री यातुधान को मारो। मूर (मारक या मूर्ख) देव (राक्षस) बिना गर्दन के हो नष्ट होवे, वह उगते सूर्य को न देख पावे।।२४।।

—वसिष्ठ, ७।१०४

२७ **गवाशिर** मन्थिनमिन्द्र शुक्र पिबा सोम ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व।।२।।

२७ हे इन्द्र मॅथे गवाशिर (गोरस--मिश्रित) शुक्र (श्वेत) सोम को पियो, तुम्हारे मद के लिए हम उसे देते है। (उसे) ब्रह्म (ऋचा)-कृत, मरुतो, रुद्रो के साथ तृप्ति होने तक पियो।।२।।

ये ते शुष्म ये तविषीमवर्धन्नर्चन्तु इन्द्र मरुतस्त ओज ।
माध्यन्दिने सवने बज्रहस्त पिबा रुद्रेभि सगण **सुशिप्र** ।।३।।

—३।३२

हे इन्द्र, जिन्होने तुम्हारे बल को, जिन्होने तेज को बढाया, वे मरुत तुम्हारे ओज को पूजे। हे वज्रहस्त, सुशिप्र (सुमुकुट) रुद्रो-सहित, गणयुक्त माध्यदिन सेवन (मध्यान्ह के पान) मे सोम पियो।।३।।

—विश्वामित्र ३।३२

२८ आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि **मयूररोमभि** ।
मा त्वा केचिन्नियमन्वि न पा शिनोति धन्वेवता इहि ।।१।।

—३।४५

२८ हे इन्द्र, मादक मयूर रोमवाले मस्त घोडो के साथ आओ। पक्षी फसानेवाले की तरह कोई तुम्हे न रोके। मरुभूमि की तरह उन्हे पार करके आओ ।।१।।

—विश्वामित्र, ३।४५

२६ सूर उपाके तन्व दधानो वियत्ते चेत्यमृतस्य वर्प ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाण **सिहो न भीम आयुधानि** विभ्रत् ।।१४।।

२६ हे इन्द्र, सूर्य के पास बैठते जब तुम्हारा शरीर, तुम्हारा अमर रूप विस्तृत होता है, तब मृगहस्ती की तरह तेज से शत्रुओ को जलाते, भयकर सिह की तरह आयुधो को धारण करे भयकर दीखते हो।।१४।।

तिग्मा यदन्तरशनि पताति कस्मिचिच्छूरमुहुके जनाना।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यर्धस्मानस्तन्वो बोधि गोपा ।।१७।।

हे शूर इन्द्र, जब हमारे किसी जनो के युद्ध बीच तीक्ष्ण असनि गिरे, हे स्वामी, जब घोर युद्ध होवे, तो तुम हमारे शरीरो के रक्षक होना जानो ।।१७।।

भुवोविता **वामदेवस्य** धीना भुव सखा वृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमाजगन्मोरुशसो जरित्रे विश्वधस्या ।।१८।।

—४।१६

वामदेव के विचारो के तुम रक्षक होना, तुम युद्ध मे अकुटिल सखा होना। रक्षक तुम्हारे पास हम आते है। सदा तुम स्तोता के लिए बहु-प्रशसित सदा सर्वत्र स्थित हो।।१८।।

—वामदेव ४।१६

३० त्व महा इन्द्र तुभ्य ह क्षा अनुक्षत्र महना मन्यत द्यौ ।
त्व वृत्र शवसा जघन्वान्त्सृज सिन्धुरहिना जग्रसानान् ।।१।।

३० हे इन्द्र तुम महान् हो। तुम्हारे बल की पृथिवी अनुमोदन करती है, द्यौ अनुमोदन करता है। तुमने अपने बल से वृत्र को मारा, अहि द्वारा ग्रस्त सिन्धु को तुमने मुक्त किया ।।१।।

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौरेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्यो ।
ऋधायन्त सुभ्व पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आप ।।२।।

—४।१७

जन्म लेते समय तुम्हारी दीप्ति से द्यौ कॉपा तुम्हारे अपने क्रोध के भय से भूमि कॉपी। सुरूप पर्वत डोले मरु-भूमियॉ भीगीं, नदियॉ प्रवाहित हुईं ।।२।।

—वामदेव ४।१७

३१ वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।
श्रिये **परुष्णीमुषमाण** ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ।।२।।

३१ वृष्टि-धारक कामवर्ती दोनो बाहो से चार कोरवाले वज्र को फेकने-वाले, उग्र, महानतम नेता शची-युक्त वृषभ (इन्द्र) ऊन की तरह परुष्णी (रावी) की श्री के लिए सेवन करता है उसके पोर को मैत्री के लिए ढॉक दिया ।।२।। (१।६)

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै ।
दधानो वज्र बाह्वोरुशन्त द्याममेन रेजयत् प्रभूम ।।३।।

—४।२२

बहुत अन्नो और महा वगो और बलो के साथ उत्पन्न जो देव देवो मे श्रेष्ठतम है, दोनो बाहो मे कान्तिमान् वज धारे जिसने द्यौ और भूमि को कपित किया।।३।।

—वामदेव ४।२२

३२ अह **मनुरभव** **सूर्यश्चाह** **कक्षीवा** ऋषिरस्मि विप्र ।
अह **कुत्समार्जुनेयन्यृजे**' ह कविरुशना पश्यता मा ।।१।।
अह भूमिमददा**मार्यायाह** वृष्टि दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनय वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ।।२।।
अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती **शम्बरस्य**।
शततम वेश्य सर्वताता **दिवोदासमतिथिग्व** यदाव ।।३।।

—४।२६

३२ मै (इन्द्र) मनु हूँ, मै सूर्य हूँ, मै विप्र ऋषि **कक्षीवान्** हूँ। मैने अर्जुन-पुत्र **कुत्स** का समर्थन किया, मै **उशना** कवि हूँ, मुझे तुम देखो ।।१।।

मैने आर्य के लिए भूमि दी, मैने भक्त मर्द के लिए वृष्टि दी। शब्द करती आपो (नदियो) को मै लाया। देव लोग मेरी कल्पना का अनुगमन करते है।।२।।

मैने सोम से मस्त हो **शबर** की नौ-सहित नब्बे (६६) गढियो को ध्वस्त किया। जब युद्ध मे अतिथिग्व **दिवोदास** की रक्षा की, तो सौवी की (उसके) प्रवेश-योग्य बनाया।।३।। (८।६१)

—वामदेव ४।२६

३३ यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास ।
य सूर्य य उषस जजान य अपा नेता स जनास इन्द्र ।।७।।

३३ दिशाओ मे जिसके घोडे है, जिसकी गाये है, जिसके ग्राम, जिसके सारे रथ है। जिसने सूर्य को, जिसने उषा को पैदा किया, जो आपो (नदियो) का नेता है। हे लोगो, वह इन्द्र है ।।७।।

य **शम्बर** पर्वतेषु क्षियन्त **चत्वारिंश्या** शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अहि जघान दानु शयान स जनास इन्द्र ।।११।।

—६।१२

जिसने पर्वत मे रहते शबर को चालीसवीं शरद (वर्ष) मे जा घेरा। जिसने ओजायमान हो सोते दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है।।११।।

—गृत्समद, ६।१२

अत्यासो न ये मरुत स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या ।
ते हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिन पयोधा ।।१६।।

—७।५६

३४ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गाव सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्व वसु देवयते वनिष्ठ ।।१।।

३४ हे इन्द्र, जो कि हमारे स्तोता पितरो ने तुमसे ही सारे धन प्राप्त किये, तुमसे सुन्दर दुहाने वाली गाये, तुमसे अश्व प्राप्त किये। देवो के भक्तो के लिए अत्यन्त दाता तुम धन जीतते हो ।।१।।

राजेव हि जनिभि क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कवि सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायत शिशीहि राये अस्मान् ।।२।।

स्त्रियो के साथ जैसे राजा, वैसे तुम रहते हो। विद्वान् कवि हमे यश दो। गौवो और अश्वों द्वारा हे मघवन्, (हमारी) वाणी को मानो। अपने (भक्त) हमे धन प्रदान करो।।२।।

इमा उ त्वा पस्पृधानासोत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थु ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ।।३।।

हे इन्द्र, स्पर्धा करती हर्षप्रद, देवो की कामना करती ये हमारी स्तुतियाँ तुम्हारे पास जाती हे। तुम्हारा पथ धन के लिए हमारे पास आये, तुम्हारी सुमति मे हम शरण पावे ।।३।।

धेनु न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ ।
त्वामिन्मे गोपति विश्व आहा न इन्द्र सुमति गन्त्वच्छ ।।४।।

—७।१८

दुहने की इच्छा से धेनु को जैसे सुन्दर घास, वैसे ही वसिष्ठ ने तुम्हारे लिए मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति कहते है, इन्द्र हमारी सुमति (स्तुति) सुनने पास आये ।।४।।

—वसिष्ठ, ७।१८

३५ इन्द्राय गाव आशिर दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत् सीमुपह्वरे विदत् ।।६।।

३५ वज्रधारी इन्द्र के लिए गाये मीठा दूध (आशिर) दुहाती है। जब वह उन्हे पास पाये ।।६।।

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुर न धृष्ण्वर्चत।।८।।

हे प्रियमेधो, पूजा करो, खूब पूजा करो, पूजा करो, हे पुत्रवो, पूजा करो, दृढ पुर की तरह पूजा करो ।।८।।

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिंगा परि च निष्कददिन्द्राय ब्रह्मणोद्यत।।६।।

गर्गरा (घडा-बाजा) आवाज दे रहा है। इन्द्र के लिए ब्रह्म (मन्त्र) उद्घोष हुआ। गोधा (चर्मवाद्य) चारो ओर शब्द कर रहा है। पिगा (ततु-वाद्य) चारो ओर बज रही है ।।६।।

अर्भको न कुमारको'धि तिष्ठन्नव रथ।
स पक्षन्महिष मृग पित्रे मात्रे विभुक्रतु।।१५।।

शिशु कुमार की तरह नये रथ पर वह इन्द्र बैठा है । उसने पिता-माता के लिए बलिष्ट महिष मृग को पकाया ।। १५।।

आ तू सुशिप्र दम्पते रथ तिष्ठा हिरण्यय।
अध द्युक्ष सचेवहि सहस्रपादमरुष स्वस्तिगामनेहस ।।१६।।

—८।५८

हे सुशिप्र,[1] घरो के स्वामी इन्द्र, सुनहले रथ पर आकर बैठो। द्यौवाले, सहस्रपाद, लाल, स्वस्तिपूर्वक जानेवाले, निर्दोष रथ पर हम दोनो मिलेगे ।।१६।।

—प्रियमेध, ८।५८

३६ ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वण क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ।।३।।

३६ हे इन्द्र, स्तुति-योग्य तुम्हारे लिए अद्भुत ब्रह्म (स्तुतियॉं) बनाये जाते है । उन्हे हे सुनहले घोडेवाले, स्वीकार करो। इन स्तुतियो को सुनो, जिन्हे तुम्हारे लिए पढते हैं ।।३।।

त्व हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृजसे।
स त्व शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेर्वाच रयिमा कृधि ।।४।।

—८।७६

हे मघवन्, तुम सत्य हो, तुमने बिना नत हुए बहुत से शत्रुओ को हराया। हे बलिष्ट वज्रहस्त, सो तुम भक्त के पास धन करो।।४।।

—नृमेध, पुरमेध, ८।७६

३७ यजामह इन्द्र वज्रदक्षिण हरीणा रथ्य विव्रताना।
प्र श्मश्रु दोधुवदूद्ध्र्वथा भूद्वि सेनाभिद्रयमानो वि राधसा ।।१।।

३७ विविध गति कुशल घोडो के रथी दाहिने हाथ मे वज्र धारे इन्द्र की पूजा करते है। जो सोम पी मूँछ-दाढी को हिला कर सेनाओ के साथ सहार करते ऊपर उठा।।१।।

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचा इन्द्र श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षय सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वन ।।४।।

—१०।२३

वह यूथ (गायो) की तरह वृष्टि के साथ है। इन्द्र (सोम से) अपनी दाढी-मूँछ भिगोता है। छाने जाने सुन्दर स्थान पर पीकर वन को जैसे वायु वैसे (उसे) कॅपाता है ।।४।।

—विमद, १०।२३

३८ स्तोम त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्वय पुरुतम सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशु न गोपा करामहे ।।६।।

—१०।२३

३८ हे इन्द्र, सुदानी हमारे लिए विमदो ने अपूर्व अत्यन्त विस्तृत स्तुति बनाई। इस स्वामी के भोजन को हम जानते है, गोपाल जैसे पशु को वैसे जब हम बुलाते है ।।६।।

—विमद १०।२३

[1] शिरस्त्राण (ग्रिफिथ)।

३६ अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान् पिबसि त्वमेषा ।
पचन्ति ते वृषभा अत्सि तेषा पृक्षेण यन्मघवन् हूयमान ।।३।।

३६ हे इन्द्र, तुम्हारे लिए ऋत्विक् शीघ्र मस्त करने वाले सोमो को पत्थर से तैयार करते है, तुम उन्हे पीते हो । वह तुम्हारे लिए साडो (वृषभो) को पकाते है, हे मघवन्, भोजनार्थ पुकारे गये तुम उन्हे खाते हो ।।३।।

इद सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीप शाप नद्यो वहन्ति ।
लोपाश सिंह प्रत्यचमत्सा क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ।।४।।

हे स्तोता, मेरी यह (पहेली) बतलाओ—(इन्द्र की इच्छा होने पर) नदियाँ (अपनी) बाढ उलटी बहाये, लोमडी आते सिह को ले जाये, स्यार वराह को बन से भगा दे।।४।।

शश क्षुर प्रत्यच जगाराद्रि लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्त चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभ शूशुवान ।।६।।

इन्द्र की इच्छा होने पर खरगोश तीक्ष्ण विरोधी को निगल जाये, एक डले से दूर के पत्थर (पहाड) को मै तोड दूँ। छोटे के वस मे मै बडे को कर सकूँ, बछडा भी फूलकर वृषभ (सॉड) को खा जाये।।६।।

सुपर्ण इत्था नखमासिषायावरुद्ध परिषद न सिह ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथ कर्षदेतत् ।।१०।।

—१० ।२८

यहाँ सुपर्ण (गरूड) नख को छोड दे, जैसे कि पकडा सिह पिजरे को। प्यासा महिष पकडा जाये, चमडे की रस्सी उसके उलझे पैरो को पकडे रहे ।।१०।।

—वसुक्र, १० ।२८

४० सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्यो ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ।।३।।

४० सो जो बहुत आकर्षक, सुनहला, आयस ताम्रमय वज्र उसके हाथो मे है । वह द्युतिमान, सुशिप्र,[१] सहारक, क्रोधरूपी वाणवाले इन्द्र के लिए पीले रूपवाले सोम (सिक्त) करते है ।।३।।

हरिश्माशरुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता'पारिषद्धरी ।।८।।

—१० ।६६

जो सुनहले मूँछ-दाढी, सुनहले केशवाला, पत्थर से दृढ, जो अश्व स्वामी बढता है। अश्वधनिक, घोडो के स्वामी अपने द्रुतगामी घोडो को सारे कष्टो से पार कराता है ।।८।।

—वरु आगिरस, १० ।६६

[१] शिप्र—शिरस्त्राण (ग्रिफिथ)

६ ऋभु—

४१ आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत् **सोमस्य** सुषुतस्य **पीति** ।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया च एक विचक्र **चमस** चतुर्धा ।।२।।

कि मयस्विच्च**मस** एष आस य काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्व सक्न मदाय पात **ऋभवो** मधुन सोम्यस्य ।।४।।
यत्तृतीय **सवन** रत्नेधेयमकृणुध्व स्वपस्या सुहस्ता ।
तदृभव परिषिक्त व एतत् स मदेभिरिन्द्रियेभि पिबध्व ।।६।।

—४ ।३५

६ ऋभु—

४१ यहाँ (तृतीय सवन मे) ऋभुओ का रत्न-दान है। अच्छी तरह छाने सोम का पान हुआ। सुन्दर कर्म द्वारा और सुन्दर कौशल द्वारा जब एक चमस को चार किया।।२।।
किस चीज का यह चमस था, जिसे तुमने काव्य (कौशल) द्वारा चार किया? हे ऋत्विजो, मद के लिए फिर छानो, हे, ऋभुओ, तुम मधुर सोम को पियो ।।४।।

हे सुहस्त ऋभुओ, तृतीय सवन (सायकालीन सोमपान) मे जो तुम सुन्दर कौशल से अर्जित रत्न दान करते हो, तो मस्त इन्द्रियो से परिषिक्त (सोम) को पियो ।।६।।

—वामदेव ४ ।३५

४२ अनश्वो जातो अनभी**शुरुक्थ्यो** रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रज ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन **द्यामृभव** पृथिवीं यच्च पुष्यथ ।।११।।

—४ ।३६

४२ हे ऋभुओ, तुम्हारा काम स्तुत्य है। लोगो का अश्विद्वय को दिया त्रिचक्र रथ, बिना अश्व के, बिना लगाम के आकाश मे चारो ओर घूमता है। हे ऋभुओ, वह तुम्हारे दिव्यत्व का बडा ख्यापन है, जो कि तुम द्यौ और पृथिवी का पोषण करते हो।।१।।

—वामदेव, ४ ।३६

७ क (प्रजापति)—

४३ **हिरण्यगर्भ** समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा **कस्मै** देवाय हविषा विधेम ।।१।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवा ।।
यस्य छायामृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।२।।

७ क (देवता)—

४३ पहले हिरण्यगर्भ (सुनहले गर्भवाला) मौजूद था। (वह) उत्पन्न भूतो का एकमात्र पति था। उसने पृथिवी और इस द्यौ को धारण किया। उस क (देवता) के लिए हम हवि से (पूजा) करते है।।१।।

जो आत्मदायक, बलदायक है, जिसकी सभी उपासना करते है। देवगण जिसकी प्रशसा करते है। जिसकी छाया अमृत है, जिसकी (छाया-हीनता) मृत्यु, उस क (देवता) ।।२।।

य प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।३।।
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा, यस्य समुद्र रसया सहाहु ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।४।।
येन द्योरुग्रा पृथिवी च दृह्ळा येन स्व स्तभित येन नाक ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।५।।

प्रजापते न त्वदेतान्यान्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणा ।।१०।।

—१० ।१२१

जो साँस लेनेवाले, पलक मारने वाले जगत् का एकमात्र राजा अपने हुआ। जो इस दो पाये-चौपाये प्राणियो का स्वामी है, उस क (देवता) • ।।३।।

जिसकी महिमा से यह हिमवान्, पृथिवी सहित समुद्र जिसको बतलाते है, जिसकी ये दिशाये है, जिसकी (वह) बाहु है, उस क (देवता)• ।।४।।

जिसके द्वारा द्यौ उग्र है, और पृथिवी दृढ है। जिसने स्वर्ग को, जिसने नाक को थामा है। जिसने अन्तरिक्ष मे लोको को नापा, उस क (देवता)• ।।५।।

—हिरण्यगर्भ प्रजापति-पुत्र, १० ।१२१

८ पर्जन्य—

४४ पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीह्ळुषे। स नो यवसमिच्छतु ।।१।।

यो गर्भमोषधीना गवा कृणोत्यर्वता। पर्जन्य पुरुषीणा ।। २।।

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तम। इळा न सयत करत् ।।३।।

—७ ।१०२

८ पर्जन्य

४४ द्यौ के पुत्र सेचनकर्त्ता पर्जन्य का गान करो। वह हमारे भोजन को (देना) चाहे।।१।।
जो पर्जन्य ओषधियो मे, गायो मे, घोडियो मे, पुरुषियो (स्त्रियो) मे गर्भ (उत्पन्न) करता है ।।२।।
उसके मुख मे इस अत्यन्त मधुर हवि को हवन करो । वह हमारे लिए अन्न जमा करे ।।३।।

—वसिष्ठ, ७ ।१०२

६ पितरौ (द्यौ-पृथिवी)—

४५ वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरादधर्ष।
यज्जायमान पित्रोरुपस्थे'विन्द केतु बयुनेष्वह्ना।।५।।

—६ ।७

६ पितरद्वय (द्यौ, पृथिवी)

४५ हे वैश्वानर अग्नि, तुम्हारे उन महान् व्रतो (कर्मो) को कोई खराब नही कर सकता जब पितरद्वय (द्यौ-पृथिवी) की गोद से उत्पन्न हो (तुमने) दिनो के मार्ग मे प्रकाश (सूर्य) स्थापित किया ।।५।।

—भरद्वाज ६ ।७

१० पुरुष—

४६ सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् । स भूमि विश्वतो वृत्वा'त्यतिष्ठद्दशागुल।।१।।

पुरुष एवेद सर्व यद् भूत यच्चे भव्य । उतामृतत्वस्येशाना यदन्नेनातिरोहति।।२।।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। **वसन्तो** अस्यासीदाज्य **ग्रीष्म** इध्म **शरद्धवि** ।।६।।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत । गावो ह जज्ञिरे तस्मातस्माज्जाता अजा'वय ।।१०।।

ब्राह्मणो'स्य मुखमासीद् **बाहू राजन्य** कृत ।
उरू तदस्य यद् वैश्य पद्भ्या **शूद्रो** अजायत।।१२।।

—१० ।६०

१० पुरुष—

४६ (वह) पुरुष हजार सिरवाला, हजार ऑखो वाला, हजार पैरो वाला (है)। वह चारो ओर भूमि को ढॉककर दस अगुल आगे बढा अवस्थित है ।।१।।

यह जो कुछ भूत और भावी है, सब पुरुष ही है। (वह) अमृतत्व का स्वामी है, जो कि अन्न से अधिक बढता है ।।२।।

जब पुरुष रूपी हवि से देवो ने यज्ञ को पसारा, (तो) उसका घी बसन्त था, ईधन ग्रीष्म, हवि शरद थी ।।६।।

अश्व और जो कुछ भी मुख मे दोनो ओर दॉत वाले (प्राणी) हैं, वह उससे जनमे, गाये उससे जनमीं, उससे भेड-बकरिया जनमी ।।१०।।

इसका मुख ब्राह्मण हुआ, दोनो बाहो से राजन्य (क्षत्रिय) बना। उसकी दोनो जाघे जो सो वैश्य (है)। और दोनो पैरो से शूद्र जनमा।।१२।।

—नारायण, १० ।६०

११ पूषन्—

४७ वयमु त्वा पथस्पते रथ न वाजसातये । धिये **पूषन्नयुज्महि** ।।१।।
अदित्सन्त चिदाघृणे **पूषन्दानाय** चोदय। **पणेश्चिद्विम्रदा** मन ।।३।।

—६ ।५३

४८ **पूषन्विदुषा** नय यो अजसानुसासित। य एवेदमिति ब्रवत् ।।१।।

माकिर्नेशन् माकी रिषन् माकी सशारि केवटे। अथारिष्टाभिरागहि ।७।

परि पूषा परस्ताद्धस्त दधातु दक्षिण। पुनर्नो नष्टमाजतु ।।१०।।

—६ ।५४

११ पूषन्—

४७ हे मार्गों के पति पूषन, अन्न लाभ के लिए हमने तुम्हे रथ की तरह जोत दिया।।१।।
हे पूषन्, अ-दाता को दान के लिए प्रेरित करो, पणि के मन को कोमल करो।।३।।

—भरद्वाज, ६ ।५३

४८ हे पूषन्, हमे तुम ऐसे विद्वान् के पास ले चलो, जो हमारा ठीक अनुशासन करे, जो (हमसे) "यही है" कहे ।।१।।
(हमारे गौ-अश्व) नष्ट न हो, उन्हे कोई न मारे, कूये-गड्ढे मे न गिरे, तुम (उन्हे लिए) अरिष्टो (मगलो) के साथ आओ।।७।।

पूषन् दूर से दाहिने हाथ को पसारे, हमारा खोया पशु फिर आवे ।।१०।।

—भरद्वाज, ६ ।५४

४६ रथीतम कपर्द्दिनमीशान उराधसो मह। राय सखायमीमहे।।२।।

—६।५५

४६ (जो) महानतम रथी कपर्द (जूडा) -धारी महान् वैभव का स्वामी है, (उस) पूषन् सखा से हम धन मॉगते है ।।२।।

—भरद्वाज, ६।५५

५० य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषण। न तेन देव आदिशे ।।१।।

उत घा स रथीतम सख्या सत्पतिर्युजा।
इन्द्रो वृत्राणिजिघ्नते।।२।।
उताद. परुषे गवि सूरश्चक्र हिरण्यय। न्यैरयद्रथीतम ।।३।।

—६।५६

५० जो इस पूषन् को "करभ (सत्तू) भक्षी" कह स्तुति करता है, उसे (दूसरे) देवता की स्तुति नही करनी पडती ।।१।।

(वह) महानतम रथी सत्पति है। इन्द्र अपने सखा (पूषन्) के साथ मिलकर शत्रुओ को मारता है ।।२।।

महानतम रथी पूषा सूर्य के रथ के सुनहले चक्के को इस मेघ मे चलाता है।

—भरद्वाज, ६।५६

५१ सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वो सुत। करम्भमन्य इच्छति ।।५।।

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता। ताभ्या वृत्राणि जिघ्नते।।३।।

—६।५७

५१ (हे इन्द्र--पूषन्, तुममे से) एक (इद्र) दो चमुओ मे छाने सोम को पीने जाता है, दूसरा पूषन् करभ (सत्तू) चाहता है ।।२।।
एक (पूषन्) के वाहन छाग है, दूसरे (इन्द्र) को ले जाने वाले दो घोडे । उनके द्वारा शत्रुओ को मारते है ।।३।।

—भरद्वाज, ६।५७

५२ अजाश्व पशुपा वाजपास्त्यो धिय जिन्वो भुवने विश्वे अर्पित।
अष्टा पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सचक्षाणो भुवना देव ईयते ।।२।।

५२ जो अजवाहन, पशुपालक, शक्तियुक्त भवनवाला, स्तुति--प्रेरक, सारे भुवन मे व्याप्त है। वह पूषन् देव सारे भुवन को प्रकाशित करते हाथ मे तीक्ष्ण आरा धारे जाता है ।।२।।

यास्ते पूषन्नावो अन्त समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमान ।।३।।

हे पूषन्, समुद्र के मध्य मे अन्तरिक्ष मे जो तुम्हारी सोने की नौकाये चलती है, उनके साथ तुम सूर्य की दूतता के लिए प्रेमवश, श्रव (यश, धन) की इच्छा से जाते हो।।३।।

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चा ।
य देवासो अददु सूर्यायै कामेन कृत तवस स्वच ।।४।।

—६।५८

पूषन् द्यौ और पृथिवी का सु-बन्धु अन्नपति, मघ (धन) वान्, दर्शनीय तेजवाला है। जिस सुगामी, शक्तिशाली प्रेमपरवश को देवो ने सूर्या के लिए प्रदान किया ।।४।।

—भरद्वाज, ६।५८

१२ प्रजापित—

५३ 'नाशदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीव कुह कस्य शर्मन्नम्भ किमासीद् गहन गभीर ।।१।।

न मृत्युरासीदमृत न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेत ।
आनीदवात स्वधया तदेक तस्याद्धान्यद्ध पर किचनास ।।२।।

तम आसीत्तमसा गूह्ळमग्रे प्रकेत सलिल सर्वमा इद ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहित यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैक ।।३।।

कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसो रेत प्रथम यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।।४।।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामध सिवदासीदुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात् प्रयति परस्तात् ।।५।।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इय **विसृष्टि** ।
अर्वाग्देवा अस्य विसजर्नेनाथा को वेद यत आबभूव ।।६।।

इय विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद ।।७।।

—१० ।१२६

१२ प्रजापति—

५३ उस समय न असत् था न सत् था, न रज (लोक) था, न जो व्योम से परे है (वह था)। क्या आवरण था? कहाँ किसका शरण था? जल कैसा गहन-गम्भीर था।।१।।

उस समय न मृत्यु थी, न अमरता, न रात-दिन का भेद था । बिना वायु का वह अकेला अपनी प्रकृति से साँस ले रहा था उससे दूसरा कुछ भी नही था ।।२।।

तम था, पूर्वकाल मे तम से ढँका यह सब अज्ञात सलिल था। जब छूछे से सब ढँका हुआ था, तपस्या की महिमा द्वारा वह एक उत्पन्न हुआ ।।३।।

तब पहले काम (कामना) मौजूद था, जो कि मन मे प्रथम रेत (वीर्य) था । कवियो ने बुद्धि द्वारा हृदय मे विचार करके असत् मे उस सत् को प्राप्त किया ।।४।।

इनकी किरण तिरछी फैली नीचे थी या ऊपर थी । वीर्यधारक थे, महिमाये थी, यहाँ स्वधाये (स्वतन्त्र क्रियाये) थी, परे प्रयति शक्ति थी ।।५।।

ठीक कौन जानता है । कौन यहाँ उसको कहे ? कहाँ से पैदा हुई, कहाँ से यह सृष्टि आई ? देवलोक इसके सृजन के पीछे पैदा हुए। कौन जानता है, जहाँ से वह आई ।।६।।

यह सृष्टि जहाँ से आई (किसने) बनाया या (किसने) नही बनाया । जो इसका अध्यक्ष परम व्योम मे है, सो हे दोस्त, 'जानता है अथवा नही जानता ।।७।।

—प्रजापति, १० ।१२६

५४ यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशत देवकर्मेभिरायत ।
इमे वयन्ति पितरो य आयुय प्र वया'प वयेत्यासते तते ।।१।।

५४ जो यज्ञ तन्तुओ से चारो ओर ताना, एक सौ देवकर्मो द्वारा लम्बा बना। उसे, जो यह पितर आये है, वह बुनते है। लम्बा बुनो, चौडा बुनो, यह कहते तने (वस्त्र) पर लगे है ।।१।।

कासीत् प्रमा प्रतिमा कि निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत् ।
छन्द. किमासीत् प्रउग किमुक्थ यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ।।३।।

जब सारे देवो ने देव (प्रजापति) का यजन किया, तब यज्ञ का नाप (प्रतिकृति) क्या थी, निदान (सकल्प) क्या था, घी क्या था, परिधि (पलाश आदि का माप) क्या था, छन्द क्या था, प्रउग और उक्थ (स्तोत्र) क्या था ।।३।।

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थर्महस्वान् बृहस्पतेबृहती वाचमावत् ।।४।।

अग्नि की जोडीदार गायत्री हुई, उष्णिक्के साथ सविता सम्मिलित हुआ । अनुष्टुव् से सोम, उक्थो से तेजस्वी बृहस्पति की वाणी की बृहती ने सहायता की ।।४।।

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्न ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्या ।।५।।

विराट् मित्र-वरुण की आश्रित हुई, दिन को इन्द्र का भाग यहॉ त्रिष्टुब् हुआ।, सारे देवताओ को जगती व्याप्त हुई, इस प्रकार, ऋषियो और मनुष्यो ने यज्ञ किया।।५।।

सहस्तोमा सह छन्दस आवृत सहप्रमा ऋषय सप्त दैव्या ।
पूर्वेषा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ।।७।।
—१० ।१३०

स्तोम, छन्द, माप के साथ घिरे सात दिव्य ऋषि थे। जैसे सारथी लगाम को वैस धीरो ने पूर्वजो के पथ को देखकर पकडा।।७।।
—यज्ञ प्रजापति–पुत्र, १० ।१३०

१३ मन्यु—

१३ मन्यु (क्रोध)—

५५ यस्ते मन्यो विधद्वज्रसायक सह ओज पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्य त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा.सहस्वता ।।१।।

५५ हे वज्र, वाण, मन्यु, जिसने तुम्हे पूजा, वह सर्व-विजयी ओज का पोषण करता है। साहसकारी बल-युक्त बल (-रूप) तुम्हारे साथ मिलकर हम दास और आर्य को पराजित करेगे ।।१।।

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो **मन्युर्होता** वरुणो जातवेदा ।
मन्यु **विश** ईळते मानुषोर्या पाहि नो मन्यो तपसा सजोषा ।।२।।

मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु होता, वरुण, अग्नि है।[1] मानुषी प्रजाये मन्यु की स्तुति करती है । हे मन्यु, तप से युक्त हो तुम हमारी रक्षा करो ।।२।।

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा **दस्युहा** च विश्वा वसून्या भरा त्व न ।।३।।
—१० ।८३

हे बलवानो मे अत्यन्त बलवान् मन्यु तप के साथ आओ, और शत्रुओ को मारो। अमित्रहन्ता, वृत्र–हन्ता और दस्यु–हन्ता तुम हमारे लिए सारे धनो को लाओ।।३।।
—मन्यु तपस्-पुत्र, १० ।८३

५६ त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्व ।
तिग्मेषव आयुधा सशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपा ।।१।।

५६ हे मन्यु, तुम पर आरूढ हो प्रहार करते, हर्षित होते, धर्षण करते मरुतवाले, तीक्ष्ण वाणवाले, आयुधो को तेज करते, अग्निरूप नेता आक्रमण करने के लिए जाये ।।१।।

अग्निरिव मन्यो त्विषित सहस्व **सेनानीर्न** सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ।।२।।
—१० ।८४

हे मन्यु, अग्नि की तरह दीप्तिमान् हो, युद्ध मे पुकारे जाकर, हमारे सेनानी हो, बढो । शत्रुओ को मारकर धन को बॉटो, ओज को बढाते दुश्मनो को दबाओ।।२।।
—मन्यु तपस्-पुत्र, १० ।८४

१४ मित्र—

५७ **मित्रो** जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार **पृथिवीमुत द्या।**
मित्र कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्य घृतवज्जुहोत ।।१।।

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् अस्त आदित्य **शिक्षति** व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ।।२।।

महा आदित्यो नमसोपसद्यो यात यज्जनो गृणते सुशेव ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ।।५।।

५७ मित्र बोलता हुआ लोको को प्रेरित करता है, मित्र ने पृथिवी और द्यौ को धारण किया, मित्र आदमियो को अनिमिष दृष्टि से देखता है, मित्र के लिए घृत–युक्त हवि हवन करो ।।१।।

हे मित्र आदित्य, जो व्रत (यज्ञ) द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह मनुष्य सर्व प्रथम होवे। तुम्हारे द्वारा रक्षित आदमी न मारा जाता है, न जीता जाता है, न उसे नजदीक या दूर से सकट खाता।।२।।

महान् आदित्य नमस्कार से सेवनीय है। जन-प्रेरक वह स्तुतिकर्ता पर कृपालु है। उस अत्यन्त स्तुत्य मित्र के लिए इस प्रिय हवि को आग मे हवन करो ।।५।।

---

१ पुरोहित

मित्राय पच येमिरे जना अभिष्टिशवसे।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ।।८।।

—३।५६

बहुत बली मित्र के लिये पाँचो जन नियम करते है, वह सारे देशो का पालन करता है ।।८।।

—विश्वामित्र, ३।५६

१५ यम—

देखो १५।७८, ७६

१५ यम—

देखो यही (१५।७८, ७६)

१६ रुद्र—

५८ इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर क्षिप्रेषवे देवाय स्वधान्वे।
अषाह्ळाय सहमानाय वेध से तिग्मायुधाय भरता शृणोतु न ।।१।।
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरित परि सा वृणक्तु न ।।
सहस्रन्ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिष ।।३।।

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशसे यूय पात स्वस्तिथ्भ सदा न ।।४।।

—७।४६

१६ रुद्र—

५८ हे भरतो, स्थिरधनुष, क्षिप-वाण स्वधा-युक्त, अजेय, जेता, विधाता, तीक्ष्ण-आयुध रुद्र के लिए यह हमारी स्तुतियाँ है, इन्हे सुनो ।।१।।

हे रुद्र, द्यौ के ऊपर से छोडी जो तुम्हारी बिजली पृथ्वी पर विचरण करती है, वह हमे छोड दे। हे स्वपिवात (कृपामय), तुम्हारी हजारो औषधियाँ हे। हमारे पुत्र-पौत्रो को हानि न पहुँचाओ ।।३।।
हे रुद्र, हमे न मारो, न दूर करो। क्रुद्ध हुये तुम्हारे बन्धन मे हम न होवे । हमारे प्राणि-हितकर यज्ञ मे आओ। तुम हमेशा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो ।।४।।

—वसिष्ठ ७।४६

५६ इमा रुद्राय तवसे कपर्द्रिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मती ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्व पुष्ट ग्रामे अस्मिन्नातुर ।।१।।

त्वेष वय रुद्र यज्ञसाध वकु कविमव से निवयामहे।
आरे अस्मद् दैव्य हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे।।४।।

दिवो वराहमरुष कपर्दिन त्वेष रूप नमसा नि हवयामहे।
हस्ते विभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्य यसत् ।।५।।

—१।११४

५६ शक्तिशाली, जुडाधरी, वीर पति रुद्र के लिए हम यह स्तुतियाँ लाते है, जिसमे कि इस ग्राम मे दो-पायो-चौपायो का कल्याण हो, सभी पुष्ट और निरोग हो।।१।।

हम दीप्तिमान्, यज्ञसाधक, वक्र कवि रुद्र को पुकारते है। वह (अपने) दिव्य क्रोध को हमसे दूर फेके। हम उसकी सुमति (कृपा) की प्रार्थना करते है ।।४।।

हम द्यौ के लाल वराह कपर्दधारी दीप्तिमान् रूप (रुद्र) को पुकारते है। हाथ मे श्रेष्ठ औषधियो को धारण किये वह हमे सुख, रक्षा, गृह प्रदान करे ।।५।।

—कुत्स आगिरस, १।११४

१७ वरुण—

६० आचष्ट आसा पाथो **नदीना** वरुण उग्र सहस्रचक्षा ।।१०।।

राजा **राष्ट्राणा** पेशो नदीनामनुत्तमस्मै **क्षत्र** विश्वायु ।।११।।

—७।३४

६१ ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी **वरुणानी** शृणोतु ।
वरुत्रीभि सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो विदधातु राय ।।२२।।

—७।३४

६२ यदद्य सूर्य ब्रवो नागा उद्यन्मित्रय वरुणाय सत्य ।
वय देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो **अर्यमन्** गृणन्त ।।१।।

—७।६०

६३ धीरा त्वस्य महिना जनूषि वि यस्तस्तम्भ **रोदसी** चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्व नुनुदे बृहन्मत द्विता **नक्षत्र** पप्रथच्च भूम ।।१।।

पृच्छे तदेनो **वरुण** दिदृक्षुपो एमि चिकितुषो विपृच्छ ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरय तुभ्य **वरुणो** हृणीते ।।३।।

किमाग आस **वरुण** ज्येष्ठ यत् स्तोतार जिघाससि सखाय ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोव त्वानेना नमसा तुर इया ।।४।।

१७ वरुण—

६० सहस्र-नेत्र, उग्र वरुण इन नदियो के पाथ को जानता है ।।१०।।

वह राष्ट्रो के राजा नदियो का गौरव है, उसका क्षत्र (राज्य) विश्वव्यापी और अनुपम है ।।११।।

—वसिष्ठ, ७।३४

६१ वे दान-निपुण (देवपत्नियॉ) हमे धन दे। द्यौ-पृथिवी, वरुणानी हमारी प्रार्थना सुने। सुदानी, सुशरण, त्वष्टा रक्षिका देवियो के साथ हमारे लिए धन प्रदान करे ।।२२।।

—वसिष्ठ, ७।३४

६२ हे सूर्य, जो कि उगते हुए (हमे) पाप-रहित करो, मित्र-वरुण को सत्य कहो। हे अदिति, हम देवो के प्रिय हो। हे अर्यमा, स्तुति करते हम (तुम्हारे) प्रिय हो ।।१।।

—वसिष्ठ, ७।६०

६३ इस (वरुण) की महिमा से लोग धीमान् होवे, जिसने विशाल द्यौ-पृथिवी को थामा, जिसने दोनो उच्च नाक (स्वर्ग) और वृहत् नक्षत्र को प्रेरित किया, और भूमि को विस्तृत किया ।।१।।

हे वरुण, देखने की इच्छा से मै (अपने) उस पाप के बारे मे तुमसे पूछता हूँ। पूछते हुए मै विद्वानो के पास जाकर पूछता हूँ। कवियो ने एक सी ही (बात) मुझे कही, "यह वरुण तुम पर क्रुद्ध है"।।३।।

हे वरुण, मेरा कौन सा पाप है, जो कि तुम अपने ज्येष्ठ सखा स्तोता को मारना चाहते हो। हे दुर्धर्ष शक्तिशाली, उसे मुझे बतलाओ, (कि) मै इस नमस्कार के साथ तुरन्त तुम्हारे पास आऊँ ।।४।।

अर दासो न मीह्ळुषे कराण्यह देवाय भूर्णये नागा ।
अचेतयदिचितो देवो अर्यो गृत्स राये कवितरो जुनाति ।।७।।

—७।८६

निष्पाप हो दास की तरह सेचक वरुण देव की सेवा कर लो। हम अज्ञाननियो को स्वामी (वरुण) देव चेताये, अत्यन्त कवि वरुण स्तुतिकर्ता को धन दिलवाये।।७।।

—वसिष्ठ ७।८६

६४ अयमु वा पुरुतमो रयीयन् छेश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोपाविन्द्रावरुणा मरुद्भिद्रिवा पृथिव्या श्रृणुत हव मे ।।२।।
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमृक्षत।
मध्वा रजासि सुक्रतू ।।१६।।

—३।६२

६४ हे इन्द्र-वरुण, धन-इच्छुक यह महान् (यजमान) तुम दोनो को रक्षा के लिए सदा पुकारता है मरुतो, द्यौ-पृथिवी के साथ मेरी पुकार (स्तुति) सुनो ।।२।।

सुकर्मा मित्र-वरुण, हमारे गोठो को घृत से पूर्ण करे, हमारे आवासो को मधु से (पूर्ण करे) ।।१६।।

—विश्वामित्र, ३।६२

६५ (देखो ६१)—

१८ वायु—

६६ वायवायाहि दर्शते मे सोभा अरङ्कृता।
तेषा पाहि श्रुधी हव ।।१।।
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितार।
सुतसोमा अहर्विद ।।२।।

—१।२

१८ वायु—

६६ हे दर्शनीय वायु यह सोम सजाये हे, उन्हे पियो और पुकार सुनो ।।१।।

हे वायु, सोम छाने दिन-ज्ञ स्तोता उक्थो (गानो) द्वारा तुम्हारी खूब स्तुति करते है।।२।।

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र १।२

१९ वास्तोष्पति—

६७ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि न ।।१।।
यदर्जुन सारमेय दत पिशग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ।।२।।

—७।।५५

१९ वास्तुपति (गृहो का अधिष्ठाता देवता)—

६७ हे वास्तुपति, तुम रोगनाशक हो, सारे रूपो को धारे हमारे सखा और सुखकारी बनो।।१।।

हे श्वेत पिगल, सरमा-पुत्र, जब तुम दॉत दिखलाते हो, उस समय (वह) ओष्ठ के पास ऋष्टियो (छुरो) की तरह निकले शोभा देते है । तुम सो जाओ ।।२।।

—वसिष्ट ७।५५

२० विश्वकर्मा—

६८ य इमा विश्वा भुवनानि जुहवदृषिर्होता न्यसीदत् पिता न ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमान प्रथमच्छदवरा आ विवेश ।।१।।

२० विश्वकर्मा—

६८ जो इस सारे भुवनो को हवन करता होता ऋषि हमारा पिता (विश्वकर्मा) बेठा है। वह आशीर्वाद द्वारा धन की इच्छा करते प्रथम भक्तो मे प्रविष्ट हुआ ।।१।।

कि स्विदासीदधिष्ठान मारम्भण कतमत् स्वित् कथासीत् ।
यतो भूमि जनयन् **विश्वकर्मा** वि द्याणोर्णोन्महिना घिश्वचक्षा ।।२।।

उस समय कौन सा अधिष्ठान था ? कौन सा आलम्ब और कैसे था, जिससे कि विश्वदर्शी विश्वकर्मा ने भूमि को उत्पन्न कर अपनी महिमा से द्यौ को खोला।।२।।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
स बाहुभ्या धमति स पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक ।।३।।

सब ओर चक्षु, सब ओर मुख, सब ओर बाहु, और सब ओर पैरवाला वह अकेला देव, द्यौ-भूमि को उत्पन्न करके दोनो बाहु रूपी पखो से धौकता है ।।३।।

कि स्विद्वन क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षु ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदुतद्यध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ।।४।।

—१० ।८१

कौन सा वन और कौन सा वह वृक्ष था, जिससे (उसने) द्यौ-पृथिवी को गढा। हे मनीषियो, (अपने) मन से यह पूछो, भुवनों को धारण करते जिस पर वह खडा रहा।।४।।

—विश्वकर्मा भुवन-पुत्र, १० ।८१

२१ विष्णु—

६६ त्रिर्देव पृथिवीमेष एता **विचक्रमे** शतर्चस महित्वा ।
प्र **विष्णुरस्तु** तवसस्तवीयान्त्वेष ह्यस्य **स्थविरस्य** नाम।।३।।

विचक्रमे पृथिवीमेष एता क्षेत्राय **विष्णुर्मनुषे** दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षिति सुजनिमा चकार ।।४।।

—७ ।१००

२१ विष्णु—

६६ सौ तेजो से युक्त इस (विष्णु देव) ने अपनी महिमा से पृथिवी का चक्रमण किया। विष्णु बलियो मे अत्यन्त बलवान् होवे, इस स्थायी का नाम दीप्तिमान् हो।।३।।

इस विष्णु ने मनु को क्षेत्र देने की इच्छा से इस पृथिवी का चक्रमण किया । इसके स्तोता जन अचल होते है। (इसने) विस्तृत क्षिति को सुन्दर जनो-युक्त बनाया।।४।।

—वसिष्ठ, ७ ।१००

२२ सरस्वती—

७० प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा **सरस्वती** धरुणमायसी पू ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरत्या ।।१।।

२२. सरस्वती—

७० आयसी (पत्थरवाली) पुरी की तरह यह धारा-धारिणी **सरस्वती** जल के साथ बहती है। यह सिन्धु रथी की तरह (दूसरी) सभी नदियो को अपनी महिमा से बाधित करती जाती है ।।१।।

एका चेतत् सरस्वती नदीना शुचिर्यती गिरिभ्य आसमुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृत पयोदुदुहे नाहुषाय ।।२।।

गिरियो से समुद्र तक जाती नदियो मे शुचि यह सरस्वती अद्वितीय है । भुवन के भूरि-भूरि धन को चेताती मनुष्यो के लिए घृत और दूध दुहाती है ।।२।।

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारा वृतस्य सुभगे व्याव ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ।।६।।

हे सरस्वती, सुभगे, यह वसिष्ठ तुम्हारे लिए ढॅके द्वार को खोलता है। हे शुभ्रे, बढो और स्तुति करने वाले को अन्न प्रदान करो, तुम सदा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो।।६।।

—वसिष्ठ, ७।९५

७१ वृहदु गायिषे वचोसुर्या नदीना ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभि स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ।।१।।

७१ नदियो मे शक्तिशालिनी सरस्वती के लिए वृहद् वाणी (गीत) गाता है। वसिष्ठ, द्यौ–पृथिवी तक सुरचित स्तोमो (गानो) द्वारा सरस्वती की ही पूजा करो ।।१।।

उभे यत्ते महिमा शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरव ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोना ।।२।।

—७।९६

हे शुभ्रे, तेरी महिमा है, जो कि पुरु लोग दोनो तटो पर बसते है । सो तुम रक्षिका हमे बोध दो। मरुतो की सखी होकर धनवान के धन को भेजो ।।२।।

—वसिष्ठ, ७।९६

७२ आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ।।८।।

—३।४

७२ भारतीयो के साथ भारती, देवो के साथ इळा (अन्न), मनुष्यो के साथ अग्नि, सारस्वतो (सरस्वती-तीर के देवो) के साथ सरस्वती-तीनो देवियॉ (हमारे) सामने इस कुश पर बैठे ।।८।।

—विश्वामित्र, ३।४

७३ नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना ।
दृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्या रेवदग्ने दिदीहि ।।४।।

—३।२३

७३ हे अग्नि, दिनो के सुदिन के लिए पृथिवी के उत्तम अन्न-स्थान मे मै तुम्हे स्थापित करता हूँ। तुम दृषद्वती (घग्घर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियो के लिए धन-युक्त दीप्तिमान् होओ।।४।। (१।६)

—देवश्रवा-देववात भारत, ३।२३

७४ इयमदादद्रभसमृणच्युत **दिवोदास** वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावस **पणिं** तो ते दात्राणि तविषा **सरस्वति** ।।१।।

७४ इस (सरस्वती) ने मुझ **वध्र्यश्व को** ऋणमोचक भयकर दिवोदास (पुत्र) प्रदान किया। जिस (तू) ने दानहीन पणि को बराबर खाया, हे सरस्वती, तेरे वे दान बलिष्ठ है ।।१।। (६।५)

इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणा तविषेभिरूर्मिभि ।।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि **सरस्वतीमा** विवासेम धीतिभि ।।२।।

यह सरस्वती भिस खोदनेवाले की तरह अपने बलो, बेगवती तरगो द्वारा गिरियो के पाद-भाग को भग्न करती है । रक्षा के लिए तटो को ध्वस्त करने वाली सरस्वती को हम स्तुतियो और गीतो द्वारा बुलाये।।२।।

उत न प्रिया प्रियासु **सप्तस्वसा** सुजुष्टा। **सरस्वती स्तोम्या** भूत्।।१०।।

और प्रियाओ मे प्रिया सात बहिनो वाली सुप्रसन्ना **सरस्वती** हमारी स्तुति-योग्य हो।।१०।। (५।८)

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा प स्फरी पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यारणानि गन्म ।।१४।।

—६।६१

हे सरस्वती, हमे धन के लिए ले जाओ, हमे न अपने जल से वचित करो, न हमे दूर करो। हमारी मित्रता और भक्ति स्वीकार करो । हम तुमसे दूर क्षेत्र अरण्य मे न जावे ।।१४।। (५।६)

—भरद्वाज, ६।६१

२३ सविता—

२३ सविता—

७५ तत् सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात् ।।१०।।

—३।६२

७५ सवितादेव के उस अतिश्रेष्ठ तेज को हम पावे, जो (सविता) हमारी बुद्धियो को प्रेरित करे ।।१०।।

—विश्वामित्र, ३।६२

७६ उदुष्य देव **सविता** हिरण्यया बाहू अयस्त सवनाय सुक्रतु ।
घृतेन पाणी अभिप्रष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ।।१।।

७६ वह सुकर्मा सवितादेव (जीवन) देने के लिए अपनी सुनहली बाहो को ऊपर उठाता है। महान् युवा, सुदक्ष सविता लोको की रक्षा के लिए घृत (जल) से युक्त (अपने) हाथो को चुपडता है ।।१।।

अदब्धेभि सवित पायुभिष्ट्व शिवेभिरद्य परि पाहि नो गय ।
हिरण्यजिह्व सुविताय नव्य से रक्षा माकिर्नो अघशस ईशत ।।३।।

हे सविता, हिसा–रहित कल्याणकारी रक्षाओ द्वारा आज हमारे गये (निवास) की चारो ओर से रक्षा करो। तुम हिरण्यजिह्व हो। नवीन सुख के लिए रक्षा करो, हमारे ऊपर बुराई चाहने वाला शासन न करे।।३।।

उदु ष्य देव सविता दमूना हिरण्यपाणि प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वाम ।।४।।

और यशस्वी, गृह-सखा, लोहे के जबडे वाले, सुवर्णपाणि, वह सविता देव प्रदोष मे उठे, और वह मनोहर वचन वाला भक्त यजमान के लिए बहुत सा धन पठाये।।४।।

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्य सावी ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाज स्याम ।।६।।

—६ ।७१

हे सविता, आज हमे धन, कल धन, दिन-दिन धन प्रदान करो। हे देव, तुम बहुत धन, गृह के स्वामी हो। इस स्तुति द्वारा हम धन के भागी हो।।६।।

—भरद्वाज, ६ ।७१

२४ सोम—

२४ सोम—

७७ स्वादुष्किलाय मधुमा उताय तीव्र किलाय रसवा उताय ।
उतो न्वस्य पपिवासमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ।।१।।

७७ यह सोम स्वादु है, और मधुर है, यह तीव्र भी, और रसवान् है। इसे पी लिए इन्द्र को युद्ध मे कोई दबा नही सकता ।।१।।

अय स्वादुरिह **मदिष्ठ** आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्योत्ना **शम्बरस्य** वि नवति नव च **देह्यो** हन् ।।२।।

यहाँ यह स्वादु है, अत्यन्त मदयुक्त है, जिससे इन्द्र वृत्र-युद्ध मे मस्त हुआ। जिसने शबर के बहुतेरे (सैनिको) को हराया, निन्नानबे पुरियो (देहियो) को नष्ट किया ।।२।।

अय स यो वरिमाण पृथिव्या वर्ष्माण दिवो अकृणोदय स ।
अय **पीयूष** तिसृषु प्रवत्सु **सोमो** दाधारोर्वन्तरिक्ष ।।४।।

—६ ।४७

यह वह है, जो पृथिवी की वरिमा, है। (जिसने) द्यौ की ऊँचाई को बनाया, यह वह है। तीनो वहतियो मे यह पीयूष (जल) है। सोम ने विस्तृत अन्तरिक्ष को धारण किया है ।।४।।

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६ ।४७

३ अन्य पूज्य

१ पितर—

७८ यमो नो गातु प्रधमो विवेद नैषा गव्यतिरपभर्तवा उ।
यत्रा न **पूर्वे पितर** परेयुरेना जज्ञाना पथ्या अनु स्वा ।।२।।

सबमे प्रथम यमने हमारे मार्ग को जाना। यह चरागाह (हमसे) नही छीनी जा सकती। जहॉ हमारे पूर्वज पितर गये, वहॉ (जगमे) उत्पन्न (जन) अपने मार्ग से जायेगे।।२।।

मातली कव्यैर्यमो अगिरोभिर्बृहस्पति–र्ऋक्वभिर्वावृधान।
याश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ।।३।।

कव्य (पितरो की हवि) के साथ मातली, अगिरो के साथ यम, ऋक्वो के साथ बृहस्पति बढे— जिन्हे देवो ने बढाया, और जिन्होने देवो को। कोई (देवता) स्वाहा से, कोई (पितर) स्वधा से प्रसन्न होते है।।३।।

इम **यम** प्रस्तरमा हि सीदा गिरोभि **पितृभि** सविदान।
आ त्वा मन्त्रा कविशस्ता बहन्त्वेना **राजन्** हविषा मादयस्व ।।४।।

अगिरा पितरो के साथ हे यम, इस प्रस्तर पर आकर बैठो। कवियो द्वारा प्रशस्त मत्र तुम्हे लाये। हे राजन्, इस हवि से तुम खुश होओ ।।४।।

प्रेहि प्रेहि पथिभि पूर्व्येभिर्यत्रा न पूर्वे **पितर** परेयु ।
उभा **राजाना** स्वधया मदन्ता यम पश्यासि **वरुण च** देव ।।७।।

(उन) पूर्ववाले पथो से (वहॉ) जाओ, जहॉ हमारे पूर्वज पितर गये, स्वधा से यम और वरुण दोनो राजाओ को आनन्दित देखोगे।।७।।

यौ ते **श्वानौ** यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेन परि देहि **राजन्त्स्वस्ति** चास्मा अनमीव च धेहि ।।११।।

हे यम, रक्षक, मार्गरक्षी मनुष्यो की देखभाल करने वाले, चार ऑखो वाले जो तुम्हारे दोनो श्वान (कुत्ते) है, हे राजन्, इसे उनकी रक्षा मे दो, इसे स्वस्ति और, निरोग करो ।।११।।

उरुणसावसुतृपा उदुम्बलौ **यमस्य दूतौ** चरतो जना अनु ।
तावस्मभ्य दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्र ।।१२।।

विस्तृत नाकवाले, प्राणभोजी, काले, दोनो यम-दूत जनो के पीछे-पीछे चलते है। वे सूर्य के दर्शन के लिए यहॉ हमे भद्र प्राण प्रदान करे ।।१२।।

मायय सोम सुनुल यमाय जुहुता हवि।
यम ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृत ।।१३।।

यम के लिए सोम छानों, यम के लिए हवि हवन करो, अग्नि-दूतवाला अलकृत यज्ञ यम के पास जाता है ।।१३।।

यमाय मधुमत्तम राज्ञे हव्य जुहोतन।

इद नम ऋषिभ्य पूर्वजेभ्य पूर्वेभ्य पथिकृद्भ्य ।।१५।।

—१० ।१४

राजा यम के लिए अत्यन्त मधुर हवि का हवन करो। पूर्वज ऋषियों के लिए, पूर्व के मार्ग कर्त्ताओ के लिए यह नमस्कार है।।१५।।

—यम वैवस्वत, १० ।१४

७६ उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमा पितर सोम्यास ।

असु य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नो वन्तु पितरो हवेषु ।।१।।

७६ निचले, उपरले और बीचवाले सोमपायी पितर ऊपर चढे। जो अकुटिल ऋतज्ञ (सत्यज्ञाता) पितर (परलोक मे) प्राण को प्राप्त हुए, वे पुकारने पर हमारी रक्षा करे।।१।।

इद पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयु ।

ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नून सुवृजनासु विक्षु।।२।।

आज यह पितरो के लिए नमस्कार है, जो कि पहले या पीछे मरे, जो पार्थिव लोको में या जो वहीं प्रजाओ के बीच में बैठे हैं।।२।।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयि धत्त दाशुषे मर्त्याय।

पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्व प्रयच्छत त इहोर्ज दधात।।७।।

लाल (किरणो) के पास बैठे तुम भक्त पुरुष को धन प्रदान करो।

हे पितरो, उसके पुत्रो को धन प्रदान करो, वे यहाँ शक्ति प्रदान करे।।७।।

ये न पूर्वे पितर सोम्यासो नूहिरे सोमपीथ वसिष्ठा.।

तेभिर्यम सरराणो हवींष्युशन्नुशद्‌भि प्रतिकाममत्तु।।८।।

जो हमारे पूर्व के सोमपायी वसिष्ठ (श्रेष्ठ) पितर सोम-पान में बुलाये गये। उनके साथ खुश हो यम भी रुचि से हवि को यथेच्छ भोजन करें।।८।।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिव स्वधया मादयन्ते।

तेभि स्वराळसुनीतिमेता यथावश तन्व कल्पयस्व।।१४।।

—१० ।१५

जो अग्नि मे जले, जो अग्नि मे न जले[१] (हमारे) पितर द्यौ मे स्वधा से प्रसन्न हैं। उनको हे स्वराज् (स्वय प्रकाशित अग्नि) यथाशक्ति प्राणवाला शरीर प्रदान करो।।१४।।

—शख यम पुत्र १० ।१५

१ [illegible]

४ सकाम कर्म

८० आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा **श्रवोभिश्च** श्रवस्यस्तरुत्र । बृहद्भिर्वाजै **स्थविरेभिरस्मे** रेवद्भिरग्ने वितर वि भाहि ।।११।।	८० हे अग्नि, अपनी प्रभा द्वारा तुमने द्यौ-पृथिवी को ढॉक दिया, और (तुम) यशो से यशस्वी और विजयी हो। बहुत शक्ति-युक्त स्थायी धन प्रदान करते प्रकाशित होओ ।।११।।
नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि **तोकाय तनयाय** पश्व । पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ।।१२।।	हे वसु (धनी), हमे तुम मनुष्यो जैसा धन दो, हमारे पुत्र-पौत्रो के लिए बहुत पशु दो। पाप-रहित दूर बहुत-सा पहले का अन्न भद्र, सुन्दर यशवाले हमारे लिऐ होवे ।।१२।।
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्या। पुरूणि हि त्वे पुरुवार सत्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ।।१३।। —६।१	हे दीप्तिमान् राजा अग्नि, हम तुम्हारे पास से बहुत सा धन पावे, हम तुम्हारी वसुता (धन) को प्राप्त करे। हे सर्वप्रिय, अग्नि, तुम राजा मे बहुत धन निहित है ।।१३।। —भरद्वाज, ६।१
८१ नू नो अग्ने' वृकेभि स्वस्ति वेषि राय पथिभि' पष्यह । ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्न मदेम **शतहिमा** सुवीरा ।।८।। —६।४	८१ हे अग्नि, तुम हमारे पास स्वस्तिपूर्वक निरापद धन-मार्गों द्वारा आओ, (हमे) कष्ट से बचाओ, स्तोता सूरियो को सुख प्रदान करो। हम सुन्दर वीर सन्तानो वाले हो सौ हिमो (वर्षों) तक आनन्द से रहे ।।८।। —भरद्वाज, ६।४
८२ अश्याम त काममग्ने तवोती अश्याम रयि रयिव सुवीर। अश्याम वाजमभि वाजयन्तो' श्याम द्युम्नमजराजरन्ते ।।७।। —६।५	८२ हे अग्नि, तुम्हारी सहायता से हम उस कामना को प्राप्त करे। हे धनवान् हम सुवीर सन्तानो-युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करे। शक्ति की अभिलाषा करते हम शक्ति को प्राप्त करे। हे अजर, हम तुम्हारे अजर प्रताप को पाये ।।७।। —भरद्वाज, ६।५
८३ सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिष । अभा **चैनमरण्ये** पाहि रिषो मदेम **शतहिमा** सुवीरा ।।१०।। —६।२४	८३ हे इन्द्र, रक्षा के लिए तुम स्तोता के पास आओ। यहॉ उसे शत्रुओ से बचाओ। घर और अरण्य मे शत्रुओ से इसकी रक्षा करो। हम सुन्दर वीर सन्तानों वाले हों सो हिमो (वर्षों) तक आनन्द से रहे ।।१०।। —भरद्वाज, ६।२४

८४ शीष्ण शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पति समया विश्वमा रज ।
सप्त स्वसार सुविताय सूर्य वहन्ति हरितो रथे।।१५।।
तच्चक्षुर्देवहित शुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरद शत जीवेम शरद शत।।१६।।

—७।६६

८४ मस्तक के मस्तक चराचर के पति सारे लोगो के समीपी सूर्य को सात बहिने (किरणे) घोडो के रथ पर धन के लिए ले जाती हैं।।१५।।
वह देव-प्रहित सफेद नेत्र उगा। (उसे) हम सौ शरद (वर्ष) देखे, हम सौ शरद जिये।।१६।।

—वसिष्ठ, ७।६६

८५ त्र्यम्बकयजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धन।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मातृतात्।।१२।।

—७।५६

८५ सुगन्धित, पुष्टिवर्धक त्रयम्वक (तीन माथा वाले) का हम यजन करते हैं। हमे बेर के फल की तरह बन्धन-मृत्यु से मुक्त करो, अमृत से नहीं।।१२।।

—वसिष्ठ, ७।५६

८६ ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत् पाश वरुणो मुमोचत्।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ।।७।।

—७।८८

८६ इन निश्चल क्षितियो मे वसते हुए हमारे पशु को वरुण छुडावे। अदिति के पास मे हम सहायता चाहते हैं। हमारी सदा स्वस्ति के साथ रक्षा करो।।७।।

—वसिष्ठ, ७।८८

८७ शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सजित ध्नाना।।२२।।

—३।३०।२२, ३।३१।२२, ३।३२।१७, ३।३४।११, ३।३५।११, ३।३६।११, ३।३८।१०, ३।३६।६

८७ सुनने वाले, उग्र, वृत्रो को हनन करने वाले, धन देने वाले मगलमय श्रेष्ठ नेता मघवा (इन्द्र) को हम युद्ध मे पुकारते हैं।।२२।

—विश्वामित्र ३।३०

८८ अनुद्रा जहिता नयोध श्रोण च वृत्रहन्।
न तत्ते सुम्नमष्टवे।।१६।।

—४।३०

८८ हे वृत्रहन्ता, तुमने परित्यक्त अन्धे ओर पगु पर कृपा की। वह तुम्हारा (दिया) सुख पाया नहीं जा सकता।।१६।।

—वामदेव, ४।३०

८९ पिशगभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र सभृण[1]।
सर्व रक्षो निवर्हय।।५।।

—१।१३३

८९ हे इन्द्र, पीले दात वाले भयकर पिशाच को नष्ट करो, सब राक्षसों को खतम करो।।५।।

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३३

[1] समृण— निर्णयसागर प्रेस पुस्तकें

६० इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वामायुर्व्यश्नुत। क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।।४२।।

—१०। ८५

६० (हे पति-पत्नी), तुम दौनो यही रहो, वियुक्त मत होओ, सारी आयु को प्राप्त करो, पुत्र-नातियो के साथ खेलते-आनन्द करते अपने घर मे रहो ।।४२।।

—सूर्या, १०। ८५

५ अर्चना की सामग्री

१ हवि—

६१ अग्ने जुषस्व नो हवि पुरोळाश जातवेद। प्रात सावे धियावसो ।।१।।

६१ हे स्तुति के धनी, सर्वज्ञ अग्नि, हमारे प्रात सवन मे हवि (पुरोडाश) को स्वीकार करो।।१।।

पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्य वाघा परिष्कृत। त जुषस्व यविष्ठ्य ।।२।।

हे अग्नि, पकाया और परिष्कृत पुरोडाश तैयार है। हे तरुणतम, उसे स्वीकारो।।२।।

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुत तिरो अहन्य। सहस सूनुरस्यध्वरे हित ।३।

हे सहस्-पुत्र, तुम यज्ञ मे स्थित हो। हे अग्नि, दिन के अन्त मे हवन किये गए पुरोडाश का आहार करो ।।३।।

माध्यन्दिने सवने जातवेद पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने हवस्य तव भागधेय न प्रमिनन्ति विदथेषु धीरा ।।४।।

हे कवि जातवेदा (सर्वज्ञ), माध्यन्दिन सवन (दोपहर पूजा) मे यहॉ पुरोडाश को सेवन करो। हे बलिष्ट अग्नि, तुम्हारे भाग को यज्ञ मे धीर लोग नष्ट नही करते ।।४।।

अग्ने तृतीये सवने हि कानिष पुरोळाश सहस सूनवाहुत ।
अथा देवेष्वध्वर विपन्यया धा रत्नवन्तभमृतेषु जागृवि ।।५।।

हे सहस्-पुत्र अग्नि, तृतीय सवन (साय पूजा) मे हवन किये गये पुरोडाश को पसन्द करो। फिर अविनाशी, रत्न-युक्त जागरुक सोम को स्तुति के साथ अमर देवो के पास ले जाओ ।।५।।

अग्ने वृधान आहुति पुरोळाश जातवेद। जुषस्व तिरो अहन्य ।।६।।

—३।२८

हे वर्धमान जातवेद अग्नि, दिन के अन्त मे आहुति दिये पुरोडाश का सेवन करो।।६।।

—विश्वामित्र, ३।२८

६२ इममिन्द्र **गवाशिर** यवाशिर चन पिब। आगत्या वृषपि सुत।।७।।	६२ हे इन्द्र, हमारे इस यवाशिर (जौ-दूध मिले) गवाशिर (दूध–दही मिले) छने सोम को पराक्रमियो के साथ आकर पियो।।७।।
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये **सोम** चोदामि पीतये। एष रारन्तु ते हृदि ।।८।।	हे इन्द्र, अपने घर मे तुम्हारे पीने के लिए सोम को मै प्रस्तुत करता हूँ, यह तुम्हारे हृदय को प्रसन्न करे ।।८।।
त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। **कुशिकासो** अवस्यव ।।६६।। —३।४२	हे इन्द्र, सहायतेच्छुक हम **कुशिक** तुम पुरातन को छाना सोम पीने के लिए पुकारते है ।।६६।। —विश्वामित्र, ३। ४२
६३ धानावन्त **करंभिणमपूपवन्तमुक्थिन**। इन्द्र प्रातर्जुषस्व न ।।१।।	६३ हे इन्द्र, प्रात काल हमारे धाना (भुने अन्न)-युक्त करम्भ (सत्तू)-युक्त, अपूप (रोटी)–युक्त उक्थ (गीत) सहित सोम को स्वीकार करो ।।१।।
पुरोळाश पचत्य जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च। तुभ्य **हव्यानि** सिस्रते ।।२।।	हे इन्द्र, पके पुरोडाश का सेवन करो और खाओ। (यह) हव्य तुम्हारे लिए परोसी गई है ।।२।।
पुरोळाश च नो घसो जोषयासे गिरश्च न। **वधूयुरिव योषणा** ।।३।।	हमारे पुरोडाश को खाओ, और जैसे बधू को वर वैसे हमारे गीतो को स्वीकार करो।।३।।
पुरोळश सनश्रुत प्रात **सावे जुषस्व** न। इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ।।४।।	हे सनातन से प्रसिद्ध इन्द्र प्रात सवन मे हमारे पुरोडाश का सेवन करो। तुम्हारी क्षमता महान् है ।।४।।
माध्यन्दिनस्य **सवनस्य** धाना **पुरोळाशमिन्द्र** कृष्वेह चारु। प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थ्यो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ।।५।।	इे इन्द्र, यहाँ माध्यन्दिन सवन (दोपहर की पूजा) के धाना (भून दाना) और चारु पुरोडाश तुम्हे रुचिकर हो। जब जल्दी करते गायक स्तोता वृषभो की तरह वचनो द्वारा तुम्हारी स्तुति करते है ।।५।।
तृतीये **धाना** सवने पुरुष्टुत **पुरोळाशमाहुत** मामहस्व न। **ऋभुमन्त** वाजवन्त त्वा **कवे** प्रयस्वन्त उपशिक्षम धीतिभि ।।६।।	बहुस्तुत, तृतीय सवन मे हमारे धाना और आहुति दिये पुरोडाश को भक्षण करो । हे कवि, वाजवान् ऋभुवान् हवि के लिए तुम्हारी हम स्तुतियो से सेवा करते है।।६।।

पूषण्वते ते चकृमा करम्भ हरिवते हर्यश्वाय धाना ।
अपूपमद्धि समणो मरुद्‌भि. सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।।७।।

—३ । ५२

पूषन्-वान् हरिवान् (हरे अश्वो वाले) तुम्हारे लिए हम करम्भ और धाना तैयार करते है। मरुतो-सहित गण-युक्त अपूप (रोटी) खाओ। हे विद्वान् शून वृत्रहन्ता, तुम, सोम को पियो ।।७।।

—विश्वामित्र, ३।५२

६४ अपा सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरण गृहे ते ।

—३ । ५३

यत्रा रथस्य बृहतो विधान विमोचन वाजिना दक्षिणावत् ।।६।।

६४ हे इन्द्र, जल्दी सोम पी चुके, (अब) जाओ। तुम्हारी पत्नी कल्याणी है, सुरमणीय तुम्हारा गृह है। जहॉ तुम्हारे वृहत् रथ का अवस्थान है, घोडो का दक्षिणा-युक्त विमोचन है ।।६।।

—विश्वामित्र, ३ । ५३

पुरोळाश च नो घसो जोषमासे गिरश्च न । बधूयूरिव योषणा ।।१६।।

६५ सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे। शत सोमस्य खार्य ।।१७।।

—४ । ३२

६५ हम इन्द्र से जुतने वाले हजार घोडे और सोम की सात खारियॉ मॉगते है ।।१७।।

—वामदेव, ४ । ३२

६६ त हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देव घृतश्चुता। अग्नि हव्याय वोह्ळवे।।३।।

—५ ।१४

६६ हव्य वहन करने के लिए उस अग्निदेव की सदा घृत चुवाने वाली श्रुवाओ से पूजा करते है ।।३।।

—सुतम्भर, ५ ।१४

२ पशु-बलि—

६७ यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुता ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेध से हृदा मति जनये चारुमग्नये ।।१४।।

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृत चम्वीव सोम ।
वाजसनि रयिमस्मे. सुवीर प्रशस्त धेहि यशस बृहन्त ।।१५।।

—१० । ६१

२ पशुबलि—

६७ जिसमे अश्व, वृषभ (साड), उक्षा (तरुण बैल), बशा (बहिला गाय), भेड दिये और हवन किये गए, उस रसपायी, सोम छिडके विधाता अग्नि के लिए मै हृदय से सुन्दर स्तुति बनाता हूँ ।।१४।।

हे अग्नि, जैसे घृत श्रुवा मे, जैसे सोम चमू मे, वैसे तुम्हारे मुख मे हवि हवन की गई। तुम हमारे लिए अन्न-युक्त धन को, सुबीर-सन्तान-युक्त बडे प्रशस्त यश को प्रदान करो ।।१५।।

—वरुण वीतहव्य-पुत्र, १० । ६१

९८ असत् सु मे जरित साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्ष ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृत वृजिनायन्तमाभु ।।१।।

९८ हे स्तोता (भक्त), मेरा यह स्वभाव है कि सोम-यज्ञ करने वाले यजमान को (फल) देता हूँ। विना यज्ञ वाले, कुटिल, सत्यनाशक, आशीष न देने वाले को (मै) नाश करता हूँ ।।१।।

यदीदह युधये सनयान्यदेवयून् तन्वा शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्र वृषभं पचानि तीव्र सुत पचदश निषिच ।।२।।

—१० ।२७

शरीर से फूले अदेव-भक्तो के विरुद्ध जव मै लडने के लिए अभियान करता हूँ, तो तुम्हारे लिए पन्द्रह गुने तक छाने गये तीव्र सोम को पिलाते मोटे वृषभ (साड) को पकाता हूँ ।।२।।

—वसुक्र इन्द्र-पुत्र, १०। २७

९९ पीवान् मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनु वृहतीमप्स्वन्त पवित्रवन्ता चरत पुनन्ता ।।१७।।

—१०। २७

९९ वीरो ने मोटे भेड को पकाया। दाव पर पासे फेके गये। दो वडे मरु के पास पानी के भीतर शुद्ध पवित्र हुए विचरण करते थे।।१७।।

—वसुक्र, १० ।२७

१०० ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति ।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ।।१२।।

१०० जो पके घोडे को देखते, जो बोलते "सोधा है उतारो" ओर जो घोडे के मॉंस भोजन का सेवन करते है, उनका सकल्प हमारा सहायक हो ।।१२।।

यन्नीक्षण मासपचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषयन्त्यश्व ।।१३।।

—१। १६२

जो कि मॉस पकाने की उखा (हँडिया) को देखना है, जो जूस डालने के पात्र है। चरुओ (बर्तनो) को गरम रखने वाले ढक्कन है, सूना (पशु काटने के पीढे) और चिन्ह—करना (ये) अश्व, को तैयार करते है ।।१३।। (४।६)

—दीर्घतमा उचथ्य—पुत्र, १।१६२

६. मन्त्र-तन्त्र

१०१ इमा खनाम्योषधि वीरुध बलवत्तमा ।
यया **सपत्नी** बाधते यया सविन्दते पति।।१।।

१०१ इस अत्यन्त बलवान् लता औषधि को मै खोदता हूँ, जिसके द्वारा (पत्नी) अपनी सपत्नी को बाधित करती है, जिसके द्वारा वह पति को प्राप्त करती है। ।।१।।

उत्तानपर्णे सुभगे देवजुते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा धम पति मे केवल कुरु।।२।।

देवप्रिया, बलवती सुभगा हे उत्तानपर्णी, मेरी सौत को दूर भगा, पति को केवल मेरी (ही) बना।।२।।

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्ताराभ्य ।
अथा **सपत्नी** या ममाधरा साधराभ्य ।।३।।

हे उत्तरा (उत्तम), मै उत्तरा (प्रधाना) होऊ, उत्तराओ से भी मै उत्तरा होऊ, और जो मेरी सौत है, वह अधरा (हेठी,) से भी अधरा होवे ।।३।।

नह्यस्या नाम गृम्णाभि नो अस्मिन्नमते जने।
परामेव परावत **सपत्नी** गमयामसि।।४।।

उस सौत का नाम मै नही लेती, उस जन मे मन नही रमता। मै सौत को दूर से दूर भेजती हूँ ।।४।।

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहि ।
उभे सहस्वती भूत्वी **सपत्नीं** मे सहावहै।।५।।

—१०। १४५

हे औषधि, मै पराक्रमी हूँ, तुम भी अत्यन्त पराक्रमी हो। दोनो बलवती हो मेरी सौत को दबाये ।।५।।

—इन्द्राणी, १०। १४५

७ परलोक

१ यमलोक—

१०२ यमो नो गातु प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा न पूर्वे **पितर** परेयुरेना जज्ञाना पथ्या अनु स्वा ।।२।।

—१० । १४

१ यमलोक—

१०२ सबमे प्रथम यम ने मार्ग को जाना। य चरागाह (हमसे) नही छीनी जा सकत जहाँ हमारे पूर्वज पितर गये, उत्पन्न (ज वहाँ अपने मार्ग से जायेंगे।।२।।(५।७८।

—यम वैवस्वत् १०। १

२ स्वर्ग—

१०३ नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो य पृणाति सहदेवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इय दक्षिणा पिन्वते सदा ।५।

—१। १२५

२ स्वर्ग—

१०३ जो दान करता है, वह देवो के पास जाता है नाक (स्वर्ग) की पीठ पर अधिष्ठान करता है। उसके लिए सिन्धु आप (जल देवियाँ) घृत प्रदान करती है यह दक्षिणा उसको सदा तृप्त करती है।।५।।

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १। १२५

१०४ यत्र ज्योतिरजस्र यस्मिन्ल्लोके स्वर्हित।
तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।७।।

१०४ जहाँ निरन्तर ज्योति है। जिस लोक मे स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उस अक्षुण्ण अमर लोक मे मुझे ले चलो। हे सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।।७।।(१४। २८। ७)

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मृद प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्त कामास्तत्र मामामृत कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।११।।

—६। ११३

जहाँ आनन्द और मोद और मुद-प्रमुद अवस्थित है, काम की कामनाये जहाँ प्राप्त होती है, वहाँ मुझे अमर बनाओ।।११।। (४।२६।११)

—कश्यप मरीचि, १। ११३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

१. कृषि

१ हल, फाल—

१ पूर्वीरुषस **शरदश्च** गूर्ता वृत्र जघन्वा असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्टिता अतृणद्बद्धाना सीरा इन्द्र स्रवितवे पृथिव्या ।।८।।

—४। १६

१ हल, फाल—

१ पुरानी उषाये और सुदर शरदो मे वृत्र को मारा और सिन्धुओ को मुक्त किया। इन्द्र के घेरी रोकी धाराओ को पृथिवी पर बहने के लिए काटा और मुक्त किया।।८।।

—वामदेव, ४। १६

२ युनक्त **सीरा** वि युगा तनुध्व कृते योनौ वपतेह बीज ।
गिरा च श्रुष्टि अभरा असन्नो नेदीय इत् **सृण्य** पक्वमेयात् ।।३।।

सृण्य युजन्ति **कवयो** युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया ।।४।।

निराहावान् कृणोतन **सवरत्रा** दधातन।
सिचामहा अवतमुद्रिण वय सुषेकमनुपक्षित ।।५।।

इष्कृताहावमवत **सुवरत्र** सुषेचन। उद्रिण सिचे अक्षित ।।६।।

प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित् कृणुध्व ।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिचता नृपाण ।।७।।

—१०। १०१

२ सीरा (हल) को जोतो, जूये को तानो, यहाँ तैयार खेत मे बीज बोओ। हमारी वाणियो के साथ खेती हरी-भरी हो। पक्व शस्य के नजदीक हँसुये जाये ।।३।।

देवो मे सुख के लिए धीर कवि लोग हल जोडते है, जूआ तानते है ।।४।।

मोट बनाओ, रस्सा रक्खो। सुन्दर सिचाई वाले, अक्षय जलवाले महाकुएँ के जल को हम सींचेगे ।।५।।

अन्नकारक मोट, (चरसा) सुन्दर रस्सा, सुन्दर सेचनेवाले अक्षय जल-युक्त अवत (कुऑ) से मै सींचता हूँ ।।६।।

अश्वो को तृप्त करो, हित को जीतो, रथ को स्वस्ति-वाहक बनाओ। काठ की मोटवाले, पत्थर की मनवाले कवच-कोशवाले मनुष्य-प्याव कूएँ से सींचो।।७।।

—बुध सोम-पुत्र, १०। १०१

२ कुआँ—

३ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा या स्वयंजा।
समुद्रार्था या शुचय पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।२।।

—७। ४६

२. कुआँ—

३ जो आप (जल) आकाशीय है अथवा खोदी जाकर बहती है अथवा जो स्वय उत्पन्न है। जो शुचि पवित्र समुद्र के लिए (जाती) है (वह) आप देवियाँ यहाँ हमारी रक्षा करे।।२।।

—वसिष्ठ, ७। ४६

४ माकिर्नशेन्माकीं रिषन्माकीं सशारि केवटे।
अथारिष्टाभिरागहि ।।७।।

—६। ५४

४ (गौ-अश्व) नष्ट न हो उन्हे (कोई) न मारे। वह कूँए गढे म न गिर। तुम अरिष्टो (सुरक्षातो) के साथ आओ।।७।।

—भरद्वाज ६। ५४

५ प्र ते नाव न समने वचस्युव ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषि।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्स न वसुन सिचामहे ।।७।।

—२। १६

५ युद्ध मे ललकारते नाव जैसे इन्द्र के पास सवनो मे ढीठ हो ब्रह्म (मन्त्र) मे लाता हूँ। हमारे इस वचन को अवश्य वह समझेगा, हम धन के उत्स (चश्मे) की तरह इन्द्र को सीचेगे ।।७।।

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २। १६

३ कुल्या—

६ आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्र कुल्या इव ह्रद ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यव न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ।।७।।

—१०। ४३

३. कूल (नहर)—

६ सिन्धु मे जैसे नदियाँ, ह्रद मे जैसे कुल्याये, वस इन्द्र के पास जब सोम क्षरित होते है तो (यज्ञ–) सदन मे विप्र इसके तेज को वेसे ही बढाते है, वृष्टि (जल के) दिव्य दान से जो को ।।७।।

—कृष्ण आगिरस, १०। ४३

७ महान्त कोशमुदचा निर्षिच स्यदता कुल्या विषिता पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावा पृथिवी न्युधि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ।।८।।

—५। ८३

७ (हे पर्जन्य), महान् कोश (मेघ) को ऊपर उठाओ, सींच दो। बँधी हुई कूले आगे को वहे। द्यो-पृथिवी को जल से भिगो दो गायो के लिए सुन्दर प्याव होवे।।८।।

—भोम आत्रेय, ५। ८३

२. वास्तु

८ अत्यासो न ये मरुत स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या ।
ते हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सानो न प्रकीळिन पयोधा ।।१६।।
—७। ५६

८ जो मरुत् घोडो की तरह सुन्दर गति वाले है, यक्ष (मेला) दर्शी की तरह मनुष्य (अपने को) सँवारते हैं। वे हममे स्थित शिशुओ की तरह शुभ्र, खिलाडी बछडो की तरह जलधर है।।१६।।
—वसिष्ठ, ७। ५६

६ अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यन्त्रासाथे वरुणेळा स्वन्त ।
राजाना अत्रमहृणीयमाना सहस्त्रस्थूण विभूष सह द्वौ ।।६।।
—५। ६२

६ सुकृत (यज्ञ) मे अ-रक्तपाणि, भक्तपाल हे वरुण, स्तुति से सुन्दर हृदयवाले जिसकी रक्षा करते हो। न क्रुद्ध होते (हे मित्र-वरुण) राजाओ, हजार सम्भेवाले क्षत्र (राज्य) को तुम दोनो मिल कर धारण करते हो ।।६।।
—श्रुतविद् आत्रेय, ५। ६२

३ काल

१ मास—

१० वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावत। वेदा य उपजायते ।।८।।
—१। २५

१ मास—

१० व्रतधारी वरुण, प्रजावाले बारह मास जानता है, जो अधिक (मास) उत्पन्न होता है, (उसे भी) जानता है ।।८।।
—शुन शेप अजीगर्त-पुत्र, १। २५

२ ऋतु—

११ स पूर्व्यो महाना वेन क्रतुभिरानजे। यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे।।१।।
—५८। ५२

२ ऋतु—

११ वह प्रिय (इन्द्र) प्रथम (पूजनीय) महानों की क्षमता के साथ सन्नद्ध है । पिता मनु ने जिसके द्वारा देवों मे (प्रिय) स्तुतियाँ तैयार कीं ।।१।।
—प्रगाथ, कण्व-पुत्र, ८। ५२

१२ न य जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
बृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनू स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ।।७।।
—६। २४

१२ जिसे न शरद, न मास बूढा करते है, न इन्द्र को दिन कृश बनाते है । वृद्ध (बढे) का यह तनु स्तोमो और उक्थों द्वारा प्रशसित हो बढे ।।७।।
—भरद्वाज, ६। २४

१३ सचस्य नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिष ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमा सुवीरा ।।१०।।

—६। २४

१३ हे इन्द्र रक्षा के लिए तुम स्तोता के पास आओ। यहाँ उसे शत्रुओ से बचाओ। घर और अरण्य मे शत्रुओ से इसकी रक्षा करो। हम सुन्दर वीर सन्तानो वाले हो सौ हिमो (वर्षो) तक आनन्द से रहे।।१०।। (१५।८३)

—भरद्वाज, ६। २४

१४ यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्म शरद्धवि ।।६।।

—१०। ६०

१४ जव पुरुष रूपी हविद्वारा देवो ने यज्ञ रचा, तो इसका घी वसत था, ईंधन ग्रीष्म और शरद हवि थी ।।६।।

—नारायण, १०। ६०

१५ शत जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता वृहस्पति शतायुषा हविषेम पुनर्दु ।।४।।

—१०। १६१

१५ वढते हुए सौ शरद जियो, सौ हेमन्त और सौ वसत (जियो)। इन्द्र-अग्नि, सविता, वृहस्पति हवि द्वारा इसे फिर शतायु प्रदान करे ।।४।।

—यक्ष्मनाशन् १०। १६१

१६ अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्ते सवत्सरे वावृधे जग्धमी पुन ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषान्यन्येन वनियो मृष्टवारण ।।२।।

—१। १४०

१६ दो (अरणियो से) जन्मने वाला (अग्नि) त्रिविध अन्नो (सोम, घृत, पुरोडाश) को खाता है, फिर खाया हुआ सवत्सर (साल) भर मे (नया) वढता है । अन्य के मुख (श्रुवा) और जिह्वा (दावानल) द्वारा यह पराक्रमी सवको दूर करता है (मत्त हाथी) वृक्षो को (जलाता) है ।।२।।

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १। १४०

ऋतुओ के अनुसार चिडियो का बोलना। (देखो १८।६)

३ नक्षत्र—

३ नक्षत्र—

१७ सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गोवो' र्जुन्यो पर्युह्यते।।१३।।

—१०। ८५

१७ सविता ने जिसे प्रदान किया, (वह) सूर्या की वरात के आगे-आगे गई। मघा नक्षत्रो मे (विवाह भोज के) वैल मारे गये, दोनो फाल्गुनी (पूर्वा, उत्तरा) मे वह व्याही गई।।१३।।

—सूर्या, १०। ८५

४ तोल-माप

१ तोल—

१८ सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे शत सोमस्य खार्य ।।१७।।

—४।३२

१ भार—

१८ हम इन्द्र से जोतने के हजार घोडे मॉगते है, और सौ सोम की खारियाँ[1] ७६।।१७।।

—वामदेव, ४।३२

१९ प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित् कृणुध्व ।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिचता नृपाण ।।७।।

—१०।१०१

१९ अश्वो को तृप्त करो, हित को, जीतो, रथ को स्वस्ति-वाहक बनाओ। काठ की मोटवाले, पत्थर की मनवाले, कवच कोशवाले मनुष्य-प्याव कूएं से सींचो।।७।।(१६।२०७)

—बुध सोम-पुत्र, १०।१०१

२ माप—

२० सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्। स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठ-द्दशागुल।।१।।

—१०।९०

२ माप—

२० सहस्र-सिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-पाद वह पुरुष भूमि को चारो ओर लपेट कर दस अगुल अधिक बढ कर अवस्थित है ।।१।।

—नारायण, १०।९०

२१ सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घ सचते वरुणस्य धाम।
अनवधास्त्रिशत **योजनान्येकैका** ऋतु परियति सद्य ।।८।।

—१।१२३

२१ (उषाये) आज वैसी, कल भी वैसी ही, वरुण के दीर्घ धाम को मानती हैं। वह दोषहीनाये एक-एक तीस योजन (जाती) तुरन्त कर्तव्य को पूरा करती है ।।८।।

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२३

२२ धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्वित् ता वियोजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहा ।।२०।।

—१०।८६

२२ जो धन्व (मरु) और छेदनीय (वन) है, कितने वे योजन है ? हे वृषाकपि (अग्नि), सबसे नजदीक के घरो मे तुम (अपने) घर जाओ ।।२०।।

—इन्द्राणी, १०।८६

५. सख्या

१ एक, अर्ध, उभे—

२३ भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्र पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे।।१।।

—६।३०

१ एक, अर्ध, उभय—

२३ पराक्रम के लिए वह और भी बढा, वह जरा-रहित एक धन प्रदान करता है। (महिमा में) इन्द्र द्यौ-पृथिवी से बढकर है। उभय (दोनो) द्यौ-पृथिवी इसके अर्ध के बराबर है ।।१।।

—भरद्वाज, ६।३०

---

[1] एक खारी = बुशल ३।

२. द्वाविंशति—

२४ द्वया अग्ने रथिनो विशति गा वधूमतो मघवा मह्य सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा पार्थवाना।।८।।

—६।२७

२ दो, बीस—

२४ हे अग्नि, धनवान् पार्थवो के सम्राट् चयमान-पुत्र अभ्यावर्ती ने मुझे वधुओ-सहित दो रथ के घोड़े और बीस गाये प्रदान कीं। उसकी दक्षिणा (औरो से) दुर्लभ है।।८।।

—भरद्वाज, ६।२७

३. एक द्वौ—

२५ त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि।
उतेदृशे यथा वय।।५।।

—६।४५

३ एक, दो—

२५ हे वृत्रहन्ता, तुम एक के, दो के रक्षक हो, और ऐसो के भी जैसे कि हम।।५।।

—शयु, बृहस्पति-पुत्र, ६।४५

४. प्रथम—

२६ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथाना भवति प्रजानन्।
सविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरगिरोभि ।।५।।

—७।४४

४ प्रथम—

२६ रथ का घोडा दधिक्रा[1] जानते हुए वह उषा सूर्य, आदित्यों वसुओ, अगिराओ के साथ मेल कर रथो के आगे होता है।।४।।

—वसिष्ठ, ७।४४

५. त्रि, चतुर—

२७ प्रातारथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकश सप्तरश्मि.।
दशारित्रो मनुष्य स्वर्षा स इष्टिभिर्मतिभी रह्यो भूत्।।१।।

—२।१८

५ तीन, चार, सात, नौ, दस—

२७ प्रात को चार धुरो, तीन कशा, सात लगामो वाले नये रथ को जोडा। दस पतवारो वाला मनुष्यो का हितकर वह लालसाओ (यज्ञो) और स्तुतियो द्वारा वेगवान् हुआ।।१।।

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१८

६ प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८ सास्मा अर प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुष स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊजनन्त सो अन्येभि सचते जेन्यो वृषा।।२।।

—२।१८

६ प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८ वह (इद्र) प्रथम, वह द्वितीय और तृतीय (वार) इसके लिए तैयार हुआ। वह मनुष्यो का होता (पुकारने वाला) हुआ। दूसरे (ऋत्विक) दूसरे के गर्भ को उपजाते हैं। वह विजेता पराक्रमी अन्यो से मिलता है।।२।।

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१८

---

[1] दिवोदास का घुड़दौड़ विजेता घोड़ा।

७ त्रि चत्वार, दश—

२६ चत्वार ई विभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधावत परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ।।४।।

—५।४७

७ तीन, चार, दस—

२६ क्षेम कामना करते **चार** (ऋत्विक् सूर्य को) धारण करते है। **दस** गर्भ (शिशु) को चलने के लिए प्रेरित करते है। तीन धातुओ की (लोको) वाली इस (सूर्य) की गौवे (किरणे), तुरन्त द्यौके अन्त तक विचरती है ।।४।।

—प्रतिरथ, ५।४७

८ पंच—

३० य **पच** चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे। कविर्गृहपतिर्युवा ।।२।।

—७।१५

३१ इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु **पचसु**। इन्द्र तानि त आवृणे ।।६।।

—३।३७

८ पाँच—

३० जो कवि, गृहस्वामी, युवा (अग्नि) पॉचो जनो के पास घर-घर मे बैठा ।।२।।

—वसिष्ठ, ७।१५

३१ हे शतक्रतु इन्द्र, पॉचो जनो मे[1] जो तुम्हारी इन्द्रियॉ (शक्तियॉ) हैं, उन्हे हम तुम्हारी मानते है ।।६।।

—विश्वामित्र, ३।३७

६ षट्, षष्ठि, शत—

३२ नि गव्यवो' **नवो द्रुह्यवश्च षष्टि शता** सुषुपु **षट्सहस्रा** ।
षष्टिर्वीरासो अधि **षड** दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ।।१४।।

—७।१८

६ छ, साठ, सौ हजार—

३२ गौ लूटने के इच्छुक **साठ सौ हजार और छ्यासठ अनु और द्रुह्यु** (वीर, मरकर) सो गये। (भक्तो के लिए) यह सब इन्द्र के पराक्रम के काम है ।।१४।। (१०।१७।१४)

—वसिष्ठ, ७।१८

१०. सप्त, द्वा, चतु.—

३३ सोमारुद्रा धारयेथामसूर्यं प्र वामिष्टयोरमश्नुवन्तु।
दमेदमे **सप्त** रत्ना दधाना श नो भूत **द्विपदे शं चतुष्पदे**।।१।।

—६।७४

१० सात, दो, चार—

३३ हे सोम-रुद्र, तुम असुर-बल धारण करो। (हमारी) कामनाऍं शीघ्र तुम्हे प्राप्त होवे। घर-घर मे (अपने) सातो रत्नो को रखते तुम (दोनो) हमारे दोपायो के कल्याणकारी चौपायो के कल्याणकारी होओ ।।१।।

—भरद्वाज, ६।७४

---

[1] आर्यों के पुरातन पाँच कबीले—पुरु, द्रुह्य, अनु, तुर्वश और यदु।

११ अष्ट, त्रि, सप्त—

३४ अष्टौ व्यख्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ।।८।।

—१।३५

११. आठ, तीन, सात—

३४ उसने पृथिवी की आठों दिशाये तीनो मरुस्थल और सातो नदियाँ प्रकाशित की। सुनहली आखो वाला सविता देव दानियो (यजमान) के लिए उत्तम रत्न लिए आये।।८।। (१।१)

—हिरण्यस्तूप आगिरस, १।३५

१२ नव, नवति, शत—

३५ तव च्योत्नानि वजहस्त तानि नव यत्पुरो नवति च सद्य ।
निवेशने शततमाविवेपीरहन्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ।।५।।

—७।१६

१२ नौ, नब्बे, सौ—

३५ हे वजहस्त इन्द्र, (यह) तुम्हारा विक्रम, है, जो कि उन निन्नानवे पुरियो को तुरन्त (नष्ट किया) सौवी मे प्रवेश रक्खा, वृत्र को मारा और नमुचि को मारा ।।५।।

—वसिष्ठ, ७।१६

१३. दश—

३६ दशारित्रो मनुष्य स्वर्षा स इष्टिभिर्मतिभी रह्यो भूत् ।।१।।

—२।१८

१३ दस— .

३६ देखो यहीं १६।२७

१४ दश, एकादश—

३७ इमा त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादश कृधि।।४५।।

—१०।८५

१४ दस, ग्यारह—

३७ हे सिचक इन्द्र, इस स्त्री को तुम सु-पुत्रा, सु-भगा बनाओ। इसमे दस-पुत्र स्थापित करो, (और) पति को ग्यारहवाँ बनाओ।।४५।।

—सूर्या १०।८५

१५ द्वादश—

३८ द्वादश द्यून्यदग्रोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभव ससन्त. ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिधून्धन्वा-तिष्ठन्नोपधीर्निम्नमाप ।।७।।

—४।३३

१५ बारह—

३८ जब अगोप्य (सूर्य) के आतिथ्य (भवन्) मे बारह नक्षत्रो को ग्रहण करते ऋभु प्रसन्नतापूर्वक रहे (तो) उन्होने सुक्षेत्र (सुधान्य) बनाया। वह सिन्धुओ को लाये। धन्व (मरु) मे औषधियॉं हुईं, जल निम्न (भूमि की ओर) गये ।।७।।

—वामदेव, ४।३३

१६ चतुर्दश, सप्त—

३६ चर्तुशान्ये महिमानो अस्य त धीरा वाचा प्रणयन्ति सप्त।
आप्नान तीर्थ क इह प्रवोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ।।७।।
—१० ।११४

१६ चौदह, सात—

३६ इस (रथ) की चौदह महिमाएँ है, उसे सात धीर (होता) वाणी द्वारा आगे ले जाते है। जिस पथ से (जा) छाने सोम को पीते है, उस आप्नान (व्याप्त) तीर्थ को यहाँ कौन बतलायेगा ।।७।।
—सध्रि विरुप-पुत्र, १० ।११४

१७ पंचदश, सहस्र—

४० सहस्रधा पचदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमान सहस्र यावन् ब्रह्मा विष्ठित तावती वाक् ।।८।।
—१० ।११४

१७ पन्द्रह, सहस्र—

४० पन्द्रह उक्थ (गान) सहस्र प्रकार के है, जहाँ तक द्यौ-पृथिवी, वहाँ तक ये (विस्तृत) है। (वह) सहस्र सहस्र-प्रकार की महिमावली है, जहाँ तक ब्रह्म (ऋचा) व्याप्त है, वहाँ तक वाणी है ।।८।।
—सध्रि विरूप-पुत्र, १० ।११४

१८ अष्टादश, द्वा, चतु, षट्—

४१ आ द्वाभ्य हरिभयामिन्द्र याह्या चतुर्भिराषड्भिर्हूयमान ।
आष्टाभिद्रशभि सोमपेयमय सुमख मा मृधस्क. ।।४।।
—२ ।१८

१८ अठारह, दो चार, छ—

४१ हे इन्द्र, पुकारे जाते तुम दो घोडो के साथ, चार, छ, आठ, दस के साथ सोमपान में आओ। हे सुवीर, यह छना (सोम) तैयार है, इसे बुरा न कहना।।४।।
—गृत्समद, २ ।१८

१९ विंशति त्रिशत्, शत—

४२ आ विंशत्या त्रिशत्या याह्यर्वाडा वत्वारिंशता हरिभिर्युजान ।
आ पचाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तया सोमपेय ।।५।।

१९ बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, नब्बे, सौ—

४२ हे इन्द्र, बीस तीस, चालीस, घोडो को जोते पास आओ। पचास, साठ, सत्तर, सुरथो के साथ सोमपेय मे आओ ।।५।।

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाडाशतेन हरिभिरुह्यमान ।
अय हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वया परिषिक्तो मदाय ।।६।।

—२।१८

अस्सी, नब्बे, सौ घोडो द्वारा वहन किये जाते पास आओ। हे इन्द्र शुनहोत्रो मे तुम्हारे लिए यह सोम (तैयार) है । तुम्हारे द्वारा पिया गया (यह) मद के लिए है।।६।।

—गृत्समद, २।१६

२० सहस्र, अयुत—

२० हजार, दस हजार—

४३ चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ।।१८।।

—८।२१

४३ चित्र ही राजा है, दूसरे राजक (छोटे राजा) हैं, जो कि सरस्वती के पास रहते है। जैसे पर्जन्य वृष्टि द्वारा व्याप्त होता, वैसे चित्र हजार और दस हजार देता (व्याप्त) है ।१८।।

—सोभरि कण्य-पुत्र, ८।२१

अध्याय १७
आर्य नारी

ऋग्वेद मे वास्तविक नारियॉ, घोषा, लोपामुद्रा, विश्पला, विश्ववारा, सुदेवी ही हैं, बाकी काल्पनिक नारियॉ हैं, पर काल्पनिको से भी आर्य नारियो के बारे मे ही बाते मालूम होती हैं।

१ अदिति—

१ भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त। **अदितेद्रक्षो** अजायतु **दक्षाद्वदिति** परि।।४।।

१ उत्तानपाद (ऊपर पैर वाले) मूल वृक्ष से भूमि उत्पन्न हुई, भूमि से दिशाऍं हुईं। अदिति से दक्ष उत्पन्न हुआ, और दक्ष से पीछे अदिति ।।४।।

अदिर्ह् तियजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव। *ता* **देवा** *अन्वजायन्त* भद्रा **अमृतबन्धव** ।।५।।

हे दक्ष, अदिति ने (तुम्हे) पैदा किया, जो *कि तुम्हारी दुहिता है।* उस अदिति के पीछे भद्र अमृत-बन्धु देवता पैदा हुए।।५।।

अष्टौ पुत्रा सो **अदितर्ये** जातास्तन्वस्परि।
देवा उप प्रैत् परा सप्तभि **मार्ताण्डमास्यत्**।।८।।

—१० ।७२

अदिति के आठ पुत्र, जो शरीर से पैदा हुए। सात के साथ वह परे देवो के पास गई, आठवे मार्तण्ड को छोड दिया ।।८।।

—बृहस्पति लोकनामा-पुत्र, १० ।७२

२ इन्द्र-माता—

२ इखयन्तीरपस्युव इन्द्र जातमुपासते। भेजानास सुवीर्यं ।।१।।

२ कर्मशील (इन्द-माताऍं) इन्द्र के जन्म के समय (उसके) सवीर्य को ग्रहण करती पास आईं ।।१।।

त्वमिन्द्र वलादधि सहसो जात ओजस। त्व वृषन्वृषेदसि ।।२।।

हे इन्द्र, तुम सहस् (विक्रम), ओज के बल से उत्पन्न हुए। हे पराक्रमी तुम बली हो।।२।।

त्वमिन्द्र सजोषसमर्क बिभर्षि बाह्वो ।
वज्र शिशान ओजसा ।।४।।
—१० ।१५३

हे इन्द्र, ओज से तुम अपनी दोनो बाहो मे तीक्ष्ण करते वज्र को सूर्य के साथ धारण करते हो ।।४।।
—इन्द्र-माता, १० ।१५३

३ इन्द्राणी—

३ वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्र देवममसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्य पुष्टेषु मत्सखा,
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ।।१।।

३ (लोगो ने वहाँ) सोम छानना छोड दिया। वह इन्द्र को देव नही मानते। जहाँ (मद-) तृप्तो मे मेरा सखा अर्य (स्वामी) वृषाकपि (अग्नि) है। इन्द्र सबसे उत्तम है ।।१।।

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथि ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये।।२।।

(इन्द्राणी)—"हे इन्द्र, तुम व्याकुल हो वृषाकपि के पास दौडते हो, अन्यत्र सोमपान नहीं पाते ।।२।।

किमय त्वा वृषाकपिश्चकार हरितो मृग ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु।।३।।

"क्या है, जो इस पीले (हरे) मृग वृषाकपि ने तुम्हे बना दिया, जिसके लिए अर्य (स्वामी) तुम पुष्टिन्कारक धन देते हो।।३।।

यमिम त्व वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्।।४।।

"हे इन्द्र, जिस इस प्रिय वृषाकपि की तुम रक्षा करते हो, उसके कान मे वराह-कामी कुत्ता काटे ।।४।।

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूषत् ।
शिरो न्वस्य राविष न सुग दुष्कृते भुव।।५।।

"मेरे लिए तैयार प्रिय वस्तु को (वृषा-) कपि ने दूषित कर दिया, इसके सिर को काट लूँगी, दुष्कर्मा को सुख न होवे।।५।।

कि सुबाहो स्वगुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
कि शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषकपि।।८।।

(इन्द्र)—"सुबाहु, सुअँगुली, दीर्घकेशी, पृथृजघना हे शूरपत्नी, तुम क्यो हमारे वृषाकपि पर क्रुद्ध हो ।।८।।

अवीरामिव मामय शरारुरभिमन्यते ।
उताहमस्मि **वीरिणीन्द्रपत्नी** मरुत्सखा॰।।६।।

(इन्द्राणी)—"यह दुष्ट वृषाकपि मुझे अवीरपुत्रा (माता) ओ सा मानता है। परन्तु मै वीरपुत्रा इन्द्र–पत्नी हूँ, मेरे सखा मरुत् हैं ।।६।।

सहोत्र स्म पुरा नारी समन वाव गच्छति।
वेधा ऋतुस्य **वीरिणीन्द्रपत्नि** महीयते॰।।१०।।

"पहले हवन या युद्ध के समय नारियाँ वहाँ जाती। ऋत के विधाता, वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नी की पूजा होती है ।।१०।।

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रव।
नह्यस्या अपर चन जरसा मरते पतिर॰।।११।।

(इन्द्र)—"इन नारियो मे इन्द्राणी को मैने सोभाग्यवती सुना है । दूसरो की तरह इसका पति जरा (बुढापे) से नही मरेगा।।११।।

नाहमिन्द्राणि रारण **सख्युर्वृषाकपेर्ऋते**।
यस्येदमप्य हवि **प्रिय** देवेषु गच्छति॰।।१२।।

"हे इन्द्राणी, अपने मित्र वृषाकपि (अग्नि) के बिना मै सुखी नही हो सकता, जिसके द्वारा यह मिलने वाला प्रिय हवि देवताओ के पास जाता है ।।१२।।

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत इन्द्र उक्षण प्रिय काचित्कर हविर्॰।।१३।।

(इन्द्राणी)—"हे धनवती सुपुत्रा सुबधुका वृषाकपि–पत्नी, इन्द्र तेरे बैलो की प्रिय हवि को भख जायेगा ।।१३।।

उक्षणो हि मे पचदश **साक पचन्ति पचदश**।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे॰।।१४।।

"मेरे लिए (एक) बीस के साथ पन्द्रह (३५) बैलो को पकाते है, और मै खाता मोटा होता हूँ। मेरी दोनो कुक्षियो को (भक्तजन) पूर्ण करते है ।।१४।।

धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्विता वि **योजना**।
नेदीयसो **वृषाकपेस्तमेहि** गृहा उत॰।।२०।। (१६।२२)

—१०।८६

"जो धन्व (मरुत्) और छेदनीय (वन) है, वह कितने योजन तक है । हे वृषाकपि (अग्नि), सबसे नजदीक के घरो मे तुम (अपने) घर जाओ ।।२०।। (१६।२२)

—इन्द्राणी, १०।८६

४ उर्वशी—

४ पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणो हृदयान्येता ।।१५।।
—१० ।६५

४ उर्वशी—

४ नही हे पुरूरवा, तू मत मर, मत गिर, न अशिव भेडिये तुझे खाये। स्त्रियो की मित्रता (स्थायी) नही होती, उनके ये हृदय सालावृको (भेडियों) के होते है ।।१५।।
—उर्वशी, १० ।६५

५ अन्तरिक्षप्रा रजसो **विमानीमुशिक्षाम्युर्वशी** वसिष्ठ ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तप्यते मे ।।१७।।
—१० ।६६

५ (उसका) महानतम प्रेमी आकाश को पूरनेवाली लोको को नापने वाली उर्वशी की मै प्रार्थना करता हूँ, तेरे पास मेरे सुकृत का दान पहुँचे। लौट आ, मेरा हृदय सतप्त हो रहा है।।१७।। (७।७।१७)
—उर्वशी, १० ।६६

५ **घोषा कक्षीवान्-पुत्री**—

६ पुराणा वा वीर्या प्रब्रवा जने थो **हासथुर्भिषजा** मयोभुवा ।
ता वा नु नव्यावसे करामहे य **नासत्या** श्रदरिर्यथा दधत् ।।५।।

५ **घोषा (कक्षीवान्-पुत्री)**—

६ तुम दोनो की प्राचीन वीरता को मै लोगों के पास कहती हूँ, फिर तुम दोनो सुखद चिकित्सक हो, इसलिए नवीन सहायता के लिए तुम्हारी स्तुति करती हूँ, जिसमे कि हे नसत्यो, यह शत्रु श्रद्धा करे ।।५।।

युव रथेन **विमदाय शुन्ध्युवं** न्यूहथु पुरुमित्रस्य योषणा ।
युव हव **बध्रिमत्या** अगच्छत युव **सुषुति** चक्रथु पुरन्धये ।।७।।

तुम विमद के व्याहने के लिए पुरुमित्र की कन्या शुन्धु को लाये। तुम बध्रिमती की पुकार पर आये। तुमने पुरन्धि (गर्भिणी बध्रिमती) का प्रसव सुखमय किया ।।७।।

युव श्वेतपेदवे **शिवनाश्वनवभिर्वाजेर्नवती** च वाजिन ।
चर्कृत्य ददथुर्द्रावयत्सख भग न नृभ्यो हव्य **मयोभुवं**।।१०।।

हे अश्विनो, तुमने पेदु के लिए वेगो से बेगवान् निन्नानबे घोड़ो के साथ भाग की तरह मनुष्य-सुखद हवि दिया, भगाने वाला एक श्वेत अश्व जैसे सखा की।।१०।।

ता वर्तिर्यात जयुषा वि पर्वतमपिन्वत **शयवे** धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युव शचीभिर्ग्रसितामसुचत ।।१३।।

हे अश्विनो, तुम स्थूल पर्वत-विजेता (हमारे) घर आओ और शयु के लिए धेनु (दुधार-गाय) बनाओ। वृक (भेडिये) के मुख के भीतर ग्रसी गई बटेर को तुमने युक्ति से छुड़ाया था।।१३।।

एत वा **स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथ** ।
न्यमृक्षाम योषणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दधाना ।।१४।।
—१० ।३६

हे अश्विनो, जैसे भृगु लोग रथ को गढते है, वैसे तुम्हारे लिए इस स्तोम (गान) को मैने बनाया। दामाद को देने के लिए जैसे कन्या को सजाते, जेसे पुत्र-पौत्र को धारण करते है, वैसे हमने किया ।।१४।।
—घोषा, १० ।३६

७ यो वा परिज्मा **सुवृदश्विना** रथा दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमार्सस्तमु वामिद वय पितुर्न नाम सुहव हवामहे ।।१।।

७ हे अश्विनो, सर्वभूपर्यटक जो तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले (यजमान) प्रतिदिन, प्रतिरात्रि और प्रतिउषा पुकारते है। तुम्हारे पिता के सुन्दर पुकारे जाने वाले नाम की तरह तुम्हारे (नाम) का हम सदा आह्वान करते है ।।१।।

एत वा **स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथ** ।
न्यमृक्षाम योषणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दाधाना ।।१४।।
—१० ।३६

८ युवा ह **घोषा** पर्यश्विना यती **राज्ञ** ऊचे **दुहिता** पृच्छे वा नरा ।
भूत मे अहन उत भूतमक्तवे श्वावते रथिने शक्तमर्वते ।।५।।

८ हे अश्वद्वय, मै भटकती राजदुहिता घोषा तुम दोनो नेताओ के पास आकर पूछती हूँ *"दिन मे मेरे पास हो या रात मे हो,* अश्व-युक्त रथयुक्त समर्थ (पति) के ढूँढने मे (मेरी) सहायता करो ।।५।।

युव कबी ष्ठ पर्यश्विना रथ विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथ ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृत न योषणा ।।६।।

हे अश्विनो, तुम दोनो कवि हो। रथपर स्थित हो, जैसे कुत्स प्रजाओ के पास, वैसे तुम स्तोता के घर जाओ। तुम्हारी मधु को वैसे ही मक्खियाँ मुख मे लेती है, जैसे (उस) शुद्ध के हाथ मे स्त्री ।।६।।

युव ह भुज्यु युवमश्विना वश युव **शिजारमुशनामुपा** रथु ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमाचके ।।७।।

हे अश्विनो, तुमने **भुज्यु** को, तुमने बश को, तुमने **शिजार** को और उशना को उबारा था। जो दाता है, वह तुम्हारे सखित्व को पाता है, मै तुम्हारी सहायता के साथ सुख चाहती हूँ ।।७।।

युव ह कृश युवमश्विना **शयुं** युव विधन्त विधवामुरुष्यथ ।
युव सनिभ्य स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुर्थ सप्तास्य ।।८।।

—१० ।४२

हे अश्विनो, तुमने कृश को, तुमने शयु को, तुमने सेवक (और) विधवा को बचाया । हे अश्विनो, दाताओ के लिए तुम मेघ के कडकते सत्पमुख वज्र (मेघ) को खोलते हो ।।८।।

—१० ।४२

९ न तस्य विद्म तदुषु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्या क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्त्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृह गमेमाश्विना तदुश्मसि ।।११।।

—१० ।४०

९ वह बात हम नही जानते, उसे तुम बतला दो, कैसे युवा ओर युवती गृहो मे रहते है। मै स्त्री प्रिय सुपुष्ट पराक्रमी तरुण के गृह मे जाऊॅ, हे अश्विनो, (मेरी) उस कामना को पूरा करो ।।११।।

—घोषा, १० ।४०

१० समानमु त्य **पुरुहतमुक्थ्य** रथ त्रिचक्र सवना गनिग्मत ।
परिज्मान विदथ्य सुवृक्तिभिर्वय व्युष्टा उषसो हवामहे ।।१।।

१० तीन चक्को वाला, बहुतो द्वारा पुकारा जाता, स्तुत्य भूपर्यटक, यज्ञीय दोनो के सम्मिलित रथ को उषाकाल मे उठकर हम सुन्दर ऋचाओ से प्रार्थना करते है।।१।।

प्रातर्युज **नासत्याधितिष्ठथ** प्रातर्यावाण मधुवाहन रथ ।
विशो येन गच्छयो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञ होतृमन्तमश्विना ।।२।।

हे नासत्य (न-असत्य) अश्विद्वय प्रात जोडे गये, प्रात चलने वाले (उस) मधुवाहन रथ पर चढो, जिसके द्वारा यज्ञ करने वाली प्रज्ञाओ के पास जाते हो, हे नेताद्वय अश्विनो गरीबो के होता-युक्त यज्ञ मे भी ।।२।।

अध्वर्यु वा मधुपाणि सुहस्त्यमग्निध वा धृतदक्ष दमूनस ।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छयो त आयात मधुपेयमश्विना ।।३।।

—१० ।४१

हे अश्विद्वय मधु-पाणि घृतदक्ष (दृढ-शक्ति), गृहमित्र, सुहस्त ऋत्विक् के पास या जब विप्र के सवनो (यज्ञो) मे जाओ, तो मधुपान मे भी पहुचो ।।३।।

—सुहस्त घोषा-पुत्र १० ।४१

११ युव नरा स्तुवते **कृष्णियाय विष्णाप्व ददथुर्विश्वकाय**।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ।।७।।

—१ ।११७

११ हे दोनो नेताओ, तुम कृष्ण-पुत्र स्तोता **विश्वक** के लिए (तत्पुत्र) विष्णापु को लाये। तुमने पिता के घर बैठी द्वारपर झुराती घोषा को पति प्रदान किया।।७।।

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १ ।११७

६ जुहू—

१२ ते वदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्विषे **कूपार** सलिलो मातरिश्वा।
वीळूहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवी प्रथमजा ऋतेन ।।१।।

सोमो राजा प्रथमो **ब्रह्म्जायां** पुन प्रायच्छदहृणीयमान ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ।।२।।

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा **राष्ट्र** गुपित **क्षत्रियस्न्** ।।३।।

—११।३

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तप से ये निषेदु ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ।।४।।

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विष स देवाना भवत्येकमग ।
तेन जायामन्वविन्दद् वृहस्पति सोमेन नीता **जुहवं** न देवा ।।५।।

पुनर्वै देवा अददु पुनर्मनुष्या उत ।
राजान सत्य कृण्वाना **ब्रह्मजाया** पुनर्ददु ।।६।।

—१०।१०६

६ जुहू—

१२ उन प्रथमजो (पूर्वजो)-सूर्य, वायु, अनन्त जल, प्रज्वलित उग्र अग्नि, सुखद ऋत-उत्पन्न आप-देवियों ने ब्राह्मण के विरुद्ध पाप के बारे मे कहा ।।१।।

सोमराजा ने प्रथम आकृष्ट हो ब्रह्मपत्नी को फिर से (वृहस्पति को) प्रदान किया। मित्र और वरुण उसके अनुगामी हुए। होता अग्नि हाथ पकडकर उसे ले आया।।२।।

"इसकी देह को हाथ से ही ग्रहण करना चाहिए, यह ब्रह्म-जाया है," यह सबने कहा। भेजे दूत के लिए यह नही हुई, जैसे क्षत्रिय का राष्ट्र रक्षित ।।३।।

—११।३

पुराने देवो और तपस्या मे बैठे उन सात ऋषियो ने इसके बारे मे कहा —ब्राह्मण की भीमा पत्नी को ले भागना। (वह) परम व्योम मे दुर्व्यवस्था स्थापित करती है।।४।।

बिना पत्नी के ब्रह्मचारी (रह) विचरता वह देवताओ का अग होता है। सोम द्वारा लाई गई जुहू (पात्र) को जैसे देवो ने, वैसे ही (अपनी) पत्नी (जुहू) को वृहस्पति ने प्राप्त किया ।।५।।

देवो ने फिर उसे प्रदान किया, और फिर मनुष्यो ने (प्रदान किया)। राजाओं ने सच्चा करते ब्रह्मपत्नी को फिर प्रदान किया ।।६।।

—जुहू, १०।१०६

७ दक्षिणा—

१३ आविरभून्महि माघोनमेषा विश्व जीव तमसो निरमोचि ।
महि ज्योति पितृभिर्दत्तमागादुरु पन्था दक्षिणाया अदर्शि ।।१।।

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदा सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्व भजन्ते वासोदा सोम प्र तिरन्त आयु ।।२।।

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नर प्रयतदक्षिणासो' वद्यभिया वहव पृणन्ति ।।३।।

दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमर्यज्ञन्य सामगामुक्थशासं ।।५।।

स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो य प्रथमो दक्षिणया रराध ।।६।।

दक्षिणाश्व दक्षिणा गा ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यं ।
दक्षिणान्न वनुते यो न आत्मा दक्षिणा वर्म कृणुते विजानन् ।।७।।

७ दक्षिणा—

१३ इन (मनुष्यो) मे मघवा (धनवान्) सूर्य का महान् तेज आविर्भूत हुआ, उसने सारे जीवों को अन्धकार से निर्मुक्त किया। पितरो द्वारा दी गई बड़ी ज्योति आई। दक्षिणा का विस्तृत पख दिखाई पड़ा।।१।।

दक्षिणा वाले (दानी) ऊँचे द्यौ लोक में स्थान पाते हैं। जो अश्व दाता है, (वह) सूर्य के साथ (रहते हैं)। सोना देनेवाले अमरता को पाते है। हे सोम वस्त्र देनेवाले पास जा आयु को बढाते है।।२।।

देवो की पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। कजूसो को वे (देव) नहीं तृप्त करते। और जो बहुतेरे नर दक्षिणा मे तत्पर दोष से तृप्ति करते है ।।३।।

दक्षिणावान् (दानी) पहले निमन्त्रित होते है। दक्षिणावान् ग्रामणी श्रेष्ठ होता है। जिसने पहले (पहल) दक्षिणा दी, उसी को मै जनो का नृपति मानता हूँ ।।५।।

उसी को ऋषि, उसी को ब्रह्मा, उसी को यज्ञ-कर्ता, सामगायक, उक्थ (स्तुति) बोलनेवाला कहते हैं। वह शुक्र (अग्नि) के तीनो शरीरो को जानता है, जिसने पहले दक्षिणा से आराधना की।।६।।

दक्षिणा अश्व को, दक्षिणा गाय को देती है, दक्षिणा चन्द्र (चॉदी) और सोना है, जो उसे देती है। दक्षिणा अन्न को देती है, जो कि हमारा आत्मा (शरीर) है। (यह) जानकर (आदमी) दक्षिणा को कवच बनाता है ।।७।।

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते **भोजा** ।
इद यद्विश्व भुवन **स्वश्चैतत्** सर्व दक्षिणैभ्यो ददाति ।।८।।

भोज (भोजनदाता) न मरते न नष्ट होते, न क्लेश पाते, न भोज व्यथित होते हैं। यह जो सारे भुवन और यह स्वर्ग है, उसको उन्हे दक्षिणा देती है ।।८।।

भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा ।
भोजा जिग्युरन्त पेय सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूता प्रयन्ति ।।९।।

—१० ।१०७

भोज (सबसे) पहले ही सुरभि निवास पाते है, भोज सुवस्त्र बहू पाते है, भोज आन्तरिक पेय सुरा को पाते है। जो बिना बुलाये आक्रमण करते है, उन्हे भोज जीतते है ।।९।।

—दक्षिणा, १० ।१०७

८ निवावरी, सिकता—

१४ अभिक्रन्दन् **कलश** वाज्यर्षति पतिद्रिव शतधारो विचक्षण ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोविभि सिन्धुभिर्वृषा ।।११।।

८ निवावरी, सिकता—

१४ द्यौपति, विचक्षण, शतधार सोम शब्द करता कलश मे आता है। (वह) सुवर्ण-वर्ण पराक्रमी सिन्धुओ और मेषो के (लोमो) से मींजा जाता मित्र के घरो मे बैठता है।।११।।

अय मतवान्छकुनो यथा हितो व्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा **कवे** शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ।।१३।।

यह मेषलोम मे छाना जाता तरगित बेपर्वाह सोम शकुन की भाँति चलता है। हे कवि इन्द्र, तुम्हारे कर्म से द्यौ और पृथिवी के बीच शुचि सोम स्तुति द्वारा पूत होता है ।।१३।।

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पित ।
स्वर्जज्ञानो नभसाम्यक्रमीत् प्रत्नमस्य पितरमाविवासति ।।१४।।

—९ ।८६

द्यौ-चम्बी अन्तरिक्ष-पूरक द्रापि-पहने, भुवनो मे अर्पित यजनीय स्वर्ग-ज्ञाता (सोम) मेघ द्वारा आ, अपने पुराने पितर (इन्द्र) की सेवा करता है ।।१४।।

—**निवावरी**, ९।८

९. यमी वैवस्वती—

१५ ओचित् सखाय सख्या ववृत्या तिर पुरु चिदर्णव जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अभिक्षमि प्रतर दीध्यान ।।१।।

९ यमी विवस्वान्-पुत्री—

१५ (यमी)—विस्तृत समुद्र से आओ, सख्य के लिए (मै) सखा चुनना चाहती हूँ। विधाता ने विशेष ध्यान कर पृथिवी पर पिता की सन्तान रक्खी ।।१।।

न ते सखा सख्य वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ।।२।।

(यम)—"तेरा सखा (मै) इस सख्य (प्रेम) को नही चाहता, क्योकि तू सहोदरा होने से इसके अयोग्य है। विस्तृत द्यौ के धारक, सहस के पुत्र, असुर-वीर चारो ओर देख रहे है ।।२।।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्यजस मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धीय्यस्मे जन्यु पतिस्तन्वमा विविश्या ।।३।।

(यमी)—"वे अमर लोग यह एक मर्त्य (मर्द) की सतान तुझसे चाहते है। मेरे मन मे तू अपने मन को धारण कर, पत्नी का पति हो कर मेरे शरीर मे प्रवेश कर।।३।।

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृत रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभि परम जामि तन्नौ ।।४।।

(यम)—"जिसे हमने पहले कभी नही किया, सत्यवादी होते कैसे हम झूठा बोलेगे। जल के गधर्व और जल की योषा (स्त्री) वह हमारा परम सबध, वह हमारा बधुत्व है ।।४।।

यमस्य मा यम्य काम आगन्त्समाने योना सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्व रिरिच्या वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ।।७।।

(यमी)—"यम के प्रति मुझ यमी की कामन एक घर मे साथ सोने के लिए हो आई है। मै जाया की तरह पति के लिए शरीर खोलती हूँ। (आओ) मिलते रथ के चक्र की तरह (हम) मिले ।।७।।

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामय कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत् ।।१०।।

(यम)—आगे वह युग अवश्य आयेगे, जब भगिनियाँ अभगिनी बनेगी। (किसी) दूसरे वृषभ (सड-मुसड) का तकिया अपने बाहु को बनाओ। हे सुभगे, मुझसे अन्य को पति चाहो ।।१०।।

कि भ्रातासद्यदनाथ भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
कामपूता बह वेतद्रपामि तन्वा मे तन्व स पिपृग्धि।।११।।

(यमी)—(वह) "क्या भाई (है), यदि (उसके) होते (बहिन) अनाथ होवे ? क्या बहिन जो नाश को पाये ? कामवश हो मै यह बहुत बोल रही हूँ, (अपने) शरीर से मेरे शरीर को आलिगन कर ।।११।।

न वा उ ते तन्वा तन्व सपपृच्या
पापमाहुर्य **स्वसार** निगच्छात्।
अन्येन मत् प्रमुद कल्पयस्व न ते भ्राता
सुभगे वष्ट्येतत् ।।१२।।

(यम)—(अपने) शरीर से तेरे शरीर को मै नही स्पर्श करता, जो बहिन को अभिगमन करे (उसे) पापी कहते है। मुझसे भिन्न से तू प्रमोद प्राप्त कर, हे सुभगे, तेरा भाई यह नही चाहता ।।१२।।

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदय
चाविदाम ।
अन्या किल त्वा **कक्ष्येव** युक्त
परिष्वजाते लिबुजेव वृक्ष ।।१३।।

(यमी)—अफसोस है अफसोस यम, मै तेरे (भीतर) मन, हृदय नही पा सकी। जैसे वृक्ष को लता वैसे कटिबध की तरह दूसरी (स्त्री) तुझे आलिगन करेगी।।१३।।

अन्यमू षु त्व यम्यन्य उ त्वा परिष्वजाते
लिबुजेव वृक्ष।
तस्य वा त्व मन इच्छा स वा तवाधा
कृणुष्व सविद सुभद्रा ।।१४।।

—१० ।१०

(यम) हे यमी, दूसरे का अलिगन कर, दूसरा तुझे वृक्ष को लता की तरह आलिगन करे। उसके मन को तू चाहे और वह तेरे साथ मगलमय सबध करे।।१४।।

—यमी, १० ।१०

१६ सोम एकेभ्य पवते घृत के उपासते।
येभ्यो मधु प्रधावति ताश्चिदेवापि
गच्छतात्।।१।।

१६ किन्ही (पितरो) के लिए सोम छाना जाता है, कोई घृत का सेवन करते है । जिनके लिए मधु बहता है, हे उनके पास ही वह जाये ।।१।।

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये **स्वर्ययु**
तपो ये चक्रिरे महस्ताश्चिदेवापि
गच्छतात्।।२।।

तपस्या के कारण जो दुर्धर्ष है, तपस्या से जो स्वर्ग गये, जिन्होने महान् तपस्या की, उनके पास ही वह जाये ।।२।।

ये युध्यन्ते प्रधनेषु **शूरासो** ये तनूत्यज ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताश्चिदेवापि
गच्छतात्।।३।।

—१० ।१५४

जो युद्धो मे, लडते जो शूर शरीर छोडते है, और जो सहस्र दक्षिणा देनेवाले है, उनके पास ही वह जाये ।।३।।

—यमी, १० ।१५४

१० रात्रि—

१० रात्रि—

१७ रात्री वयख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभि ।
विश्वा अधि श्रियो धित ।।१।।

१७ रात्रि देवी ने आते हुए नेत्रो से बहुत देखा। उसने सारी शोभा को धारण किया।।१।।

[illegible] ॥२॥

देवी ने आते हुए (अपनी) [illegible] उषा को [illegible] किया और (उसने) [illegible] को [illegible] ॥३॥

[illegible] ॥४॥

[illegible] (यहाँ) मे [illegible] और पक्षी [illegible] वाले [illegible] भी [illegible] है ॥४॥

[illegible] ॥५॥

[illegible] (यहाँ) [illegible] अधकार [illegible] है । हे उषा [illegible] की तरह (उसे) हटा ॥५॥

—[illegible]

—[illegible] १०।१२७

११ लोपामुद्रा—

११ लोपामुद्रा—

१८ पूर्वीरह शरद [illegible] दोषावस्तोरुषसो जरयन्ती । मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्यु ॥१॥

१८ (लोपामुद्रा)—"पहिले वर्षो दिन रात, बुढ़ापा लाने वाली उषाओ को मै सहती रही। बुढ़ापा शरीर शोभा को भी नष्ट कर देता है। पति पत्नी के पास (कैसे) आए ॥१॥

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि । ते चिदवासुर्नह्यन्तमापु समू नु पत्नी० ॥२॥

"जो पुरा सत्यपालक थे देवों के साथ सच बोलते थे उन्होने चाहा पर अन्त नहीं पाया । फिर०" ॥२॥

न मृषा श्रान्त यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव । जयावेदत्र शतनीथमाजि यत् सम्यचा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥

(अगस्त्य)—हम व्यर्थ नही थके, जो कि देव लोग (हमारी) रक्षा करते है। हम सारे भोगो को पा रहे है। यहाँ (हम) सैकड़ो पाये यदि दोनो ठीक से प्रयास करे ॥३॥

नदस्य मारुधत काम आगन्नित आ जातो अमुत कुतश्चित् । लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धमति श्वसन्त ॥४॥

काम को मैंने रोका है, पर यहाँ–वहाँ कही से वह उत्पन्न होता है। लोपामुद्रा पति का सगम करती है। उसाँस लेती वह अधीरा धीर का चुबन करती है ॥४॥

—१।१७९

—लोपामुद्रा, १।१७९

१२ वसुक्र-पत्नी—

१६ विश्वो ह्यान्यो अरिराजगाम ममेदह **श्वशुरो** नाजगाम।
जक्षीयाद् **धाना** उत **सोम** पीपयात्
स्वाशित पुनरस्त जगायात् ।।१।।
—१० ।२८

१२ वसुक्र-पत्नी—

१६ दूसरे सारे मित्र आये, (पर) मेरा ससुर यहाँ नहीं आया, कि वह भुना दाना खाता, और सोम पीता, अच्छी तरह खाकर पुन (अपने) घर जाता ।।१।।
—वसुक्र-पत्नी, १० ।२८

१३ वाक्—

२० अह रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवै ।
अह मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।१।।

अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्ट देवेभिरुत मानुषेभि ।
य कामये तन्तमुग्र कृणोमि त **ब्रह्माण तमृषिं** त सुमेधा ।।५।।
—१० ।१२५

१३ वाक्—

२० मै रुद्रो, वसुओ के साथ मै आदित्यो और सारे देवो के साथ विचरण करती हूँ। मै मित्र और वरुण दोनो को धारण करती हूँ। मै इन्द्र—अग्नि और दोनो अश्विनो को (धारण करती हूँ) ।।१।।

मै स्वय ही देवताओ और मनुष्यो को पसद कर यह कहती हूँ "जिसे मै चाहती हूँ, उसे उग्र, उसे ब्रह्मा, उसे ऋषि, उसे सुमेध बनाती हूँ ।।५।।
—वाक, १० ।१२५

१४ विवृहा—

२१ अक्षीभ्या ते नासिकाभ्या कर्णाभ्या **छुबुकादधि** ।
यक्ष्म शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्‌ वाया वि वृहामि ते ।।१।।

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्य कीकसाभ्ये अनूक्यात् ।
यक्ष्म दोषण्यमसाभ्या बाहुभ्या वि वृहामि ते।।२।।
—१० ।१६३

१४ विवृहा—

२१ तेरी दोनो ऑखो से दोनो नाको से, दोनो कर्णो से, ठुड्डी के ऊपर से, मस्तिष्क से, जिह्वा से, शीर्षस्थान से तेरे यक्ष्म (रोग) को मै दूर करता हूँ ।।१।। (१२ ।६ ।१)

तेरी ग्रीवा से, धमनियों से, हड्डी के जोडो से, दोनो कन्धो से, दोनो बाहुओ से, हाथ से तेरे यक्ष्म को मै दूर करता हूँ।।२।। (१२ ।६ ।२)
—विवृहा १० ।१६३

१५ **विश्पला—**

२२ अभूदिद वयुनमोषु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण ।
धिय जिन्वा धिष्ण्या विश्पल, वसू दिवो' नपाता सुकृते शुचिव्रता ।।१।।

—१।१८२

१५ **विश्पला—**

२२ यह काम था। हे मनीषियो, खुश होओ, (अश्विनो) का घोडो वाला रथ आया। वह हृदयहारी, कमनीय, शुचिव्रत, द्यौ की सतान, सुकर्मा विश्पला के हितू है ।।१।।

—विश्पला, १।१८२

१६ **विश्ववारा—**

२३ समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया विभाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवा ईळाना हविषा घृताची ।।१।।

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
स जास्पत्य सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महासि ।।३।।

—५।२८

१६ **विश्ववारा—**

२३ प्रज्वलित अग्नि द्यौ लोक मे किरणो को फैलाता है, उषा के सामने विस्तृत शोभा देता है। हवि और नमस्कार के साथ देवो को पूजती **विश्ववारा** (सब वरो को लानेवाली) सुवा दिशा की ओर जाती है।।१।।

हे अग्नि, महान् सौभाग्य के लिए (शत्रुओ) को नाश करो। तुम्हारे प्रकाश उत्तम हो, दाम्पत्य (सम्बन्ध) को तुम सुनियमित करो। शत्रुता करनेवालो के तेज को नष्ट करो ।।३।।

—विश्ववारा, ५।२८

१७ **शची पौलोमी—**

२४ उदसौ सूर्यो अगादुदय मामको भग ।
अह तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहि ।।१।।

अह केतुरह मूर्धा'हमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतु पति **सेहानाया** उपाचरेत्।।२।।

मम पुत्रा शत्रुहणो'थो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि सजया पत्यौ मे श्लोक उत्तम ।।३।।

—१०।१५६

१७ **शची पुलोमा-पुत्री—**

२४ वह सूर्य उगा, (मानो) यह मेरा भाग्य उगा। उसे जानते मुझ विजयिनी ने पति को (अपने) बस मे कर लिया ।।१।।

मै केतु (ध्वज) हूँ, मै मस्तक हूँ। मै उग्र पच हूँ, मुझ दबग की इच्छा के अनुसार पति चले ।।२।।

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हैं, और मेरी दुहिता रानी है। मै सजया (जीतने वाली) हूँ। पति के पास मेरा उत्तम श्लोक (प्रशसा) है ।।३।।

—शची, पुलोमा-पुत्री, १०।१५६

१८ शश्वती—

२५ अन्वस्य स्थुर ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाण ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्म भोजन बिभार्षि ।।३४।।

—८।१

१८ शश्वती—

२५ फिर अस्थि-रहित विस्तृत लटकता इसका स्वस्थ (शरीर) सामने शश्वती नारी ने देखकर कहा "हे आर्य, (तुम) बढिया भोग धारण करते हो"।।३४।।

—शश्वती, ८।१

१६ शिखंडिनी काश्यपी—

२६ स नो मदाना पत इन्दो देवप्सरा असि।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ।।५।।

सनेमि कृध्यस्मदा रक्षस क चिदत्रिण।
अपादेव द्वयुमहो युयोधि न ।।६।।

—६।१४०

१६ शिखडिनी काश्यपी—

२६ वह हमारे मर्दो के पति हे सोम, तुम देव-भोजन हो। सखा को सखा की तरह (तुम हमारे लिए) अत्यन्त हित-ज्ञ होओ।।५।।

२०. श्रद्धा कामायनी—

२७ श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्धया हूयते हवि ।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।१।।

प्रिय श्रद्धे ददत प्रिय श्रद्धे दिदासत ।
प्रिय भोजेषु यज्वस्विद म उदित कृधि।।२।।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एव भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदित कृधि।।३।।

—१०।१५१

२० श्रद्धा कामायनी—

२७ श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित होता है, श्रद्धा से हवि होम की जाती है। एश्वर्य के शिख पर रहने वाली श्रद्धा को मै वचन से जतलाती हूँ ।।१।।

हे श्रद्धे, देनेवाले का प्रिय करो। हे श्रद्धे, देने की इच्छावाले का प्रिय करो। भोज देनेवालो (भोजो) का प्रिय करो। यज्ञ करनेवालो मे मेरे इस कथन को (पूरा) करो ।।२।।

जैसे देवताओ ने, उग्र असुरो मे (शत्रुता की) श्रद्धा की, ऐसी ही भोजो और यज्ञकर्ताओ मे हमारे कथन को करो।।३।।

—श्रद्धा, १०।१५१

२१ सरमा—देखो ६।१६

२१ सरमा—देखो ६।१६

२२. सार्पराज्ञी—

२२ सार्पराज्ञी—

२८ मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वती रोषधीरा रिशन्ताः ।
पीवस्वतीर्जीवधन्या पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृल ।।१।।

या देवेषु तन्वमैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्य पयसा पिन्वमाना प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ।।३।।

—१० ।१६९

२८ सुखमय वायु गायो पर बहे, वह बलदायक वनस्पतियो को खाय मोटा करने वाले आयु बढ़ाने वाले (जल) को पीये। हे रुद्र पैरो वाली (गायो) के लिए भोजन सुखमय बनाओ ।।१।।

जो गौवे अपने शरीर को देवो के लिए देती है जिनके सारे रूपो को सोम जानता है सन्तानवाली हो हमे दूध से पूर्ण करती उन (गायो) को हे इन्द्र (हमारे) गोष्ठ मे लाओ।।३।

—सार्पराज्ञी, १०।१६९

२३ रिपक्ता—देखो निपावरी १७।८

२३. रिपक्ता—देखो निपावरी १७।८

२४. सुदेवी—

२४ सुदेवी—

२६ यानि पत्नीर्विमदाय न्यूहथुराघ या याभिररुणीरशिक्षत ।
यामि सुदास ऊह्थु सुदेव्यं ताभिरूपु ऊतिभिरश्विना गत ।।११।।

—१।११२

२१. हे अश्विद्वय जिन सहायताओ द्वारा विमद के लिए तुम पत्नी लाये जिनसे लाल गाये प्रदान कीं, जिनसे सुदास के लिए सुदेवी को तुम लाये, उन सहायताओं के साथ आओ ।।१६।।

—कुत्स आंगिरस, १।११२

२५ सूर्या—

२५ सूर्या—

३० सत्येनोत्तभिता भूमि सूर्येणोत्तभिता द्यौ.।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रिति ।।१।।

३० सत्य द्वारा भूमि थामी गई, सूर्य द्वारा द्यौ थामा गया। ऋत (सत्य) द्वारा देव आदित्य द्यौ में स्थित हैं, द्यौ मे सोम आश्रय प्राप्त है ।।१।।

सोमेनादित्या बलिन सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामपस्थे सोम आहित ।।२।।

सोम से आदित्य बली हैं, सोम से पृथिवी महान् है। और इन नक्षत्रो के पास सोम रक्खा गया है।।२।।

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृत।।६।।

रैभी (ऋचाये) अनुदेयी, (बधू के साथ अनुदान की जानेवाली सखी) थी, नाराशसी (ऋचाये) (बहू की) दासी थी, सूर्या का बढिया वस्त्र गाथा से परिष्कृत था ।।६।।

चित्तिरा उपवर्हण चक्षुरा **अभ्यजन**।
द्यौर्भूमि **कोश** आसीद्यदयात् सूर्या पति।।७।।

जब सूर्या पति के पास गई, तो चिन्तन तकिया था, चक्षु अजन था। द्यौ-पृथिवी कोश थे ।।७।।

स्तोमा आसन् **प्रतिधयः** कुरीर छन्द **ओपश** ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगव ।।८।।

स्तोम चक्के के अरे थे, कुरील छन्द ओपश (सीसफूल) था। सूर्या के वर अश्विद्वय थे, अग्नि अगुआ था ।।८।।

सोमो **बधूयुरभवदश्विनास्तामुभा** वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शसन्तीं मनसा सविता ददात्।।९।।

सोम व्याह-इच्छुक था, दोनो अश्विद्वय वर थे। जब पति की कामना करने वाली सूर्या को सविता ने अश्विनो को मन से दिया ।।९।।

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुता छदि ।
शुक्रावनड्वाहावास्ता यदयात् **सूर्या** गृह।।११।।

जब सूर्या (पति के) घर गई, तो मन इसका शकट था, और द्यौ छत (ओहार) थी। दोनो शुक्र (रथ के) दो बैल थे।।११।।

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहत ।
अनो मनस्मय सूर्यारोहत् प्रयती पति।।१२।।

जाती हुई तेरे चक्के के धुरे में वायु पड़ा था। पति के पास जाती सूर्या *मनोमय रथ* पर चढी ।।१२।।

सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोर्जुन्यो पर्युह्यते।।१३।।

सविता ने जिसे प्रदान किया वह सूर्या की दहेज के आगे-आगे चला। मघा नक्षत्रों में बैल मारे गये अर्जुनी (फाल्गुनी) पूर्वा उत्तरा में वह लाई गई।।१३।। (१६।१७)

सुकिंशुक शल्मलि विश्वरूप हिरण्यवर्ण सुवृत सुचक्र।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोक स्योन पत्ये वहतु कृणुष्व।।२०।।

हे सूर्ये नाना रूप के सुनहले सुशोभित विशाल, सेमल के सुन्दर पहियेवाले (रथ पर) चढ़। इसप्रकार पति को सुखकर अमृत लोक जाने के लिए चल।२०।

उदीर्ष्वात पतिवती ह्येषा विश्वावसु नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषद व्यक्ता स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि।।२१।।

विश्वावसु (सारे वसुओं) को नमस्कार पूर्वक वाणी से मैं प्रार्थना करता हूँ—तुम यहाँ से उठो। यह पतिवती है। तुम पिता के घर में बैठी दूसरी होशियार कन्या की कामना करो वह तुम्हारा भाग है। उसके पति को ढूँढो।।२१।।

सुमगलीरिय वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्त वि परेतन।।२३।।

यह सुमगली वधू है, आकर इसे तुम देखो। इसको सौभाग्य प्रदान कर अपने-अपने घरों को जाओ।।२३।।

इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।।४२।।

दोनों (पति-पत्नी) यहीं रहें, न बिछुड़े, सारी आयु को प्राप्त करें। पुत्र और नातियों के साथ खेलते अपने घर मे प्रमुदित रहें।।४२।।

इमा त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा कृणु। दशास्या पुत्रनाधेहि पतिमेकादश कृधि।।४५।।	सिचन-समर्थ इन्द्र, इस (बधू) को सुपुत्रा सुभगा बनाओ। इसमे दस पुत्रो को धारण करो, (और) पति को ग्यारहवॉ बनाओ।।४५
सम्राणी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रुवा भव। **नदान्दरि** सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषे।।४६।। —१० ।८५	हे बधू, तू ससूर पर सम्राज्ञी हो, सास पर सम्राज्ञी हो। ननद पर सम्राज्ञी हो, देवरो पर सम्राज्ञी हो।।४६।। —सूर्या, १० ।८५

अध्याय १८

भाषा और काव्य

१ भाषा

१ भरद्वाज—

१ त्व ह्यग्ने प्रथमे मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता।
त्व सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै।।१।।

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीळ्य सन्।
त त्वा नर प्रथम देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन्।।२।।

—६।१।

१. भरद्वाज—

१ हे अग्नि, तुम इस बुद्धि के प्रथम मननकर्ता, अद्भुत होता हो। हे पराक्रमी, तुम (हमारे भीतर) दुर्धर्ष सारे बल पैदा कर दो, (जिससे) सारे दुश्मनों को हम पराजित करे।।१।।
स्तुति-योग्य होता, पूजनीय हो तुम पूज्यस्थान मे अन्न देते विराजो। महाधन की इच्छा करते तुम्हे प्रधान देव मानते (नर) तुम्हारा अनुगमन करते हैं।।२।।

—भरद्वाज, ६।१

२ रक्षोहा—

२ ब्रह्मणाग्नि सविदानो रक्षोहा बाधतामित।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये।।१।।

यस्ते गर्भममीवादुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्ट ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत्।।२।।

—१०।१६२

२. रक्षोहा—

२ राक्षसहन्ता (अग्नि) (हमारे) ब्रह्म (ऋचा, स्तुति) के साथ एक हो, यहाँ से तुम्हारे गर्भ मे जो रोग, योनिस्थान में दुर्णामा (रोग) है उसे हटाये।।१।।
जो तेरे गर्भ मे रोग, योनिस्थान मे दुर्णामा (उपद्रव) है, ब्रह्म (ऋचा) के साथ अग्नि उसे अ-मॉसभक्षी बना नष्ट कर दे।।२।।

—रक्षोहा ब्रह्म-पुत्र, १०।१६२

२. छन्द

३ कासीत् प्रमा प्रतिमा कि निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्।
छन्द किमासीत् प्रउग **किमुक्थं** यद्देवा देवमयजन्त विश्वे।।३।।

३ जब सारे देवो ने देव (प्रजापति) का यजन (भजन) किया, तब प्रमा (सीमा)-प्रतिमा क्या थी ? क्या निदान (कारण), क्या घी था परिधि (घेरा) क्या थी ? छन्द क्या था ? उक्थ (गान) क्या था।।३।।

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स बभूव।
अनुटुभा सोम **उक्थैर्महस्वान्**
बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत्।।४।।

अग्नि की सहकारी **गायत्री** हुई, **उष्णिक्** के साथ सविता एक हुआ। सोम **अनुष्टुप् से, उक्थो** द्वारा तेजस्वी (सूर्य), **वृहती** ने वृहस्पति के वाक्य को अवलम्ब दिया।।४।।

विराणिमत्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य
त्रिष्टुबिह भागो अह्न ।
विश्वान् **देवान्जगत्या** विवेश तेन
चाक्लृप **ऋषयो** मनुष्या ।।५।।

—१० ।१३०

विराट् मित्र-वरुण का अवलम्ब हुआ, इन्द्र और दिन के भाग का यहाँ त्रिष्टुप् (आश्रय) हुआ। सारे देवो मे जगती ने प्रवेश किया। उससे ऋषियो और मनुष्यो ने यज्ञ किया।।५।।

—यज्ञ प्रजापति-पुत्र, १० ।१३०

३ रचना

१ वाणी—

४ इन्द्र **वाणीरनुत्तमन्युमेव** सत्रा **राजान** दधिरे सहध्यै।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ।।१२।।

—७ ।३१

१ वाणी—

४ वाणी ने अप्रतिहत्-क्रोध इन्द्र को दबाने के लिए सदा के वास्ते राजा स्थापित किया। हर्यश्व (अश्वपति इन्द्र) के लिए भक्तो को बढाओ।।१२।।

—वसिष्ठ, ७ ।३१

२ सूक्त—

५ का ते अस्त्यरङ् कृति **सूक्त** कदा नून ते मघवन् दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वा याधा म इन्द्र शृणवो हवेमा।।३।।

—७ ।२९

२ सूक्त—

५ हे मघवन्, जब हम सूक्तो द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हारी क्या तुष्टि होती है? तुम्हारे लिए सारी प्रशसाये हम रचते हैं। हे इन्द्र, मेरी स्तुतियो को सुनो।।३।।

—वसिष्ठ, ७ ।२९

६ प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिद **सूक्त** मरुतो जुषत।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूय पात स्वस्तिभि सदा न ।।६।।

—७ ।५८

६ हे मरुतो, महानो का यह सूक्त है। (इसे) स्वीकार करो। हे कामनावर्षी, शत्रुओं को दूर हटाओ, तुम स्वस्तिपूर्वक सदा हमारी रक्षा करो।।६।।

—वसिष्ठ, ७ ।५८

३ श्लोक—

७ मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततन। गाय गायत्रमुक्थ्य ।।१४।।

—१।३८

३ श्लोक—

७ मुख मे श्लोक बनाओ, मेघ की तरह (उसे) फैलाओ, गायत्र गान गाओ ।।१४।।

—कण्व घोर-पुत्र, १।३८

४ साम—

८ उप नो देवा अवसा गमन्त्वगिरसा सामभि स्तूयमाना ।।२।।

—१।१०७

४ साम—

८ सामो द्वारा स्तुति किये जाते देव सहायता के साथ हमारे पास आये ।।२।।

—कुत्स आगिरस, १।१०७

६ प्रदक्षिणि दभिगृणन्ति कारवो वयो बदन्त ऋतुथा शकुन्तय ।
उभे वाचौ वदती सामगा इव गायत्र च त्रष्टुभ चानुराजति।।१।।

—२।४३

६ जैसे ऋतुओ मे पक्षी बोलते है, वैसे दाहिनी ओर कवि स्तुति करते हैं। गायत्र और त्रैष्टुप् को सामगायक, दोनो वाणियो को बोलता वैसे अनुरजन करता है ।।१।।

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।४३

१० प्रस्तोषदुप गासिषच्छ्रवत् साम गीयमान। अभि राधसा जुगुरत्।।५।।

—८।७०

१० स्तवन हो, गान हो इन्द्र, गीयमान साम को सुने। वह धन से हमारे ऊपर कृपा करे।।५।।

—कुसीदी कण्व-पुत्र, ८।७०

५ स्तोम—

११ अश्रय हि भूरिदावत्तरा वा वि जामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथासोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोम जनायामि नव्य ।।२।।

—१।१०६

५ स्तोम—

११ हे इन्द्राग्नि, सुना है तुम दामाद और साले से भी ज्यादा देने वाले हो। इसलिए सोम के प्रदान के समय तुम्हारे लिए मै नवीन स्तोम रचता हूँ ।।२।।

—कुत्स आगिरस, १।१०६

४ काव्य

६ उपमा—

१२ ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्ष निधिमन्तमच्छ।
ब्रह्मणा वे विदथ उक्थशासा दुसेव हव्या जन्या पुरुत्रा ।।१।।

६ उपमा—

१२ (अश्विद्वय) इसके लिए (सोम के) सिलबट्टे की तरह स्तुति करो शत्रु का बाधा दो, कजूस की तरह निधियुक्त वृक्ष को प्राप्त करो। ब्रह्मा की तरह यज्ञ मे उक्थ (गीत) गाने वाले हो, जन-दूत की तरह बहुतो के पुकारने लायक होओ ।।१।।

प्रातर्यावाण रथ्येव वीरा'जेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुभमाने **दपतीव** ऋतु विदा जनेषु ।।२।।

हे वीरो, प्रात जाने वाले रथियो की तरह तुम दोनो, दो जुडवा बकरो की तरह, दो सुन्दरियो की तरह शरीर से शोभा-युक्त, चतुर दम्पती की तरह जनो के पास आओ ।।२।।

शृगेव न प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभि ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाचा यात रथ्येव चक्रा ।।३।।

हे प्रधान (अश्विद्वय), सींग की तरह, दो खुरो की तरह, हर प्रात हमारे पास आओ। हे शक्तिशाली, चक्रवाक् की तरह या दो रथियो की तरह हमारे पास आओ।।३।।

नावेव न पारयत युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूना खृगलेव विस्रस पातमस्मान् ।।४।।

नावो की तरह हमे तुम पार कर दो, रथ की नाभि, चक्र, अरा की तरह (हमे पार कर दो) । कुत्तो की तरह शरीर को हानि से बचाओ, दो बैसाखियो की तरह हमे क्षति से बचाओ ।।४।।

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिक्षी इव चक्षुषा यातमवाक् ।
हस्ताविव तन्वे शभविष्ठा पादेव नो नयत वस्यो अच्छ ।।५।।

तुम वायु की तरह न जीर्ण होने वाले, नदी की तरह शीघ्रगामी, दो नेत्रो की तरह दर्शक हो, तुम हमारे पास आओ। दोनो हाथो की तरह तुम शरीर के सुखदाता, पैरो की तरह हमे श्रेष्ठ धन के लिए ले चलो ।।५।।

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यत जीवसे न ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ।।६।।

मुख मे ओष्ठो की तरह मधुर वचन बोलो, दो स्तनो की तरह जीने के लिए हमे दूध पिलाओ। दो नासिकाओ की तरह हमारे शरीर के रक्षक, दो कानो की तरह हमारे सुन्दर श्रोता बनो ।।६।।

हस्तेव शक्तिमभिसन्ददी न क्षामेव न समजत रजासि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्ती क्ष्णोत्रेणेव स्वधिति सशिशीत ।।७।।

दो हाथो की तरह हमे शक्ति प्रदान करो। द्यौ-पृथिवी की तरह लोको को मिलाओ। हे अश्विद्वय, ये वाणियाँ तुम्हे चाहती हैं, (उन्हे) शान की तरह तेज करो।।७।।

एतानि वामश्विनो **वर्धनानि** ब्रह्म **स्तोम गृत्समदासो अक्रन्।**
तानि नरा जुजुषाणोपयात बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ।।८।।

—२।३६

हे अश्विद्वय, गृत्समदो ने तुम्हारे बधावे ये मन्त्र ओर स्तोम बनाये । हे नरो, उनका सेवन करते (हमारे) पास आओ । सुन्दर वीरवाले हम सभा मे (तुम्हारी) बडाई कहे।।८।।

—गृत्समद, २।३६

१३ कि देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन् हरिरत्तवे दन् विपर्वशश्चकर्त **गामिवासि** ।।६।।

—१०।७६

१३ हे अग्नि, क्या देवो के विषय मे तुमने पाप किया, अनजान हो मै तुमसे पूछता हूँ। खेलते न खेलते सुनहले, बेदॉत के तुम जैसे गाय को तलवार वैसे ही पोर-पोर करके काट डालते हो ।।६।।

—सप्ति वाजभर-पुत्र १०।७६

१४ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिविषन्छुक्र आतत ।
सूरो न हि द्युता त्व कृपा पावक रोचसे।।६।।

१४ (हे अग्नि), तुम्हारा दीप्तिमान् उज्वल धूम द्यौलोक मे विस्तृत फेला है। हे पावक, कृपालु हो (अपनी) द्युति से तुम सूर्य की तरह प्रकाशते हो ।।६।।

अधा हि विक्ष्वीड्योसि प्रियो नो **अतिथि** ।
रण्व पुरीव जूर्य सूनुर्न त्रययाय्य।।७।।

—६।२

घरो मे तुम हमारे पूज्य प्रिय अतिथि हो। गढ मे वृद्ध जैसे प्रसन्न, सूनु की तरह रक्षा-इच्छुक हो ।।७।।

—भरद्वाज, ६।२

१५ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमान **परशुर्न** जिह्वा **द्रविर्न** द्रावयति दारु धक्षत् ।।४।।

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यन् छिशीत तेजो'यसो न धा ।
नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत।
नि केतवो जनाना न्यदृष्टा अलिप्सत।।४।।

—१।१६१ अगस्त्य

१५ तीक्ष्ण इसका आकार है, महान शरीर है, अश्व की तरह मुँह से तृण-काष्ट खाता है, कुठार की तरह जिह्वा को छोडता है, कलछी की तरह काष्ट को जलाते भगाता है।।४।।

रात्रि का सक्षिप्त और सुन्दर वर्णन देखिये—
गाये गोष्ठ मे बैठ गईं। मृग अपने स्थानो मे प्रवेश कर गये। आदमियो की आगे बुझ गईं। अदृष्ट चीजो ने मुझे लिप्त कर दिया ।।४।।

—अगस्त्य, १।१६१

घृणा न यो घ्रजसापत्मना यन्ना रोदसी
वसुना द सुपत्नी ।।७।।

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभि शुष्मै ।
शर्धो वा यो मरुता ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ।।८।।

—६।३

जो बिजली की तरह धारक जोडी किरणो, और अपने बलो द्वारा प्रकाशित होता है। मरुतो के वाणशिल्पी की तरह जो गया, ऋभु की तरह दीप्तिमान् (वह अग्नि) वेग से प्रकाशता है ।।८।।

—भरद्वाज, ६।३

५ कवि

१ वसिष्ठ—

१६ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमगिरस्तमा पथ्या अजीग ।।१।।

१ वसिष्ठ—

१६ द्यौपुत्री उषा चमकी, (वह) सत्य से अपनी महिमा आविष्कृत करती आई। अप्रिय द्रोही तम को दूर किया, श्रेष्ठतम अगिरा ने पथ को जगाया ।।१।।

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगु ।
जनयन्तो देव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थु ।।३।।

उषा की वे विचित्र दर्शनीय अमृत किरणे आईं, (और) दिव्य व्रतो को उत्पन्न करती अन्तरिक्ष को भरती उठी ।।३।।

एषा स्या युजाना पराकात् पच क्षिती परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनाना दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ।।४।।

यह वह द्यौ की दुहिता, भुवन की रक्षिका, उषा दूर से (रथ) जोडे, जनो के कामो को अवलोकन करती, तुरन्त पॉचो जनो के चारो ओर पहुॅचती है ।।४।।

वाजिनीवती सूर्यस्त योषा चित्रामघा राय ईशे वसूना ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ।।५।।

घोडियो वाली विचित्र प्रभा-युक्त सूर्य-पत्नी वसुओ और घन पर शासन करती है। (जरा-) जीर्ण करती, ऋषियो से प्रशसित, ऋत्विजो द्वारा स्तुति की जाती धनी उषा प्रकाशित होती है।।५।।

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषस वहन्त ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्न विधते जनाय ।।६।।

प्रकाशमान उषा को वहन करते विचित्र लाल अश्व दिखाई दे रहे हैं नाना रूपो वाली (वह) शुभ्रा रथ से जाती (सेवक) जन के लिए रत्न देती है ।।६।।

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रै ।
रुजद्दृह्ळानि ददुस्रियाणा प्रति गाव् उषस वावशन्त ।।७।।

वह सत्या सत्यो के साथ, महती महानो के साथ, देवी देवो के साथ पूज्या पूजनीयो के साथ, दृढ (दुर्गो) को भेदन करती, गौओ को (चारा) देती है । गाये उषा के लिए हुकारती हैं ।।७।।

नू गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हि पुरुषता निदे कर्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ।।८।।

—७।७५

हे उषा, हमे तुम गो-युक्त वीरो-युक्त रत्न दो, अश्व-युक्त बहुत भोग दो। हमारे कुश को पुरुषो की निदा से बचाओ। (देवताओ) तुम सदा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो ।।८।।

—वसिष्ठ, ७।७५

२ विश्वामित्र—

१७ उषो वाजेन वाजिनि प्रचेता स्तोम जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवति पुरन्धिरनुव्रत चरसि विश्ववारे।।१।।

१७ हे शक्ति से शक्तिमती, ज्ञानवाली, मघोनी उषा, स्तुति कर्ता के स्तोम (स्तुति) को ग्रहण करो। प्राचीन युवती, बहु बुद्धिवाली, सबके लिए वरणीया हे देवि (तुम) व्रता का अनुगमन करती हो। ।।१।।

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये ।।२।।

हे उषा, अमर देवि, सुनहले रथवाली, (तुम) मधुर वाणी प्रेरित करती हो। सुवर्णवर्णा तुम्हे सुशिक्षित बहुत वलशाली अश्व वहन करे ।।२।।

उष प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु ।
समानमर्थ चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व।।३।।

—३।६१

हे उषा तुम सारे भुवनो के ऊपर अमृत की ध्वजा सी अवस्थित हो। हे नवीना, एक से अर्थ पर विचरण करती चक्र की तरह तुम पुन पुन घूमो ।।३।।

—विश्वामित्र ३।६१

३ वामदेव—

१८ इदमु त्यत् पुरुतम पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नून दियो दुहितरो विभातीर्गातु कृणवन्नुषसो जनाया।।१।।

अस्थुरु चित्रा उषस पुरस्तान्मिता इव स्वरवो'ध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रन्छुचय पावका ।।२।।

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनी ।
अचित्रे अन्त पणय ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ।।३।।

यूय हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वै परिप्रयाथ भुवनानि सद्य ।
प्रबोधयन्तीरुषस ससन्त द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीव ।।५।।

क्व स्विदासा कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणा ।
शुभ यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न विज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ।।६।।

—४।५१

३. वामदेव—

१८ अन्धकार के बीच से पूर्व मे यह वह शक्तिमती अतिविशाल ज्योति उठी। निश्चय जनो का हित करती द्यौ की दुहिताये उषाये प्रकाशित हो रही हे।।१।।

यज्ञो मे खडे यूपो की तरह मित पूर्व मे विचित्र उषाये उगीं। बाधक अधकार के द्वार को खोलती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती है ।।२।।

तमनाशिका, मघोनी (धनवती) उषाये धन देने के लिए भोजो को चेताती है। पणि लोग अन्धकार के मध्य मे जागे बिना बेहोश सोये रहे ।।३।।

हे उषा देवियो, सोये दोपाये-चौपाये जीवो को जगातीं सत्य के जुडे अश्वो के साथ तुरन्त भुवनो के चारो ओर जाती हो।।५।।

जिसने ऋभुओ के विधान बनाये, वह कौन इनमे पुरानी है? (जब) शुभ्र उषाये विचरण करती है, तो वह अजरा एकसमान (होने से) पहचानी नही जातीं।।६।।

—वामदेव, ४।५१

१६ प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसु। दिवो अदर्शि दुहिता ।।१।।

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखाभूदश्विनोरुषा ।।२।।

१६ वह प्रशसित हर्षदा सुनायिका, अन्धकारनाशिनी, द्यौ की दुहिता अपनी बहिन (रात्रि) को हटाती दिखाई पड़ी।।१।।

घोडी सी विचित्र लाल, गायो की माता, तेजस्वी उषा अश्विद्वय की सखी हुई।।२।।

उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि।
उतोषो वस्व ईशिषे ।।३।।

हे उषा, तू अश्विद्वय की सखी है, या गायो (किरणो) की माता, या तुम धन की अधीश्वरी हो ।।३।।

यावयद्द्वेषसन्त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि।
प्रति स्तोमैरभूत्स्महि ।।४।।

द्वेषो को हटाती सी, तेरे बारे मे सोचते, हे हर्षिणी, हम स्तोमो (स्तुतियो) से तुझे मिलने के लिए जगते है ।।४।।

प्रति भद्रा अदृक्षत गवा सर्गा न रश्मय।
ओषा अप्रा उरु जय ।।५।।

गायो के झुड सी (उसकी) भद्र किरणे दिखाई दी । उषा ने अपने विस्तृत तेज से (विश्व को) भर दिया ।।५।।

आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तम।
उषो अनु स्वधामव।।६।।

—४।५२

हे विभावरि (प्रकाशवती), (अपनी) ज्योतिष भर के तुमने तम को दूर किया । हे उषा, अपनी प्रकृति-से रक्षा करो ।।६।।

—वामदेव, ४।५२

२० देखो ७।६

२१ विधु दद्राण समने बहूना युवान सन्त पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्य महित्वा' द्या ममार स ह्य समान ।।५।।

—१०।५५

२० देखो ७।६

२१ वहुत चक्कर काटते चन्द्रमा को युवा होते बूढे ने जगा दिया। देव के महत्वपूर्ण काव्या को देखो, जो कल जीवित था, वह आज मर गया ।।५।।

—वामदेव, १०।५५

४ भौम—

२१ अच्छा वद तवस गीर्भिराभि स्तुहि पर्जन्य नमसा विवास।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भ ।।१।।

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्व विभाय भुवन महाबधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्य स्तनयन् हन्ति दुष्कृत ।।२।।

४ भौम—

२१ हे इन वाणियो से बल की प्रशसा करो नमस्कारपूर्वक पर्जन्य की स्तुति करो। दानशील गरजता वृषभ (पर्जन्य) औषधियो मे वीर्य धारण करता है ।।१।।

वह वृक्षो को नष्ट करता, मानो राक्षसो को नष्ट करता है, महाबध से सारे भुवन को डराता है। वृष्टि वाले उनसे निरपराध भी भागते है, क्योकि पर्जन्य शब्द करते दुष्टो को मारते है ।।२।।

रथीव कशयाश्वा अभिक्षिपन्नाविर्दूतान् कृणुते वर्ष्या अह।
दूरात्सिहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्य कृणुते वर्ष्य नभ ।।३।।

रथी की तरह चाबुक से घोडो को हॉकता, (वृष्टि) दूतो को बढाता, जब पर्जन्य नभ को वर्षा-युक्त करता है, तो दूर से सिह की गर्जना उठती है ।।३।।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत **उदोषधीर्जिहते** पिन्वते स्व ।
इरा विश्वस्मै भुवनाया जायते यत पर्जन्य पृथिवी रेतसावति ।।४।।

वायु जोर से बहते हे, बिजलियॉ गिरती है औषधियॉ उगती है, आकाश भर जाता है। सारे प्राणियो के लिए पृथिवी समर्थ होती है, जबकि पर्जन्य पृथिवी को (अपने) वीर्य से सहायता करता है।।४।।

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपा स न **पर्जन्य** महि शर्म यच्छ ।।५।।

जिसके व्रत (कर्म) से पृथिवी नम्र होती है, जिसके व्रत से खुरो वाले पोषित होते है, जिसके व्रत से औषधियॉ नाना रूप की पैदा होती है, वह पर्जन्य हमे महाशरण प्रदान करे ।।५।।

दिवो नो वृष्टि मरुतो ररीध्व प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धारा ।
अर्वाडेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिचन्नसुर पिता न ।।६।।

हे मरुतो, द्यौ से हमे वृष्टि प्रदान करो। वर्षा करने वाले अश्व (मेघ) की धाराओ को बरसाओ। हे पर्जन्य इस कडक के साथ पास आओ। हमारा पिता असुर जल से सेचन करे ।।६।।

अभिक्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परिदीया रथेन ।
दृति सु कर्ष विषित न्यच समा भवन्तूद्वतो निपादा ।।७।।

आवाज करो, कडको गर्भ धारण करो, जलवाले रथ से परिभ्रमण करो। चमडे (मशक) को खींचो, बॅधे को मुक्त करो, (जिसमे) ऊभड-खाबड प्रदेश समतल होवे।।७।।

महान्त कोशमुदचा निर्षिच स्यदता **कुल्या** विषिता पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावा पृथिवी व्युन्धि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ।।८।।

—५।८३

महाकोश (मेघ) को ऊपर उठा सीचो, बन्धन-मुक्त कुल्याये (नदिया) आगे बहे। जल से द्यौ और पृथिवी को भिगो दो, गौओ के लिए सुन्दर प्याउ हो ।।८।।

—भौम आत्रेय ५।८३

परिशिष्ट २

नाम-सूची

अगस्त्य—५।१२ (वसिष्ठ), ५।६ (के लिये विश्पला को), ५।६२-६६, ६।१६ (लाल घोडे जोडना)

अगिरा—५।७५ (प्रथम सुकृति), ७।११ (पूर्वज)

अघा—१७।३० (१३) (मघा)

अज—१०।२१ (यमुना के पास सुदास के करद), ५।१५

अतिथिग्व—(देखो दिवोदास भी)—२।७, १३, ५।५० (कुत्स और आयु साथी)

अत्रि—५।४८, ६।१ (दध्यड, अगिरा, प्रियमेध, कण्व, मनु पूर्वज), ६।१० (और गविष्ठिर, कण्व, त्रसदस्यु, वसिष्ठ साथ)

अथर्वा—५।७४ (मनु, दध्यड्के साथ), ५।७५ (प्रथम यज्ञकर्ता)

अध्रिगु—२।१७, १२।१५ (के रक्षक अश्विद्वय)

अनु (जन)—१।५, २।११ २।१३, २।१४, २।१५, १०।१७।१४ (सुदास के शत्रु अनु ओर द्रुह्य के ६० हजार ६०६६ आदमी परुष्णी पर मरे), १०।१७ (सुदास के शत्रु परन्तु दस राजाओ नही, जिन्होने कि परुष्णी पर अधिकार किया था)

अपाला—३।८ (सूर्यत्वक् हुई)

अभ्यावर्ती—६।१६ (चायमान पार्थवो के सम्राट् ने बधुओ-सहित दो रथवाहन बीस गाये भरद्वाज को दी), ६।३५

अयास्य—६।१६ (अगिरस् नवगव)

अरुणी—१०।२३ १७।२६ (को विमद के लिये अश्विनी लाये)

अर्धदेव—६।३०।८, ६ (त्रसदस्यु)

अर्बावत्—१४।२१ (पूर्व वाले देश मे सोम छानना)

अलिन—२।१८, १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्य, ७ पक्थ, ८ भलान, ६ द्रुह्य, ७ पक्थ, ८ भलान, ६ विषाणी, १० शिव)

अशुष—५।४६ (कुत्स-शत्रु दस्यु, शुष्ण, व्यस, पिप्रु, नमुचि के साथ), ५।५२, ६।२ (शुष्ण के साथ बध), ८।२२ (श्वस्न, शुष्ण, व्यस, पिप्रु, रुधिक्रा का मारा जाना) ८।२२ (शुष्ण, कुयव का कुत्स के लिये मारा जाना)

असिक्नी (चनाव)—१।१०, ५।४१

आगिरस—६।१६।८ (अयास्य, नवग्व भी), ६।१६।१० (घोर भी)

आनव (अनुलोग)—२।१२, २।१६ (ध्रोधवाक्), १०।१७।१३ (सुदास-शत्रु के स्थान को त्रित्सुओ को दिया, देखो अनु भी)

आपया— १।६ (मर्कंडा नदी)

आयु—५।५० (कुत्स-अतिथिग्व का साथी), ५।८० (प्रियमेधो मे, मेघातिथि की ऋचा मे), ६।१४ १७ (कुत्स अतिथिग्व का साथी)

आर्जीक—३।१६ (मे सोम), १४।२१ (मे सोम छानता, शायद ऋचीक देश), १४।१६ (से सोम आये)

आर्जीकीया— १।१०

आर्जुनेय— (देखो कुत्स)

आर्य—२।१८, ६।५७ (और दास अमित्रो को इन्द्र ने मारा), १४।१८ (सोमपान सबको आर्य बनाता)

इन्द्र—६।१७।२ (शिप्रवान् वज्रभृत्) ६।५७।१८ (मायावान्), ३।३२।३ (सुशिप्र), ३।४५।१४ (मयूररोम अश्वो वाला), ४।१५।१४ (आयुधधारी), १५।३५।६ (वाद्यो से स्वागत), १०।३।१४ (पकाये सॉडो को खाता) १०।६३।८ (सुनहली दाढी-मूछोवाला)

उदब्रज—(जहॉ वर्ची और शबर मारे गये)

उर्वशी—५।१८ (वसिष्ठ), ७।७।१० (पुरूरवा का प्रत्याख्यान करती), ७।७।१७ (से पुरूरवा की प्रार्थना), १७।४ (स्त्रियो का सख्य भेडियो का हृदय), १७।५ (के लौटने के लिये पुरूरवा की प्रार्थना)

उशना—२।८, ५।७५ (काव्य, गोतम के सूक्त मे), १७।८।७ (को अश्विद्वय ने उबारा)

ऋजिश्वा— ८।१२ (के लिये पिप्रु, मृगय, शूशुवान को मारा, ५० हजार कृष्णो को नष्ट किया, पुरो को ध्वस्त किया), ८।४० (वैदथी, पिप्रुमृगय-हन्ता), ८।४३ (औषिज ने पिप्रु के ब्रज को नष्ट किया), ८।४४ (वैदथी के लिए पिप्रु को मारा, गौरिवीति के स्तोमो से बढावा पाकर) ८।४५ (के लिये दस्यु-हत्यो मे पिप्रु को नष्ट किया), ८।४६ (ऋजिश्वा द्वारा वगद के सौ पुरो को नष्ट किया), ८।४७ (ऋजिश्वा ने कृष्णगर्भो को मारा), ८।४८ (ऋजिश्वा ने मायी असुर पिप्रु के गढ नष्ट किये), ८।४२ (वैदथिन के लिये पिप्रु, मृगय, शूशुवान् तथा ५० हजार कृष्ण मारे), ८।४३ (औशिज ऋजिश्वा ने पिप्रु के ब्रज नष्ट किये), ८।४५ (की रक्षा दस्युहत्या मे पिप्रु को मार कर की), ८।४६-८७,, ६।३८ (का वगृद के सौ पुरो का नष्ट करना)

ऋजा—५।८१।२२

ऋजाश्व—५।५८ (को पिता ने अधा किया)

ऋणचय—६।१८।१२ (रुशमोने चार हजार गाये वभ्रु को दी), ६।१८।१४ (रुशमो के इस राजा ने वभ्रु को चार हजार घोडे दिये)

एतश—२।५, ५।८१ (को मारा)

औचथ्य (दीर्घतमा)—५।६७, ५।६८

कक्षीवान्—५।५७-६१, ५।६१ (ने असुर की सौ गाये पाई), ५।६१।२-४ (को दशरथ ने १० वधुये-दासियॉ और ६० हजार गाये दीं), ५।६१।४ (ने घोडे पाये)

कण्व—२।६ (तुर्वश यदु के), ५।७८ (मेधातिथि के सूक्त मे), ५।८० (कण्वो की तरह भृगु लोग), ५।८१।१६ (भृगु लोग, सूर्य भी) ७।२, ८।३, ९।१ (और दध्यड्, अगिरा, प्रियमेध, मनु, पूर्वज),

करज— ८।३६ (और पर्णय को महान वृत्रहत्या मे मारा), ८।४ (पर्णय को अतिथिग्व के लिए मारा), ८।४ (पर्णय को अतिथिग्व के लिए मारा), और ६।३८ (०), ६।३६ (और पर्णय को वृत्रहत्या=शबर युद्ध मे मारा)।

कवष—२।१३ (श्रुत, वृद्ध), ३।१७, १०।१७ (सुदास-शत्रु, द्रुह्युओ का नेता बृद्ध श्रुत कवष परुष्णी मे डूबा), ६।१३ (दाता त्रसदस्यु)

कवि—२।१८ (चायमान), (देखो चायमान भी)

कशु चैद्य—६।३५।२ (ब्रह्मातिथि का दाता)

काण्व—५।८१ (मेधातिथि के सूक्त मे)

काव्य—५।७५ (उशना गोतम के सूक्त मे)

कीकट—४।५ (देश)

कीनाश—५।४५ (कृषि देवता)

कुत्स—(ऋषि)—५।८५

कुत्स—२।८, ५।४६ (-विरोधी, शुष्ण अशुष कुयव) ५।५० (आयु, अतिथिग्व का साथी), ५।८१ आर्जुनेय ने शुष्ण की चरिष्णु गढी= पुरको नष्ट किया),

८।३३-३७, ४१ (दस्युओ को मारा), ८।८५-८७, ६।११ (सारथी के लिये इन्द्र ने शुष्ण को मारा) ६।१२ (कुत्स के साथ रथ चला), ६।१३।६ (कुत्स की रक्षा की, श्रुतर्य की), ६।१३ (आर्जुनेय और तुर्वीति तथा दभीति की रक्षा की, ध्वसन्ति पुरुषन्ति की रक्षा की), ६।१४ (कुत्स, आयु, अतिथिग्व की रक्षा की, हजारो पुरु और तुर्वयाण को नष्ट किया), ६।४३ (के लिये शुष्ण को मारा), १७।८ (जैसे कुत्स विशो को पाता)

कुभा—१।१०, १।१३

कुभार—५।३६ (सोमक), ५।३६।७-६ (साहदेव्य)

कुयव—५।४६ (के विरोधी दास), ५।८६ (शुष्ण, पिप्रु वृत्र शबर भी), ५।८७ (कुयवकी दो स्त्रियॉं, क्षीर से स्नात) ८।२१ (और शुष्ण, पिप्रु वृत्र को मारा), ८।३० (और दास शुष्ण को आर्जुनेय कुत्स के लिये मारा), ८।३६ (की दो पत्नियॉं शिफा के किनारे क्षीर स्नात)

कुरुश्रवण त्रासदस्यव—६।३५ (सम्राट् दाता सौभरि के, राजा कुरुश्रवण त्रासदस्यव मधिष्ठ) ६।३५

कुशिका—४।२६ (अग्नि परिचारक युग-युगम), ५।२६ (विप्र, अग्नि की सेवा की), ५।२६, ५।२६।११ (सुदास के अश्व के लिये), ५।२६ (कुशिको के साथ विश्वामित्र ने सिन्धु पार किया)।

कुशिक—१०।२५ (कुशिको के साथ इन्द्र ने सुदास को नदी पार कराया), १०।२६ (कुशिको ने युग-युग वैश्वानर अग्नि की सेवा की), १०।२६ (कुशिको, सुदास के घोडे को धन के लिये छोडो, राजा शत्रु को मारे, पूर्व-पश्चिम-उत्तर पृथिवी मे यजन करे), १५।६२

कुशिकास—५।२६ (कुशिकस्य सूनु)-५।२६ (०)

कृत्व—१४।२१ (कुत्वो मे सोम का छानना)

कृप—५।२१ (रुशम, श्यावाक, स्वर्ण के साथ), ६।३ (और रुम, रुशम, श्यावाक को इन्द्र ने खुश किया)

कृष्ण—३।१२ (दस्यु)

कृशणत्वक—१।१८, ८।२ (=दास, अव्रत)

कृष्णयोनि—१।१७ (=दास) ३।१३ (दास), ५।५१, ८।१ (दासीर)

कृष्णिय—५।६० (अश्विनो के कृपा पात्र), १२।१०, १७।११ (विश्वक के लिये, अश्विद्वय विष्णापू को लाये)

कृश—१७।८ (८) (को अश्विद्वय ने बढाया)

कौरयाण—(देखो पाकस्थामा)

कौलितर—(देखो शबर)

क्रुम—१।१०, १।१३ (कुर्रम)

क्षिति, पच—५।६६

गर्ग—६।१ (दाता प्रस्तोक)

गगा—१।१०

गधारी—५।६१ (को रोमश भेडे)

गुग—८।५३, ६।३६ (से अतिथिग्व वृत्रतुर को धन, अन्न दिलवाया)

गृत्समदास—५।४७—५६, १८।१२ (गृत्समदो ने ब्रह्म स्तोम बनाये)

गैरिक्षित—६।३१ (त्रसदस्यु के दस घोड़े)

गोमती—१।१० (गोमल)

गोतम—५।३३ (पिता, वामदेव के), ५।७७ (कक्षीवान् के सूक्त मे), ५।७३-७ (रहूगण)

घोषा—५।६० (पिता के घर बैठी पति के लिये झुराती), ११।२० (राजा की दुहिता), १२।१० पिता के घर मे झँखती ने पति पाया, १७।६-११ (मे भी)

घायमान—२।१८ (कवि), १०।१४ (कवि पशुपरुश्णी के पास पृथिवी पर गिर कर सदा के लिये सो गया, सुदास का प्रतिद्वद्वी), (देखो अभ्यावर्ती)

चित्र—१।६।४१ (सरस्वती तटे)

चुमुरि—५।५३ (दस्यु धुनि के साथ दभीति के शत्रु), ८।१६ (औ धुनि, पिप्रु शबर शुष्ण को मारा)

च्यवान—१३।१० (से वव्रि को द्रापि की तरह छुडाया)

जना—१४।२१ (पॉचो जनो—यदु-तुर्वश-द्रुह्यु-अनु-पुरु—मे सोम सवन)

तुर्वयाण—६।१७ (और सुश्रवस् को कुत्स, अतिथिग्व आयु तरुण महाराज के लिये नष्ट किया)

तुर्वण—२।१२ (जन)

तुर्वश—१।५, २।४, २।६ - ८, २।१०-१३ २।१५, ५।६४ (और याद्व साथी जन), ८।११ (और यदु को पश्चिम से लाये), ६।३६ (को अतिथिग्व के लिये परास्त किया), ६।३७ (और यदु को दिंवोदास के लिये नीचा करना), १०।१४ (दस राजाओ मे यक्षु, मत्स्य, भृगु द्रुह्यु पक्थ, भलान, विषाणी, शिव)

तुर्वीति—२।५ (यदु), ८।११ (नववास्त्व वृहद्रथ दस्यु को दबाते अग्नि), ६।१३ (और दभीति, कुत्स ध्वसन्ति, पुरुषन्ति की रक्षा की)

तृष्टामा—१।१०

तृत्सु—२।२, २।१२, २।१८, ५।१२ (विश), ५।१५ (यमुना पकडी), ५।२३ (सफेद जूडाधारी), १०।१ (वसिष्ठ के पुरोहित होने से पहले ये भरत, अर्भक थे, जिनकी प्रजा वसिष्ठ के पुरोहित होने पर बढी, त्रित्सु भरत भी), १०।२ (त्रित्सु इन्द्र द्वारा नीचे बनाये जल को पार हुए, दुर्मित्रो ने सुदास के लिये सारा भोजन छोड दिया), १०।१४ (त्रित्सुओ के लिये आर्य की गाये दी, परुष्णी को दुश्मनो ने पकडा) १०।१५ (श्वित्यच=सफेद और कपर्दी त्रित्सु), १०।१७ (त्रित्सुओ के लिये अहनो के गय=गृह और मृध्रवाच पुरु के गाय को जीता, गौ लुटेरे ६ हजार और ६०६६ मर कर सो गये), १०।२०।४ (त्रित्सुओं की रक्षा की), १०।२०।६ (त्रित्सुओ के साथ दस राजाओ द्वारा बाधित सुदास की रक्षा इन्द्रवरुण ने की), १०।२१ (त्रित्सु और जमुना इन्द्र के पास आये, यहॉ भेद को नष्ट किया, अज, शिग्रु और यक्षु सिरपर बलि लेकर आये)

त्रसदस्यु—३।१८ (पौरुकुत्स्य अर्य, सत्पति, पचास बधू-दाता), ६।२६ (पुरु पौरुकुत्सि त्रसदस्यु की वृत्र हत्या=शबरयुद्ध मे रक्षा की), ६।३० (दौर्गह मे सात ऋषियो ने त्रसदस्यु से यज्ञ कराया), ६।३०।६१ (पुरुकुत्सानी ने वृत्रहा अर्धदेव राजा त्रसदस्यु को पाया), ६।३०।६१ (पुरुकुत्स्य गैरिक्षित त्रसदस्यु के दस घोडे मुझे बहन करे), ६।३२ (पुरुओ से दस्युओ के लिये अभिभव प्रदान किया), ६।३३ (पौरुकुत्स्य अर्य, सत्पति, मघिष्ट त्रसदस्यु ने सुवास्तु के तट पर ५० बधुऍ, २१० श्याव सोभरि को दीं), ६।४१ (की रक्षा पूर्भिद्या=शबर-युद्ध मे किया)
त्रसदस्यु-पुत्र—(देखो कुरुश्रवण)

त्रासदस्यव—६।३ (देखो कुरुश्रवण भी)

त्रिपस्त्य—७।१२

त्वष्टा—२।१४

त्वाष्ट्र— ८।६ (विश्वरूप को मारना)

दधिक्रा—१७।२६ (दिवोदास का घोडा)

दधीचि—५।७६ (की अस्थियो से इन्द्र ने ६६ वृत्रो को मारा) (देखो दध्यङ् भी)

दध्यङ्—५।७४ (अथर्वा और मनु के साथ), ६।१ (प्रियमेध कण्व, अत्रि, मनु भी पूर्वज)

दभीति—५।५३ (के शत्रु-दस्यु चुमुरि और धुनि) ८।१८ (के लिये ३० हजार दासो को सुला दिया) ६।१३ (और तुर्वीति, कुत्स, ध्वसति, पुरुषति की रक्षा की)

दशरथ—५।६१ (की ४० हजार लाल गाये ले जाते)

दश राजा—५।२३ १०।१३ (दश राजाओ द्वारा बाधित सुदास और त्रित्सु), १०।१३।७ (अयज्वा दश राजा युद्धक्षेत्र मे जमे), १०।१४ (ये दस राजा थे—१ तुर्वश, २ यक्षु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ६ विषाणी, १० शिव, जिन्होने परुष्णी को पकडा)

दस्यु—३।५ (वृत्र), ३।१२ (अनास) ३।१७ (विश) ६।६ (पणि), ७।५ (के लिये मनु को लोक दिया) ८।६।१६ (को नाश करते), ८।७ (अकर्मा अमन्तु अन्यव्रत, अमानुष), ८।११ (को तुर्वीति के लिये दबाया, धनी को मारो), ८।६ को मार कर आयसी पुरो को नष्ट करना), ८।१३ (दस्यु से लडने के लिये) ८।१४

दाशराज्ञ— ५।१७ (सुदास, वसिष्ठा), ५।२३ (दस राजा), १०।३ (मे सुदास की रक्षा वसिष्ठो के ब्रह्म द्वारा इन्द्र ने की) १०।१३ (मे दस राजाओ द्वारा बाधित सुदास ओर त्रित्सु, दस राजा अयज्यु युद्ध के लिये एकत्रित), १०।१४ (मे शत्रु १ तुर्वश, २ यक्षु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ६ विषाणी, १० शिव थे, जिस मे आर्य की गाये त्रित्सुओ को मिली, शत्रुओ ने परुष्णी को पकडा, कवि चायमान गिर कर लेट गया), १०।१५ (मे सुदास की रक्षा इन्द्र-वरुण ने की श्वित्यच, कपर्दी, त्रित्सु लडे), १०।१६ (मे सुदास के लिये नदियो को गाध और सुपारा बनाया, शिम्यु को मारा), १०।१७ (दोनो वैकर्णो के २१ जनो को गिरया, श्रुत कवष को पानी मे डुबाया, अनु-द्रुह्य को मारा, मे त्रित्सुओ के लिये अनु के स्थान को जीता, मृध्रवाच पुरु को हराया, मे ६० हजार और ६०६० गाय लुटेरे अनु और द्रुह्य सदा के लिये सो गये), १०।१८ (भेद को मारा), १०।२० (गौ लूटने की इच्छा वाले पृथु, परशु पूर्व की ओर गये, दास और आर्य शत्रु मारे और सुदास की इन्द्रावरुण ने रक्षा की), १०।२०।२-३ (जिस युद्ध मे आदमी ध्वजा फहराते जाते है, जिस युद्ध मे कोई चीज प्रिय नही होती, जहॉ सुख देखने वाले भुवन भयद होते, भूमि अन्त तक ध्वस होती दिखाई देती है, द्यौ लोक तक कोलाहल उठता है), १०।२०।४ (वहॉ भेद को मार कर सुदास की इन्द्रावरुण ने रक्षा की) १०।२०।८ (दाशराज्ञ मे चारो ओर से घिर सुदास की इन्द्रावरुण ने सहायता की, जिसमे गोरे कपर्दी त्रित्सु लड रहे थे), १०।२०।६ (कोई शत्रुओ को मारता, कोई सदा व्रतो की रक्षा करता),—(देखो दश राजा भी)

दासा —३।१४ (सौ), ३।१६ (नीच वर्ण), ५।६६ (का सिर काटना), ५।४२।१५ (वर्ची), ५।४२ (कोलितर शबर), ८।७ (दस्यु, अन्यव्रत), ८।१५-१७ (अधर वर्ण, नमुचि को मनु के लिये मारना), ८।१४ (ने स्त्रियो को आयुध बनाया, उसकी अबला सेना) ६।५७ (और आर्य दोनो अमित्रो को इन्द्र ने मारा)

दासी—३।१५, १७ (= दासीय, विश), ५।१० (दासी सात पुरियो को पुरुकुत्स के

लिये तोडी), ६।२५ (दासीय सात शारदी पुरो को नष्ट किया)

दासीर—१।१७ (=दासो की), ३।१३, ५।५१ (=कृष्णयोनि)

दिवोदास—१।१६, ५।७, ५।३५ (अतिथिग्व के लिये सौवी पुरी रक्खी), ५।४६ (६६ पुर ध्वस) ५।५८ (और भरद्वाज), ६।५ दिवोदास ऋणच्युत को सरस्वती ने वध्र्यश्व को दिया), ६।६ (अतिथिग्व से शम्बर का धन भरद्वाज ने पाया), ६।३६ (=अतिथिग्व), ६।३७ (के लिये तुवर्श और याद्व को हानि पहुँचाया), ६।३८ (के लिये शबर, तुर्वश, यदु को पराजित करना), ६।३६ (अतिथिग्व के लिये करज, पर्णय को मारना), ६।४० (अतिथिग्व वृत्वतुर के लिये गुगुओ को करद बनाना, वृत्रहत्या मे पर्णय और करज को मारना), ६।४१ (दिवो-दास के लिये, भरद्वाज के लिये अश्विनो का आना), ६।४२ (अतिथिग्व दिवोदास की शबर हत्या मे रक्षा करना), ६।४४ (अथितिग्व के लिये अमर्म का सिर काटना कुत्स के लिये शुष्ण को मारना), ६।४५ (पुरु दिवोदास के लिये ६० पुरो का तोडना अतिथिग्व के लिये शम्बर को गिरि से नीचे गिराना) ६।४६ (दिवोदास, भरद्वाज के लिये धन देना), ६।४७ (दिवोदास के लिये भारत अग्नि का आना), ६।४८ (दिवोदास के लिये शबर को मारना), ६।४८ (दिवोदास अतिथिग्व की रक्षा करते शबर की ६६ पुरियो को नष्ट करना, सौवी को प्रवेश लायक बनाना), १४।१७ (के लिये सोम से मस्त इन्द्र ने शवर की ६६ पुरियॉ नष्ट की तुर्वश-यदु को पराजित किया)

दीर्घतमा—६७-७२ (औचथ्य)

दृषद्वती—१।६

देवक—८।५३ (मान्यमान को इन्द्र ने मारा, शबर को नष्ट किया), ६।१५ (मान्यमान और शबर को मारा)

देववात—६।२०।२ (और देवश्रवा भारत)

देवश्रवा—६।२०।२ (भारत देवश्रवा और देवदास), ६।२०।३ (जनो को वश मे करनेवाला), ६।२०।५ (की वृषद्वती, आपया, सरस्वती मे धन की प्रार्थना)

दैववात—२।६ (वृचीवत) (देखो सृजय भी)

दौर्गह—६।३० (बध्यमान मे हमारे पितर सात ऋषियो ने त्रसदस्यु से यज्ञ कराया)

द्रुह्य—१।५, २।११ १२, २।१३ (के ६६ हजार ६६ मरे), १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ पक्थ, ७ मलान, ८ अलिन, ६ विषाणी, १० शिव), १०।१७ (वृद्ध श्रुत कवष को पानी मे डुबाया, फिर द्रुह्यु को वज्रबाहु ने मार भगाया), १०।१७।१४ (गाय लुटेरे द्रुह्यु और अनु के ६० सौ और ६०६६ आदमी मर कर सो गये)

धुनि—५।५३ (दस्यु और चुमुरि दभीति के शत्रु), ८।११ (और चुमुरि, प्रितु, शुष्ण, शबर को मारा)

ध्वसन्ति—६।१३ (पुरुषन्ति, कुत्स, तुर्वीति, ओर दभीति की रक्षा की)

नमुचि—५।५२ (और श्वशण, शुष्ण, अशुष, व्यस, पिप्रु रुधिक्रा के साथ), ८।१५ (दास को मनु के लिए मारा), ८।१६,१७ (दास नमुचि का सिर काटा), ८।२२ (को मारा)

नर्यं (तुर्वश)—२।५ (तुर्वश), ८।८५ (और कुत्स, श्रुतर्य भी), ६।१२ (और कुत्स, श्रुतर्य की रक्षा की)

नवग्व—६।१६।८ (अगिरस अयास्य)

नववास्त्व—८।११ (नववास्तुवाला वृहद्रथ तुर्वीति)

नहुष—७।८ (की बलिहृत विश्), ७।६ (विशुपति), ७।१० (नहुष-पुत्र ययाति)

नैचाशाख—४।५ (कीकट देश मे)

पक्थ—२।१७, १८, १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ दुह्यु, ७ भलान, ८ अलिन, ६ विर्षाणी, १० शिव), १२।१५ (की रक्षा अश्विनो ने की)

पणि—१।२ (जिनकी निधि गुहाहित), ५।७५ (के अश्वगौवाले, भोजन), ५।७८ (की गाये हरना) ६।१, २ (कजूस), ५।३ (पणियो को मारो), ६।४५ (मृध्रवाक् का अयज्ञ दस्यु अयज्यु), ६।६ (देवत्व न पानेवाले), ६।७ (की गायो को हरना), ६।८ (की निधि परमगुहाहित) ६।६ (हमसे न बढै), ६।१० (सो जाये), ६।११ (का भोजन हरे), ५।१२ (वह वृक है), ६।१३ (से गायो को लाओ) ५।१४ (के धन को जीतना), ५।१५ (पर आक्रमण), ५।१६ (मे वृर्व गगा की कक्ष की तरह विस्तृत स्थान मे) ६।१७ (पणि से सरमा की मॉग) ५।१६ (की निधि पहाडो की चोटी पर सुगोप), ६।१५ (को सरस्वती ने खाया), १४।१० (की गाये सोम छानता)

परावत—१४।२१ (पश्चिमवाले देश मे सोम को छानना)

पराशर—(शतायु वसिष्ठ)—८।५

परुष्णी—१।४, ६,१०, २।१८, ५।३८, १०।१४ (को दस राजाओ ने पकडा कवि चायमान धरती पर गिर पडा, नदियो को) १०।१६ (सुदास के लिए इन्द्र ने गाधं और सुपारा किया), १०।१७ (श्रुत कवष को पानी मे डुबाया), १०।१७।१४ (अनु और द्रुह्यु के ६० सौ और ६०६६ आदमी मर कर सो गये)

पर्णय—८।४६ (और करज को अतिथिग्व के लिए मारा), ६।३६ (और करज को वृत्रहत्या=शबरयुद्ध मे मारा)

पर्शु—१०।२० (यह और पृथु सुदास के शत्रु होकर आक्रमण करने पूर्व गये,)

पस्त्य—१४।२१ (पस्त्यो के बीच सोम का छानना)

पाकस्थामा—५।८१।२१, २२ (कोरयाण, मेधातिथि का समकालीन), ५।८१।२३, २४ (ने मेधातिथि को दस लाल घोडे को अभ्यजन, वास आदि दिये), ६।१६।२ (ने काण्व मेध्यातिथि को लाल रथ दिया), ६।१६।१४ (भोजन मेध्यातिथि को वस्त्र, अभ्यजन और रोहित रथ दिया)

पार्थव—६।६ (के सम्राट् अभ्यावर्ती चायमान ने भरद्वाज को गाय और दासियॉ दीं),

पिप्रु—५।४० (ऋजिश्वा के लिए इसे और ५० हजार कृष्णो को मारा), ५।५२ (और स्वशन, शुष्ण, अशुष, व्यस, नमुचि, रुधिक्र को मारा),५।८६ (और शुष्ण, कुयव, वृत्र, शबर को मारा), ८।१२ (और मृगव को ऋजिश्वा वैदथी के लिये मारा), ८।१६ (चुमुरि, धुनि, शबर, शुष्ण को इन्द्र ने मारा), ८।२२ (और नमुचि, रुधि का, शुष्ण, अशुष, व्यस स्वशन को मारा), ८।४२ पिप्रु, मृगय, शूशुवान, और ५० हजार कृष्णो को ऋजिश्वा के लिए मारा), ८।४५ (पिप्रु के नगरो को दस्यु-हत्या मे ऋजिश्वा के लिए नष्ट किया), ८।४८ (मायी असुर पिप्रु के गढ ऋजिश्जा के लिए नष्ट किये)

पुर—२।२ (सात), २।५, ५।३५ (निन्नानबे), ५।१० (दासो की सात शारदी पुर),

५।३६ (सो आयसी), ५।३७ (सौ दिवोदास के लिए तोडी), ५।५० (शबर की सौ पुरियॉ), ५।४० (पिप्रु की)

पुरन्धि—१७।६ (के लिए वध्रिमती के साथ अश्विद्वय आये)

पुरु—(देखो पुरु जन) ६।२६ (पौरु कुत्सि त्रसदस्यु), २।१६ (सरस्वती तट)

पुरु—१।५ २।१ २।२ (मृध्रवाक्), २।११, ५।७ (दिवोदास) ५।१०, ५।१३, ६।२६ (स्तुति करते है), ६।२७ (सुदास के लिए धन,) ६।२६ (पौरुकुत्सि त्रसदस्यु की वृत्रहत्या मे रक्षा की), ६।४४ (दिवोदास के लिए ६० पुरो को नष्ट किया), १०।१७।१३ (मृध्रवाक् पुरु सुदास-शत्रु), १०।२२ (को युद्ध मे परास्त किया), १५।७१ (जन सरस्वती के दोनो तट पर बसते) पूरु दिवोदास देखो) ।

पुरुकुत्स—५।१० (दासो की सात शारदी पुरे) ६।२५ (पुरु के लिए दासो की सात शारदी पुरो को नष्ट किया), ८।२६, २७ (युवा पुरुकुत्स के लिए मृध्रवाचो की सात शारदी पुरो को नष्ट किया), ६।२७ (सुदास पुरु के लिए धन) ६।२८ (पुरुकुत्स पृश्निगुकी रक्षा की)

पुरुकुत्स-पुत्र— (पोरुकृत्सि, देखो त्रसदस्यु)

पुरुकुत्सानी—६।३० (पुरुकुत्स-पत्नी त्रसदस्यु-माता ने वृत्रहा अर्धदेव राजा त्रसदस्यु को इन्द्र-वरुण से पाया)

पुरुणीथ—६।८ (शातवनेय, भरद्वाजो मे)

पुरुमित्र—१७।६ (की योषणा को अश्विद्वय लाये)

पुरुषन्ति—(ध्वसन्ति, कुत्स, सुर्वीति और दर्भाति की रक्षा की), ६।१३

पुरूरवा—७।६ (सुकृत द्यौ मे), ७।७ (का उर्वशी द्वारा प्रत्याख्यान), १७।४ (स्त्रियो की मित्रता भेडिये का हृदय)

पूर्—५।११ (आयसी)

पूर्णा—५।३८ (परुष्णी)

पूर्भिद्या—६।४१ (=शम्बरहत्या=वृत्रहत्या)

पृथु—१०।२० (दाशराज युद्ध मे यह और पर्शु गये, पूर्व को गाये लूटने–आक्रमण करने)

पृश्निगु—६।२८ (पुरुकुत्स)

पेदु—१७।६ (के लिए अश्वि श्वेत अश्व को नौ बाजो और नब्बे बाजियो के साथ लाये)।

पेरु—(और सुमीळ्हको सॉड ने दस बशाये दी)—६।७

पैजवन—१०।१६ (सुदास पैजवन का खेत अजर क्षेत्र) ।

पौर—५।८१।१२ (की इन्द्र ने रक्षा की), ६।२।(०) ।

पौरुकुत्स्य—३।१८ (त्रसदस्यु पचास बधूदाता)।

प्रस्कण्व—५।८१।६, ५।६०–६३, ६। (दाता दस्युओ का भेडिया) ।

प्रस्तोक—६।६ (ने भरद्वाज को दस कोश और दस बाजी दिये)।

प्रियमेध—५।८० (आयु, मेधातिथि का सूक्त),५।८१।१६, ६।१ (और दध्यड, अगिरा, कण्व, अत्रि, मनु, पूर्वज) ।

प्लायोगि—५।८१

बल्बूथ— ८।२३ (दास से सौ पाये) ।

ब्रह्म—६।३ (ऋचाये) ।

भरत—१।७ (जन), २।१, १०।१ (पहिले अर्भक अजन थे, जिन तृत्सुओ को वसिष्ठ ने बढाया), ५।१२-१३, ५।२८।११, १२, १०।२२ (की अग्नि सूर्य की तरह प्रकाशमान) १०।२४ (की रक्षा विश्वामित्र की वाणी करती है), १०।३० (भरत के पुत्र यज्ञार्थ अश्व छोडते हैं) ।

भरद्वाज—१।१० १।१६ ५।७, ५।५८ (और दिवोदास), ८।६२ (को दिवोदास ने धन दिया), ६।८ (के सूक्त मे पुरुणीथ शातवनेय) ६।२४ (ने महिराध सृजय-पुत्र से यज्ञ कराया), ६।४० (और दिवोदास के लिए अश्विद्वय आये), ६।४५ (और दिवोदास के लिए धन देवे) ६। (दाता पूरय सुमीलृह, पेरुक, शाड अभ्यवर्ती) ।

भलान—२।१८, १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु ६ द्रुह्य ७ पक्थ, ८ अलिन, ६ विषाणी, १० शिव)

भारत—५।३२ ६।२०।२ (भारत जन के देवश्रवा देववात), ६।४६ (भरतो की अग्नि)।

भाव्य—५।६१ (सिन्धु के तट पर बसते)

भुज्यु—५।५६ (को समुद्र मे सौ पतवारो वाली नाव से पार किया), ६।५२ (तरुण की रक्षा की) ६।५८ (की अश्विनो ने सौ पतवार की नाव से रक्षा की), १७।८।७ (को अश्विनो ने उबारा)।

भृगु—२।१३ ५।८१।६ ५।८१।१६ (और कण्वा सूर्या), १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश ३ यक्षु ४ मत्स्य, ५ द्रुह्यु ६ पक्थ, ७ भलान ८ अलिन, ६ विषाणी १० शिव) १७।६।१४ (भृगु जैसे रथ गढते) ।

भेद—५।१५, ५।१७ (को मारा) १०।१८ (सुदास के दुश्मन, जिसको इन्द्र ने मारा), १०।२०।४ (भेद को मार कर इन्द्र-वरुण ने सुदास की रक्षा की) १०।२१ (यमुना के पास सुदास—शत्रु हारा)।

भगन्द—४।५

मघवा—२।१२

मत्स्य—२।१३, १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश, ३ यक्षु ४ भृगु ५ द्रुह्य ६ पक्थ, ७ अलान, ८ अलिन, ६ विषाणी १० शिव) ।

मधाता—७।१२ (अग्नि का अर्चक)

मधुच्छन्दा—८८, ८६

मनु—१।१८, ५।५१ ५।७४ (-पिता अथर्वा और दध्यग के साथ) ७।१ (विशिशिप्र विजेता), ७।३ (हमारे पिता) ७।४, ७।५ (ने दस्यु के लिए करभीक किया), ७।६ (सुकृत को द्यो मे रक्खा) ७।१० (विवस्वान् के) ८।२ (के लिए कृष्णत्वचो को मारा), ८।४६ (के लिए इन्द्र ने वृत्र को मारा) १४।२५ (के लिए सोम पुना गया), १६।११ (हमारे पिता)

मरुद्वृधा—१।१० (नदी)

महिराध—६।२४ (सार्ञ्जय ने भरद्वाजो से यज्ञ कराया) ।

मान्यमान—(देखो देवक) ।

मामतेय—५।३४ (अन्ध) ।

मृगय—५।४० (और पिप्रु को एव शूशुवान तथा ५० हजार कृष्णो को ऋजिश्वा के लिए मारा) ८।१२

मेध्यातिथि—५।८१।३० ५।७६ - ८१ (काण्व), ६।१६ (दाता पाक-स्थामा)।

मेहत्नु—१।१० (नदी)

मैत्रावरुण—५।१८ (वसिष्ठ)।

मौजवत—१।११६ (सोम), १४।३३ (मुजवान् मे पैदा होनेवाला सोम)।

यक्षु—३।१३ ५।१५, १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्य, ६ पक्थ, ७ भलान ८ अलिन, ६ विषाणी १० शिव), १०।२१ (सिर पर बलि लेकर आये) १०।२१ (सुदास के करद) ।

यदु—१।५, २।४-६, ४।८, २।१०, २।११, ५।६४ (और तुर्वश), ८।११ (और तुर्वश को पश्चिम से लाये), ६।३७ (और तुर्वश को दिवोदास के लिए नीचा किया, देखो याद्व भी)।

यमदग्नि—५।२५ (और विश्वामित्र), १४।२१ (की सोमस्तुति)।

यमुना—१।१०, ५।१५, ५।८३ (मे शाकी ने श्यावाश्व को ७। ७००० दिया), १०।२१ (ने इन्द्र को सतुष्ट किया, यहाँ भेद को हराया, यही अज, शिग्रु और यक्षु सिर पर बलि लेकर आये)।

ययाति—७।१० (नहुष्य) ७।११ (की तरह)।

याद्व—२।७, ५।८१।३१ (पशु), ६।३६ (और तुर्वश को अतिथिग्व के लिए परास्त करना, देखो यदु भी)।

रसा—१।१०, १।१४

रहूगण—(अग्नि के लिए मीठे वचन बोले)—५।७३

राहतव्य—२।७ (सुदास)।

रुधिका—५।५२ (स्वश्न, शुष्ण, अशुष व्यस, पिप्रु नमुचि के साथ), ८।२२ (स्वशन, शुष्ण, अशुष, व्यस, पिप्रु को मारा)।

रुम—६।३ (रूशम, श्यावक, कृप को इन्द्र ने खुश किया)।

रूशम—५।८१।२ (और श्यावक, स्वर्ण, कृप), ६।२ (और श्यावक, कृप तथा स्वर्णर की इन्द्र ने रक्षा की), ६।३ (रुम श्यावक, कृप को इन्द्र ने प्रसन्न किया), ६।१८।१२ (ने चार हजार गाये दीं) ६।१८।१४ (का राजा ऋणचय)।

लोपामुद्रा—५।६२ (अगस्त्य को प्यार करती), १७।१८ (अधीरा धीर को चूमती)।

वकु—५।८१ (ने एतशको मारा), ७।१ (वणिक)।

वगृद—८।४६ (के सौ पुरो को ऋजिश्वा द्वारा नष्ट कराया), ६।३८ (के सौ पुरो को ऋजिश्वा ने नष्ट किया)।

वणिग्—७।१ (वकु ने जल पाया)।

वध्रिवाक्र—(सुदास)—२।१८

वध्रिमती—१।११७।२४ (के साथ पुरधि के लिए अश्विद्वय आये)।

वध्र्यश्व—६।४ (का दान घृत—अन्न), ६।४।११, १२ (की अग्नि शत्रुजेता) ६।५ (वध्र्यश्व को दिवोदास दिया सरस्वती ने), ६।५

वभ्रु—२।१७, १२।१५ (पत्नि-विरहत की रक्षा अश्विनो ने की), ६। (दाता ऋणचय)।

वर्ची—५।४२।१५ (के सौ हजार मृत), ५।५०।(०) (असुर के सौ हजार वीरो को मारा, शबर के ६६ पुरो को नष्ट किया) ८।४६ (के सौ हजार मारे, शबर के सौ पुरो को नष्ट किया) ८।५० (दास वर्ची के सौ हजार मारे), ८।५१

वव्रि—१३।१० (को च्यवान से द्रापि की तरह छुडाया)।

वश—१७।८।७ (को अश्विद्वय ने पार किया)।

वसिष्ठा—३।६ (वसिष्ठा) ५।१२ १४, ५।१। (उर्वशीजात मैत्रा-वरुण), ५।१६ ५।३२ (और अगस्त्य) ५।५८ (कुत्र के सूक्त मे), ७।७।१७ (=बसनेवाला) ८५।१ (शतायु पराशर), ११।२३

वसुक्र-पत्नी—०७।१६ (स्वसुर नही आया विधाना खाता, सोम पीता)

वामदेव—३३-४६

वितस्ता—१।१०

विपाश् (शुतुद्रि)—५।२८ (और शुतुद्रि), ५।४२

विभीदक—१।१६

विमद—१०।२३ (के लिए अश्विन अरुणी को लाये), १२।५ (के लिए धन लाये), १७।६ (के लिए शुध्यु को अश्वी लाये)

विशिशिप्र—७।१ (का विजेता मनु)।

विश्—५।१२ (प्रजा, तृत्सुओ की)

विश्पला—५।५८ (को आयसी जघा दी), ५।६० (अगस्त्य–सूक्त मे), ५।६३, १७।२२ (शुचिव्रता) ।

विश्वक—५।६० (के लिए विष्णापु को दिया) १७।११ (कृष्णिय के लिए विष्णापू) ।

विश्वरूप— ८।६ (त्वाष्ट्र को मारना)।

विश्ववारा—१७।२३ (ऋषिका) (विश्ववारा नमस्कार से पूजा करती प्राची से आती है)।

विश्वामित्र—५।२४-३२ (७), ५।२५ (और यमदग्नि), ५।२६।६ (सुदामार्थ सिन्धुस्तम्भन), ५।२६ (ने कुशिको के साथ सुदास को पार कराया), ५।३२ (का ब्रह्म भारत जन की रक्षा करता), १०।२४ (का यह ब्रह्म=मन्त्र, भारत जन की रक्षा करता है), १०।२५ (महान् ऋषि विश्वामित्र ने सिन्धु को स्तम्भित किया कुशिको के साथ इन्द्र ने पार किया)।

विषाणी—२।१८ १०।१४ (दस राजाओ मे २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु ६ द्रुह्यु ६ पक्थ ८ भलान, ९ अलिन १० शिव)।

विषुण— ८।३ (जन्तु, दस्यु) ।

विष्णापू—५।६० (को कृष्णिय विश्वक के लिए) ११।१० (को कृष्णिय विश्वक के लिए) १७।११

विष्वक्—१२।१० (कृष्णिय के लिए विष्णापु को दिया)।

वीतहव्य—(देखो सुदास)।

वृचीवान्—२।६ (दैववात), ६।२२ (से सृजय के लिए तुर्वश को दूर किया)

वृत्रतुर— ६।३६ (को मारा)।

वृत्रहत्या— ६।३६ (=शम्बरयुद्ध) १५।१७

वृद्ध—(देखो कवष)।

वृबु— ६।१८ (पणियो मे ऊँचे स्थान पर स्थित, सहस्रो का दाता)।

वृषशिप्र— ८।२० (दास को मारा)

वृसय— ५।७८ (का पुत्र), ६।८ (०)

वृहद्अद्रि— १।१५ (=हिमालय)।

वृहद्रथ— ६।२१ (नववास्त्व तुर्वीति)

वृहस्पति— ६।१६।११

वैकर्ण—१०।१७ (दोनो वैकर्णो के २१ जनो को पराजित किया)।

वैदथिन— ५।४० (देखो ऋजिश्वा)।

व्यय— २।५

व्यस— ५।५२ (स्वश्न शुष्ण, अशुष, पिप्रु, नमुचि, रुधिका के साथ), ८।२२ (०)।

शची (पौलोमी)—१७।२४ (यह सूर्य उगा या मेरा भाग्य, मै केतु, मूर्धा, उग्रा हूँ, पति मेरा अनुगमन करता हे मेरे पुत्र शत्रुहन् है मे सजया) ।

शचीवान्—५।३८ (उग्र, नृतम)।

शतदुर— ८।४

शयु—१७।६ (के लिए धेनु को अश्विद्वय ने बढाया), १७।८।६ (को अश्विद्वय ने बढाया)।

शबरहत्या—६।४१ (मे दिवोदास की रक्षा करना) ६।३६ (शबरहत्या-वृत्रहत्या, शबरयुद्ध)।

शबर—१।१६ (के सौ पुर), २।३ (गिरि से उग्र) ५।६ (की पुरियॉ नष्ट की) ५।३५ (की निन्नानबे पुरियॉ), ५।५० (के सौ पुरो का नाश) ५।५५ (पर्वतवासी शबर को ४०वी शरद मे धर दबाया) ५।४२।१४ (कौलितर-कुलितर-पुत्र दास पर्वत पर) ८।१६ (चुमुरि, धुनि, पिप्रु शुष्ण को इन्द्र ने

मारा), ८।२१ (के पुरो को नष्ट किया, शुष्ण, पिप्रु कुयव, वृत्र को मारा), ८।५० (६६ पुरो को नष्ट किया, सौ पत्थर के पुरो को नष्ट किया), ८।५४ (शबर को मारा), ८।५५ (दास कौलितर वृहद्पर्वत के ऊपर शबर को मारा) ८।५६ (शबर के पुरो को नष्ट किया बसुमन्त पर्वत मे घुसे), ८।५७ (पर्वत मे रहते शबर को ४०वीं शरद मे धर पकडा), ८।५८ (दास शबर को गिरि के नीचे मारकर दिवोदास की रक्षा की), ८।५६ (शबर की ६६ दृढ पुरो को नष्ट किया असुर वर्ची के शत सहस्र वीरो को मारा), ८।६० (शबर की ६६ पुरियो को नष्ट किया, दिवोदास अतिथिग्व के लिए, सौवी रक्खी), ८।६१ (की ६० पुरिया पूरु दिवोदास के लिए नष्ट किया, अतिथिग्व के लिए गिरि से शबर को नीचे गिराया) ८।६२ (दस्यु शबर की सौ पुरियो को नष्ट किया, दिवोदास के लिए) ८।६३ (को वर्ची के साथ उदब्रज मे मारा), ८।६३।२२ (शबर के धन को दिवोदास से भारद्वाज पाये), ८।६३ (के धन दस कोश दस घोडे, भरद्वाज ने दिवोदास से पाये), ६।४४ (को गिरि से गिराया) ६।४७ (को मारा दिवोदासार्थ), ६।४८ (की ६६ पुरियाँ नष्ट की सौवी रख, दिवोदास अतिथिग्व की रक्षा)।

शर्यणावत—१।२० ३।१६ (का सोम), ५।७६ (के पर्वतो मे अश्व के सिर को), १४।२१ (मे सोम का सवन), १४।२६ (मे सोम को इन्द्र ने पिया)।

शाकी—५।८३ (लोगो ने यमुना तटपर सात-सात एक-एक सौ गाये-घोडे दिये)।

शाड—६।७ (हिरणिन् ने सुमीळ्हको दस वशाये दीं) ६।८ (=पुरुणीत)

शातवनेय— (देखो पुरुणीत)

शिग्रु— ५।१५, १०।२१ (यमुना के पास सुदास के करद)।

शिजार— १७।८ (७) (को अश्विद्वय ने पार किया)।

शिफा— ५।८७ (के प्रवण पर कुयव की दोनो स्त्रियाँ क्षीर द्वारा स्नात)

शिम्यु—१०।१६ (सुदास प्रतिद्वन्द्वी शिम्यु को मारते)।

शिव— २।१८, १०।१४ (दस राजाओ =जनो मे, २ तुर्वश, ३ यक्षु ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्य, ७ पक्थ, ८ भलान, ९ अलिन, १० विषाणी)।

शिश्नदेव— ५।१६, ८।३, ४ (कृष्ण-=योनि, दस्यु)।

शुतुद्रि— १।१०, २।२८ (और विपाश)

शुध्यु— १७।६ (पुरुमित्र-पुत्र, विमद-पत्नी)।

शुष्ण— ५।४६ (कुत्स के शत्रु अशुष, व्यस, पिप्रु, नमुचि, रुधिक्रा के साथ), ५।८१।२८ (के चरिष्णु पुर कुत्स के लिए नष्ट), ५।८६ (और पिप्रु कुवय, शबर), ६।२ (और अशुष), ८।१६ (चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शबर को मारा) ८।२१ (पिप्रु, कुयव को मारा, शबर के पुर नष्ट किये), ८।२४ (अशुष, स्वश्न, व्यस पिप्रु-शत्रु रुधिक्रा को मारा), ८।२२ (शुष्ण के अडो को नष्ट किया), ८।२५ (शुष्ण की चरिष्णु पुर को मारा), ८।२७ (मायी शुष्ण को इन्द्र ने माया से हराया), ८।२८ (मायी शुष्ण को मारा), ८।३० (और कुयव को आर्जुनेय कुत्स के लिए मारा), ८।३३ (शुष्ण को कुत्स के लिये मारा अतिथिग्व की भलाई करते), ८।३४ (युवा कुत्स के लिए शुष्ण को मारा), ८।३५ (शुष्णहत्या=शुष्णयुद्ध, इन्द्र ने दस्युहत्या को जीतते शबर को अतिथिग्व के लिए मारा), ८।३७ (शुष्ण, अशुष, कुयव, हजार दस्युओ

को कुत्स के लिए मारा), ८।४१ (शुष्ण, को कुत्स के द्वारा मारा)।
शूशुवान्— ८।१२ (और पिप्रु मृगय ५० हजार कृष्णो को ऋजिश्वा के लिए मारा), ८।१२ (के पुरो को नष्ट किया)।
श्याव—३।१८ (भरद्वाज का दाता), ५।८१।१२ (रुशम, कृप, स्वर्णर के साथ), ६।३ (रुम, रुशम और कृप को इन्द्र ने निहाल किया)
श्रद्धा, कामायनी—१७।२७ (श्रद्धा से अग्नि जगता है हवि हवन की जाती है देवो ने उग्र असुरो मे श्रद्धा की)
श्रुत—२।१३ (देखो कवष)
श्रुतर्य—५।८५ (कुत्स भी), ६।१३ (और कुत्स, नर्य की रक्षा की)
श्वेत्या—१।१० (नदी)
सप्त आप (देवी)—१।११, ५।६३ (देवी)
सप्तसिन्धु—१।१
सप्तस्वसा—१।८ ५।८ (सरस्वती)
समुद्र—१।१४, १।२२ ५।२८
सरयू—१।१२, १।१३
सरस्वती—१।८ (सप्तस्वसा = सात बहिने) १।६ १।१०, १२, ४।१७, ५।८ (सप्तस्वसा) ५।६ (तटध्वसिका, गिरि-सानु-नाशिका)
सवर्ण—६। (दाता त्रसदस्यु)
सार्ञ्जय—(देखो महिराध)
सार्पराज्ञी—१७।२८ (ऊर्जस्वती औषधि गोष्ठ मे दूध भरा-पूरा)
सावर्णि—११।१ (देखो मनु भी)
साहदेव्य—५।३६।६ (कुमार सोमक) ५।३६।७, ८ (कुमार)
सिधु—१।१०-१२ १।१७, ५।१७ ५।२६ (=अर्णव—स्तभन), ५।२८ ५।२६ (अर्णव), ५।६० (-तीर्थ), ५।६३ (को पार किया)
सुदास—२।७ (=रातहव्य), २।१८ (वध्रिवाक्) ५।२३ (के शत्रु दस राजा) ५।२६ (-राजा का अश्वमेघ घोडे को छोडना) ५।२७ (सिधु स्तभन), ५।२६ (को विश्वामित्र ने सिधु पार कराया), ५।८४ (के लिए श्यावाश्व की प्रार्थना), ५।६१ (के लिए समुद्र और द्यौ से परे का धन), ६।२७ (=पूरु के लिए धन दान, पुरुकुत्स के लिए सात पुरो का ध्वस) ६।२६ (=वीतहव्य की, पौरुकुत्सि त्रसदस्यु की वृत्रहत्या मे रक्षा की), १०।२ के (लिए दुर्मित्रो का सारा भोजन छोड जाना, त्रित्सुओ का नीची नदियॉ पार करना), १०।३ (दाशराज्ञ मे सुदास की रक्षा वसिष्ठो के ब्रह्म द्वारा करना, सिधु का पार होना भेद का मारा जाना), १०।५ (देववान् के नाती सुदास के बधूमन्त रथ पैजवन-सुदास का दान, सुदास पैजवन), १०।६ (पिता दिवोदास की तरह पैजवन सुदास की रक्षा करना), १०।७ (वीतहव्य सुदास की रक्षा करना), १०।८ (रातहव्य सुदास के लिए भोजन देना), १०।१० (सुदास के लिए सो हजार रक्षाये ओर दान होना), १०।११ (सुदास का रक्षक इन्द्र गोमान् ब्रज मे गया) १०।१२ (सुदास की रक्षा की, दास और आर्य शत्रुओ को मारा), १०।१३ (दस राजाओ द्वारा बाधित सुदास की त्रित्सुओ के साथ रक्षा की। दस राजाओ ने युद्ध मे सुदास से लडाई की) १०।१४ (तुर्वश आदि का त्रित्सुओ और सुदास से लडना, १०।१५ (सुदास की दाशराज्ञ मे इन्द्र-वरुण ने रक्षा की, के लिए नदियो को गाधा और सुपारा किया, शिम्यु को मारा) १०।१६ (पिता दिवोदास की तरह पैजवन की मरुतो ने सहायता की) १०।२० (भेद को मार कर सुदास की इन्द्रावरुण ने रक्षा की) सुदास त्रित्सु के दाशराज्ञ मे शत्रु), १०।१४ (दस राजा=जन १ तुर्वश, २ यक्षु ३ मत्स्य ४ भृगु ५ द्रह्यु ६ पक्थ, ७ भलानस

८, अलिन, ६ विषाणी, १० शिव। और भी ११ कवि चायमान), १० ।१६ (१२ शिम्यु), १० ।१७ (१३ दोनो वैकणो के २१, १४ श्रुत कवष वृद्ध, द्रुह्यु, १५ आनव=अनु), १० ।१८ (१६ भेद), १० ।२० (१७ पृथु, १८ पर्शु), १० ।२१ (१६ अज, २० शिग्रु बलि लाने वाले) १० ।२३ (के लिए सुदेवी अश्विन् लाये), १० ।२६ (सुदास के घोडे को धन के लिए छोडो, हे कुशिको), १० ।२५ (को कुशिको के साथ इन्द्र ने नदी पार कराया, महान् ऋषि विश्वामित्र ने सिन्धु अर्वण को स्तभित किया), १० ।२६ (का अश्वमेध) घोडा धन के लिए छोडा गया, कुशिको को तैयार होने को विश्वामित्र ने कहा, राजा ने पृथिवी पर पूर्व-पश्चिम-उत्तर मे शत्रुओ को मारा), १३ ।१४ (के लिए शिप्री इन्द्र ने सहस्त्रो धन दिया), (सुदास के मित्र-वसिष्ठ और विश्वामित्र तथा उनकी सतान। त्रित्सुओ के अतिरिक्त और कोई प्रधान व्यक्ति या जन सुदास का सहायक नही था)

सुदेवी—१० ।२३, १७ ।२६ (को सुदास के लिए अश्विन् लाए)

सुध्यु—१७ ।६ (को विमद के लिए रथ द्वारा अश्विद्वय लाये)

सुमीळ्ह—६ ।७ (को शाड ने दस वशाये दीं)

सुवास्तु—३ ।१८ (त्रसदस्यु दाता), ६ ।२३ (के तटपर त्रसदस्यु ने सोभरि को ५० वधुये=दासियॉ, २१० काली गाये दी)

सुश्रवा—६ ।१६ (राजा के पास गये, ६६०६६ मारे), ६ ।१७ (और तुर्वयाण की इन्द्र ने रक्षा की, कुत्स, अतिथिग्व, आयु को युवा महाराज के लिए नष्ट किया)

सुषोमा—१ ।१० (नदी)

सूर्या—५ ।८१, १३ ।२५ (व्याह) १७ ।३० (१) (सूर्य द्वारा भूमि और द्यौ थामे, ऋत द्वारा आदित्य स्थित, द्यौ मे सोम अवस्थित), १७ ।३० (२) (सोम द्वारा आदित्य बली, पृथिवी बडी है) १७ ।३० (८) (सूर्या के आभूषण प्रतिधि, ओपश), १७ ।३० (१०) सूर्या का शकट, दो बैल) १७ ।३० (४६) (ससुर, सास, ननद देवर पर साम्राज्ञी होओ)

सृजय—२ ।६, ६ ।२१ (दैववात), ६ ।२२ (तुर्वश को दूर किया, वृचीवान् से), ६ ।२२

सेना— ८ ।१४ (अबला दास की)

सोभरि—६ ।३३ (को त्रसदस्यु ने सुवास्तु तीर पर ५० बधुये और ३ × ७० गाये दीं), ६ ।३४ (को सम्राट् त्रासदस्यु से धन मिला)

सोमक—५ ।३६ ।६ (कुमार साहदेव्य)

सौश्रवस—५ ।१ (सुश्रवा-पुत्र)

स्रवन्ती—१ ।११ (नौ)

स्रोत्या—१ ।११ (नब्बे सोते)

स्वर्णर—५ ।८१ ।१२ (रुशम, श्यावक, कृप के साथ)

स्वश्न—५ ।५२ (और शुष्ण, अशुष, पिप्रु नमुचि, रुधिका), ८ ।२२ (और शुष्ण, अशुष, व्यस, पिप्रु रुधिका मारे गये)

हिमवन्त—१ ।१४

परिशिष्ट ३

शब्द-सूची[1]

अक्ष (=जुआ)—१४।३३ (मौंजवत सोम की तरह आकर्षक विभीदक पाशा है) १४।३३।२ (केवल इसके लिये जाया को मैने छोडा), १४।३३।३ (कितव का भोग नही रहता) १४।३३।४ (अक्ष वाले की जाया को दूसरे ले जाते है)

अक्षा—४।१

अघा (मघा नक्षत्र)—१६।१७ (सूर्य–सम्बन्धी)

अघ्न्या—४।२०, (अहतव्या धेनु)

अगुल (-माप)—१६।२० (दस अगुल)

अतिथि—२।१, ५।१३ (दिव्य), ११।१३ (जनो का अग्नि) १८।१४ (प्रिय–)

अत्क—६।५७ (सुधित-तीक्ष्ण द्वारा वन की तरह) १३।१२, १३ (सुरभि अत्क पहिने इन्द्र)

अधिवस्त्रा—१३।८ (चादरवाली वधू की तरह)

अध्वर्यव—५।५० ५२

अनस्—(गाडी विपाश्या सुसपिष्ट)--५।२८ ५।४२ (विपाशाके पास पिस गया)

अनास—३।१२ (छोटी नाकवाले, दस्यु)

अनुदेयी—१७।३० (३) (दहेज मे दी जानेवाली दासी)

अनुष्टुब्— ८।३ (छन्द)

अपूप—४।१२, १५।६३।७ (इन्द्र अपूप खाओ)

अपूपवान्—४।११, ४।१२ १५।१३ (रोटीवाली हवि)

असीवचातन—१२।११ (रोग हटाने वाला भिषग्)

अरण—५।२७ (नदी, सुदास के लिये गाध की)

अरण्य—४।१०, १६, १७, २४, ५।३, ५।६, १५।८३

अर्य—५।१६ (पूजा)

अर्जुनी—१६।१७ (पूर्वा–फाल्गुणी, उत्तरा-फाल्गुणी नक्षत्र)

अर्भक—५।१२, १५।१ (=शिशु)

अर्वतो मास—४।२ (घोडे का॰)

अर्वन्त—४।१२, १६, ५।७१ (का मास भोजन), १५।१ (०)

अर्हन्त—(सुदानव)–५।८२ सु-दानी

अवरबमाण—१७।२५ (=अवलबमान)

अव्यवार—१४।२८ (भेड के वाल, ऊनी वस्त्र)

अव्रत—१।१८ (=अधर्मी)

अशनि— ५।६६ (बिजली)

अश्मा—५।५ (=पत्थर, दृढ)

अश्व—४।६ (परिभूषण, मास ठीक करना), ५।२६ (–मेघ) १४। (दौड)

अश्व-मास—४।२ (वाजी=अश्व), ५।११ (० अर्वन = अश्व)

अश्वान्—५।७५ (भोजन, अश्व मास भोजन)

अश्वमेध—(देखो सुदास)

अष्ट्रा—४।२१ (कृषि–उपकरण), ५।५६ (०)

असत्रकोश—१६।२ (हल–सम्बन्धी)

असि—१८।१३ (जैसे गाय को पोरपोर काटती)

आखेट—१४। (पक्षी, बैल, सूअर, हरिन, हाथी, सिह)

आतुर—२।१७, १२।४ (=रोगी के लिये भेषज)

आयुध—१४।१५ (=हथियार)

आरा—६।५८ (पाद टिप्पणी)

आशिर—४।४ धेनु से दोहन), ४।५ (दोहन) ४।५ (सोम–मिश्रित)

[1] इस पुस्तक के अध्याय अनुच्छेद के यहॉ अक दिये हैं।

आशिरा गव—४ ।६ (गाय के दूध का आशिरु), १५ ।६२ (इन्द्र, गवाशिर पियो)
आशिर । दधि—४ ।७
आशिर । यव –४ ।६, १५ ।६२ (जौ के सत्तू और दूध से मिश्रित सोम)
इन्द्र—५ ।५६ (सोम मेष–वस्त्र मे छनता चमू और कलश मे)
इन्द्र—३ ।६ (तुविग्रीव, वपोदर, सुबाहु)
इन्द्रिय—४ ।२ (इन्द्रत्व)
इषु—६ ।४६ (=वाण, इषुहस्त)
इषुधि—६ ।१० (तरकश)
इषुमान्—६ ।४५ (सुधन्वा, निषगी स्वायुध)
इळा—१ ।१ (=अन्न), ५ ।८४ (सुदास के लिये)
ईशान—११ ।१६ (इन्द्र जगम ओर स्थावर का ईशान)
उक्थ—५ ।४८, १६ ।१२ (द्वारा प्रशशित), १८ ।३ (छन्द), १८ ।७ (=गान, उद्गींथ)
उक्थ्य—३ ।३ (उक्थवाला), ४ ।११ १२, ५ ।५७, १४ ।२ (=सबधी गायत्र साम=०गाना)
उखा—(मास–पचन्या)-४ ।६ (मास-पचनीवर्तन), ६ ।५३ (का फेन फेकना)
उत्स—१६ ।५ (कुआँ या निर्झर)
उपधि—१८ ।१२ (रथ, युग, नाभि, प्रतिधि)
उपमा—१८ ।१२ (इव), १८ ।१४, १५ (न=इव)
उर्वारूक—१५ ।१२ (फल, शायद बेर)
उलूखल—४ ।१५
उषा—१८ ।१७ (पुरानी युवति, पुरधि), १८ ।१६, १८,१६ (द्यौ की दुहिता), १८ ।१६ (–पर वसिष्ठ की कविता), १८ ।१७ (पर विश्वामित्र की कविता), १८ ।१८ (पर वामदेव की कविता)
उष्णिक्— १८ ।३ (छन्द)
उष्मा—४ ।६
ऋचीक—(देखो आर्जिकीय)
ऋत—३ ।१६ (=सत्य)
ऋतुथा—१८ ।६ (ऋतु के अनुसार)
ऋषि—६ ।१६ ।११ (विप्र) १७ ।२०
ऋष्टि—६ ।५४ (हथियार) १३ ।२२ (कधे का भूषण), ६ ।५४ (छुरा, तलवार)
ओपश—१३ ।२५ (सूर्या का), १७ ।३० ।८ (सीसफूल)
औषधि—१३ ।६ ।१२ (पोर-पोर अग-अग मे औषधि घुसे), १२ ।११ (औषधियो का जया होना देखो भेषज भी)
कक्ष्या—१७ ।१५ (३ कमरबन्द),
कपर्दा—३ ।६ (दक्षिण-वसिष्ठो की), ५ ।२३ (तृत्सु)
कपर्दी—५ ।२३ (तृत्सु), १० ।१५ (जूडाधारी तृत्सु), १३ ।२६ (कपर्दी रथीतम), १३ ।२७ (दाहिने कपर्दो), १३ ।२८ (चार कपर्दोवाली युवति)
करभीक—७ ।५ (मनु)
करभ—४ ।१२ (=सत्तू), ४ ।१३, ५ ।६५, १५ ।६३ ।७ (इन्द्र के लिए)
करभी—४ ।११, ४ ।१२, १५ ।६३ (सत्तूवाली हवि)
कर्करी—१४ (ऋ २ ।४३ ।३ ततुवाद्य)
कर्णशोभन—१३ ।१६ (कान का भूषण)
कलश—५ ।४६, ५ ।५६, १४ ।६ (मे सोम) १४ ।२३ (०), १४ ।१८ (मे सोम रस), १७ ।१४ (मे द्यौ-पति शतधार बाजी=सोम)
कवच—६ ।५० (वर्म)
कवि—१६ ।२ (हल जोतते)
कशा—११ । (ऋ० १ ।१५७ ।४ चाबुक)
कशोजुव—६ ।४१ (अतिथिग्व दिवोदास की रक्षा करना)
कारु (=कवि)—६ ।१८, ५ ।२८, ७ ।५, १८ ।६
काव्य—१८ ।२१ (देवो के काव्य को देख)
कितव—१४ ।३३ (जुआरी को भोग नहीं रहता, कितव सभा मे फूल कर जाता है, उसकी माता सतप्त होती है)
कीनाश—५ ।४५ (कृषि-देवता)

कुमारक—१५।१ (=छोरा)
कुरीर—१३।२५ (एक भूषण), १७।३०।८ (छन्द)
कुलप—११।२८ (कुलपति जैसे व्राजपति को वैसे तुम्हारे पास निधियो के साथ सेवा करते हैं कुलप व्राजपति के नीचे थे)
कुलिश—६।५२ (कुठार वज्र)
कुल्या—४।२०, १६।६ (ह्रद मे जाने वाली कुल्या) १६।७ (कुल्या बहे), १८।२३।८
कुशर—५।६५ (शर दर्भ सूर्या के साथ)
कूपार—१७।१२ (सलिल)
कृषि—१४।३३ (जूआ मत खेलो खेती करो, गाये हैं जाया हैं)
कृषीबल—४।१६ (अ—) ४।१०
केवट—१६।४ (कुआँ)
कोश—१७।३० (७) (घन)
क्षेत्र—४।१७ (सरस्वती के) ५।६
खनित्रिम—१६।२ (खोदा जल)
खादि—१३।२१ (=पैर और हाथ के कडे), १३।२२, (कन्धो पर खादि), १३।२३ (पैरो मे खादि) १३।१४ (हाथ मे खादिवाले शिशु की तरह)
खारि (तोल)—१६।१८ (सोम की सो खारियाँ)
गधर्द—३।१६
गर्गरा—१५।३४।६ (हुडुक)
गद्रभ—३।१३
गवाशिर—४।६
गव्यत्वक्—१४२।८ (गाय के चमडे पर सोम का पिसा जाना देखो गोत्वक् भी)
गायत्र—५।८१ १४।२ (उक्थ्य गायत्र को गाओ), १४।१६ (-सोम से सोम का गान) १७।३०।६, १८।७ (गायत्र उक्थ् गायत्र साम)
गायत्री—१८।३ (छन्द)
गाथा—१४।२७ (पुरानी गाथा सोम के लिए)
गायन—१४।७ (पवमान इन्द्र = सोम के लिए नरो गाओ), १४।२४ (गायत्र उक्थ का गाना)
गृह—६।५८ (पां० टि०)
गो—४।१६ (से कृषि)
गोत्वक्—१४।२१ (गाय के चमडे पर सोम का सवन करना)
गोमान्—५।७५ (गोमासावाला भोजन)
गोश्रीत—४।३०
ग्राम—१७।१७
ग्रामणी—११।१ (मनु सावर्णि)
ग्रावा—४।१५, ६।१३ (=पत्थर)
ग्रीष्म—१६।१४ (-ऋतु)
ग्राहि—१२।७ (भूत लगने का रोग)
घृत—४।४
चन्द्रवान्—५।२६ (=राधस् भोग)
चमस—१४।३ (सोम पीने का प्याला)
चमू—४।१३ (=तमिल चबू), ५।४७, ५।५६ (मे सोम), १४।३, २३ (सोम का घडा, दो चमुओ—मे रखा सोम), १५।६७ (मे सोम)
चरु—४।६
चर्मन्—३।२१।११ (ढाल)
चषाल— ४।१६ (पात्र)
छन्द—१३।२५, १८।३ (छन्द उक्थ ७— १ गायत्री, २ उष्णिक्, ३ अनुष्टुब्, ४ वृहती, ५ विराट् ६ त्रिष्टुब्, ७ जगती)
छुबुक—१७।२१ (चिबुक, ठुड्डी)
जगती—१८।३ (छन्द)
जन—३।१६ (=कबीला)
जल—१६।३ (खनित्रिम=खोद कर निकाला और स्वयज=अपने उत्पन्न)
जातवेद—५।२१ (अग्नि)
जामि—१४।२० (=स्त्री)
जार—१४।२० (यार को जैसे कन्या स्पर्श करती है)

जूर्य—१८।१४ (पुरी की तरह)
जूर्यती—५।६० (झुराती घोषा)
ज्या—६।५० (=प्रत्यचा), ६।५१ (ज्या का)
तनय—५।३० (सूनु-)
तप—१७।१६ (तप से अजेय और स्वर्ग गये)
तरेम ता तरेम—५।२ (हम तरे)
तितउ—४।१४ (छलनी)
तुविग्रीव—३।६, ३।१० (पुष्ट-गर्दन, इन्द्र)
तोक-तनय—५।१ (=तनय), १५।२ (पुत्र-पौत्र), १५।८० (०)
त्रिधातु—१२।१३ (त्रिधातु शर्म=तीन प्रकार का सुख)
त्रिष्टुब्—१८।३ (छन्द)
त्रैष्टुब्—१८।६ (त्रिष्टुव् छन्द मे गाया जाने वाला साम)
त्वचा—५।८१।३२ (सुनहली)
त्वष्टा—४।५
दक्षिणा (=दान)—१७।३ (१।६) (दक्षिणा का विशाल पथ। सोना देनेवाले अमृतत्व को पाते, वस्त्र देनेवाले दीर्घायु प्राप्त होते। दक्षिणा दैवी पूर्ति है। दक्षिणावाला पहले बुलाया जाता। वह ग्रामणी होता। उसे जनो का नृपति मानते। उसे ऋषि, ब्रह्मा, सामगायक और उक्थपाठी कहते। दक्षिणा अश्व-गाय-चॉदी-हिरण्य-अन्न देती)
दड—५।१२
दध्याशिर—४।७, १४।१० (दधि-मिश्रित सोम)
दर्भ—५।६५(=कुश, शर, कुशर, सैर्य, मौंज के साथ)
दासता—१७।२५
दासी—१७।३० (६)—(अनुनेयी=दहेज मे दी जानेवाली दासी)
दुदुभि—ऋ ६।४७।३६ (वाद्य)
दुर्ग—६।१२
देव (=देवता)—१५।१ (देवता न शिशु न कुमार), १५।२ (रुद्र, वसु मरुत आप नासत्य, सरस्वती विष्णु ऋभुक्षा, पर्जन्य), १५।३ (द्योस्पिता, पृथिवी माता), १५।४ (उषस, सिधव पर्वत, इन्द्र, पर्जन्य) १५।५ (इद्राग्नी), इन्द्रावरुण, इन्द्रासोम, इन्द्रापूषण भग, पुरधि अर्यमा, धाता, धर्ता, रोदसी अग्नि, मित्रावरुण अतरिक्ष, ओषधी, जिष्णु, आदित्य, वरुण, त्वष्टा सोम, ब्रह्मा, ग्रावा, यज्ञ, वेदि, सूर्य, प्रदिशा, पूषा, वायु, क्षेत्रपति, विश्वेदेवा, ऋभव, पितर, अज, अहिर्बुघ्न्य, समुद्र, अपान्नपात्, पेरु, पृश्न), १५।६ (मित्रावरुण, अश्वि ब्रह्मणस्पति सोम)
द्रवि—१८।१५ (दर्बि, दबिली)
द्रापि—१३।६ (*पिशग द्रापि धारण करता*), १३।१० (द्रापि की तरह छुडाना), १३।११ (सुनहली द्रापि को धारण किये वरुण)
द्रोघवाच—५।४ (अ—) ५।२१ (झूठा)
द्रोण—१४।४ (सोम रखने का बर्तन) १६।२, १६।६ (भार नाप), १८।१४।८ (मे स्थित)
धनुष—६।५० (धनु धन्वा)
धन्व—३।१ १६।२२, १७।३।२० (मरुभूमि)
धन्वा। सु—६।५४ (सुधन्वा इषुमान्, निषगी)
धातु-शिल्प—३।२१ (पा० टि०)
धाना—४।११, १२ (भुना जौ का दाना) १५।६३।५ (माध्यन्दिन सवन मे धाना), १५।६३।६ (तृतीय सवन मे धाना), १५।६३।७ (इन्द्र के लिए) १७।१६ (ससुर *नहीं आया कि धाना खाता सोम पीता*)
नक्षत्र—१६।१७ (अघा=मघा, दोनो अर्जुनी= पूर्वा-फाल्गुणी उत्तरा फाल्गुणी)
नदी—५।२८ (स्तुति)
नप्ता—१५।६० (=नाती)
नळा—५।८१।३३ (नरकट)
नाभि—१८।१२ (चक्के की नाभि)
नाराशसी—१७।३० (६) (ऋचा)

नाव—३।२१ (पा० टि० शिल्प) ५।७० (अरित्र = पतवार), ६।५८ (सौ पतवार की), १६।५
नासत्य—५।५७ (अश्विद्वय)
निषग—६।४६ (तरकश) ६।५४
निषगी—६।५४ (तुणीरघारी, सुधन्वा, इषुमान् स्वायुध)
निष्क—५।६१ (सौ निष्क कक्षी-वान् ने पाये, स्वर्णखड)
निष्कग्रीव—१३।१८ (कठ मे सोने का निष्कधारण करना) १३।१६ (सुनिष्क=सुदर निष्क कठ मे धारण करनेवाला)
नृत्य—१२।५ (नृत्य करते विमद के लिए धन लाना), १४।१
नृपति—११।१८ (इन्द्र नृपति)
नृपाण—१६।२ (प्याव)
न्योचनी—१७।३०।६ (=दासी)
पक्व वृक्ष—१४।२६ (=पक्व फल)
पचक्षिति—५।६६
पति—१७।३० (४५) (इस स्त्री मे ग्यारहवॉ पति को बनाओ)
पतिद्विप—५।६२
पति राजा—११।१६ (शाश्वत प्रजाओ का पति राजा इन्द्र)
परशु—६।५३ (द्वारा शिम्बल काटना) १८।१५
परिच्छिन्न—५।१२ विखरे भरत)।
पर्जन्य—१८।२२ (पर भौम आत्रेय की कविता)।
पवित्र—१४।६ १२ (सोम रखने का पात्र)।
पशु—४।४ (ग्राम्य, गाय, घोडा, भेड, बकरी, गदहा, ऊँट)।
पारिषद्—३।२
पितर—१४।१५।२५ (पूर्व पितरो ने सोम से कर्म किया)।
पितृषद्—१७।३० (२१) (पिता के घर मे रहती)।
पिशगरूप—३।११ (आर्य)।
पुत्र—१७।३०।४५ (इस स्त्री मे दस पुत्र धारण करो)।
पुरदर—३।१३ (पुरतोडक इन्द्र)।
पुरंधि—१८।१७ (गिहथिन)।
पुरोगव—१३।२५ (दहेज मे दी गयी आगे-आगे जानेवाली गाय या अगुवा)
पुरोळा—२।१३ (पुरोडाश), ४।३, ५, १५।६१-१५।६३-१५।६४ (हवि)
पुरोहित—(प्रधान-मन्त्री) ११।२६ (प्राचीन ऋषि पुरोहित हुए), ११।३० (वसिष्ठ-तृत्सुओ के पुरोहित हुए)।
पूर्णावती—३।१४
पूषन्—४।१२, ४।१३ (करभप्रिय)।
पृथुबुध्न—४।१५ (मोटा शीर्ष)।
पेश—१३।२८ (सुपेशा चतुष्कपर्दा युवती पेश=सज्जा)।
प्रतिधि—१३।२५ (बधू का आभूषण), १७।३०।८ (चक्के का धुरा)।
प्रधि—१८।१२ (रथ का धुरा, उपधि, नाभि, युग भी)।
प्रपाण—४।२० (प्याव)
फल—४।२४ (स्वादु), ४।२२ (सुफल)
फाल—४।२३ ५।४५ (कृषि का)
बधू—१३।७ (दुलहन, अधिवस्त्रा = चादर से ढँकी), १४।३२ (सुवासा) १७।३७।३३ (सुमगली)।
बधूयु—१५।६३ (दुलहा), १७।३०।६ (०)
बलि—५।१५ (=कर), १५।६७ = (हवि, अश्व, साड, बैल, वशा, मेष की)
बलिहृत्—७।८ (=करद) प्रजा
ब्रह्म—५।३२, १२।३ (=ऋचा, मन्त्र), १८।१२ (= ऋचा)
ब्रह्मचारी—१७।१२ (देवो का एक अग होता)
ब्रह्मजाया—१७।१२।५ (वृहस्पति की पत्नी जुहू), १७।१२।२ ३, ६

ब्रह्मा—३।१० १७।२० (प्रधान ऋत्विक्)
व्राजपति—११।२८ (की सेवा निधियो द्वारा कुलप करते, अनेक कुलो का मिलकर व्राज होता जिस पर अधिकारी व्राजपति था)
ब्राह्मण—३।२०
भिषग्—१२।११ (राक्षसो का नाशक बीमारी हटानेवाला) १२।१२ (अश्विद्वय दैव्य भिषज)
भिषजौ—१७।६ (अश्विद्वय)
भूषण—(देखो अत्क, कर्णशोभन—हिरण्य-कर्ण, मणिग्रीव, निष्कग्रीव, सुनिष्क खादि, रुक्म, ऋृष्टि, शिप्र, ओपश)
भेषज—१२।१३ (तीन प्रकार के दिव्य, पार्थिव और जल के), १२।१४ (आतुर का भेषज)
भोज—१४।३२ (भोजनदाता, भोज सुरभि स्थान को सुवस्त्रा बधू को, आतरिक पेय सुरा को प्राप्त करते हैं), १७।१३।८,९ (भोज मरते दुख पाते नहीं, भोज सुरभि स्थान, सुवस्त्रा बहू, अच्छी सुरा पाते)
भोजन—५।७५ (अश्ववान् गोमान्)
मघ—१८।१६ (=धन, चित्रामघा, मघोनी)
मघवा—२।७ ५।३१ (=धनवान इन्द्र)
मणिग्रीव—१३।१७ (कण्ठ मे गणि=मनका धारण करना)
मन्त्र—३।२१
मदिर—४।३० (मधु)
मधु—४।२६ (सारघ)
मधुर—४।३० (मदिर)
मर्त्य—४।२९, ७।१५ (३) (मनुष्य)
माया— ८।१८ (के द्वारा दभीति के लिए ३० हजार दास सुला दिये)
मायी— ८।१६ (दानव)
मास—१६।१० (बारह), १६।१२ (मास, शरद)
मॉस-पचनी—४।६ (हॉडी)
मित्रावरुण—५।२२
मुष्टिहत्या—५।८२, १२।४ (मुष्टियुद्ध, मुष्टि द्वारा लडाई), १५।२ (मुष्टियुद्ध)
मृण्मय—१०।१२ (घर)
मृत्युबन्धु—७।७।१८
मृध्रवाक्—६।६ (झूठे, पणि)
मेष—४।१ (पकाना), ५।५८ (सौ), १५।६६ (मोटा भेड पकाया)
मोघ—५।२०, ५।२१
मौज—५।६५ (शर, कुशर, दर्भ, सैर्य के साथ)
मौजवत—१४।३३ (के सोम का भक्ष्य)
यक्ष—१५।३३ (मेला)
यक्ष्म—१२।६।११,१२, १२।६ (सिर, भुजा, कन्धे, ऑत, गुदा, हृदय, स्नायु, गुर्दा, जघे, एडी, पैर, जाघ के यक्ष्म) (देखो राजयक्ष्मा भी), १७।२१ (सिर मस्तक, जिह्वा, ग्रीवा का रोग)
यज्ञ—४।१६ (=पात्र)
यव—४।१९ (जौ), १६।६ (वृष्टि जौ को बढती)
यवाशिर—४।६ (जाउर, जौ की खीर)
यातु—५।१६ (=जादू), ८।३
यातुधान—५।२० (जादूगर)
यामि—१७।१५।१० (उत्तर युग मे जामि=बहिन अजामि का काम करेगी)
युग—१६।२ (जुआठ), १८।१२ (जुआ, जुआठ)
यूप—४।१६ (अश्व का-)
यूष—४।६ (जूस)
योजन—१६।२१, १७।३।२० (माप)
योषा—५।२८, ५।४६ (मुस्कराती स्त्री), १४।१३ (पितावाली योषा की तरह परिष्कृत सोम)
रक्षस्—१७।२६ (राक्षस)
रक्षोहा—१२।११ (राक्स भगानेवाले वैद्य), १८।२ (अग्नि)
रत्न—५।२६
रथ—१४।८ (दौड)
रथीतम—१३।२६ (कपर्दी ईशान)
रशना—३।२१, (पा टि रस्सी)
राजदुहिता—११।२० (घोषा)

राजन्य—३।२० (क्षत्रिय)
राजपुत्र—११।२० (की तरह)
राजयक्ष्मा—१२।७
राजा—५।६१ ११।४ (विश् राजा का उपस्थान करती है) ११।५ (राजा की तरह) ११।६ (सर्वत्राता राजा की तरह), ११।७ (जगत् चर्षणी का राजा इन्द्र) ११।८ (इन्द्र सारे भुवन का राजा), ११।६ (इन्द्र जगत् और चर्षणी का पृथिवी पर राजा) ११।१० (मित्र और वरुण ऋतु के राजा) ११।११ (इन्द्र जनो के राजा) ११।२५ (समिति के सदस्य भी राजा) १७।१२।६ (और मनुष्य)
राजाभिषेक—११।१२
रात्रि—१७।१६ (देवी)
रारपीति—१८।१५ (दहकता सन-सनाता)
राष्ट्र—११।२ (राष्ट्रो का राजा) ११। ३ (क्षत्रिय का रक्षित राष्ट्र) १७।१२ (क्षत्रिय का गोपित)
रुक्म—१३।२१ २२ (छाती पर का सुवर्णाभूषण)
रैभी—१७।३०।(३) (ऋचा)
रोग—१२।८ (हृद्रोग)
रोमशा—५।६१ (गधारी भेड जैसी)
लक्ष्मी—४।१४
लागल—४।२१ ५।४३ (हल)
लिबुज—१७।१५ (१३) (लता)
वज्र—६।५६ (को हाथ में धारण करना)
वतो वत—१७।१५।१३ (छि छि)
वधूमान्—५।६१ (दस रथ कक्षीवान् को मिले)
वन—४।१८ (हिम मे)
वपोदर—३।६ (इन्द्र)
वप्ता—१३।२६ (श्मश्रु का वप्ता, हजाम)
वरत्रा—४।२१ (वरही, रस्सी), ५।४३
वरुण—११।२ (उग्र, सहस्र-चक्षा नदियो के जल को बतलाते), १५।८६ (पाश छोडा)
वर्म—६।५० (कवच, वर्मी), ६।५०।२
वसत—१६।१४ (=ऋतु)
वस्त्र—१३।५ (श्वेत—अर्जुन पहने, देखो अधिवस्त्र भी), १४।१५ (को सोम देता)
वाजी—४।२ (=घोडा पका) ५।२१ (पका सोधा) ५।२७ (बलि दिया नहीं मरता, देवो के पास जाता), १५।१०० (पक्व वाजी)
वाणी—१८।४
वाद्य—१५।३५ (वाद्य)
वाशी—६।५४ (वसूला), ६।५५ (आयसी) ६।५४ (छुरा)
वासस—१७।३०।६ (=वस्त्र, सुवासा, शुक्रवासा दुर्वासा भी)
वाह—५।४३ (वाहन)।
विदथ—११।(ऋ. २।१३।१३,) सभा यज्ञ)
विद्युत्—५।२२
विप्र—३।३
विभीदक—१४।३१ (सुरा विभीदक है), १४।३३ (गले की लकडी का पासा)
विराट्—१८।३ (छन्द)
विश्—४।४ (=प्रजा, जनता) ११।४ (राजा का उपस्थान करती), ११।१२ (सारी विश् चाहती तू राष्ट्रभ्रष्ट नहीं, च्युत नहीं हो। इन्द्र ने करद बनाया विश् को)
विरासू—५।३
वृक—२।७, ५।३
वृक्ष(पक्व)—१४।२६ (=पक्व फल)
वृत्रतुर—६।३० (=शत्रुहन्ता), ६।३०।६ (=वृत्रहा), ६।३१ (=शत्रुनाशक)
वृत्रहा— ३।१२, ३।१३ (इन्द्र), ४।१२ (शूर, विद्वान्), ६।४६ (=शत्रुनाशक)
वृषभ—४।२ (पकाता), ४।३ (यजन), १५।६७ (=सॉड मैंने पकाया)
वृहती—१८।३ (छन्द)
वैश्य—३।२०
शर—५।६५

शरद—१५।८४ (=वर्ष, सौ), १६।१, १६।१२, १६।१४ (ऋतु), १६।१४ (सौ)
शव—१५।१०२, (पा टि दफनाना)
शास—११।१५ (इन्द्र दिक्-शास है)
शिक्षा—१२।१ (देना), १२।२ (शिक्षमाण=मॉगते हुए)
शिप्र—१३।१४ (शिप्री इन्द्र), १३।१५ (अघ शिप्र और सुनिष्क) १३।२२ (सिर पर फैला सुनहला)
शिशुमार—५।५८ (अश्विनौ के साथ)
शुक्रवासा—१३।४ (युवती सी उषा)
शुचिदत—३।१
शूद्र—३।२०
शूर—१७।१६ (युद्ध मे शरीर छोडनेवाले स्वर्ग जाते)
श्मश्रु—१३।२६ (=मूँछ-दाडी बनानेवाला हजाम)
श्वा—४२१ (कुत्ता)
श्वित्यच—३।६ (सफेद, गोरा), ५।२३ (तृत्सु), १०।३ १०।१५ (=गोरे तृत्सु)
श्रव—१५।८० (यश, रूसी स्लवा)
श्लोक—१४।२ (मुख मे पर्जन्य की तरह १५।२४ (=यश), १८।३ (= ऋचा)
सक्तु—४।१४ (-छानना)
सख्या—१६।२३-४३
सपत्नी (=सौत)—१५।१०१ (सपत्नी-बाधा)
सप्तस्वसा—१५।८४ (घोडे के रथ पर सूर्य को बहन करती)
सभा—११।२१ (जूये की सभा), ११।२२ (सभेय विप्र), ११।२३ (मे चन्द्र जाता), ११।२४ (मे बडाई की जाती)
सभेय—११।२२ (सभ्य विप्र)
समिति—३।२१, ११।२५ (समिति मे राजाओ की तरह), ११।२६ (समिनियो मे जाते राजा की तरह), ११।२७ (तुम्हारी समिति समान हो)
समुद्र—२।४, ५।५६, ६४, ६१, १६।३
सम्राज्ञी—१७।३० (४६) (सास-ससुर-ननद-देवर पर साम्राज्ञी होओ)
सम्राट्—११।१३ (जनो का सम्राट् अग्नि), ११।१४ (सम्राट् स्तुति करते है)
सवन (=सोम छानने के समय)—१५।६१ (प्रात साव, माध्यन्दिन-सवन, तृतिय-सवन) १५।६३ (माध्यन्दिन-सवन)
सवत्सर—१६।१६
सवरत्रा—१६।२ (जुआठ की रस्सी)
सहस्रदान—५।१६
सहस्रस्थूण—१६।६ (हजार खभोवाले घर को राजा रखते हैं)
साम—(सामवेद मे सबसे अधिक साम गायत्र गायत्री छन्द मे गाया जाता है, उसके बाद त्रैष्टुब्, बार्हत् हैं। दूसरे चार छदोवाले भी साम उसमे मिलते हैं), १८।८ (सामो द्वारा स्तुति), १८।१० (गाना)
सामग—१८।६ (साम गानेवाले गायत्र और त्रैष्टुब् को गाते)
सारघ—४।२६ (मधु)
सालावृक्—७।७।१५ (लकडबग्घे के हृदय हैं स्त्रियो का सख्य)
साव (=सवन)—१५।६३ (प्रात साव)
सिह—१५।३६।४
सीता—४।२२, ५।४४।६, ७ (कृषि)
सीरा—२।४ (नदी), ५।६४ (धीरा), १६।१, २ (=हल जोडते बीज बोते)
सुदानु—५।८२ (=सुदानी)
सुनार—३।२१ (पा टि शिल्प)
सुभर—३।११ (आर्य)
सुरभि—४।१६, ४।१० (सुगध, सोधा)

सुरा—१४।३० (पीने पर दुमर्द हो लडते है।), १४।३१ (होश उडाने वाली), १४।३२ (भोज-दाता, आतरिक पेय सुरा को पाते हैं)
सुवरत्रा—१६।२ (सुन्दर जोता और सुन्दर सोचना भी)
सुवासा—१३।१ (युवा), १३।२, ३ (सुवासा जाया, अभिलाषिणी)
सूक्त—१८।५ १८।६ (ऋचासमूह)
सूना—४।६ (पशु काटने का काठ)
सूनु-तनय—५।३० १७।७ (पूत-नाती)
सूर—१८।१४ (=सूर्य)
सूरि—२।५, ५।३ (राजकुमार, वीर)
सूर्यत्वक्—३।७, ८ (अपाला)
सृणी—१६।२ (फसल)
सेनानी—८।३१ (सेनापति)
सैर्य—५।७५ (शर कुशर, दर्भ, मॉज के साथ)
सोम—१४।२३ (भेड के ऊनी कपडे मे सोम का छाना जाना दो चमुओ म डालना कलशो मे रखना) १४।२४ (सोम शूरो का समूह, सार वीरोवाला जेता धनो का देनेवाला तीक्ष्ण- आयुध, क्षिप्रधन्वा युद्ध मे हरानेवाला है) १४।१५ (वनो के लिए स्वधिति सोम पवित्र को पार होता ह पुराने पितर के कामो को सोम ने बनाया, मनु के लिए वह अमित्र नाशक हुआ), १४।२६ (पके वृक्ष की तरह आनन्द के लिए ६० हजार धनो को दिया), १४।२७ (पुरानी गाथा से उसकी प्रशसा की) १४।२८ (भेड के बालो से गाय के चमडे पर सोम छाना जाता) १४।२६ (शर्यणावत मे इन्द्र ने सोम पिया सोम आर्जीक से आ विराजे, सोम अनाशमान (ऋत) लोक मे ले जाता, जो लोक कि ज्योतिष्मन्त हैं वहाँ अमर करैं, जहाँ कि आनन्द मोद, मुद, प्रमुद है), १४।२३ (भोग)
सोमपीति—४।४ (सोमपानगोष्ठी)
सोमराजा—३।१६
स्कम्भ —५।४७ (स्तम्भ)
स्तोम—५।६१, ५।८१ १६, ६।३, १३।२५ १६ १२ (द्वारा प्रशसा), १७।३० (=ऋचा), १८।११ (नये सोम पैदा करता) १८।१७ १८ (ऋचा), १८।१६ (=भजन गान)
स्थविर—१५।८० (स्थायी, बूढा वृद्ध)
स्रोत्या—५।२८ ५।६३ (नदी)
स्रवन्ती—५।६३ (नौ)
स्वधिति—१४।१५ (कुठार वनो का)
स्वराट्—११।१७ (इन्द्र स्वराट्)
स्वसा (=बहिन)—१७।१५।११ १२ (के साथ भ्राता का सम्बन्ध निषिद्ध)
हरिकेश—३।२ ३ (पीले बालोवाला)
हरिमाण—१२।१८ (पीलिया रोग)
हरिश्मशारु—३।२ (पीली दाढीवाला)
हरिश्मश्रु—३।१ (पीली दाढीवाला)
हरिशिप्र—३।५ (पीले मुकुटवाला)
हर्म्य—१६।८ (पर स्थित शिशु)
हव्य—५।११ (हवि)
हिम—४।१८ (से वन)
हिम, शत,—५।३ १५।८१, १५।८३ १६।१३ (सौ हिम-वर्ष वीर पुत्रो-सहित सानन्द रहे)
हिरण्यकर्ण—१३।१७ (कान मे सोना धारण करनेवाला)
हिरण्यकेश—३।४ (सुनहले बालोवाला)
हृद्रोग—१२।८
हेमन्त—१६।१५ (सौ हेमन्त-ऋतु)

परिशिष्ट ४

देवता–सूची

अग्नि (-देवता)—१५।११ (पुष्टि- कारक होता), १५।१२, १३ (सहस्र सूनु), १५।१३ (युवा अद्रोघवाक्), १५।१४ (व्रतपा, नाकस्पर्शी, विशो का राजा वैश्वानर, को पश्चिम से लाये), १५।१५ (हव्यवाह विश्पति), १५।१६ (वैश्वानर स्वर्विद=स्वर्ग-ज्ञाता, रथिर कुशिक आह् वाता, कुशिको द्वारा युग-युग मे सेवित), १५।१७ (राजा, रुद्र, होता, सत्ययज) १५।११ (दृषद्वती आपया सरस्वती मे धनयुक्त), १५।२, १५।५, १५।६ १५।७-६, १८।१ (प्रथम, दर्शनीय, होता इळस्पद)

अग्नीषोम—५।७८ (अग्नि-सोम)

अज—१५।५ (एक पैरोवाला देवता)

अदिति—१५।२ १५।३ (आदित्य भी), १५।५ (आदित्य) १५।७ (आदित्य), १७।१ (अदिति से दक्ष और दक्ष से अदिति जन मे)

अद्रि—५।५ (=देवता)

अपानपात्—१५।५ (=देवता)

अप्या—१५।५ (=पानी के देवता)

अप्सरस —५।१६

अमृत—४।२६, १७।१५।३ (देवता)

अमृतबन्धु—१७।१ (देवता)

अरण्यानी—१५।१६ (नहीं मारती, स्वादु फलदायक, बिना किसान के बहुअन्नवाली, मृगो की माता)

अर्यमा—१५।२ (सु-मगल), १५।८

अश्विनौ—२।१७, १५।५, ६, १७।७ (तुम दोनो के लिए मैंने स्तोम बनाया, जैसे भृगु रथ को बनाते हैं), १७।८ (कवि कुत्स की तरह विशो=प्रजा को पानेवाले, भुज्यु, बश, सिजार उशना के उपकारक, कृश, शयु के उपकारक), १७।१० (नासत्य सबेरे मधुवाहन रथ पर चढते हैं), १७।११ (उन्होने कृष्णिय विश्व को विष्णापू दिया, पीहर मे बैठी झुराती घोषा को पति दिया) (देखो नासत्य भी)

असुर—१७।१५ (के वीर, महस्पुत्र द्यौ के धर्ता)

अहिर्बुध्न्य—१५।५

आप(देवी)—१५।२० (सुखमय, शिवतम रस, माता, देवी), १६।३ (आपो देवी)

इन्द्र—४।३१ (स्थूल-गर्दन), ६।१६।३ (जैसा), १५।५ (वसुओ के साथ), १५।६, १५।७, १५।२२ (शिप्रवान्, वृषभ, गोत्रभिद्, वज्रभृत्), १५।२३ (त्राता, अविता, सुहव=अच्छी तरह पुकारा जानेवाला, शूर, शक्र, हूत, मघवा, रूपरूपपर प्रतिरूप, (मघवा, हरिव), १५।२५ (इन्द्र के ११० जुते घोडे, पुरुरूप), १५।२४ (मघवा, हरिव), १५।२५ (वज्रहस्त इन्द्र के लिए दध्याशिर सोम छाने मद के लिए), १५।२६ (यातुधान स्त्री-पुरुष को माया द्वारा मारे), १५।२७ (गवाशिर शुक्र सोम को मद के लिए पिये, सजोषा, मरुत् गण के साथ, रुद्रो के साथ वर्षण करै माध्यदिन सवन मे पिये, रुद्रों के साथ गण-सहित, सुशिप्र), १५।२८ (मयूर रोमवाले घोडे के साथ आवे), १५।२६ (सिह जैसा, भीम आयुधो को धारण करता, वामदेव की स्तुतियो का रक्षक, भूमि का रक्षक, सखा), १५।३० (ने वृत्र को मारा, अहि द्वारा ग्रस्त

सिन्धु को मुक्त किया, जलो ने मरु को भर दिया), १५।३१ (उग्र, नृतम, शचीवान् परुष्णी की श्री को चाहता, देवतम देव, दोनो बाहो मे वज्रधारी), १५।३२ (ने मनु सूर्य कक्षीवान् विप्र ऋषि, कुत्स आर्जुनेय की रक्षा की, कवि उशना आर्यो को मैंने भूमि, वृष्टि दी, शवर की ६६ पुरियॉ नष्ट कीं सौर्वी को रहने लायक किया, दिवोदास अतिथिग्व की रक्षा की) १५।३३ (जिस के घोडे दिशाओ मे जिसकी गाये, जिसके सारे रथ हैं। जिसने सूर्य ओर उषा को पेदा किया जो आपो का नेता, जिसने ४० वी शरद = सवत्सर मे पर्वतो के रहनेवाले शवर को मारा) १५।३४ (इन्द्र के लिए पितरो ने स्तुति की, उसके लिए गाये दूध देनेवाली उसके लिए अश्व हैं। राजा कवि मघवा इन्द्र के लिए वसिष्ठ ने ब्रह्म रचे, गोपति), १५।३४ (इन्द्र के लिए गायो ने आशिर दुहाया। वज्री, इन्द्र को हे प्रियमेघो अर्चो प्रार्चो, पुतवा अर्चो गर्गर गोधा वजे पिगा ध्वनित हो सुशिप्र हिरण्य सुनहले रथ पर बैठा द्यौ-निवासी, सहस्रपाद), १५।३६ (हर्यश्व, मघवा, वज्रहस्त), १५।३७ (वज्र दक्षिण घोडे के रथ हरित श्मश्रु को हिलाता), १५।३८ (सुदानु), १५।३६ ("तेरे लिए वृषभ पकाते तू खाता सिह जेसा) १५।४० (उसका वज्र हरित आयस वह सुशिप्र हरित श्मश्रु हरित केश), १५।६३।७ (५) (मरुतो के साथ अपूप खाओ सोम पियो, तुम्हारे लिए करभ, धाना तेयार किया) १७।२ (सहस् के वल से उत्पन्न वज्रधारी), १७।३ (वृषाकपि = अग्नि के साथ इन्द्र के सौहार्द से इन्द्राणी रुष्ट), १७।३।१४ (मेरे लिए पॉच-बीस बैल पकाया, में खा के मोटा मेरा पेट भरा)

इन्द्रपत्नी— १७।३ (वृषाकपि = अग्नि के साथ इन्द्र के सौहार्द से नाराज) १७।३-८-२० (शूर-पत्नी सुबाहु, सुअगुरी, पृथु-नितम्बा पृथु-जघना), १७।३ (११) (सुभगा, इसका पति जरा से नहीं मरता), १७।१२ (इन्द्राणी)

इन्द्राग्नी—२।११ (इन्द्र और अग्नि) १५।५ (०)

इन्द्रापूषन्—१५।५ (इन्द्र और पूषन्)

इन्द्रावरुण—५।२३, १५।५ (इन्द्र और वरुण)

इन्द्रासोम—१५।५ (इन्द्र और सोम)

इळा (=देवी)—५।३० १५।२१ (योषा-सहित भारती और सरस्वती)

उषा—१५।४ (हमारी रक्षा करे), १५।५

ऋभु—१५।२ (ऋभुक्षा), १५।५ (ऋभव सुकृत, सुहस्त), १५।४१ (ऋभुओ का रत्न येय हुआ सुश्रुत भली प्रकार छाने मधु सोम पियो तृतीय सवन को रत्नध्येय करो), १५।४२ (अनश्व, विना लगाम का त्रिचक्र रथ ऋभुओ का, पृथिवी के पोषक ऋभु), १८।१५ (चमकता)

क—१५।४३ (वह हिरण्यगर्भ भूत का एक पति पहले था, जिसकी छाया अमृत। जगत् का राजा दोपायो-चौपायो का ईश। जिसकी महिमावाले ये हिमवान्। जिसकी दिशाये। जिससे द्यौ ऊँची पृथिवी दृढ नाक = द्योलोक थमा है, वह प्रजापति, सारे उत्पन्नो के चारो ओर हैं)

कीनाश—४।३२ (कृषिदेवता)

क्षेत्रपति—१५।५ (देव)

जिष्णु—१५।५ (देवता)

त्र्यम्बक—१५।८५ (सुगधि पुष्टिबर्धन)

दक्ष—१७।१ (दक्ष की माता और दुहिता अदिति)

देव—५।२४ (तैंतीस), १५।२, ८ ६, (देवसख्या), १५।१० (देवलोक), १७।१ (अमृतबन्धु अदिति के आठपुत्र)

देवी आप—१।१२ (दिव्य जलदेवियॉ)

द्यौ—१५।३ (पिता)

द्यौ-पृथिवी—१५।५

धर्ता—१५।५

धाता—१५।५

धिषणा—१५। (ऋ० १।१०६।४ धन की देवी)
नाक—१५।१० (=स्वर्ग लोक)
नासत्य—१५।२, १७।६ (घोषा ने भिषज् नासत्यो से प्रार्थना की। उन्होने विमद का सुध्यु से ब्याह किया, पुरुमित्र को स्त्री लाये, पेदु के लिए श्वेत अश्व, नव अन्नो और नब्बे बाजियो=घोडो के साथ दिया। शॅयु के लिए धेनु दिया, वृक=भेडिये के मुख से वर्तिका को छुडाया), (देखो अश्विनौ भी)
पर्जन्य—४।२३, ५।४५, १५।४, ५, १५।४४ (द्यौ-पुत्र सिचक पर्जन्य के लिए गाओ, वह गायो-घोडो-औषधियो मे गर्भ-धारक)
पर्वत—१५।४, १५।५ (देवता)
पार्थिव—१५।५ (=पृथिवी के देवता)
पितर—१५।३ (द्यौ-पिता), १५।५ (पितर हमारे कल्याणकारक हो), १५।७८ (जहॉ हमारे पुराने पितर गये हैं। अगिरा पितरो के साथ हे यम इस प्रस्तर पर बैठो), १५।७६ (उरे-परे-बीचवाले सोम्य, पुत्रो को पितर धन देवे, पूर्वज पितर, अग्निदग्ध, अनग्नि-दग्ध द्यौ के बीच स्वधा से आनन्द करते)
पितरौ—१५।४५ (-दो पितर देवता, द्यौ पृथिवी। पितरो के उपस्थ मे उत्पन्न अग्नि वैश्वानर)
पिशचि—१५।८६ (पिशग)
पुरदर—५।५१ (पुर-नाशक, इन्द्र)
पुरन्धि—१५।५ (=देवता)
पूरुष—१५।४५ (हजार सिरो हजार ऑखो, हजार पैरोवाला दशागुल बढा पूरुष ही भूत-भविष्य सब अमृतत्व का ईशान है। पूरुष-हविद्वारा द्यौने यज्ञ किया, इसका घी वसन्त, ईधन, ग्रीष्म हवि शरद है। उससे अश्व और मुँह मे दोनो ओर दाँतवाले पशु पैदा हुए, गाये बकरियॉ और भेडे पैदा हुई। इसका मुँह ब्राह्मण, दोनो भुजाये राजन्य, दोनो जघे वैश्य हैं, दोनो पैरो से शूद्र पैदा हुआ)
पूर्भित्—५।६३ (पुरध्वसक इन्द्र)
पूषन्—१।२२, ४।२२ (कृषिदेवता), १५।५ (इन्द्र-पूषन्), १५।६, ७, १५।४७ (पथ के पति। देने के अनिच्छुक पणि को प्रेरित करो), १५।४८ (कुँए मे हमारे पशु न गिरे, नष्ट पशु हमे फिर मिले), १५।४६ (रथीतम कपर्दी ईशान), १५।५० (करभ = सत्तू के लिए पूषन् को बुलाना), १५।५२ (पशुपा वाजपास्त्य। पूषा की नावे समुद्र के बीच, अन्तरिक्ष मे सुनहली नावे चलती है। वह द्यौ से पृथिवी का सुबन्धु, इळस्पति = अन्नपति मघवा, जिसे देवो ने सूर्या के लिए दिया)
पृथिवी—१५।३ (माता)
पृश्नि—१५।५ (देवगोपा)
पेरु—१५।५
प्रजापति—१५।५३ (न सद् था न असद् था, न व्योम था न मृत्यु न अमृत था न रात न दिन। उससे दूसरा कुछ नहीं था। तम से आच्छादित चारो ओर सलिल था। कौन जाने कौन कहे, कहॉ से उत्पन्न हुई यह सृष्टि), १५।५४ (जो एक सो कर्मो से आयत, चारो ओर तन्तुओ से ताना यज्ञ)
प्रदिश—१५।५ (दिशाये)
ब्रह्म—१५।५ (=ऋचा, देवता)
भग—१५।२ १५।५ १५।६
मघवा—५।२ (=धनवान् इन्द्र)
मन्यु—१५।५५ (मन्यु = क्रोध वज्र सहायक सबको कोसता हे, उस सहसवान् द्वारा दास और आर्य को हम परास्त करे मन्यु इन्द्र है, वह वरुण अग्नि हे। मानुषी प्रजाये मन्यु की पूजा करती हैं। वह अमित्रहा, वृत्रहा दस्युहा, सारे धनो को लानेवाला), १५।५६ (उसके साथ रथपर चढे, तीक्ष्ण वाण और आयुधवाले नर अभियान करे। अग्नि की तरह दागते हमारे सैनानियो को बढाओ)।
मरुत—१५।२, १५।४ (स्वर्क)
मार्ताण्ड—१७।१ (अदिति उस पर बैठी)।

मित्र—१५।१ २ ४, (मित्र-वरुण), १५।६ (मित्र-वरुण) १५।७, १५।४७ (मित्र ने पृथिवी और द्यौ को धारण किया है। मित्र के लिए हवन करो मित्र के व्रतवाला न मारा जाता है न जीता जाता है। मित्र के लिए पचजन नियम करते हैं)

मित्रावरुण—१५।५, १५।६ (मित्र और वरुण)

यम—(=देवता)—१५।७८ (मातली काव्यो द्वारा वढता। यम पितरो के साथ इस प्रस्तर पर बैठे। वह राजा इस हवि से प्रसन्न हो। यम ओर वरुण दोनो राजा स्वधा से खुश होते हैं। यम के चार ऑख वाले पथिरक्षी दो कुत्ते। यम के दो उदुम्बल दूत लोगो के पास विचरते। यम के लिए सोम छानो यम राजा के लिए मधुमत्तम हवि हवन करो) २५।१०२ (के पास पुराने पितर)।

रक्षस्—५।४७ (राक्षस)

रुद्र—१५।२ (रुद्र के सूनु वसु लोग), १५।५ (रुद्रावरुण, रुद्रो के साथ वरुण), १५।६ १५।७ १५।५८ (रिथरधन्वा=क्षिप्रवाणवाला देव, अपराजित तीक्ष्ण-आयुध। उसकी छोडी विद्युत् द्यौ और पृथिवी पर विचरती है। उसकी हजारो दवाइयॉ है, वह हमारे स्तोकतनय पुत्र-पौत्रो-, को हानि न पहुँचाये) १५।५६ (रुद्र कपर्दी दोपायो चोपायो का कल्याण करे। इस ग्राम मे सबको तुष्ट ओर निरोग करे। वह यज्ञसाधक ओर वकु कवि है। वह द्यो का वराह अरुष=अरुण कपर्दी हे, उत्तम भेषजो को धारण करता हे)

रोदसी—५।३२ १५।५ (द्यो और पृथिवी)।

लोक, अमृत—१४।२६ (अनाशमान, कामचार-वाला, ज्योतिष्मान् आनन्द-मुद-प्रमुदवाला)

वरुण—१५।२, १।५।७, १५।६० (नदीपाथज्ञ, राष्ट्रो का राजा) १५।६२, १५।६३

वरुणानी—१५।६१

वसु—१५।२ (देवगण अजेय) १५।३ (भाई) १५।४ १५।५, १५।७ १५।६० (नदीपाथज्ञ, राष्ट्रो के राजा)

वाक्—१७।२० (मैं सारे देवो के साथ चलती हूँ, जिसे चाहूँ उसे ब्रह्मा, ऋषि बनाऊँ)।

वात—१५।५ (वायु)

वायु—१५।२, १५।५, १५।७, १५।६६ (वायु के लिए सजे सोम, उसकी उक्थो से स्तुति करते)।

वास्तोष्पति—१५।६७ (=मकानो का देवता। वह रोगनाशक सभी रूपो मे प्रविष्ट सखा है, के सफेद सारमेय)

विश्वकर्मा—१५।६८ (हमारे पिता, ऋषि होता, विश्वकर्मा ने भूमि को जन्माया द्यौ को वढाया। वह चारो ओर चक्षु-मुख-वाहु-पैरोवाला है, दोनो बाहुओ से धौंकता है, पखो से, उस एक देव ने द्यौ और भूमि को जन्माया)

विश्वेदेवा—१५।५ (=सारे देवता)

विष्णु—१५।५, १५।७, १५।६६ (उस देव ने इस पृथिवी को तीन वार विच क्रम=लघन किया, वह वलियो मे वलिष्ट)

वृषाकपि—१७।३ (=अग्नि के प्रति इन्द्र के सौहार्द्र से इन्द्राणी रुष्ट)

वृत्रहा—५।५१ (=पुरन्दर, कृष्णयोनि दासीर का नाश)।

वेदि—१५।५ (देवता)

शचीपति—५।८५ (वृत्रहा)

शुनासीर—४।३२, ५।४५ (कृषि देवता)

सरमा—६।१६ (-देव=कुविया की पणियो से माग)।

सरस्वती—५।६, १५।२, १५।४ (सिधुओ-सहित फूली), १५।५, १५।७० (आयसी पुर को नाश करती रथ्या की तरह जाती। नदियो मे शुचि। गिरियो से समुद्र तक जाती। धन चेताती। नाहुष = मनुषी प्रजा के लिए घी-दूध दुहाती। वसिष्ठ उसकी स्तुति करते हैं), १५।७१ (सरस्वती की महिमा वसिष्ठ गाते हैं, उसके दोनो तटो पर पूरु बसते, सारस्वतो के साथ सरस्वती, भारती, इळा तीनो देवियॉ इस यज्ञ मे बैठे। सरस्वती दृषद्वती आपया के तट पर धनयुक्त अग्नि प्रदीप्त हो) १५।७४ (उसने दाता बध्र्यश्व को दिवोदास प्रदान किया। पणि को खाया। ने अपनी उर्मियो से गिरियो के सानुओ को तोडा। परावत = वार-पार को

तोडनेवाली, सात बहिन सरस्वती स्तोमनीय हैं। उसके क्षेत्र और अरण्य को हम पाये)

सविता—१५।२, १५।४, (उगता सूर्य), १५।५ (सूर्य बहुदर्शी), १५।७ (आदित्या) १५।७५ (सविता के वरेण्य भर्ग का हम ध्यान करते हैं), १५।७६ (उसकी सुनहली दोनो बाहुये है। वह दक्ष, सुदक्ष हिरण्य जिह्न हिरण्यपाणि, अयोहनु = वज्र तुड्डीवाला, मद्रजिह्न है)

सहसोसूनु—५।४ (अग्नि), ७।४ (सहस् का पुत्र)

सिंधव—१५।४, १५।७० (सिंधु), १५।७४ (सरस्वती की सात बहिनो मे)

सोम—४।२७ (चमुओ मे) ४।२८ (मदिष्ठ स्वादिष्ठ धारा) ४।२६ (पीने से अमर), ५।४७ (का चमस, कलश), ५।७७ (रोगनाशक पुष्टिबर्धन) ५।८६ (की धारा स्वादिष्ट, मदिष्ट) १४।३ (चमुओ मे छाना, चमसो मे पीना, चमुओ मे जल मे चन्द्र = माकी तरह दिखलाई देता), १४३।१ (स्वादिष्ठ=अत्यन्त स्वादु मदिष्ठ-अत्यन्त नशा देनेवाला) १४।४ (द्रोणो मे रक्खा) १४।५ (पवमान=छाना जाता, आवाज करता), १४।६ (को दस अगुलियाँ मीजती, पीछे विप्र पीकर मस्त होते। कलशो मे लाल वस्त्रो से ढँके), १४।७ (सोम के लिए गाओ) १४।७।३ (सोमराजा) १४।८ (वह यूथ के वृषभ सा सींगो को हिलाता है), १४।६ (वह कलशो मे दौडता पवित्र मे सीचा जाता, उक्थो द्वारा यज्ञ मे बधावा पाता है) १४।१० (रथो की तरह तेज जानेवाले, छूटे घोडो की तरह हिनहिनानेवाले पर्जन्य की तरह फैले, अग्नि की तरह घूमनेवाले टध्याशिर) १४।१२ (पवित्र मे पीने के लिए छाना हुआ रहता है) १४।१३ (पर्वत से क्षरण करता) १४।१४ जार को जैसे कन्या वैसे सोम को दस अगुलियाँ स्पर्श करती हैं), १४।१५ (सोम गोजित्, अश्वजित्, विश्वजित्, रणजित्, प्रजायुक्त रत्न लानेवाला है), १४।१६ *(गाय से सोम को गाओ)*, १४।१७ (सोम के नशे मे इन्द्र ने शबर के ६६ नगरो को दिवोदास के लिए नष्ट किया, और युदु-तुर्वश को परास्त किया, अमित्र वृत्र को मारा। दिन-प्रतिदिन अन्नदाता, वह गौ और *अश्व देनेवाला)* १४।१८ (इन्द्र-विष्णु के लिए छाना सोम कलश मे क्षरित हुआ। वह भूरा हैं। इन्द्र को बढाता सबको आर्य बनाता वह शत्रुओ को नष्ट करता हैं), १४।१६ (सोम सूर्यदेव *की तरह* पत्थरो से *निचोडा* पवित्र *होता कलश मे* रसता) १४।२० (हरित = पीले वर्ण का। तीव्र जिसका मद्यरस), १४।२१ (दूर और नजदीक शर्यणावत मे छाना गया सोम। आर्जीको मे, *कृत्य पस्त्यो के बीच* पचजनो मे *छाना गया। जमदग्नि द्वारा* स्तुति किया जाता। हरा सोम गौके चमडे पर पवित्र हो रहा हैं), १५।५ (इन्द्रासोम, सोम) १५।६, १५।७ १५।७७ (स्वादु मधुमान्, तीव्र, रसवान्, मदिष्ठ जिसे पी वृत्रहत्या मे इन्द्र ने मस्त हो शबर की ६६ देहियो को नष्ट किया। पृथिवी की श्रेष्ठता द्यौ की उच्चता को उसने बनाया। वह पीयूष है। सोम ने विस्तृत अतरिक्ष को धारण किया), १४।१६ (ससुर नहीं आया कि धाना खाता, सोम पीता)

सोमराजा—१७।१२ (सोम)

स्वर्ग—१५।१०३ (नाक के पृष्ठ पर देवो के साथ मे जाते) १५।१०४ (स्वरहित= सुखयुक्तलोक जहाँ निरन्तर ज्योति। जो अमृत-लोक)।

राहुल सांकृत्यायन की उपलब्ध पुस्तकें

दर्शन, धर्म

- दर्शन-दिग्दर्शन
- बौद्ध दर्शन
- इस्लाम धर्म की रूपरेखा
- तिब्बत में बौद्ध धर्म
- ऋग्वेदिक आर्य

कहानियाँ

- वोल्गा से गगा
- बहुरंगी मधुपुरी
- कनैला की कथा
- सतमी के बच्चे

निबन्ध, इतिहास, संस्कृति

- साहित्य निबन्धावली
- पुरातत्व निबन्धावली
- दिमागी गुलामी
- साम्यवाद ही क्यों
- हिन्दी काव्य धारा
- तुम्हारी क्षय
- आज की समस्याएँ
- अकबर
- विश्व की रूपरेखा

जीवनी

- सिंहल के वीर
- माऊ चे तुंग
- कार्ल मार्क्स
- वीर चन्द्र सिंह गढवाली
- घुमक्कड स्वामी
- बचपन की स्मृतियाँ
- मेरे असहयोग के साथी
- जिनका मैं कृतज्ञ

उपन्यास

- विस्मृति के गर्भ में
- निराले हीरे की खोज
- जीने के लिए
- अनाथ
- सोने की ढाल
- जय यौधेय
- दाखुदा
- सिंह सेनापति
- दिवोदास
- अदीना
- सूदखोर की मोत
- बाइसवीं सदी
- भागो नहीं दुनिया को बदलो
- राजस्थानी रनिवास

यात्रा भ्रमण, नाटक

- किन्नर देश में
- विस्मृत यात्री
- घुमक्कड शास्त्र
- तीन नाटक

निरंजनलाल गोयनका

225

ऋत की धुरी